मेरी जीवन यात्रा

मेरी जीवन यात्रा

५

राहुल सांकृत्यायन

राजकमल प्रकाशन

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ स्वर्गीय महापण्डित राहुलजी की बहुचर्चित 'जीवन-यात्रा' का शेष भाग है, जिसे तीन खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम तथा द्वितीय खण्ड को पढने वाले राहुलजी के पाठक शेष खण्डों के लिए भी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु लेखक की लेखनी से वर्षों पहले लिखे जाने के बाद भी यह खण्ड किन्हीं कारणों से अप्रकाशित रहा। लेखक ने अपने जीवन काल में उसे प्रकाशित करवाने की ओर उतनी तत्परता भी नहीं दिखलाई क्योंकि वे अपने जीवन-काल में इसे प्रकाशित देखने के इच्छुक नहीं थे।

राहुलजी के देहावसान के बाद हिन्दी प्रेमियों तथा राहुल-साहित्य के पाठकों ने जीवनी के शेष खण्डों के लिए बहुत उत्कण्ठा व्यक्त की है। आज यह आपके हाथों में आ रहा है। पाठक इस ग्रन्थ की नरम और गरम दोनों प्रकार की शैली का रसास्वादन करेंगे जो राहुलजी की चुस्त लेखनी की विशेषता रही है।

ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का आद्योपांत पढकर उसके प्रकाशन को सम्भव बनाने के लिए हमें राहुलजी के अनन्य मित्र श्रद्धेय भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी का कृतज्ञ होना चाहिए। ग्रन्थ को इतने सुन्दर रूप में प्रकाशित कर देने के लिए हम राजकमल प्रकाशन के आभारी हैं।

कमला सांकृत्यायन

राहुल निवास
२१, कचहरी रोड,
दार्जिलिंग

१ नई साहित्य योजना

२ बदरी केदार मे

३ पहला सैलानी मौसिम ८

४ दूसरा जाडा ८७

५ १९५२ का आरम्भ १०९

६ मजदूर सघ मे १४२

७ नेपाल मे १६०

८ मसूरी मे १९०

९ वृद्ध लेडली २३२

१० हिमाचल प्रदेश म २४४

११ सैलानियो का मौसिम २८७

१२ सरहपा के चरणो मे ३२०

१३ जेता का जन्म ३५१

१४ मसूरी से मन भर गया ३७५

१५ जाडे की यात्रा ४०६

१६ छोटी सी यात्रा ४३१

१७ छपरा ४५७

१८ कलकत्ता ४७२

१९ ६३वें वर्ष की समाप्ति ४९१

नई साहित्य योजना

यह वर्ष गणना भी कैसी है ? एक जाडे को दो सना मे, एक रात को दो तारीखों मे रखा गया है। अब १९५० के अंतिम भाग के जाडे का पूरा करके १९५१ के आदिम जाडे म हम थे। नव वर्ष की हमारे यहा कोई महिमा नहीं है। हमारा नववर्ष बल्कि अधिक वैज्ञानिक है, जो जाडे को बिता कर वसंत म आरम्भ होता है। असलसर म जो खरोच लगी थी वह अभी अच्छे होने का नाम नही लेती थी। सिर्फ इन्सुलिन से काम नही चल रहा था, इसलिए आज (१ जनवरी) तीन तीन घट के बाद चार बार पेनि-सिलीन ली। यह तो चल ही रहा था, लेकिन उसके कारण क्या जीवन का काम रुक सकता था ? दक्षिणी कवियो पर लिखते लिखते "दक्खिनी काव्यधारा" लिखी। १९५१ म ही उसे खतम कर चुका था, लेकिन प्रकाशक प्रकाश म आने दे तब ना। दक्खिनी भाषा की कविताओ का पढते पढते यह साफ होने लगा था, कि दक्खिनी भाषा की साहित्य भारतीकरण के लिए नही बल्कि इस्लामीकरण या अरबी ढाँचे मे ढालने के लिए हुआ। बीजापुर और गोल-कुण्डा मे पहले फारसी साहित्यकारो का ही बोलबाला रहा, फारसी मातृ-भाषा वाले कवि बाजी मार ले जाते थे। मुल्की लोग अपने जीवन के एक दजन से अधिक वर्ष लगा कर भी फारसी को पढने के बाद उस पर अधि-कार नही पाते थे। इस पर उन्होने पराई भाषा छोड अपनी भाषा मे लिखना शुरू किया। साहित्य ऐसे लोगो के लिए था, जो फारसी से परि-चित थे। स्वय बोलचाल की भाषा म भी पिछली दो-तीन शताब्दियो म

कितने ही अरबी फारसी के शब्द आ गये, जैसे हमारी भाषाओं मे अंग्रेजों के समय अंग्रेजी के शब्द। इसे पहले हिन्दी या हिन्दवी कहा जाता था। बोल-चाल की भाषा थी, इसका यह अर्थ नही, कि दक्खिन म यह बहुजन की भाषा थी। गोलकुण्डा के इलाके म तलुगू बहुजन भाषा थी, और बीजापुर मे मराठी। दिल्ली की सल्तनत के छिन्न भिन्न होने पर दक्षिण म पहले बहमनी और उसके बाद उसकी उत्तराधिकारिणी गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर आदि की रियासतें कायम हुई। दिल्ली के अधीन रहने पर यहा दिल्ली से राज्यपाल जाते थे बडे छोटे अफसर और पल्टन भी उत्तरी भारत की ओर की थी। ये और इनकी सन्ताने हिन्दी बोलती थी, जिनकी संख्या उस समय वहाँ की जनता म एक प्रतिशत भी नही रही होगी। पर हिन्दी बोलनेवाले ही वहा के सब कुछ थे। दरबारी भाषा फारसी रहने पर भी अधिक व्यवहार की भाषा हिन्दी ही थी। इसी को पीछे 'दक्खिनी" नाम दिया गया।

दक्षिणी कविता दरबारियो ने नही आरम्भ की, बल्कि धर्म प्रचारक फकीर उसके आरंभक थे। कुछ जनकवि भी रहे होंगे, लेकिन उनकी कृतिया सुरक्षित रखी गई। भारत के मुसलमान शासक दिल्ली म पहुचने से पहले पजाब म डेढ़ शताब्दियो तक राज कर चुके थे। वहाँ फारसी के साथ पजाबी अलिखित शासन भाषा रही। फिर दिल्ली मे राजधानी आने पर दिल्ली की भाषा अर्थात् (कौरवी) पजाबी से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखती थी। पजाब स आनवाले अपने साथ उसका असर लाए जिसे उन्होंने कौरवी पर छोडा, और जो फिर दक्खिनी के रूप मे दक्षिण गई।

कमला देहरादून म परीक्षा देकर कलिम्पोंग गई। महादेव भाई साथ गये। मसूरी म अब मैं और मानबहादुरसिंह रह गये। "दक्खिनी काव्यधारा" के काम मे मैं लगा था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की बना कर दी हुई योजना को अब कार्यरूप मे परिणत करना था। महादेव भाई आ गये थे, लेकिन उनकी बाहुपीर ऐसी थी कि तुलसी बाबा के "हनुमान बाहुक" के पाठ का भी कोई असर नही हो सकता था। नागार्जुनजी के पत्र से कभी मालूम होता था 'आयेंगे', कभी "नही आयेंगे'। दूसरे परिचितो पर भी नजर दौडाई लेकिन अभी किसी के आने का निश्चय नही था। वर्धा को लिख

दिया था कि जो मिलें उन्हें भेजें।

"हन क्लिफ" को लिए अभी छ महीने भी नही हुए थे, कि मनसाराम कहने लगे यह तो अपर्याप्त है। सचमुच ही तीन बडे बडे हाल, जिनमे से दो को ही शयनकक्ष बनाया जा सकता है, कैसे पर्याप्त हो सकता था। आये गय के लिए कोई जगह ही नही थी। कभी वास्तव धरती और आसमान का इतना अधिक अपव्यय किसी ने नही किया होगा। आसमान के अपव्यय से तो इसे ऐसा बना दिया गया है कि सर्दी हटाई ही नही जा सकती। इतनी ही जगह म आठ कमरे अच्छी तरह बन सकते थे, और इतनी ही छत और दीवार से दोमजिला करके इसके सोलह कमरे हो सकते थे। किस बेवकूफ ने ऐसा बँगला बनवाया? लेकिन बेवकूफ कहना गलत होगा, क्योकि बनवाने वाले को यहाँ जाडे नही बिताने थे। इसका मूल बँगला ऊपर का 'हैन हिल' था, जिसकी एक एक अगुल जमीन और आसमान को बहुत ठीक तौर से इस्तेमाल किया गया था। उसमे ८ नहानकोष्ठक, ८ ड्रेसिंग रूम, उतने ही शयनकक्ष और दो बडे बडे भोजन और बैठक के कमरे थे। सभव है इसे मेहमानो के पान और नत्य घर के तौर पर इस्तेमाल किया जाता हो। कल्पना दौडती थी, यदि यह ३० हजार मे बिक जाय, तो दस पन्द्रह हजार और लगाकर "हन हिल" को ले लें। उस समय "हन हिल" के लिए ४०-५० हजार की बात करना गुस्ताखी थी, लेकिन आज यदि उससे आधा भी कोई देने के लिए तैयार हो तो मालिक खुशी खुशी बेचने के लिए तैयार हो जाएँगे।

८ जनवरी को अभी भी कितनी ही जगहो पर बर्फ थी। डेढ दो इच बर्फ पडे तो छायादार जगहो मे वह दस पन्द्रह दिन तक गलने का नाम नही लेती। सर्दी जोर की जनवरी और आधी फरवरी तक ही यहाँ रहती है। लालबहादुर शास्त्री की कृपा से आज बन्दूक का लाइसेन्स आ गया। माचवजी ने डा० केमरवानी की सलाह उद्धृत करते हुए लिखा, कि मधुमेह वाले के लिए जाडे म हिमालय अच्छा नही है, लेकिन मैंने तो हिमालय को बारहो महीने के लिए चुना था, और यदि कलम चलाना है, तो पुस्तको का सुभीता यहाँ है, जिन्हे यहाँ से साथ नही ले जाया जा सकता।

९ जनवरी को सैर के लिए निकला। उस वक्त ऐसे निकलने का मत-

इस जाडे की यह चौथी और सबसे बडी हिमवर्षा थी—दो इंच मोटी रही होगी। "सारे वृक्ष-वनस्पति बर्फ की रूई से ढँके से दीख पडते थे। शाखाओं में हिमतूल लिपटा था। जो सामने के हिमताल के पत्ता और देवदार की शाखाओं में बहुत मनोहर दीख रहा था। दिन में आकाश निर्मल था। सूर्य अपनी किरणों द्वारा हिमप्रहार करने लगा। बहुत सी बर्फ दिन भर में गल गई, शाम को फिर वर्षा हो रही थी, लेकिन तापमान के अनुकूल न होने से वह हिम नहीं, बल्कि हिमशर्करा (बजरी) के रूप में गिर रही थी।

फ्लश आदि का २५३० रुपये का बिल आया। यदि पहले मालूम होता कि डेढ हजार से अधिक आएगा, तो न करते। पर अब तो करा चुके थे। सब लेखा जोखा करने पर "हन क्लिफ" पर २० हजार लग चुके।

आज ही प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापक ने कौशाम्बी की खुदाई के बारे में कुछ लिखा और साथ में ब्राह्मी शिलालेख का फोटो भी भेजा, जो उस जगह मिला था, जहाँ पर घोषिताराम था। पालि-परम्परा हमारे इतिहास पर कितना सच्चा प्रकाश डालती है, इसका यह प्रमाण था। पालि त्रिपिटक पढते, उस समय के इतिहास, भूगोल और सामाजिक तत्व की ओर मेरा ध्यान विशेष तौर से आकृष्ट हुआ था। मैंने पुस्तकों पर निशान बनाकर संकेत लगाये और कितनों को कापियों में जमा भी किया। लेकिन देश दुनिया की घुमक्कडी और दूसरे भी कितने ही काम कैसे समय दे सकते थे, कि मैं इन पर लिखता। "बुद्धचर्या" में इनका कुछ उपयोग जरूर किया, कौशाम्बी तथा जेतवन के बारे में स्वतन्त्र लेख भी लिखे। सोचा "उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा" और उसके लिए बहुत इन्तजार करने की जरूरत नहीं पडी। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने यह काम किया।

तीन चार दिन से प्रतीक्षा हो रही थी। आखिर २१ जनवरी के अँधेरा होते कमलाजी और महादेव भाई आए। कल लखनऊ में उन्हें गाडी नहीं मिली थी। महादेव भाई कलिम्पोंग नहीं गए, वह सिलीगोडी ही के आस-पास रह गए। कम्युनिस्टों को पहाड की पुलिस देखना पसन्द नहीं करती। मालूम हुआ कलिम्पोंग में तिब्बत के लोग भर गए हैं, कोई बंगला खाली नहीं है। ल्हासा में कम्युनिस्ट पहुँच गए हैं, और सरकार उनकी है। पिछले ३२-३४ वर्षों से कम्युनिस्टों के खिलाफ तिब्बत में धुआँधार प्रचार हो रहा

था, बतलाया जाता था कम्युनिस्ट राक्षस है, वह धर्म और मानवता के शत्रु हैं। इसलिए घबराहट के मारे यदि तिब्बत के कुछ धनी लोग भागकर कलिम्पोंग आ जाएँ, तो क्या आश्चर्य ? पर वहाँ के सबसे बड़े भूमिपति सुरखंग परिवार के न आने पर यह निश्चय ही था कि यह भय और आतंक बहुत दिनों तक नहीं रहेगा।

अभी तक घर सूना सूना मालूम होता था, अब वह भरा भरा दीखने लगा। कमला ने घर का इन्तिजाम सँभाल लिया।

२३ जनवरी को नेताजी का जन्मदिवस था। उनके भक्तों ने हालमेन होटल में एक छोटी सी उत्सव सभा बुलाई। सभापति मुझे बनना पड़ा। ८ १० वक्ताओं ने श्रद्धांजलि अर्पित की, लेकिन उनमें से कितनों ने इसके ही बहाने कांग्रेसी शासन पर अपने दिल का बुखार उतारा। वर्तमान अच्छा भी हो तो भी वह सन्तोष नहीं देता, और जब वह बहुत सी चिन्ताओं का वाहक हो, तो असन्तोष अधिक बढ़ जाए, यह स्वाभाविक है।

महादेव भाई साहित्य योजना में काम करने के लिए तैयार हो गए। २५ जनवरी को श्री हरिश्चन्द्र पुष्प भी सत्ययुग का रेमिंगटन का टाइप-राइटर लिए पहुँच गए। उसीसे उन्हें काम करना था और उस पर उनका हाथ भी बैठा हुआ था।

आदमी देखने के लिए बहुत वर्षों तक रहे, तो न विश्वास करने लायक बातें सामने आती हैं। मैंने अपने सामने नंगे खेलते बच्चों को सारे सिर से सफेद देखा। २० साल पहले मैंने महादेव भाई और उनके दो हमजोलियों बैजनाथसिंह विनोद और घावले को कलकत्ते में देखा था, उस समय बिल्कुल बच्चे तरुण थे। महादेव भाई अब शरीर और मन से भी बुढ़ापे की तरफ पैर बढ़ाते दीख पड़ रहे हैं। मानसिक बुढ़ापा तब होता है जब आदमी तकिया-कलाम इस्तेमाल करने लगता है, बात करने में सिर्फ अपनी धुन का ख्याल करता हुआ श्रोता के मन की परवाह नहीं करता।

आदमी की मानसिक स्थिति अच्छी-बुरी या उमर भिन्न होती है, जिसमें बाहरी सम्पर्क मुख्य कारण है। यह सम्पर्क चाहे आँखों से हो, कानों से या लिखे हुए पत्रों से हो। समाज तो ऐसा बना हुआ है कि जिसमें कोई निश्चिन्त नहीं रह सकता। ३१ जनवरी को कालेज में एक तरफ तरुण

आए। इगलैण्ड मे १४-१५ वर्ष तक रहे। पढकर वही वे स्कूल मे अध्यापक हो गए। अच्छी तरह गुजर रही थी। वहाँ का जीवन स्तर (स्टैण्डड) तो ऊँचा है ही, यदि काम मिले तो छ -सात सौ रुपये से कम का क्या होगा ? देश को स्वतन्त्र हुआ सुनकर दौड पडे। यहा आने पर नून तेल-लकडी की भीषण समस्या सामने आई। पत्नी भी सुशिक्षिता थी। सोचा अध्यापन का तजर्बा है इसलिए दोनो व्यक्ति छोटे बच्चो के लिए आश्रम स्कूल खोल दें। बार्लोगज म १५ सौ रुपये वार्षिक पर बहुत बडा बगला मिल गया। बाजार से दूर जाने के लिए तैयार रह, तो मसूरी मे बगले मिट्टी के भाव मिल रह है। एक महल जैसे बगले के बारे मे उसके मालिक कह रहे थे यदि कोई सस्था उसका इस्तमाल करना चाह, तो मैं बिना किराये उसे दे सकता हू। खैर बार्लोगज म उनका स्कल खुला। कुल २८ बच्चे थे। इतने से खच क्या निकलता ? घर की पूजी भी उसी म चली गई। सर्दी थी दरवाजा ब द करके आग जलाकर उसके पास बैठे हम दोना बात कर रहे थ। उनकी मैं क्या सहायता कर सकता था ? लेकिन, किसी के कष्ट को सहानुभूति के साथ सुनना भी एक बडी सहायता है।

३१ जनवरी को श्री मह द्रकुमार यायाचाय भी आ गए। बेचारे राजस्थान के रहने वाले थे। जाडे काटे थ बम्बई या मैदान के दूसरे शहरो मे। प० सुखलालजी के साथ वर्षो रह थे, और उसी समय से मेरे परिचित थे। अब यहा के जाडा म तब आए, जबकि बफ पड रही थी। १ फरवरी को भी वह पडती रही २ फरवरी को वह डेट दो इच धरती को ढाके हुई थी। यह इस साल की पाचवी हिमवषा थी। जब तक अत्यधिक सर्दी या गर्मी का प्रत्यक्ष अनुभव नही किया जाए, तब तक उसका कोई ज्ञान नही हो सकता। महे द्रजी और हरिश्च द्रजी को सबसे पहले गरम कपडो के बनवाने की फिक्र पडी। ७ फरवरी को कम्पनी बाग की ओर टहलने गए। कम्पनी बाग तक बफ खतम नही हुई थी। वहा से डाडा पार कर मानव भारती' गए। यह भाग देहरादून की ओर पडता है जहा बफ ज्यादा समय तक नही टिकती। डा० दुर्गाप्रसाद पाण्डे न लडके लडकियो की इस सस्था को कई वष पहले देहरादून मे स्थापित किया था। वहा ठहरकर बाहर कई सौ एकड जगल की जमीन भी एक पहाडी पर ले ली थी। जाने के लिए सडक भी

बनवाई। पर मानव भारती का 'विश्व भारती' का रूप देने के लिए लाखा की इमारत की जरूरत थी और प्रतिवर्ष लाखा का खर्च भी चाहिए था। सपना देखने वाले इसी तरह देखते हैं उनमें से किसी का स्वप्न चरितार्थ होता है, किसी का सपना ही भर रह जाता है। डा० पाण्डे पैदा हुए आरा जिले मे, विदेश म शिक्षा प्राप्त कर वहाँ से प्रेरणा ली, और यहा पर काम आरम्भ किया। जब अंग्रेज भारत छाडकर जाने लगे और सिर्फ उनके लिए बनी शिक्षण सस्थाएँ उठने लगी तो उनकी खाली इमारतों का सस्ते किराये पर मिलना बिल्कुल मामूली बात थी। पादरियो के स्कूल की यह विशाल इमारत उन्हे सस्ते किराये म मिल गई, और पाण्डेजी ने अपनी सस्था को देहरादून स मसूरी म स्थानान्तरित कर दिया। इस समय उसम ८० ८५ छात्र छात्राएँ थी एफ० ए० तक की पढाई थी। शिक्षा का तल ऊँचा रखने के लिए उसी परिमाण और गुणवाले अध्यापक अध्यापिकाओ को रखा था। खर्च के मारे परेशान थे। अगले साल छात्रों की सख्या और कम हो गई, लेकिन पाण्डेजी धूनी रमा चुके थे, लगे रहे। अब कुछ अनुकूल परिस्थिति पैदा हुई है लेकिन चिन्ता दूर हो यह बात नही। वस्तुत ऐसी सस्थाएँ उच्च मध्य वर्ग के बल पर चलती है, जिनकी हमारे यहाँ कमी है, और जो है भी वह यूरोपियन स्कूलो म अपने लडको को भेजना चाहते हैं। उन्हे भारतीय सस्कृति से अधिक यूरोपीय सस्कृति पसन्द है, और भारतीय भाषा से अधिक अंग्रेजी भाषा क्योकि वह केन्द्रीय सरकार की नौकरियो मे अपने लडको को भेजना चाहते है।

मसूरी म आठ मील लम्बे और दो ढाई मील चौडे क्षेत्र म प्रति रात्रि दीपमाला जलती दीख पडती है। जगलो म भी खम्भो पर बिजली के दीपक सारी रात जलते रहते है। यह किस लिए? क्या इनम बिजली खर्च नही होती? उस बिजली का खर्च क्या नागरिको को देना नही पडता? आधी रात के बाद इन जगलो म कौन जाता-आता है जो वहाँ अखण्ड दीवाली जलती है। जाडो म जब यहाँ कोई आदमी का पूत नही रह जाता, उस समय किसके लिए यह दीपावली? सोचना था १२ बजे रात के बाद यदि बिजली बन्द कर दी जाती, तो हजारो की बचत होती। जाडो म यदि कितनी ही लाइनो को बन्द कर दिया जाता, तो यह पैसा बचता? उस समय

तो म्युनिसिपैलिटी का इन्तिजाम जन निर्वाचित लोगों के हाथ मे नही था, यह बहाना था। लेकिन, जन निर्वाचित नगरपालिका के आने पर कितनी ही बार यह बात उनके सामने रखी गई, लेकिन किसी के कान पर जू तक नही रेंगी। उन्हें खर्च बढाना पसन्द है कम करना नही।

मसूरी की स्थिति १९५१ के आरम्भ में जो थी, आज फरवरी १९५६ मे वह और भी बुरी हो गई है। उस वक्त की स्थिति भी यहाँ के लोगो के लिए चिन्ताजनक थी। ग्रीष्म की इन विलासपुरियो की बुनियाद मध्यम-वर्ग की समृद्धि और सम्पन्नता पर निर्भर है। उनकी आर्थिक स्थिति की यह थर्मामीटर है। जब इनकी हालत बुरी हो, तो समझना चाहिए, कि मध्यम वर्ग बुरी स्थिति मे है, और जब इनमे चहल-पहल हो, तो समझना चाहिए, कि मध्यम वर्ग की स्थिति बेहतर है। वर्षो से आदमी का मुह न देखे अच्छे अच्छे बगलो, उनके टिनो और फर्नीचर को टूटते देखकर खयाल आता था, कि क्या कभी इनके दिन लौटेंगे। पीछे अक्सर मसूरी वाले सवाल करते थे, तो मुझे यही जवाब सूझता था, कि तभी जब भारत समाज-वादी होगा।

हमारे बगले से दो ही बगलो को पार करने पर बिडला निवास है। राजसी प्रासाद है। किसी अग्रेज का "हर्मिटेज" के नाम से विशाल विलास भवन था, उसी का यह नया नामकरण है। बगला मिट्टी के मोल भले ही मिला हो, लेकिन उसको फिर सँवारने और सुधारने में डेढ़ लाख रुपये लगे। ठेकेदार साहब का ४७ हजार अभी बाकी है, जिसके लिए वह रो रहे थे। बडो का कर्जा देना या कर्जे पर काम करना भी कबाहट मोल लेना है।

हमारी साहित्य योजना म काम करने वाले सभी लोग नही आए थे। लेकिन दिक्कतें सामने आने लगी। कुछ लोग समझते थे, कि हम वेतन के लिए काम कर रहे हैं काम के लिए नही। हमारा यह खयाल था, कि वेतन तो चाहिए पर काम का खयाल होना चाहिए। अभी काम करते महीने भी नही हुए, कि वेतन बढाने का सवाल उठा। यह भी कि हम तो दो घटे काम किया करते थे। सोचने लगा क्या मुसीबत पाली? भला पाँच घटे भी दिन मे काम नही हो, तो क्या बनेगा? उनकी दृष्टि से देखें, तो कुछ और बातें भी सोचने की हैं। यदि शहर म रहते तो एक दो ट्यूशन मिल जाते,

उससे कुछ आमदनी बढ जाती, लेकिन यहा जगल मे उसकी क्या आशा हो सकती थी ? यहा मनोविनोद के भी साधन नही थे। जाडा म सिनेमा बन्द रहते, और गर्मियो मे भी दो तीन मील उनके लिए जाना पडता। मिलन जुलने वाले अर्थात् बात करने वाले भी मुश्किल ही से कभी आते, और जाडा म तो वह भी नही। कुछ समय बाद काम करने के लिए और बन्धु भी आए—विनोदजी, कुमठेकर और मेरे मित्र स्वामी सत्यस्वरूपजी। सबसे शिकायत नही हो सकती थी लेकिन एक गाडी मे जुते सभी घोडे जब एक तरह ताकत लगाते है तभी गाडी ठीक से चलती है। अगर उनमे एक भी हडताल करने के लिए तैयार हो, तो फिर काम आगे नही बढता। हमारे एक सहकारी तो काम की बहुतायत का रोना डा० सत्यकेतु के पास भी रोते थे। कहते थे कि 'वर्धा म तो मैं सिर्फ दो घटा काम करता और २२ घटा आराम करता था। वर्धा मे हमे छुट्टिया भी मिलती थी यहाँ तो छुट्टी भी नही है। हम तो भारी शापक के हाथ म पड गए।' मुझे कभी स्वप्न म भी खयाल नही था, कि यह उपनाम मुझे मिलेगा। नागार्जुनजी भी १५ मार्च तक चले आए। जिनका पहले ही से हमारा सम्बन्ध था वह तो उसी तरह काम करने को तैयार थे, पर सवाल था टाली के काम का।

अभी तक पहले लिखकर टाइप करने के लिए मैं पुस्तकें या लेख देता था। १५ फरवरी का टाइपराइटर पर बोल कर लिखवाया। सोचने लगा। हाथ से लिखने की जहमत क्या उठाई जाए, जब कि उस समय का बचाया जा सकता है एस तीन या चार कापी भी कार्बन से निकाली जा सकती है। लेकिन, जरूरत उतनी नही पडी, दो कापियाँ काफी थी। लिखकर टाइप किये या बोलकर टाइप किये दोनो का ही एक बार देखना जरूरी था इसलिए गल्ती होने की फिक्र करने की जरूरत नहीं थी। कितने ही दिनो तक सोचता था वायर रेकार्डर म बोल कर रेकार्ड करवा दू। जब मालूम हुआ कि उसको उतारते वक्त धीमी गति मे नही चलाया जा सकता, तो शार्ट हैण्ड (द्रुतलेखन) म लिखना और फिर टाइप करना बेकार का झगडा मालूम हुआ और वह ख्याल छोड देना पडा। इस नये तजर्बे ने एक दिशा खोल दी, जिससे मेरे काम की गति ज्यादा बढ गई इसमे सन्देह नही।

साहित्य योजना मे काम करने के लिए आनवाले व धुओ का गुजारा इस बगले मे नही हो सकता था, इसलिए आसपास के किसी दूसरे बगले को लेना जरूरी था। "हन लाज" की बातचीत की, ता वूढे लेडली पुरान युग के किराए से जरा भी कम करन के लिए तैयार नही थे। पुत्र जान लेडली चाहते थे, लेकिन बाप के विरुद्ध कैसे जाते ? अन्त मे 'हनहिल" की तरफ ध्यान गया। वह कई सालो से बेमरम्मत था, और फर्नीचर भी पूरा होगा, इसमे सन्देह था। इन्ही कारणो से वह उतन किराए म मिला, जितना देन के लिए हम तैयार थे। मोल भाव करने के बाद १५ सौ रुपये वार्षिक पर "हनहिल" मिला। सरकारी रेट के अनुसार इसका ३५ सौ रुपया किराया था। मार्च व अत तक हमारे साथी "हनक्लिफ" मे ही किसी तरह गुजारा करते रह।

देहरादून देहरा और दून दो शब्दो से मिल कर बना है। दून दो पहाडो के बीच की द्रोणी, दोना सी भूमि को कहते ह। यह बहुत पुराना शब्द है यह इसीसे मालूम है, कि रूसी म भी यही शब्द जरा स उच्चारण भेद से दोलिना (द्रोणा) कहा जाता है। हिमालय और सिवालिक के बीच जहा अन्तर है, वहा ऐसी दूनें कितनी ही मिलती हैं। इसी दून के पटास म जमुना पार क्यारा दून है और आग भी कई दून है। दून के नाम से यह भूमि बहुत पहले से प्रसिद्ध थी। खास नाम क्या था इसका पता नही। फिर औरगजेब के शासनकाल मे गुरु तगबहादुर के चचा गुरु रामराय गद्दी से वचित होकर औरगजेब की सिफारिश के साथ गढवाल (श्रीनगर) के राजा की इस भूमि म आए। यहा देरा (डेरा) डाला और उस बस्ती का नाम देरा पड गया। आज भी पुराने लोग देहरादून नही बल्कि नगर का नाम सिर्फ देरा कहते ह। गुरु रामराय का गढवाल के राजा न कुछ गाँव दिए, जिनका उस समय कोई अधिक मूल्य नही था। गुरु रामराय के दर को दरबार कहते थे। आज भी उसका वह नाम प्रचलित है। गुरु नानक की परम्परा उनके पुत्र श्रीचन्द और उनके शिष्य के द्वारा दो धाराओ मे चली। श्रीचन्द साधु और घुमक्कड थे। उनके शिष्य उदासी सत के नाम से आज प्रसिद्ध है। गुरु नानक के गृहस्थ शिष्य की परम्परा म आगे ने नौ गुरु हुए जो सिक्ख के नाम से मशहूर हैं। गुरु रामराय ने अपना उत्तराधिकारी

एक उदासी साधु को बनाया, इसलिए देहरादून का गुरु रामराय का दरबार उदासी मठ बन गया। मार्च (चैत) के महीने में गुरु रामराय के दरबार में झण्डे का मेला होता है। ८०-९० हाथ का एक विशाल लट्ठा झण्डे का दण्ड है। इस पर उस दिन एक नया झण्डा ही नहीं चढ़ाया जाता, बल्कि सारे लट्ठे को कीमती रेशमी कपड़ों से मँढ़ दिया जाता है। यह झण्डा हर साल नया लगाया जाता है इसी समय बड़ा मेला लगता है। तीन चार दिन तक खूब चहल पहल रहती है। २७ मार्च को महादेव भाई और कमला उसे देखने गये। मुझे ऐसे मेलों और तमाशों के देखने का पहले ही से शौक कम है या उन्हीं को देखने का शौक रखता हूँ, जिनके बारे में कुछ लिखना होता है। मैं भी इस मौके पर एक बार वहाँ गया।

मसूरी में नौकर की भी बड़ी तकलीफ है। सीजन के वक्त सारे पहाड़ से लोग काम ढूँढ़ने के लिए चले आते हैं लेकिन सीजन के बाद उनका मिलना मुश्किल है। परम्परा चली आई है, जिसके अनुसार देहरादून से यहाँ का वेतन दूना होता है। अंग्रेजों ने यह परम्परा कायम की, क्योंकि वेतन देते वक्त इंगलैण्ड का ख्याल उनके दिमाग में रहता था। अब परम्परा बँध गई तो वह टूटे कैसे? हमने मानबहादुरसिंह को भोजन और ३५ रुपये पर नौकर रखा था लेकिन वह उनसे संतुष्ट नहीं था। और ४० रुपये देने की स्थिति में हम नहीं थे। कितनी ही बार ऐसी नौबत आ जाती थी कि हम नौकर छोड़ कर अपने ही हाथों सारा काम करने के बारे में सोचना पड़ता था। आखिर में दशहरे पर मानबहादुरसिंह से हाथ धोना पड़ा। सब मिला कर उसका काम अधिक संतोषजनक था। उसके जाने से [illegible] को [illegible] करना पड़ा।

जून—आज मसूरी देखने [illegible] के लिए मैं बड़ा उत्सुक था [illegible] सबसे बड़ी बाधा दाँत [illegible] थे। [illegible] आया, कि [illegible], तो [illegible] करता। [illegible] गया। [illegible] मुझे [illegible] के [illegible] लिखता रहा। [illegible] कहा कि [illegible] मुझे [illegible] डाक्टर [illegible] [illegible] दिन [illegible] है, [illegible] [illegible] कई-कई बार [illegible] है [illegible] कमला भी [illegible]

नही है। मैं एक बच्चे का लेने के लिए कुछ कुछ तैयार भी हो गया, लेकिन निश्चय करने के पहले वह हाथ से चला गया। फिर विग्रनसिंह न अपन मित्र ईसाई कसाई की अल्सेसियन कुतिया के बच्चा को ठीक किया। २ अप्रैल को मैं गया, तो उन्होन दानो बच्चा को सामने कर दिया। दोना एक ही तरह हृष्ट पुष्ट थे। मैंने एक का लेकर अपन थैले मे डाल लिया। चार हफ्ते का बच्चा बडा ही कितना हाता है ? वह माच म किसी समय पैदा हुआ हागा। झाल मे लिए डा० सत्यकतु के यहा आया वहा जब पिल्ले की बात हुई ता उन्होन पूछा ले आए या नही। वह इतना छोटा था, थोले म दिखाई नही पडता था। घर पर लाए तो कमला खाव खाव करके दौडी। क्यो लाये इसे, हम यहा नही रहने देगे। अब मैं किस मुँह से उस लौटाने जाता ? विग्रनसिंह के मित्र न बिना पैसे के दिया था, और बडे अच्छे माँ-बाप और नसल का बच्चा था, इसका लाभ भी था। मैंन कहा, "आओ हम सुलह कर लेंगे। मैं इसे लाया हू। जो अपराध हुआ सा हुआ। अब तुम इसका नाम रख दो, यह तुम्हारा काम है।' यह मैं कह दू, कि कमला ने अल्सेसियन कुत्ते के बार मे एक बार अपनी सम्मति प्रकट कर दी थी। गुस्से म ही उन्होन कहा भूत" नाम रह। बस उसका नाम भूत ही पड गया। कुछ महीना मे वह समझने लगा, कि मेरा यही नाम है। तब तक उस कमला की दया दृष्टि भी मिल गई। उन्होंने नाम बदलने की कोशिश भी की लेकिन जब भूत किसी दूसरे नाम को स्वीकार करन मे लिए तैयार नही था। किसी शिष्ट मित्र का जब मैं नाम पर आपत्ति करन की सभावना देखता, तो कह देता—"असली नाम तो भूतनाथ ह, इसी का सक्षेप भूत है।' भूत पहले तो बडा तग करता था, क्योकि जहा नही चाहता, वही पेशाब पाखाना कर देता। उसके लिए लकडी का बक्स नहान के कमर म रख दिया। धीरे-धीरे वह रात को उसम रहन लगा। फिर यह भी समझ गया कि पाखाना जहाँ-तहा नही करना चाहिए, और उसन बाथरूम को ही अपना भी पाखाना समझ लिया। "किल्डर" के पडोसी कुत्ता के प्रेमी थे। उन्होने भी भूत का देखकर पसन्द किया और उसे सिखलान पढान के समय की बात भी बतलाई। उन्होन कहा था, नौ महीन से पहले सिखाई-पढाई हो जानी चाहिए। मुझे सुनने म आया, नौ महीने बाद। इसलिए

भूतनाथ अपना शिक्षा के लिए प्रकृति पर ही निर्भर रह सके। अल्सेसियन कुत्ते पचीसों तरह की बातें करना सीख जाते है, उसे यह सीख नहीं पाए। हमने पहले कुछ समय तक दूध पर रक्खा। फिर उसके साथ रोटी भी खिलाने लगे, फिर रोटी दाल देने लगे। खासी देखकर एक मित्र ने कहा कि कुत्ते को नमक नहीं खिलाना चाहिए। फिर अलोनी दाल मिलने लगी। अलोनी दाल और रोटी अब भी भूत का प्रधान भोजन है। हफ्ते में दो बार गोश्त मिल जाता है। दूसरे अल्सेसियन पालनेवाले अचरज करते हैं वह रोज दोनों समय गोश्त देते है।

बन्दरों की समस्या भूत ने हल नहीं की। क्योंकि बन्दर आने पर वह एक जमात के पीछे भागने के लिए दूर चले जाते हैं तब तक दूसरी जमात आकर काम बना लेती। रात के वक्त वह घर के बाहर से रखवाली नहीं कर सकते क्योंकि बाहर रात के स्वामी बघेरे होते है। अलसेसियन विशेषकर हमारा भूत भेडिये के बराबर है। दो अलसेसियन मिलकर बघेरे को भगा सकें, इसी ख्याल से एक सरदार साहब ने अपनी जोड़ी को बंगले के बाहर रख रखा था। बघेरा आया। दोनों झपटे। बघेरे ने एक को बुरी तरह से घायल किया, और दूसरे को मुंह में दबा चम्पत हो गया। बघेरा आखिर पचानन है उसके चारों पंजों के नख भी जबर्दस्त हथियार है, दांत की दाढों के लिए तो कहना ही क्या? कुत्ता के पास दाढ़ें ही भर हैं, सो भी बाघ या बघेरे जितने मजबूत नहीं। अंधेरा होने से पहले ही चिन्ता हो जाती है, कि भूत को मकान के भीतर किया जाए। दिन में मकान के बाहर रात को मकान के भीतर भूत के खिलाफ आने की किसी की हिम्मत नहीं हो सकती। भूत ने एक दो आदमियों को ही काटा है, और सिर्फ ऐसों ही को जिन्होंने कि भागने की कोशिश की। एक आदमी भाग कर पेड पर चढने की कोशिश करने लगा लेकिन चढ नहीं पाया। भूत ने उसके गरम पतलून को फाड दिया, २५ रुपय दण्ड देने पड़े। इधर १९५५ के जाडों में इस मोहल्ले में चोरियां हुई थी, और ऐसा मौका हुआ कि कमला और नौकर ही बच्चों के साथ घर में रह गये थे। उस समय भूत ही था, जिसके कारण किसी चोर की इधर झांकने की हिम्मत नहीं हुई। यह निश्चय ही था कि

यदि कोई अजनबी रात को इधर पैर बढाना चाहता तो भूत उसे फाड़े बिना नही छोड़ता।

१ अप्रैल से राष्ट्रभाषा वाले साथी "हन हिल" म चले गए। खाना अलग बनाने के प्रबन्ध न रसोइय की चिन्ता पैदा की। उस समय अभी मसूरी की हालत इतनी बिगडी नही थी, इसलिए इस मोहल्ले म भी लोगो न खाने का होटल खोलने की हिम्मत की थी। ३० रुपये मासिक पर खाना मिलने लगा, और ११ अप्रैल स नागार्जुन, हरिश्चन्द्र और महेन्द्रजी वहा भोजन करने लगे।

किशनसिंह से हमारी ज्यादा आत्मीयता थी। चोट लगने से वह लँगडे हो गये थ। उनके लिए चलना मुश्किल था। फिर उनके घर से हमारा घर चार मील पड़ता था इसलिए इच्छा रहते हुए भी वह कभी ही कभी आ पाते थे। ८ अप्रैल का रविवार का दिन था, अब एक दिन बाजार बन्द रहना था, इसलिए इतवार को छुट्टी रहती थी। उस दिन अपनी पत्नी और लड़के के साथ मेरे निमन्त्रण पर वह आए। गोश्त और तिब्बती चाय भी अपन साथ लाये थे, भाप मे पका गोश्त का समोसा (मोमा) बना। हम सभी उसके बड़े प्रेमी थे। साथ म मक्खन डालकर तिब्बती चाय भी पी। साढे ४ बजे तक उनका परिवार यही रहा, बातचीत और हँसी खुशी म वह दिन बीता। उनसे यह मालूम हुआ, कि मसूरी से जितने भोटिया लोग अब के दिल्ली गए, उनके पीछे पुलिस पडी और कहा तुम पर्मिट (अनुज्ञा पत्र) ले लो। उन्हे जबदस्ती फोटो के साथ पर्मिट दे भी दिया गया। इसका अथ यह था, कि किशनसिंह और उनके दूसरे साथी अब भारत के नागरिक नही हैं, वह तिब्बत (चीन) के नागरिक ह और भारत सरकार न उन पर कृपा करक कुछ समय रहने के लिए अनुमति दी है। इससे उनके भीतर घबराहट पैदा होनी ही चाहिए। मुझसे कहा। मैंने इसके सम्बन्ध म डा० केसकर को चिट्ठी लिखी। उस समय वह विदेश विभाग के उपमत्री थे। मैंन बतलाया, यदि तिब्बती चेहरे-मोहरे को देखकर आप उन्हे भारतीय नागरिक मानने के लिए नही तैयार हैं, तो आसाम से लद्दाख तक लाख से अधिक लोग ऐसे होगे, जिन्हे भारतीय नागरिकता से खारिज करना होगा। मसूरी के य लोग तीन तीन चार चार पीढी से यही के निवासी हैं। कभी इनके माँ बाप

तिब्बत से आए होंगे, पर इनका जन्म तो मसूरी में हुआ। किशनसिंह जैसे आदमी का तो तिब्बत से कोई सम्बन्ध ही नहीं, वह तो कनौर के रहने वाले है। इस चिट्ठी का असर हुआ और पीछे यहां वालो की कठिनाइयां दूर हो गई।

१३ अप्रैल को पिछले तजर्बे के आधार पर मालूम हुआ कि मटर छोड़ कर सभी साग सब्जियों में हम असफल रहे। आगे समय पर कोई राई, टमाटर और एक दो और साग अच्छे हुए।

कलकत्ता में जाने पर एक बार साहित्याचार्य प० भगवानदत्त शास्त्री राकेश ने 'कामायनी' के अपने संस्कृत पद्यानुवाद के तीन छपे परिच्छेदों की एक प्रति दी थी। उसे पढ़ने पर मुझे नकद लाभ यह हुआ, मैंने कवि प्रसाद का लोहा माना। उन्हें आधुनिक हिन्दी का ही सबसे बड़ा कवि नहीं बल्कि अपने देश की महान् कवियों की पांती में सम्मान के साथ बैठने वाला स्वीकार किया। मैंने राकेशजी को लिखा कि सारी "कामायनी" का अनुवाद कर डालो। वह एक एक परिच्छेद का अनुवाद करके मेरे पास भेजते गये, और धीरे धीरे सारा अनुवाद तैयार हो गया—इतना अच्छा अनुवाद जो मूल से किसी बात में भी कम सुन्दर नहीं था। मैंने सोचा यदि यह पुस्तक छपजाये, तो भारत की और भाषाओं के विद्वान् समझेंगे कि आधुनिक हिन्दी में कितने उच्चकोटि की कविता हो रही है। असमिया, बंगला, उड़िया तेलुगु, तामिल मलयालम कनड, मराठी, गुजराती सभी भाषाओं के उच्चकोटि के साहित्यकार और पारखी संस्कृत के ज्ञाता होते हैं। इसको देखकर आधुनिक हिन्दी साहित्य का वे मूल्यांकन करेंगे। ऐसी पुस्तक के छपाने में हमारी संस्थाएँ जरूर आगे आएँगी, यह मुझे विश्वास है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से बातचीत की, उन्होंने स्वीकृति दे दी। पर उसके एकाध पृष्ठ राष्ट्रभारती' में छपकर रह गये। आनन्दजी ने दिलाई की, नहीं तो वह प्रकाशित हो चुकी होती। साहित्य सम्मेलन ने मंगाया, लेकिन तब उसका प्रबन्ध आदाता (रिसीवर) के हाथ में चला गया था इसलिए वहां भी कुछ नहीं हो सका। राकेश जी से भी ज्यादा मुझे छटपटी रहती है कि वह पुस्तक अच्छे रूप में प्रकाशित होकर विद्वानों के सामने आ जाये। कभी-कभी राकेशजी अपनी पुरोहिती के पैसे को लगाकर छाप

छपना चाहते हैं लेकिन मैं कहता हूँ पुस्तक की इतनी अच्छी छपाई होनी चाहिए। लिखना तो महज़ शुरुआत होता है। ... है। मालूम नहीं 'भाग्यचक्र' कब प्रकाशित हो सकेगी।

कई साल से विप्लव के इंतजार कर रखा, 'जनपद ...' १९५०-६ वर्षों में कई घरों को देखकर निराश हो गया हुआ था। डर लगता था कि लौट न आएँ। फिर दिनकर सोनावले ने उसको ... को, १८ अप्रैल को मैंने उसे उनके पास भेज दिया। पर वहाँ भी उसका छपना नहीं हुआ। वह पुस्तक जयपाल इंस्टिट्यूट को सूचना थी, जब कि उनके संचालक डा० ... ने उसके प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया।

वार्जविन के फाटक के पास एक प्राइमरी स्कूल है, जिसके शिक्षक अध्यापक की स्थिति देखने वाले को भी दुखी कर देती है। इसी लेकर पूरे एक दर्जन का परिवार है और वेतन मँहगाई भत्ता लेकर ६०-६५ रुपया मासिक। आजकल के जमाने में वह कैसे परिवार को गाड़ी चलाते रहे हैं, सोचने में भी सिर चकराता है। मास्टरजी ने फौज में भी नौकरी की थी। सोचा था लौटने पर उनका दर्जा बढ़ जाएगा, लेकिन पीछे सैकेंड मास्टर ही रहे। उन्होंने हमारे ओल्ड हौस में रहने के लिए जगह माँगी। बाल-बच्चों का साथ रहना चिन्ता की बात जरूर थी, लेकिन उनकी स्थिति का सवाल आया। हमने उन्हें जगह दे दी। पीछे 'हर्न हिल' के ले लेने पर यहाँ से वहाँ और अधिक अच्छी जगह थी, इसलिए वहीं प्रबन्ध कर दिया।

मैंने मसूरी और उसके भिन्न भिन्न प्रकार के निवासियों का शब्द-चित्र कहानियों के रूप में लिखकर "मधुपुरी" के नाम से छपने वाला था, इसी बीच इसी नाम से किसी की कविता निकल गई, इसलिए वह २१ कहानियाँ "बहुरंगी मधुपुरी" के नाम से प्रकाशित हुई। उनमें कल्पना कम और वास्तविकता अधिक है। उनके पढ़ने से यदि कोई समझे, कि वह किसी एक व्यक्ति का जीवन-चरित्र है, तो बिल्कुल गलत होगा। कई व्यक्तियों के जीवन और समस्याओं को लेकर एक-एक कहानी तैयार की गई है। किसी का किसी व्यक्ति पर कहानी को घटाने का मौका न मिले, इसके लिए नामों और स्थानों का कल्पित नाम दिए गए हैं।

हमारे साहित्य कर्मियों की समस्या सुलझती नहीं दीखती थी।

नहीं लेकिन कुछ काम करने मे कम समय देते थे, और कुछ तो उसे भी बात करने मे खतम कर देना चाहते थे। इधर कुछ पुस्तका के अनुवाद के साथ साथ ३० ३५ हजार शब्दो का राष्ट्र भाषा कोश तैयार किया गया। आशा रक्खी गई थी, कि इन्ही शब्दो को प्रादेशिक भाषाओ और तीन चार विदेशी भाषाओ के पर्याय के साथ कई कोशो के रूप मे छाप दिया जायेगा। वर्धा मे छपाई मे उसी तरह की ढिलाई देखने मे आ रही थी जसी परिभाषा कोशो के सम्बन्धी सम्मेलन मे हुई थी। इस दिक्कत को दूर करने के लिये २३ अप्रैल को नागार्जुन वर्धा के लिए रवाना हो गए।

कमला का विशारद परीक्षा मे खूब नम्बर मिले, अग्रेजी मे ७७ मे से ६६ था। पालि के परीक्षक नये थे, उन्होने समझा कि साहित्य सम्मेलन की परीक्षा देनवाले छात्रा को भी शुद्ध सस्कृत या पालि के विद्यार्थियो जैसी योग्यता होनी चाहिए। उन्होने कुछ नम्बरो से कमला को फेल कर दिया। डर तो लगने लगा था कि शायद उनका एक साल बरबाद गया। थोडे से नम्बरो से फेल करना उचित नही था, जब कि दूसरे विषयो मे उन्हे बहुत अधिक नम्बर मिले थे। पास हो गई, आगे का रास्ता खुल गया, इसकी हम बहुत खुशी हुई।

२४ अप्रैल को कुमठेकरजी आए। डा० सत्यकेतु से उनके बारे म काफी मालूम हो गया था। देश की आजादी म कोई अवसर ऐसा नही आया, जिसे उन्होने जेल म गए बिना जाने दिया हो। जेल म भी उनका अखण्ड सत्याग्रह रहना था। जेल वाला से अनबन रहती, जिसके लिए बडी यातना सहनी पडती। डाक्टर साहब नैनीताल की बात बतला रहे थे, न जाने किस बात पर कोई आदमी उन्हे पीटने लगा, और उन्होने सच्चे सत्याग्रही की तरह उसे क्षमा कर दिया। उनकी मातृभाषा मराठी थी हिन्दी का भी काफी ज्ञान था, और पैदा हुए थे कर्नाटक म, इसलिए कन्नड भी उनके लिए अपनी भाषा थी। हम कन्नड और मराठी से कुछ सर्वोत्कृष्ट उपन्यासो का हिन्दी म अनुवाद कराना चाहते थ। इस काम के लिए वह उपयुक्त व्यक्ति थ। उन्होने एक अत्यन्त सुदर कन्नड उपन्यास का अनुवाद किया भी। काम में सुस्ती के लिए उनकी शिकायत नहीं की जा सकती थी।

बदरी-केदार मे

'गढवाल' को बहुत कुछ लिख मैं चुका था। हिमालय-परिचय-सम्बन्धी हरेक ग्रथ म अपनी यात्रा का भी एक अध्याय देना चाहता था। इससे जहा पुस्तक की मनोरजकता बढ जाती, वहा नए आँकडे और जानकारी भी शामिल करने क सुभीता होता। मालूम हुआ, यात्रा म आने वाले को हैजे आदि का इन्जेक्शन लेकर प्रमाण पत्र साथ रखना जरूरी है। नगरपालिका के डा० माथुर न इन्जेक्शन दे, प्रमाण पत्र भी दे दिया। २ मई को मैं अकेला यहाँ से इस यात्रा के लिए रवाना हुआ। यहा या देहरादून से सामान ढोने और रसोई बनाने के लिए आदमी ले लिया होता तो अच्छा रहता। पर सोचा, उधर यात्रा म आदमी मिलने मे दिक्कत नही होगी। उस दिन ११ बजे शुक्लजी के घर पर पहुँचा। रिवाल्वर का भी लाइसेन्स मिल गया था, इसलिए एक सज्जन से छोटी सी रिवाल्वर खरीदी। बन्दूक की तरह इसमे भी मैंने जल्दी की। जिस राइफल का सवा दो सौ रुपया दिया था, वह दो सा से भी कम म मिल जाती। जिस रिवाल्वर को हमने १२५ मे खरीदा था, वह देहरादून दूकानो मे ६० रुपये ७ आने म मिल रही थी। खैर, यह तो हमेशा की बला है, लेकिन मेरी फिलासफी यह कहती है कि जो पैसा खच हो चुका, उसका कोई मूल्य नही, और जो चीज खरीद ली उसका दाम दूसरे दिन आधा हो जाता है।

ऋषिकेश—३ मई को ऋषिकेश वाली बस पकडी। मई का महीना था। दून काफी गरम जगह है। डोईवाला होते १ बजे ऋषिकेश पहुचा।

पजाब-सिध क्षेत्र और कालीकमली वाला क्षेत्र दानो का नाम १६१० से ही जानता था। उस समय का ऋषिकेश जगल के भीतर दस बीस मामूली घरो की बस्ती थी और अब वह एक अच्छा खासा कस्बा बन गया था, जहा बाजार भी थे, बडे-बडे मकान भी खडे थे, बिजली भी लग गई थी।

मै पजाब सिध क्षेत्र म गया। इसकी इमारतें बहुत दूर तक फैली थी जिनम यात्रिया के अतिरिक्त गौआ के भी रहने का स्थान था। दूध लेन के लिए कुछ मकानो को गौशाला बनानी ही पडती। आफिस म नाम धाम लिखा कर एक कोठरी मे रहन के लिए भेज दिया गया। दूसरी बार आफिस मे मुझे जानन वाले एक सज्जन मिल गय और जिनसे सुनकर मेरा कदर बढ गई और एक अच्छे कमरे म सामान रखवा दिया गया। ऋषिकेश मच्छरो की भूमि है। कमरे के भीतर गर्मी बहुत थी, इसलिए मै छत पर सोया। बन्दरो से और नही होता तो जूता या जो भी चीज हाथ म लगे, वही ले भागते, इसलिए जूते को दरी क नीचे छिपाना पडा।

कुछ ठण्डा हो जाने पर उस दिन घूमने निकला। डेरा इस्माइल खा के एक भक्त मिल गय। उन्होने भक्तराज जयदयाल गायन्त्रा के गीताभवन की महिमा गाई, लेकिन वह दूर और गगापार था, इसलिए वहाँ तक नही जा सका। राजा लोगो की जब तपी थी तो गर्जसिहासन तक ही अपने को सीमित न रखकर वह राजर्षि भी बनते थे। आजकल सेठो की तपी है इसलिए यदि वह सेठर्षि बनें, तो अचरज क्या?

जहाँ प्राइवेट बसें चलती हैं, वहाँ यात्रियो की तकलीफ का खयाल नही किया जाता, और ज्यादा-से ज्यादा मुसाफिरो के घुसेडन की कोशिश की जाती है। बदरी-केदार की यात्रा शुरू हो गई थी, इसलिए भारत के भिन्न भिन्न स्थानो के लोग ऊपर की ओर जा रहे थे। शाम को मैंन ऊपरी दर्जे के टिकट के लिए नाम दर्ज करवाया था, लेकिन अगले दिन चढते वक्त निचले दर्जे का टिकट मिला। जब तक स्थान मिल जाए, तब तक इसकी शिकायत करने म पाप लगता है। एक मद्रासी बुढिया मुझसे भी बुरी हालत म बठी थी। मैंन अपना स्थान उसे दे दिया और उसकी जगह बैठ गया। बदरी केदार के जाडो का खयाल था, इसलिए ओढना बिछौना काफी ले लिया था, हालाकि वह बेकार का तरद्दुद ही साबित हुआ, क्योकि

एक कम्बल से अधिक सर्दी दोना धामा हो मे होती है, और वहा पण्डा की कृपा ने जितना चाह उतना ओढना बिछौना मिल सकता है।

यात्रिया म बगाली पुरषा और महिलाओ की सख्या काफी थी। हमारी बस बीच म कई जगह थोडी थोडी देर के लिए ठहरती देवप्रयाग म भागीरथी के इस पार जाकर खडी हुई। यहा कुछ लाग उतरे, इसलिए अपने दर्जे मे जगह मिल गई। डेढ घटा और चलने के बाद कीर्तिनगर पहुँच गए। धूप और गर्मी के बारे मे क्या कहना ? यहा से अलकनदा क पुल पार तीन मील के करीब चलकर श्रीनगर मे दूसरी बस मिलने वाली थी। बहुत सी हरिजन कयाएँ सामान ढोन के लिए आई। मैंन दो पर अपना सामान रखा। नदी पार होने ही मुह सूखने लगा, प्यास के मारे बेचैन था काफी दूर जाने पर पानी पीने को मिला। "गढवाल" लिख चुका था इसलिए बहुत सी बातें मालूम थी, जिनमे यह भी कि १९वी सदी के अन्त के महाप्रलय मे कमलेश्वर बच गया, बाकी सब पुराने मदिर और ध्वसावशेष शेष रह गए। इसी ख्याल से कमलेश्वर मे रास्ते से हटकर गया। यहा ११वीं-१२वी शताब्दी की सूय की मूर्ति मिली। श्रीनगर मे घुमने से पहले सडक को घेरकर स्वास्थ्य विभाग के आदमी खडे थे। हैजे का टीका हमने मसूरी म लगवा लिया था, लेकिन इस वक्त बक्स मे ढूढने मे प्रमाण पत्र नहीं मिला। मजबूर हुआ, दूसरी बार इजेक्शन लगवाने और नया प्रमाण-पत्र लेने के लिए। श्रीनगर बाजार मे पहुँचा। यह महाप्रलय के बाद का बसा नया बाजार था, यह कहने की आवश्यकता नही। मजदूरो ने श्री खडगसिंह के होटल म पहुँचा दिया। रात भर के लिए मैं वही ठहर गया। अगले दिन (५ मई) बस पौन दो बजे मिलने वाली थी, इसलिए इतने समय मे यहा की देखने की चीजें देख लेनी थीं। प्राचीन कोई चीज तो थी नही। सडक के किनारे दोनो तरफ दूर तक बाजार चला गया था। श्री मुकुदी लालजी से मालूम हुआ था, कि कलाकार भोलाराम (१७४०-१८३३) के वशज यहाँ रहते हैं। भोलाराम के पुत्र ज्वालाराम भी चित्रकार थे, लेकिन उनके पुत्र तेजराम चित्रकार नही रहे। तेजराम के पुत्र आत्माराम चित्रकार थे, जो पीछे पागल हो गए। उनके इस पागलपन म महान् कलाकार की कुछ कृतियाँ भी नष्ट हो गइ। भोलाराम के प्रपौत्र और तेजराम के पुत्र

बालकराम अभी जीवित थे। यह संवत् १९२४ (१८६७ ई०) के कार्तिक महीने में पैदा हुए और अब ८४ वर्ष के थे। अपने बडे बेटे बैजनाथ को इन्होंने लखनऊ के आर्ट स्कूल मे श्री असित कुमार हालदार के पास चित्र-विद्या सीखने के लिए भेजा था। पाँच चार साल वहा रह, लेकिन कलाकार के घर मे पैदा होने से कोई कलाकार नही होता। ठोक-पीटकर वैद्यराज बनाने का प्रयत्न करना बेकार है। बालकराम के बैजनाथ, रामनाथ, नारायण प्रसाद तीन पुत्र थे। और आत्माराम के पुत्र फतेराम (जन्म संवत् १९२९ सन् १८७१ ई०) जीवित थे। फतेराम के पुत्र मदनमोहन और उनके पुत्र व्रजमोहन लाल और मनमोहन लाल थे। कुछ थोडे से चित्र अब भी घर मे बच रहे थे जिन्हे उन्होंने दिखाया।

बस पकडने से पहले यहीं मे सारी यात्रा के लिए एक आदमी लेना था। खड्गसिंह ने डेढ रुपया प्रतिदिन और खाने पर बलबहादुर नामक एक तरुण नेपाली को ठीक कर दिया। उसके दुबल पतले शरीर को देखकर डर लगा, कि वह एक मन सामान लेकर चढ भी सकेगा। पता लगा, कि उसकी हड्डियाँ लोहे की है। बचपन म ही मेहनत करते बोझा ढोते ढोते आदमी का शरीर क्या नही हो सकता।

रुद्रप्रयाग ९ बजे पहुँचा। छत्ता नही था जिसकी धूप और वर्षा दोनो के लिए जरूरत थी। रास्ते मे ठहरने की जगह पर कभी कभी मोमबत्ती की भी जरूरत होती, इसलिए प्यारेलाल की दूकान से दोनो चीजें खरीद ली। अलकनंदा पार भी दूकानें है यहीं से मोटर की सडक ऊपर की ओर जाती हैं। पार भी कितने ही मकान, धर्मशालाएँ और दूकानें हैं। प्रज्ञाचक्षु स्वामी सच्चिदानंद के बारे म बहुत सुना था, इसलिए उनके दर्शन के लिए गया। दर्शन का प्रत्यक्ष फल टिकने के लिए स्थान मिलना था, इसे कहने की जरूरत नहीं। स्वामी सच्चिदानन्द ने यहा पर लडको के लिए हाई स्कूल और लडकियो के लिए भी स्कूल बनवाया इसके लिए उनका जीवन सार्वजनिक उपयोगिता का जीवन है इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इसे देख यदि मैंने उन्हे अपने प्रति रूखा पाया, तो इससे मुझे कोई खेद नहीं हो सकता था। रात भर रहना था, सवेरे यहाँ से चल देना था। अगर आद्र होते, तो उनकी आपबीती सुनना और उसे लेखनबद्ध करना।

६ मई (रविवार) सवेरे उठकर चले। किसी सवारी का सहारा तो था नही, इसलिए उठने बैठने मे स्वतंत्रता [illegible] रास्ते म एक जगह पैला और पपीता मिल रहा था। एक मन ने कहा [illegible] दूसरे ने कहा ये तो जगह जगह मिलेंगे, इतने सवेरे लेने की जरूरत क्या ? दूसरे मन की बात गलत मालूम हुई। यहा लोगा का फल के लगाने का शौक नही है और शायद उनके गाहक भी ज्यादा नही है। ७ बजे छ मील से ऊपर चलकर रामपुर चट्टी पहुँचे। उससे पहले तिलवडा म खेता मे कत्यूरी काल ९वी-१०वी सदी के दा छोट-छोट मन्दिर दखे। मुख्य मन्दिर विलीन हो गया यह उसके पाश्व चर थे। किसी तरह की मूर्ति नही थी। रामपुर मे भी एक छोटे-से नए मन्दिर मे मयूर पर चढी कार्तिकेय की मूर्ति और एक-दूसरी भी द्विभुज मूर्ति कत्यूरी काल की थी। बूढे लाग रुहला के आक्रमण और मन्दिरो मूर्तिया के ध्वस की बाते अब भी याद करत है। दलतग मे भी एक मन्दिर और कुछ मूर्तियो की बात बतलाई गई कहा गया कि इसे तोडने मे रुहेले कामयाब नही हुए, क्योकि शिवजी ने उनके ऊपर भवरे छोड दिए।

आज ११ मील चलकर अगस्त्य मुनि म रात को ठहरना था, लेकिन बलबहादुर वहा से आगे चल पडा था। मन्दिर म अष्टधातु की द्विभुज मूर्ति थी। सन्देह होता है, शायद सूय की मूर्ति हो, जिस पर पीछे धातु का भद्दा चेहरा लगा दिया गया। बाहर बाग वाले छाट मन्दिर के दाहिने गवाक्ष मे हरगौरी की एक सुन्दर मूर्ति दीवार म चिपकाई हुई थी। यहा मन्दाकिनी के किनारे काफी बडा मैदान है। उसे खाली रखना आश्चय की बात मालम हाती थी लेकिन देवताआ के कोप का भाजन कौन बनना चाहगा ? दो मील पर नदी पार सिल्ला गाव था, जहा मै नही जा सका। लोगा स मालूम हुआ वहा दो बडे और कुछ छाट छोट प्राचीन (कत्यूरी काल के) मन्दिर हैं। टिड्डिया का प्रकोप इस साल पहाडा म भी हुआ था। यहा उनस कोई नुकसान नही हुआ, इसलिए मना घी और अनाज स्वाहा करवाया जा रहा था।

रात को एक छोटी सी चट्टी मोटी मे ठहर गए। ४१ वष पहले मैंने इधर की यात्रा की थी। उस वक्त का स्मरण बहुत धूमिल सा था। तो भी यह तो मालूम था कि तब से चट्टियो की सख्या बहुत बढ गई है, और हरेक

बतला दिया, कि सवेरे जल्दी चलो, चार पाव घटा की मजिल मार ६-१० बजे किसी चट्टी पर ठहर करके खाना खा, आराम करो। जब धूप अपनी तेजी कम कर दे तो तीन चार बजे के करीब फिर आगे दो-तीन घटे चलो। कुण्ड मे मक्खिया बहुत थी। प्राय हरेक चट्टी मे मक्खियो की शिकायत थी। सचमुच चटाइया और विस्तरो का वह मक्खी का चादर बना डालती थी।

सवा ३ बजे आगे बढे। फिर डेढ मील की चढाई शुरू हुई। हर जगह की चटाइयों म यहाँ घाडे मिल जाते है। चढाई समाप्त होने पर ऊपर से मन्दाकिनी पार ऊखीमठ की बस्ती नजर आ रही थी।

गुप्तकाशी—यह नाम पीछे का दिया हुआ है। इस तरह के नकली काशी और प्रयाग पिछले सौ डेढ सौ सालो मे इस भूमि मे बहुत बने। आखिर उनके कारण कुछ पूजा चढावा चढ ही जाता है, इसलिए जाल बनाने म लोग क्यो पीछे रह? कई पण्डे भी हमारे पीछे पडे। इसके लिए उन्हे दोष नही देना चाहिए। आधुनिक दुनिया मे सभी जगह गाईड (पथ-प्रदर्शक) की आवश्यकता होती है, ये भी उसी तरह के हैं। उनको दिए पैसे गाइड का पारिश्रमिक समय लेना चाहिए। बाजार के नाम पर तीस दूकानें सडक की दोनो तरफ थी जिनकी ऊपरी मजिल यात्रियो के ठहरने के काम मे आती थी। यहाँ लालटन और दूसरी भी चीजें बिक रही थीं, जिससे जान पडता था इन दूकानो का उपयोग स्थानीय लोग भी करते हैं। प्रधान मन्दिर मे गया। पानी की नली से दो धाराएँ कुण्ड म गिर रही थी। प्रधान मन्दिर के साथ एक छोटा मन्दिर भी था। बगल के ओसार म "पाण्डवो" की मूर्तियाँ थी, जिनमे एक सुन्दर मूर्ति का खण्डित भाग भी था। मुख्य मन्दिर की बगल मे विष्णु और शिव की मूर्तिया "गगा जमुना" बनी हुई थी। शिव की मूर्ति चतुर्भुज है, अर्थात् प्राचीन पाशुपता की।

पण्डा के पूछने पर मैंने कहा, कि उसी का पण्डा बना सकता हूँ, जो सबसे अधिक वृद्ध हो, और जो सबसे अधिक बातें जानता हो। ७८ वर्ष के पण्डा काशीनाथजी (केदार-पुत्र) म यह गुण घटे। वह लुवानी गाँव के रहने वाले थे। उन्ही को मैंने अपना पण्डा बनाया। उनकी स्मृति को देखकर मैं दग रह गया। आजमगढ जिले के कितने ही गाँवो के नाम वह बतला रहे

थे, यह बडी बात नही थी। पर वनौर के जब एक दजन से अधिक गाँवा के नाम उन्होने बतलाए, तो सोचने लगा कि इस उमर ने क्या याददाश्त पर असर नही डाला। उन्होने बतलाया, रुहेले यहाँ से आगे मस्ता तक गए थे जहाँ शकर भगवान् ने उन पर पत्थर गिराना शुरू किया, और वह लौट आए। गुप्तकाशी मे आयुर्वेदिक औषधालय ३० दूकानें और ७० के करीब दूसरे घर हैं। यहाँ का मन्दिर केदारनाथ मन्दिर के अधीन था, और केदार-बदरी की सम्मिलित प्रबन्ध समिति इसकी देखरेख करती थी।

गुप्त काशी मे कुछ और फोटो लेने थे, इसलिए दूसरे दिन साढे १०बजे तक वही ठहरना पडा। केदारनाथ पाण्डे ब्राह्मण हैं, पर किसी ने क्षत्रिया (यशो) की लडकी ब्याहने के कारण उनके ब्राह्मण होने पर सन्देह प्रकट करते हुए लिख मारा। मुकद्दमा हुआ, जिसमे लेखक को जुरमाना हुआ। सच्चाई वादी और प्रतिवादी दोनो के विचारो के बीच मे थी। केदारनाथ के पडे ब्राह्मण न होते, तो सारे हिन्दुस्तान के लोगो ने भाग नही खाई थी जो उनका पैर पूजते। प्राचीनकाल मे ब्राह्मण अब्राह्मणो की लडकियो से ब्याह कर लेते थे और उनकी सन्तानें शुद्ध ब्राह्मण कही जाती थी। यह नियम यहा पर हाल तक माना जाता रहा जबकि भारत के दूसरे भागो मे इसे बहुत पहिले छोड दिया गया। कहा जा सकता है, केदारनाथ के पडे अभी हाल तक प्राचीन धर्म के माननेवाले थे।

साढे १० बजे हम वहा से निकले। अधिकतर मामूली उतराई उतरते एक मील पर नाला चट्टी पहुँचे। यहाँ भी प्राचीन मन्दिर हैं, जिसे रुहेला की टुकडियो ने ध्वस्त किया था। पडा कुमाई जोशी थे। पीछे की ओर बाएँ कोने के छोटे मन्दिर के दरवाजे पर कत्यूरा लिपी मे छोटा सा लेख था। उसी काल की दूसरी लक्ष्मीनारायण और हरगौरी मूर्तिया भी मन्दिर मे मौजूद थी। द्वार पर उस व्यक्ति की मूर्ति थी, जिसके पैसे से मन्दिर बना था।

आगे मस्ता आया। गुप्तकाशी मे सुन चुका था, कि रुहेलो पर यहीं पत्थर पडे और वे यहा से जान लेकर नीचे की ओर भागे। पर मस्ता के गौड ब्राह्मण नारायण दत्त ने बतलाया, कि मुसलमान (रुहेले) लूटते पाटते केदारनाथ तक गये थे। इसका सबूत केदारनाथ की टूटी फूटी मूर्तिया भी

दे रही थी। मस्ता से आगे चल कर भेत पहुँचे, जो साहित्यिक रुचि के पुरुष प० विशालमणि का निवास है। इन्होने ही पडो के बारे म कुछ लिख दिया था, जिस पर मुकदमा चला था। जान पडता है, भेत मन्दाकिनी उपत्यका का किसी समय बहुत महत्वपूण स्थान था। यही शायद उपत्यका का राजा रहता था। यहा बहुत से पुरान मन्दिर थे, टूटी-फूटी मूर्तियाँ भी कितनी ही पडी थी। विशालमणिजी ने कालीमठ की महिमा बतलाई। लौटते वक्त आकर सब जगहा को देखने की बात कहकर मैं आग चला।

तीन मील चलने पर मैखण्डा आया। मैखण्डा (महिषखण्ड) इस इलाक का पुराना नाम, लेकिन बस्ती कोई विशेषता नही रखती। इस पट्टी का नाम अब भी मैखण्डा है। रास्ते म एक छोटे से मन्दिर म खण्डित मूर्तिया का ढेर लगा हुआ था। बहुत-सी हलकी फुलकी मूर्तिया को लोग जरूर उठा ले गए होगे। ढेर मे हर और गौरी की खण्डित मूर्ति अलग-अलग और बडी सुन्दर थी। *जान पडता था, कलाकार की छिनी पत्थर पर नही बल्कि* मक्खन पर पड रही थी। मूर्ति नही, अजन्ता के चित्र-सी मालूम हो रही थी। यह किसी भी म्यूजियम की शोभा बढा सकती थी। यहा अरक्षित स्थान मे रहने पर इसके उड जाने का डर था। काले पत्थर की गणेश, शिव और देवी की भी मूर्तिया थी। पहली मूर्ति शायद छठी-सातवी सदी की हो।

फाटा चट्टी पर जाकर रात के लिए हम ठहर गए।

तिरजुगीनारायण—६ मई को सवेर ५ बजे चले। पाच मील पर रामपुर आया, यही प्रातराश किया। चाय, कुछ मिठाइया, भुन चने यहा आसानी स मिल जात थे। रामपुर से डेढ मील आगे जाने पर केदारनाथ का रास्ता छोडना पडा। यही तिरजुगी का रास्ता अलग होता है। कलकत्ता के किसी भक्त न सात हजार रुपया लगा कर एक मील का रास्ता बनवा पत्थर लगवा दिया। चढाई थी। तिरजुगी दो मील रह गया था, जब दो रुपये पर घोडा मिल गया। घोडे का मालिक शिल्पकार था। गान्धीजी ने हरिजन नाम पीछे दिया। इससे पहले ही पहाड म यह उत्पीडित वग अपने को शिल्पकार कहने लगा था। घोडे वाले न बडा हर्ष प्रकट करत हुए कहा—'हम लोगो न जनेऊ ले लिया।" जनेऊ लेना आजकल के जमाने मे बहुत मुश्किल नही था, लेकिन अकिंचन से किंचन बनना टढी खीर था।

साढ़े नौ बजे तिरजुगी पहुँचे। स्थान की ऊँचाई ७००० फुट तो अवश्य होगी। टिड्डियाँ फरवरी में यहाँ भी पहुँची। लोग बतला रहे थे, कि जंगलों में अब भी वह डेरा डाले शिशु-पालन कर रही हैं।

तिरजुगी में पहले विष्णु की प्रधानता थी। मन्दिर के बाहर दीवार के पास रुहेलों द्वारा खण्डित डेढ़ हाथ लम्बी शेषशायी की मूर्ति और दो खड़े विष्णु हैं जिनमें एक लक्ष्मी सहित है। पुराने शेषशायी की और भी तीन मूर्तियाँ देखने में आई। यह ११वीं १२वीं सदी से अधिक पुरानी नहीं मालूम होती। यहाँ के कुण्ड में साँप रहते हैं, जो चमत्कार माना जाता है। पर मुझे नागदेवता ने दर्शन नहीं दिया। गंगोत्री की यात्रा करने वाले ऊपर-ऊपर के पहाड़ों से होकर यहीं आकर निकलते हैं। १९१० में मैंने इस रास्ते को पार किया था। बलबहादुर भोजन बनाने लगा, और मैं डेढ़ बजे तक घूमता या विश्राम करता रहा। दो मील से थोड़ा अधिक उसी रास्ते लौट कर दाहिने मुड़ हमने केदार की सड़क पकड़ी। नदी की धार तक उतराई, फिर झूला पार करके अधिकतर चढ़ाई रही। एक जगह ६००० फुट ऊँचाई लिखी हुई थी, गौरीकुण्ड ७००० फुट के करीब ऊँचा होगा।

गौरीकुण्ड—साढ़े ४ बजे हम गौरीकुण्ड पहुँच गए, और तप्तकुण्ड के पास ही धर्मशाला में उतरे। सर्द मुल्कों में तप्तकुण्ड अगर मिल जाए तो उसमें नहाए बिना कैसे रहा जा सकता है। लेकिन इस तप्तकुण्ड का पानी जरूरत से अधिक गरम था। ठण्डी धार लाकर डाल दी गई होती, तो गर्मी कुछ कम हो जाती। लेकिन, ऐसा गरम नहीं है कि छाले पड़ें। शरीर के ताप मान से ज्यादा गरम होने के कारण पहले उसमें घुसने पर मालूम होता था कि शरीर जल जाएगा। लेकिन दूसरे आदमी को नहाते देखकर आदमी समझ सकता है कि ऐसी बात नहीं है। अब न जाने कितने दिनों बाद फिर अच्छी तरह स्नान करने का मौका मिले, इसलिए मैं गौरी के कुण्ड में स्नान करने से अपने को रोक नहीं सका। मन्दिर में कुछ मूर्तियाँ थीं। रास्ते में सिरकटे गणेश और टूटी गौरा का दर्शन चुका था। १८वीं सदी के मध्य से पहले आने पर यहाँ कितने ही भव्य मन्दिर और मूर्तियाँ देखने में आती हैं।

केदारनाथ (११७६० फुट)—शाम को मैंने सात रुपये में केदारनाथ के लिए घोड़ा ठीक कर लिया था। लेकिन, सबेरे घोड़ेवाले को यह किराया

कम मालूम हुआ, या अधिक ग्राहक आ गए, इसलिए उसने किराया बढाना चाहा। मैं पैंदल ही चल पडा। वसे हाता ता ५ बजे चला हाता, लेकिन घाडे की प्रतीक्षा ने एक घटा देर कर दी। चढाई का रास्ता था, लेकिन कडी चढाई बहुत कम ही थी। चार मील के करीब जाने पर रामबाडा चट्टी मिली, जहा से केदारनाथ तीन मील रह जाता है। निश्चय हुआ, यहीं रोटी-पानी कर लिया जाए फिर आग चला जाए। साढे ६ बजे तक खाना-पीना समाप्त कर फिर बलबहादुर के साथ मैं आग बढा। चढाई कठिन नही थी लेकिन हम १०-११ हजार फुट से ऊपर चल रह थे, जिसके कारण हवा क्षीण थी, और सास अधिक फूलती थी। बलबहादुर का पहले ही मैंन कहा था, एक डडा ले लो, लेकिन वह इसे अपनी जवानी का अपमान समझता था। इस क्षीण हवा मे डडे का गुण उसे मालूम हुआ। खुकुरी नेपाली का अभिन्न अग है, लेकिन बलबहादुर के पास वह नही थी। बडे वृक्षा की भूमि हम पीछे छोड आये थे, लेकिन डडे लायक झाडिया यहा मौजूद थी। बल बहादुर ने हसरत भरी निगाह मे उनकी तरफ कुछ देर देखा। फिर उसके अवचेतन ने बतला दिया कि कभी हमारे लोगो के पास धातु का नाम नही था। फिर क्या था ? एक तीखा पत्थर उठाकर उससे झाडी से डण्डा काट लिया। दानो तरफ काट फिर वह अपन कला प्रेम का परिचय देत छिलका भी उतारने लगा। मैं तो डरन लगा, शायद अब यह सारे डडे को छील कर ही यहा से चलेगा, पर उसने एक बित्ता ही छिलका रहने दिया। हमारे पूर्वज इससे अच्छे पत्थरो को इस्तेमाल करते थे। चकमक (फ्लिट) कडाई मे धातु के बाद दूसरा नम्बर रखता था, यहाँ बलबहादुर ने साधारण पत्थर का इस्तेमाल किया जिसे आज से तीन लाख वर्ष पहले जावा मानव करता रहा होगा।

साढे १२ बजे केदारनाथ पहुँचे। आधा मील पहले से बर्फ पर चलना पडा था। पुरी मे अब भी जहा-तहा काफी बर्फ थी। हम पौने १२००० फुट की ऊँचाई पर पहुँच गय थ। मई के शुरू हा जाने पर भी यहा अभी हिम-काल था। काशीनाथ शर्मा न चिट्ठी दी थी। हमें उनके पुत्र ने डाकखाने के ऊपर अपने मकान के एक अच्छे कमरे म जगह दी। थकावट मालूम होनी थी, जा एक घटा साने से दूर हा गई। आते वक्त आकाश निरभ्र था, पर

अपराह्न म इधर अक्सर वादलो के छा जान का डर रहता था। पुरी म घूम कर दखा। एक नवदुर्गा की गढी म "खडस्फोट" कई मूर्तियाँ पडी थी। केदारमन्दिर क पीछे दाहिने कोने म मन्दिर कमेटी के इन्चाज रहत थे, उनसे बात हुई। उत्तराखण्ड विद्यापीठ के शास्त्रीजी भी मिले। उन्ह मेरा नाम नही मालूम था पर परिचय प्राप्त करने के लिए काफी बातें थी। उन्ह जब मालूम हुआ, कि मैं ऐतिहासिक सामग्री का जिज्ञासु हूँ, तो बडी उत्सुकता स मेरी सहायता करन के लिए तैयार हो गए। बतलाया, कि तुगनाथ मे धातु और पत्थर की दो बुद्ध मूर्तियाँ हैं। केदारनाथ के रावल (महन्त) कर्नाटक के जगम (पाशुपत) साधु थे, इससे पहले तमिल जगम भी रहा करते थे। १९१० मे मुझे यहाँ दो महीने के करीब रहना पडा। काली कमली क उस क्षेत्र को, और हो सके तो उस कोठरी का देखने की इच्छा हुई। पहले यह पाच-सात कोठरिया की दोमजिला धर्मशाला थी, अब तो वह एक विशाल भव्य इमारत बन गई थी। यह भी मालूम हुआ, कि केदार नाथ से कुछ ऊपर वह स्थान भी 'ग्वाज निकाला' गया है, जहाँ शकराचार्य का तरुणाई म ही पाशुपतो क हाथ स विषपान करके मरना पडा था। वहा एक लिंग छोड और कोई इमारत नही है।

शाम ही को तै हो गया कि यात्रियो के आन के पहले ही मैं मन्दिर मे जा वहा की भीतरी चीजे देख लू। ७ बजे सुपरिटेण्डेन्ट साहब ने मेरे मन्दिर म ले जाने का प्रबन्ध कर दिया था। बाहर बडा जगमोहन, उसके भीतर एक छोटी सी मडप और फिर गर्भ था। गर्भगृह मे पत्थर के चार खम्भे थे। इन्ही के बीच मे जा भैसे की पीठ की तरह की एक पुरानी चट्टान थी जिसे देखकर लोगो ने कल्पना की कि जब पाण्डव शकर के दर्शन करने के लिए यहा आये तो कुलघाती पापियो का दर्शन देने की इच्छा न रखते शकर भसो के झुण्ड मे छिप गए। भैसे शाम को घर की ओर लौटने लगी, उस वक्त भीम ने दोनो पर्वतो पर अपना पैर रख दिया। शकर पैर के नीचे स कैसे निकलत। बडे धर्मसकट मे पडे। इसम बचने क लिए वह धरती म डुबकी मारने लगे। मुह पैर सब धरती मे डूब गया सिर्फ पीठ रह गई। पाण्डवो ने पहचान लिया। वही पीठ यहाँ पत्थर क रूप म अब मौजूद है।

भीतर सर्दी बहुत थी, इतना कहना काफी नही होगा। मन्दिर होने क

कारण जूता पहन के जा नही सकत थे, और पैरो को मानो बफ काट रही थी। पुजारी ने कम्बल दे दिया, जिससे थोडी सी मदद मिली। शास्त्रीजी पहले ही कुछ खोज-खाज कर चुके थे, और बतला दिया, दीवारो पर यहा शिलालेख है। शिलालेख थे, लेकिन केदारनाथ के ऊपर घी मलते समय हाथ साफ करने के लिए दीवार पर पोछ देते, जिसके कारण शताब्दियो की घी की माटी तह न अक्षरो को ढाक दिया था। गरम पानी आया, लेकिन जब तक ब्रुश न हो, तब तक उसका साफ करना मुश्किल था। कुछ सफाई करने से ११वी १२वी शताब्दी की लिपि म "रज देव के इति" लिखा मिला। कुमाऊँ के प्रथम कमिश्नर ट्रेल न लिखा था, मन्दिर नया बना है। जान पडता है उसके समय (१८२० ई० के आस पास) से कुछ ही पहले भूकम्प से टूटे मन्दिर की मरम्मत हुई थी, जिससे उसने समझा, कि मन्दिर अभी बना है। दीवारें पुरानी हैं, टूटा होगा तो ऊपर का कुछ भाग। दीवारो के ये शिलालेख बतला रह थे कि मन्दिर १२वी सदी से इधर का नही होगा। इस बात की गवाही बाहर के जगमोहन म रखी मूर्तिया भी दे रही थी। गभ के बाहरी मडप म भी चौकोर बडे बडे चार खम्भे थे। यहा के गवाक्षो म आठ मूर्तिया रखी थी, जिनम पाच करीब तीन हाथ की, सभी पुरानी थी, और जिनके प्रत्यक्ष चिह्नो पर न विश्वास कर लोगो ने उन्ह द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि का नाम दे रखा है। मन्दिर के बाहर अम्बादत्त तगवाल के अधीन ईशान मन्दिर है। वहा एक पत्थर पर दो पक्तियो का खडित लेख देखा। कुमाऊँ गढवाल का यह सब से पुराना लेख है, जो गुप्ता ब्राह्मी और तिब्बती (ऊमेद) लिपियो से ज्यादा मिलता जुलता है। नवदुर्गा मन्दिर मे वैष्णवी सहित पाच मातृकाएँ थी, अर्थात् दो लुप्त थी। यह भी ११वी-१२वी सदी से इधर की नही हो सकती। जो कुछ देखा, उससे मालूम हुआ, कि चौथी सदी म भी यहा कोई मन्दिर था और उस समय भी पाशुपतो के लिए यह महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। मन्दिर के भीतर केदारनाथ का जो दिव्य विग्रह है, जान पडता है, वह कोई प्राकृतिक शिला थी, जिसके एक किनारे से नीचे तक काफी पोल का पता पानी गिरने की आवाज से लगता है। गुप्तकाल मे भव्य मन्दिर रहा होगा। फिर ११वी-१२वी सदी म किसी न नये विशाल मन्दिर को बनवाया, जिसको १९वी सदी के आरम्भ म

भूकप ने क्षति पहुँचाई और उसका जीर्णोद्धार किया गया। मंदिर वैभव सम्प न रहा होगा। हो सकता है, अकबर के समय में टुकडियाँ यहा तक पहुँची हो। १६४१ ४२ इ० में रुहेले तो जरूर यहा पहुचे। उन्होंने यहा की मूर्तियां को तोडा, धन को लूटा। यदि धातु की मूर्तियां रही होगी, तो उन्हे उन्होने गला कर दरब के रूप मे बेंच दिया।

साढे ६ बजे हम केदारनाथ से चले। उतराई थी और चलने का अभ्यास भी हो गया था, इसलिए पैर जल्दी जल्दी बढ रहे थे। गौरीकुण्ड म डेढ घटा रह खान पीन से निवृत्त हुए। यहा लक्ष्मीनारायण और हरगौरी की खण्डित पत्थर की मूर्तियां देखी। मन्दिर म छोटी बडी चार धातु मूर्तियां भी है।

कालीमठ—उस दिन ५ बजे हम रामपुर पहुँच रात को वही ठहर गये। सवेरे (१२ मई) ५ बजे फिर चले। पाच मील चल कर फाटा म चाय पी, और व्याग म मध्याह्न भोजन करने की बात बलबहादुर का बतला कर मैं आगे चल पड़ा। मैंने खण्डा मे मूर्तियां का दर्शन करने के बाद सड़क के किनारे बैठकर जूता बनानेवाले शिल्पकारो से बातचीत की। सरकार ने श्रीनगर म चप्पल-जूता बनाना सिखाने का स्कूल खोला है, जिसमे सीखने वालो को छात्रवृत्ति भी दी जाती है। उनसे मैंने उससे फायदा उठाने की बात कही तो उनके जवाब को सुनकर मुझे अपनी ही भरामशाही पर अफसोस हुआ। वह कह रहे थ, चप्पल और बूट बनाना हम जानते है। उन्होंने अपने बनाए जूते को दिखलाकर इसे प्रमाणित किया। हमारे लडके अपने घर मे यह सब सीख सकते हैं। असल मे हमारी दिक्कत है अच्छे सिये हुए चमडे का सस्ते म पाना। हम कानपुर का चमडा मँगाते है। एक जूते म सात-आठ रुपया चमडे ही का निकल जाता है, हमारी मजूरी नहीं पडती। चमडा सियाने का ढग सिखाया जाए, तो ठीक।

यात्रा मे चीजो के भावो का कोई ठीक ठिकाना नही था। आम तौर से यह समझना चाहिए कि जितना ऊपर जाएँ, उतना ही दाम बढ़ता है। पर व्याग चट्टी थोडी ही दूर पर दो खण्डो मे विभक्त है। ऊपरी व्याग म ११ आना सेर आलू मिल रहा था और निचले व्याग मे सवा रुपया सेर। हमे अफसोस हुआ कि हम ऊपरी चट्टी पर ही क्यो नहीं भोजन से निपट

लिये। बलबहादुर ने भात और आलू की तरकारी बनाई। दाल मे खामखा समय अधिक लगता, इसलिए दोपहर के लिए हम उसे बेकार समझते थे। आलू की तरकारी बिना प्याज लहसुन की क्या अच्छी बन सकती है पर यहा धमधुर घरो की चलती है इसलिए कोई दूकानदार घर म चाहे खाता हो, लेकिन दूकान पर प्याज लहसुन नही रखता।

जाते वक्त गुरानी म नारायणसिंह का फला का बगीचा देखा था। वह पाँच ही फर्लांग नीचे था, वहाँ गए। अगूर, मालटा नारगी, सेब कई तरह के फल लगे हुए थे। यदि पके फला के बेचने का भी इन्तिजाम होता, तो कितना अच्छा होता? नारायणसिंह पेशनर आवरसियर हैं गाव मे कही दूसरी जगह रहते थे। बाग म माली था। पता लगा, कि इसके ऊपर सरकार ने फलो की एक नसरी कायम की है, और अक्कल क पूरे लोगा ने नसरी ऐसी जगह कायम की है जहा पानी नही है। ये लोग क्या हैं इस भूमि को फला स मालामाल करन? दफ्तरशाही से कोई आशा नही हो सकती।

साढे बारह बजे हम भेत पहुँचे। चाहते थे, विशालमणिजी तुरन्त कालीमठ से चलें जहा की अद्भुत मूर्तिया का वणन करके उन्होंने मुझे बावला बना दिया था। लेकिन सस्कृत का पण्डित क्या यदि तडाक फडाक तैयार हो जाए। दो घटे तो रानियो के सिंगार करने मे लगता होगा। बकरार था, लेकिन क्या करता? भेत की मूर्तिया को भी देखा। नीचे एक पत्थर की सुदर बावडी मिली, जिसको पत्थरो से पाट दिया गया था, नही तो अब भी उसमे पानी होता। यहा दूर तक बहुत कुछ समतल-सी भूमि है। पहाड म एसी जगह का राजधानी के लिए चुना जाना स्वाभाविक था, और उसी काल के अवशेष यह मदिर और बावडी है। बावडी की दीवार मे १४ वी सदी की लिपि मे "भयहरनाथ जोगी सिध" लिखा हुआ था। और नीचे नवलिंग केदार का ध्वस दिखलाया, जिसमे दीपधारिणी सवा बित्ते की एक धातु की मूर्ति थी। कुछ और भी भद्दी मूर्तियाँ थी। भक्त स्त्री पुरुष भी शामिल थे। धातु की मूर्ति को गाव वाले डर के मारे नही हटाते, लेकिन यह ज्यादा दिनों तक धूप और वर्षा बर्दाश्त करने के लिए यहाँ पडी रहेगी, इसकी कम आशा है। शायद उसके बचे रहने का कारण सुदर न होना भी है। उतराई उतरते मदाकिनी के पुल पर पहुचे। उसे पार कर सवा मील

के करीब चढाई चढनी पडी। फिर कुछ उतराई उतर कर कालीगगा के किनारे कालीमठ पहुँचे। किसी समय यह पाशुपतो का केन्द्र था। मुख्य मन्दिर के बाहर कत्यूरी लिपि म एक १८ पक्तियो का २० इच लम्बा १० इच चौडा शिलालेख था। यदि विशालमणिजी न दर न की होती, तो हम अच्छे समय पर पहुँचते और फोटो ले सकते थे। लेकिन अब सूर्यास्त हो गया था। कुछ फोटो लिए। शिलालेख की कुछ पक्तिया थी—

'ॐ॥ सध्यासमाधि घटिताजलित स्वपाणौ कृष्णे सकेपि सुम क्षिणास शवस्य त स्वकर सस्थित तायराशे (।) सचित्र (१) दयितयेव गृहीतकेश ॥दक्षादभवा तरमपास्य शिरे प्रस्तुत शव्व पतिमवाप्य (४) गिरिपति गहगोप्ता महारद्राभिधार (४) बालएवाभवद् स्वामी सव्वसग्रामकचत रुद्रसून ११ कल्कि १ ला शैल १४ सग्राम कीर्त्ति प्राकृत कवयो १५ वत्तु कुद्ध कै पार्पाण ।"

लिपि कत्यूरिया की थी। जिस राजा का यह शिलालेख था, वह रुद्र का पिता था कत्यूरिया के प्राप्त अभिलेखा म इस नाम का कोई राजा नही मिलता है। हो सकता है वह भेत का ही राजा रहा हो।

गौरी मन्दिर मे ४० इच लम्बी २४ इच चौडी हरगौरी की अत्यन्त सुन्दर पाषाण मूर्ति थी, जिसे देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। शिव चतुर्भुज थे गौरी द्विभुज, नीचे गणेश और मयूरारुढ कार्तिकेय थे। दाता की भी मूर्ति साथ म उत्कीण थी। अखडित इतनी सुन्दर हरगौरी की मूर्ति शायद भारतवष म कही न हो। भारत की यह अनमोल कलानिधि एव ऐसे स्थान मे पडी है, जहा केदारनाथ के जानेवाले हर साल के हजारो यात्रियो मे कोई जान के लिए तैयार नही होता। मुझे इस बात का बडा अफसोस था, कि प्रकाश के अभाव के कारण मैं उसका फोटो नही ले सका।

हरगौरी के अतिरिक्त सरस्वती और लक्ष्मी क भी यहाँ मन्दिर हैं। लक्ष्मी क मन्दिर म ही उक्त शिलालेख लगा हुआ था। बाहर खुले म कत्यूरी काल की बहुत-सी खण्डित मूर्तिया थी। मुखलिंग (एक मुहवाला, तीन मुहवाला चार मुहवाला) और शिश्न लिंग इमे पाशुपतो का प्रमुख स्थान बतला रहे थे। गढवाल कुमाऊ क्या पश्चिमी नेपाल तक के अधि काश लोग खस हैं, जिनमे ब्राह्मण और क्षत्री दोनो शामिल हैं। वतमान

शताब्दी म खश नाम अपमानजनक समझा जाने लगा, इसलिए लागा ने अपन का खश कहने से इन्कार कर दिया, और अब सभी अपने को राजपूत बतलाते हैं। यहा खशा की प्रथाओ म अपनी लडकी को देवचेली बना कर देवता को अर्पित करना भी था। इस शताब्दी में भी देवचेलियाँ बनती थी, और अभी कुछ ही साल हुए आखिरी देवचेली मरी। देवचेलिया जिस घर म रहती थी, उस घर को भी विशाल्मणिजी ने दिखलाया। जातीय अपमान समझकर दवता के प्रकोप का भय रहते भी इस प्रथा का बन्द कर दिया गया। मद्रास की तरह यहाँ देवदासी प्रथा निषेध का काई कानून बनान की आवश्यकता नही पडी। विशाल्मणिजी दुमागी ब्राह्मण है। शायद गगाडी आर खश दाना ब्राह्मणा के बीच म हाथ-पैर फैलाने के कारण यह नाम दिया गया। उसी शाम लौट कर भेत आते हुए मरे दिल मे ख्याल आ रहा था, यह अद्भुत मूर्ति बच गई? शायद लोगो न इस कही छिपा दिया, और एसा करक उन्हाने महान् काम किया, इसम सन्देह नही।

ऊखीमठ—१३ मई को सवा ५ बजे हम दाना चले। विशाल्मणिजी भी नाला तक पहुँचाने आए। जाते वक्त हमने ख्याल नही किया था, लेकिन अब देखा नाला मन्दिर की दीवार पर सडक क किनारे एक छाटा सा शिलास्तम्भ है। बौद्ध धम का इतना ज्वलन्त अवशेष और दूसरा कुमाऊ-गढ़वाल म देखने को नही मिला। छाट मन्दिर के चार पक्तिया क लेख का पढ़ने की काशिश की, पर उसके लिए कुछ समय की आवश्यकता थी। लेख मे शाके ११६८ (सन् १२७६ ई०) का उल्लेख था। ६ के अक क बार म निश्चित नही था। इसम ' सरस्वती प्रसादेन घटिता प्रतिमा शुभा लिखा था। सरस्वती प्रसाद क्या मूर्तिकार था?

नाला मे आगे बढे, ता उत्तराखण्ड विद्यापीठ आया। वहाँ के प्रिंसिपल एक मद्रासी सज्जन थ। विद्यालय मे इस वक्त छुट्टी थी, लेकिन उन्होंने बतलाया, कि विद्यापीठ इस इलाके म शिक्षा के प्रचार म क्या कर रहा है। पुल पार कर चढाइ शुरू हुई। ८ बजे हम ऊखीमठ पहुँच गए। बद्रीनाथ प्रबन्ध समिति के सहायक सचिव बहुगुनाजी और केदारनाथ क रावल यहीं पर थे, दाना का इसका अफसास रहा, कि वह इस समय केदारनाथ मे नहीं

थे। यहाँ की चीज रावलजी ने दिखलाई। एक ताम्र पत्र सवत् १८६८ (सन् १८११ ई०) का गीर्वाण युद्ध विक्रम शाह के समय का था, जिसमें रामदास थापा की मा के दान का उल्लेख था। "शाके १७१६ (सन् १७६७ ई०) ताम्र पत्र मे माघ कृष्ण १४ सोम रणबहादुर साह कनिष्ठ पत्न्या श्रीकालवती लेख्या निजभर्तृ विनर्माजित कूभचल "लिखित हुए किसी दान का उल्लेख किया गया था। ये दानो लेख इस भूभाग पर गोरखा शासन के अवशिष्ट चिह्न थे।

यहा की पुरानी बहियो और अभिलेखो से उस समय के आर्थिक और सामाजिक जीवन का काफी पता लग सकता है। उन्हे मैं चलते चलते नही देख सकता था। वह तो अनुसधान का विषय है। उषा का सम्बन्ध क्यो इस मठ से जोडा गया? पाण्डवो से सम्बन्ध होना गढ़वाल के लिए स्वाभाविक था। पाशुपतो का गढ होने से उसकी भी गुजाइश है, लेकिन उषा तो न तीन मे है न तेरह मे। उषा मन्दिर के बरांडे मे कई मूर्तिया थी, जिनमे नटराज भी थे। एक जगह दो पाषाण सूर्य की मूर्तिया आमने सामने थी, भीतर शिवलिंग, ऊपर मुखलिंग था। मूर्तियो मे दाढ़ीवाले एक राजा की मूर्ति थी, जिसके बीच मे दाढ़ी-जटाधारी पाशुपताचार्य और पास मे राजकुमार और राजकुमारी की मूर्तिया थी। यह पिछले कत्यूरी काल की हो सकती है। उषी मठ भी प्राचीन स्थान है।

भोजन करने के बाद ३ बजे हम वहाँ से चले। बलबहादुर अब बहुत धीरे धीरे चल रहा था। श्रीनगर मे उसे भोजन के साथ डेढ़ रुपया रोज काफी मालूम हुआ, लेकिन अब वह अपने भाइयो को उससे चौगुना पचगुना कमाते देख रहा था। एक जगह तो घटा इन्तजार करना पडा, सन्देह होने लगा उसे कही कुछ हो तो नही गया। किसी तरह ग्वाल्यिाबगड पहुचे और रात के लिए वही ठहर गए। रमणीय स्थान था। इससे पहले की चट्टी पर पानी का बहुत टोटा था और यहाँ एक स्वच्छ जल की नदी बह रही थी, जिसकी धारा हमारे ठहरने के स्थान के पीछे से पनचक्की चलाने के लिए जा रही थी।

तुगनाथ—१४ मई को ५ बजे घोड़े पर चले। चढ़ाई नदी पार करते ही शुरू हो जाती थी। ऐसे स्थान पर घोड़े का मिलना यात्री के लिए बर-

दान है, और जो नही लेता, वह कितनी ही बार पछताता भी है। वाणियाँ-कुण्डी तक पहुँचते पहुँचते घोडा थक गया, और उसे वही छोड देना पडा। साढे ६ रुपय म तुगनाथ के लिए साढे चार हजार से १२ हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँचाने वाला दूसरा घोडा मिल गया। नदी के इस पार आते ही पहाड हरा भरा था। वाणियाँ कुण्डी तो वर्फ पडने की जगह म थी। यहा खरसू और तून के वृक्ष अधिक थे। इस पहाडी मे गाँव अधिक नही है, लेकिन जगलो के कारण पशुपाल चराने के सुभीते से इधर झोपडिया लगाकर बस जाते है। उन्ही मे से कुछ ने चट्टिया म अपनी दूकानें भी खोल ली है। चट्टियो के कितने ही घर उजाड थे। दूकाना से लोगो को मालामाल होते देख दूसरो का भी हिरस हुई और जरूरत से अधिक दूकाने बाध ली। फिर कुछ का निराश होकर अपने घर छाडने पडे, जिनकी दीवारें अभी भी खडी थी। वनस्पतिया म धीरे धीरे परिवर्तन होने लगा, और हम तुगनाथ के पहले ऐसे स्थान मे पहुँचे, जहा झाडियाँ भी खतम होकर घास ही रह गई थी। १० बजे हम तुगनाथ पहुँचे। वर्फ वही कही थी। तुगनाथ से अधिक ऊँची जगह पर कोई हिन्दू मन्दिर नही है। यहा की पुरानी खण्डित मूर्तिया बतला रही थी, कि यह पुराना स्थान है। मन्दिर म शिवलिंग है, जिसके पीछे पद्मासनस्थ कुण्डलधारी भक्तमूर्ति है। उसके पास पाँच छ इंच की धातु की भूमिस्पर्श मुद्रा म बुद्धमूर्ति है। तुगनाथ हिमालय के गर्भ म है, उसके उत्तर की ओर हिम शिखरो की पंक्तिया चली गई ह, और [illegible] हजारो पहाड मानो हिम शिखरा की ओर ध्यान लगाए [illegible]। यहा से बहुत दूर तक का दृश्य दिखाई पडता है। बदरीनाथ [illegible] यहा नही आते इसलिए बस्ती छोटी सी है। [illegible] है अतएव महगी होती है सर्दी भी अधिक है। [illegible] खाने म ही सुभीता है, जो तीन रुपय सेर [illegible] बजे हम उतरने लगे। उतराई ही उतराई [illegible] रास्ता आकर मिल जाता है। कुछ [illegible] पौन तीन मील चलने पर [illegible] कहते हैं। यहा जगला म [illegible] गया। पागर के अतिरिक्त [illegible]

कारण बहुत रमणीय स्थान है। रात के लिए हम यही ठहर गए।

अगले दिन (१५ मई) फिर ५ बजे चले। गगनचुम्बी वृक्षों के घने जंगल के बीच से मण्डल चट्टी तक उतराई का रास्ता था। डाकबंगला कुछ ऊपर ही रह गया, और चट्टी नीचे मैदान सी बहुत चौड़ी उपत्यका में थी। यहा भी टीका के देखने और लगाने के लिए डाक्टर का कम्प था, लेकिन उसकी कोई चिन्ता नही थी। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने पर बलबहादुर आया और उसे टीका लगवाना पड़ा। इधर भी टिड्डियों ने आकर फसल को काफी नुकसान पहुँचाया था। चाफी नदी पार करके उसके दूसरे किनारे से नीचे की ओर चले और फिर एक वॉही पार करके पहाड़ के नीचे पहुँचे। जगह साढ़े चार मील के करीब होगी। घोड़ा मिला, और चाहते तो वह बदरीनाथ तक साथ चल सकता था, लेकिन उस वक्त यह खयाल नहीं आया। चढ़ाई चढ के गोपेश्वर पहुँचे।

गोपेश्वर का मन्दिर केदारनाथ जैसा ही विशाल है। छठी और बारहवी सदी के अभिलेख उसकी प्राचीनता और महिमा को बतलाते हैं। मन्दिर के सभामण्डप को पीछे बनवाया गया। खण्डित मूर्तियाँ एक चौतरे पर रखी थी और कितनी ही दूसरी जगहों में भी बिखरी थी। चतुर्मुखलिंग और शिश्नलिंग बतला रहे थे कि यह पाशुपतों का स्थान रहा। पुराने ढंग की बूटधारी सूर्य की मूर्ति भी मन्दिर के भीतर मिली। विशाल त्रिशूल पर अशोकचल्ल काचल्ल के अतिरिक्त तीन पंक्तियो का ब्राह्मी का भी एक लेख था, जो दक्षिणी ब्राह्मी से ज्यादा मिलता है।

हम खाना खाना था। बलबहादुर ने अब अपनी सुस्ती का रहस्य खोला—"मैं डेढ़ रुपया रोज में नही रहूँगा।" पहले बतलाया होता, तो उस घोड़े को बदरीनाथ के लिए ले लिए होते। भोजनोपरान्त कुछ विश्राम करके २ बजे चले। समतल सा रास्ता था, डेढ़ घंटे में चमोली पहुँच गए। चमोली से बलबहादुर को छोड़ना था। धर्मशालाएँ भरी हुई थी, कही जगह नही थी, इसलिए रात को वहाँ रहना भी मुश्किल था। सोचा, बेकार का सामान जो लाद फिर रहे हैं, उसकी जरूरत नही है। उसे यहीं किसी के पास पटक दें और एक कम्बल तथा पोर्टफोलियो में कुछ चीजें भरकर चल दें। अस्पताल के कम्पौंडर श्री जीवानन्द सुन्दरियाल से यहीं भेंट हो गई।

उन्होंने सामान अपने पास रखना स्वीकार कर लिया। बलबहादुर को ११ दिन के लिए मैंने पचीस रुपया दे दिया। सोचा, अगली चट्टी (मठ) मे सिर रखने के लिए कोई जगह मिल ही जाएगी, इसलिए वहा से लम्बा डेग बढाते चल पडा। मठ मे दूकानदार भलेमानुस मिला, उसने मेरे लिए सामान का दाम लेकर रोटी बनाकर देना स्वीकार कर लिया। यही वामा के उदयसिंह माल मिल गए। शिक्षित तरुण, और नीती घाटा के रहने वाले होने से तिब्बत के सौदागर भी थे। उन्होने शायद मेरी कोई पुस्तक पढी थी। उनके मित्र का घर आगे सडक पर था। उन्होने कहा—वह जरूर कोई घोडा ठीक कर देंगे। सवेरे साढे ४ बजे ही मैं उनके मित्र के पास पहुँचा उन्ह पीठ फेरते ही कल की बात भूले हुए पाया। लेकिन, अब मेरे पैर खुल गए थे, सामान से भी पिण्ड छुडा लिया था, इसलिए ऊनी चादर कधे पर रखे, लाठी मे पोटफॅल और कधे पर कमरा टागे चल पडा। हिम्मत हारने की क्या जरूरत, मैं बदरीनाथ तक चल सकता था। आगे सीयासाई की चट्टी मिली। दूकानदार के चूल्हे मे चाय खौल रही थी। मैं पीने के लिए बैठ गया। यह आपके लिए अच्छी नही होगी कहते उसने नई चाय बना के पिलाई। उसने बतलाया, कि आगे हाट गाव का पुल आएगा, वहाँ केदारदत्त की दूकान है। उनके पास घोडा है। वह किराय पर मिल जाएगा। चमाली से कल मैं दो मील आया था और सीयासाई से पाच मील और आने पर केदारदत्त मिले। घोडा भी १७ मील तक (जोशी मठ) के लिए ठीक कर लिया। यहाँ से अब रास्ता अलकनन्दा से बाँए था। केदारदत्त के भाई वाचस्पति घोडे के साथ चले।

वह मसूरी म रसोइया रह चुके थे। भला इतना सुभीता कहा मिल सकता था। मैंने सोचा, अब बदरीनाथ तक इनको साथ ले चलना होगा और चमाली लौटकर ही छोडना है। मठ से १५ मील और घोडा लेने की जगह से १० मील और चलकर पातालगगा चट्टी म गए। यहाँ १ बजे से २ बजे तक ठहरकर भोजन किया। वाचस्पति वाणी के पति चाहे न हो, लेकिन चूल्ही के पति अवश्य थे। एक ही सामग्री किसी के हाथ मे पड कर गोबर हो जाती है और किसी के हाथ म अमृत। वाचस्पतिजी भोजन बनाने लगे, और मैं जरा-सा इधर-उधर घूमने गया। वही नागपुर के श्री हृषिकेश

शर्मा की पत्नी मिल गई। उनके साथ आठ नौ नागपुर के शिक्षित और सुसस्कृत पुरुष और महिलाएँ थी। वाचस्पति ने स्वादिष्ट भोजन खिला कर तृप्त कर दिया था, नहीं तो शर्माजी का आग्रह अपने दल के साथ चलने का था। पर, मैं एक एक दिन मे बीस बीस तीस-तीस मील की मजिल मार रहा था और उस मण्डली के साथ चीटी की चाल चलना पड़ता। मसूरी से जितना समय नियत करके आया था, उससे अधिक देना नही चाहता था।

जोशीम—ठअधिकतर रास्ता चढाई का था, पर पैदल चलना नही था घोडा तथा वाचस्पति दानो फुर्तीले थे। इन दोनो के साथ तो मन करता था एक मनज हिमालय की लम्बी दौड लगाई जाए। ६ बजे जोशी-मठ पहुँचे। वाचस्पतिजी को खाना बनाने और घोडे का इन्तजाम करने के लिए छोड दिया और अपने यहाँ के प्राचीन मन्दिरो—नरसिंह वासुदेव, नवदुर्गा—को देखने गया। जोशीमठ, ज्योतिमठ का बिगडा रूप बतलाया जाता है लेकिन इन दानो नामो से इतिहास की कुजी नही खुलती। इतना मालूम है कि ज्योतिमठ मे शकराचार्य ने अपना एक प्रधान मठ स्थापित किया था जहा गद्दी पर शकराचार्य भी होते थे। वह परम्परा १८वी सदी तक आई और अन्तिम सन्यासी के न रहने पर मलाबार के ब्राह्मण रसोइये को ही रावल के नाम से महन्त बना दिया गया। यही रिवाज आज तक चला आता है। जोशीमठ प्रतापी कत्यूरियो की राजधानी थी, जो एक समय सयुक्त गढवाल कुमाऊ के शासक थे। राजधानी और राजप्रासाद के कोई अवशेष नही मिलते, पर मन्दिर उस समय के इतिहास की गवाही देते है। रात हो जाने से मैं यहा कोई काम नही कर सका। यह भी मालूम हुआ कि अधिकारी लोग बदरीनाथ चले गए है।

बदरीनाथ—अगले दिन (१७ मई) को साढे ४ बजे ही हम रवाना हुए। दो मील नीचे धौली और अलकनन्दा के सगम पर विष्णुप्रयाग है। वहा तक उतराई थी, जिसमे घोडे पर चढने की जरूरत नही पडी। दस मील और चलकर हम पाण्डुकेश्वर आ गए। पाण्डुकेश्वर के दो पाषाण मन्दिर कत्यूरी काल के चिह्न है। वे अपनी मूर्तियो और मन्दिर की शैली से विशेष महत्त्व रखते हैं। एक मन्दिर गुम्बद की तरह की छतवाला है,

जो अधिक पुराना है। इसमे पत्थर की मूर्ति है और दूसरे मे धातु की विष्णुमूर्ति। पहाड मे भी मैदान की तरह खण्डित मूर्तियो को गगा म फेंक देने का रवाज है, इसलिए न जाने कितनी मूर्तिया अलकनन्दा मे पडी भावी गवेपको की प्रतीक्षा कर रही ह। यहा एक गणेश की भी खण्डित मूर्ति देखी। कोई शैव चिह्न मालूम नही हुआ। लक्षण से मालूम होता है पास के खेता मे भी पुरानी वस्ती के चिह्न मिलेंगे। पाण्डुकेश्वर मे काफी दूकानें है। विष्णुप्रयाग से इधर ऐसी जगह मे हम आ गए थे जिसको आलू की भूमि कह सकते है। चाहे आज से सौ वष ही पहले शिकारी विल्सन ने इधर आलू का प्रचार किया, लेकिन आलू स्वय कहता है, "यह पूवजन्म की मेरी मातृभूमि है।" इसीलिए वह बहुत और वडा-बडा होता है। और इसीलिए सस्ता भी बहुत है। दूकान पर मसालेदार खडे पीले पीले आलू सजे देखकर मुंह मे पानी आने लगता। अधिक पैदा होने से आलू का अपमान करना मुझे अपराध मालूम होता लगता है। अभी सवेरा ही था इसलिए भोजन यहा नही किया, लकिन आलू हमन खाया। लामबगड होत वदरीनाथ पहुँचने की अन्तिम चट्टी हनुमानचट्टी मिली। वृक्षा के स्थान से ऊपर थी, और इसलिए लकडी वडी मँहगी थी। बेवकूफ ही यहाँ तीन रुपया सेर पूडी छाडकर सवा दा रुपया सेर वाले आटे से कच्ची रसाई बनाने की कोशिश करेंगे। वाचस्पतिजी को भाजन नही बनाना था। भाजन करके कुछ देर विश्राम किया, और ढाई बजे अन्तिम पाच मील की यात्रा क लिए हम चल पडे। साँस फुलाने वाली चढाई थी, लेकिन मैं मजबूत घाडे की पीठ पर था। पजाव सिन्ध क्षेत्र क मैनजर न वहुत आग्रहपूवक अपने यहा की शाखा म ठहरने के लिए चिट्ठी लिख दी थी। वदरीनाथपुरी से पहले ही और अलकनन्दा के वाई तरफ सडक पर क्षेत्र मिला। चिट्ठी पात ही कमचारियो ने बडी आवभगत की, और एक अच्छे स्थान म आसन लगवा कर चाय और गरम कपडे का इन्तजाम कर दिया। पजाव सिन्ध क्षेत्र पश्चिमी पजावी और सिन्धी भक्त धनिका की सम्मिलित सस्था है, जिसकी स्थापना इस शताब्दी के आरम्भ हाने से कुछ पहले ही हा गई थी। समय बीतने के साथ इसके दाताओ की सख्या बढी, और ऋषिकेश मे एक छोटा सा मुहल्ला ही इसके मकानो का बन गया। विभाजन के बाद वे दाता सूखे

पत्ते की तरह अपनी जन्मभूमि से उखड़कर बिखर गए। अब वह इस स्थिति मे नही थे, कि क्षेत्र की पहले की तरह उदारता से सहायता करते। लेकिन तो भी जो कुछ होता है, वे करते है। यहाँ के भक्तजी बड़े ही मधुर स्वभाव के मिले।

वाचस्पति को छोड़कर मैं मील-भर पर अवस्थित पुरी मे गया। अभी दो ढाई घण्टा दिन था। चाहा कोई गाइड की नई पुस्तक ले लूँ। गोविन्द प्रसाद नौटियाल की किताबों और शिलाजीत की दूकान पर पहुँचा। नाम सुनते ही मालूम हुआ, हम वर्षों से बिछुड़े मिले। उन्होंने अपनी पथ प्रदर्शिका के नए संस्करण की पुस्तक दी। वहाँ से मन्दिर के सेक्रेटरी श्री पुरुषोत्तम बगवाड़ी के पास गया। मेरे नाम का सुनते ही वह जल्दी जल्दी कोठे पर से नीचे उतर आए, और कहा—आप मील भर दूर नही ठहर सकते यहाँ हमारे अतिथि भवन में ठहरना होगा। मैंने कहा, घोड़े का लौटना है। उन्होंने कहा—उसको लौटा देंगे, हम दूसरा घोड़ा देंगे। बदरीनाथ से इतनी जल्दी जाने की मेरी भी इच्छा नही थी। अतिथि भवन बड़ा साफ-सुथरा नया मकान था। उसके सबसे अच्छे कमरे में हम ठहराया गया। अगले दिन (१८ फरवरी) को रुपया देकर वाचस्पति को छुट्टी दे दी। भोजन बदरीनाथ की भोजनशाला से आता। गंगासिंह दुरियाल ने बदरीनाथ की जो कारस्तानी बतलाई थी, उसका प्रमाण मिल गया, जब बासमती चावल का भात सामने आया। बदरीनाथ का दर्शन करना जरूरी था, क्योंकि कितने ही लोग लिख चुके थे, मूर्ति बुद्ध की है। दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त समय सबेरे का बतलाया गया, जब कि मूर्ति को नग्न करके स्नान कराया जाता है।

बगवाड़ीजी ने गंगासिंह दुरियाल को हमारा पथ प्रदर्शक बना दिया। दुरियाल लोग बदरीनाथ के चार मुख्य मुरब्बियों में से हैं। दूसरे तीन हैं माणा के मारछा, जोशीमठ के जोशियाल और डिमरी पुजारी ब्राह्मण। सबके ऊपर मलाबार का नम्बूदरी रावल होता है।

उस दिन दोपहर बाद गंगासिंह को लिए मैं वसुधारा की ओर चला। असली लक्ष्य माणा गाँव जाने का था, पर माणा के सामने का पुल टूट गया पर लकड़ी की पटरियों को बैठाकर दुरुस्त नही किया गया था। गंगासिंह, पूछने

पर मारछा और दूसरे दुरियाल लोग उसी बात को दोहराते थे—बदरीनाथ भोट देश के थोलिंग मठ के देवता थे। भोटियो के भक्षाभक्ष्य खाने से असतुष्ट होकर वह मदिर के दीवाल म छेद करके निकल भागे। भोटियो ने पीछा किया। मानाधुरा के पास उन्हे बहुत नजदीक आया देखकर बदरीनाथ ने अग्नि ज्वाला की दीवार खडी कर दी। लामा उससे भी पीछे नही हटे, उनकी दाढी मूछ जल गई। तभी से तिब्बती लोगो के मुह पर दाढी मूछ का अभाव सा होता है। हाथ मे पडना निश्चित देखकर बदरीनाथ पास म चरती चवरियो की पूछ मे छिप गए। इस कृपा के लिए उन्होने वरदान दिया कि चौरी की पूछ आज से पवित्र समझी जाएगी। फिर वह इस स्थान म आए। यहा उस समय शिव पार्वती रहते थे। बदरीनाथ को यह जगह पसद आई और दखल करने की सोचने लगे। शिव के त्रिशूल के सामने इनकी कैसे चलती, इसलिए बल की जगह छल का रास्ता स्वीकार किया। दुरियालो का गाँव बावणी पास ही म पडता है। वहा अब भी वह शिला मौजूद है, जिस पर सद्योजात शिशु का रूप लेकर बदरीनाथ क्या-क्या हो करने लगे। शिव पार्वती टहलने के लिए निकले। पार्वती को बच्चे का एकान्त म पडा देखकर दया आ गई उसे उठाना चाहा। अन्तर्ज्ञानी शकर ने मना किया, लेकिन पार्वती अपने वात्सल्य की पीडा बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही हुई उठाकर ले आई। मदिर मे रख दिया। दोनो प्राणी तप्तकुण्ड मे स्नान करने गए। लौटकर आए तो दरवाजा बन्द था। कितना ही खट-खटाएँ, लेकिन भीतर से कोई जवाब नही दे रहा था। पार्वती चिल्लाने और झुँझलाने लगी। शकर ने मुस्कुरा कर कहा—"मने कहा न दुनिया म बहुत छल प्रपच है।' पार्वती के कान लाल हो गए। शकर ने शान्त करते हुए कहा—"शान्ति, शान्ति, दुनिया बहुत लम्बी चौडी है। झगडा मत करो चलो हम दूसरी जगह अपना घर बसाएँगे।' पार्वती ने कहा—"मैं इसका बदला बिना लिए नही जा सकती। तप्तकुण्ड के पानी को बर्फ से ठण्डा कर देती हूँ, जिसम इस शैतान को यहा की सर्दी मे गरम गरम पानी नहाने को न मिले।" शकर ने कहा—"इससे इसका बुरा नही होगा, बेचारे लोग नाहक कष्ट पाएँगे।" लेकिन, गौरी कुछ भी किए बिना जाने के लिए तैयार नही हुई। उन्होने शाप दिया—'अब से इस भूमि म च

नहीं होगा।" दस हजार फुट के ऊपर चावल ? दोनों प्राणी नीचे उतरते जब काचनगगा नाम के सूखे नाले पर से गुजरे, तो देखा लोग पीठ पर बोझा लादे हुए जा रहे हैं। पार्वती ने पूछा—"क्या ले जा रहे हो ?" लोगों ने कहा—"भगवान् के लिए बासमती चावल।" शंकर ने मुस्कुरा दिया। पार्वती के कलेजे में छुरी चुभ गई। उनका शाप भी व्यर्थ गया। यहाँ चावल नहीं तो दूसरी जगह से बासमती चावल आ रहा है।

रास्ते में सड़क के आसपास दो चार घर मिले। ये मारछा लोग थे। उन्होंने अपने खेतों में घर बना लिए थे। नवम्बर से अप्रैल तक छ महीने यह भूमि बर्फ से ढँकी रहती है। इस समय मारछा लोग अपने पशुओं और प्राणियों को लेकर शताब्दियों के परिचित स्थानों में नीचे चले जाते हैं। फिर आकर खेत तैयार करते, उसमें जौ की या आलू की फसल बोते हैं। माणा के सामने मातामूर्ति तक हम गए। मातामूर्ति की छोटी सी मढ़ी हाल ही में किसी ने बनवाई थी, और उसमें एक दरिद्र सी मूर्ति बैठा दी थी। यही बाबा बदरीनाथ की माता है। कलयुगी पुत्र माता का क्या सम्मान करे, जबकि उनके देवता भी अपनी माता का जगल में भूखी तपस्या करने के लिए बैठाने से बाज नहीं आते। वहाँ से लौटकर शाम को पण्डा पंचायत ने चाय पार्टी के साथ राहुल सांकृत्यायन को मान पत्र दिया। नास्तिक राहुल और आस्तिकता की रोटी खाने वाले बदरीनाथ के पण्डे कैसा विरोधियों का समागम ? पर संस्कृति धर्म के ऊपर है, इसी का यह सबूत था। राशन और कण्ट्रोल का जमाना था वहाँ चाय पार्टी में जितने लोग जमा हो गए थे, वे कण्ट्रोल की संख्या से कहीं अधिक थे। फिर यहाँ केवल चाय पार्टी नहीं थी, बल्कि इतना अधिक पक्वान्न था, कि इसे भोज पार्टी कह सकते हैं। यह हमारे देश की सरहद के एक छोर के अंतिम अस्थायी नगर में हो रही थी। इससे यह भी पता लगता था कि तरुण पण्डा-सन्तान कितनी आगे बढ़ी है।

१६ मई को निर्वाण दर्शन करना था। सवेरे ७ बजे के करीब मैं मंदिर में पहुँच गया। मंदिर के तीन मण्ड हैं। सबसे पीछे गर्भगृह, उसके बाद छोटा-सा मण्डप, उसके बाद कुछ अधिक बड़ा मण्डप। गर्भगृह में नम्बूदरी रावल और उनके सहायक डिमरी पुजारी को छोड़ और कोई नहीं जा

सक्ता, न कोई मूर्ति को हाथ लगा सकता। मध्य मण्डप म द्वार से सटकर मैं खडा हुआ। मूर्ति वहाँ से तीन चार फुट से अधिक दूर नही होगी। बगवाडी जी की हिदायत के अनुसार दिये की टेम भी खूब बढा दी गई थी। मैं वहा से मूर्ति का अच्छी तरह देख सक्ता था। स्नान कराने के लिए मूर्ति नगी कर दी गई थी। इसी को निर्वाण दर्शन कहते है। मूर्ति काले पत्थर की थी। आँख नाक, मुह लिए एक बडा सा पत्थर का खण्ड मालूम होता है, किसी ने तराशकर निकाल दिया है। लेकिन इसे तराशा नही कहना चाहिए शायद हथौडे से जान बूझकर तोडा गया या पत्थरो म फेंकते यह हिस्सा निकल गया। बाएँ हाथ की भी एक तह पत्थर की निकल गई थी। पद्मासनस्थ बैठी मूर्ति के इस हाथ की हथेली पैरो पर थी। दाहिन हाथ से अधिक पत्थर निकला था जो भूमिस्पर्श मुद्रा मे मालूम होता था। मूर्ति पद्मासनस्थ भूमिस्पर्श मुद्रायुक्त बुद्ध की है, इसमे मुझे कोई सन्देह नही। रावलजी ने पीछे बतलाया, कि छाती पर जनेऊ की रेखा है। इसस जैन मूर्ति होने का भी सन्देह हट गया, क्योंकि वह प्राय दिगम्बर होती है। एकाश चीवर पहने बुद्धमूर्ति के चीवर का रूप जनेऊ जैसा मालूम होना है, यह सभी जानते है। पास मे और भी कई मूर्तिया थी, जिसम नारदजी की धातुमूर्ति भी बुद्धमूर्ति मालूम होती थी। रावल ने बतलाया, कि पीठासन म कुछ रेखाएँ है जो फूल, पत्ते या अक्षर हो सकते है। पुराने रावल न और भी समर्थन किया। २१ मई को उन्होंने कहा—"इस मूर्ति के बुद्धमूर्ति होने मे मुझे कोई सन्देह नही है। मैंने सारनाथ और दूसरी जगहो म ऐसी मूर्तिया देखी है।" उन्होंने यह भी कहा—१ नीचे अलकनन्दा के साथ सटे हुए नारद कुण्ड मे और भी मूर्तियाँ है। शरद के महीना म धार के क्षीण हो जाने पर नारद कुण्ड अलग पर चट्टान से ढका रह जाता है अत अन्धकारावृत्त रहता है। मुझे लोगो ने बतलाया था, कि मुह मे तेल भरकर कुल्ला करने से वहा प्रकाश अधिक हो जाता है, और मूर्तिया दिखलाई पडती हैं। मैंने वैसा ही किया और पानी म पडी हुई कितनी ही मूर्तिया देखी। २ बदरीनाथ की मूर्ति बुद्ध की है, वह पद्मासनस्थ है, बाँहो और मुह का कितना ही पत्थर निकल गया है। छाती पर जनेऊ की भाँति रेखा, सिर के पिछले बचे हुए भाग मे केश मालूम होते है। ३ मैं समझता हूँ, कि प्राचीन बदरीनाथ

मूर्ति के नष्ट हान पर पहले मेफेंकी बुद्ध मूर्ति लाकर उसकी जगह रख दी गई। ४ मूर्तिकला की दृष्टि से अखण्ड रहते समय मूर्ति बहुत सुन्दर रही हागी।

कल्पना दौड लगाती कहने लगी हिमाल्य पर से तिब्बत के शासन के उठने के समय जो खूनी सघष हुआ था, उसम तिब्बत वाला का विशेष पक्षपात हान स बौद्ध विहार और मूर्तियाँ भी जौ के साथ घुन बन गइ। इस प्रकार ६वी या १०वी शताब्दी म यहाँ के विहार की यह बुद्ध मूर्ति और दूसरी मूर्तियाँ खण्डित हा या या ही अग भग हा नारदकुण्ड म पहुँच गइ। नारदकुण्ड रूपकुण्ड की लाशा की तरह ऐसी मूर्तिया का सग्रहालय बन गया। बुद्ध मूर्ति पर धातु या पत्थर की बदरीनाथ की मूर्ति स्थापित कर दी गई। १७४१ ४२ ई० म रहेले आए। उन्हाने मन्दिर के धन को लटा, आर मूर्तिया का गला या ताड फाडकर पानी मे फेंक दिया। पुराने मन्दिर का फिर जीर्णोद्धार करन का इच्छा हुई। स्थापना करने के लिए नारदकुण्ड से यह खण्डित बुद्ध मूर्ति हाथ लग गई। उसे कुछ समय तक तप्तकुण्ड क ऊपर रखा गया। फिर गढवाल के राजा न उसके लिए वतमान मन्दिर बनवा दिया जहा वह स्थापित हुई।

चाय पीकर कलकत्ता के डाक्टर हिमाशु घोष और गगासिह दुरियाल के साथ मैं अलकनन्दा पार हा ऊपर की तरफ माणा गाव को चला। अभी नीचे से बहुत कम ही लाग आए थे। कुछ स्त्रियाँ इसी समय पीठ पर सामान या बच्चे को लिए अपन घरा को लौट रही थी। यह भारत का अन्तिम गाँव माणा काफी बडा है। ढाईसाल से ऊपर हा गए भारत को स्वतन हुए लेकिन यहा वाला को कोई चीज अगर नई दिखलाई देती है, तो यही कि पहले ही से घरो के टाटा रखने वाले इस गाव को अपने कुछ घर पुलिस चौकी रखने के लिए देन पडे। दारागा साहब भी मिले, जो असाधारण तौर से माटे थ। भला पहाडी जगह के लिए यह शरीर उपयुक्त था? माणा क बाद दूसरा गाव तिब्बत अर्थात् चीन गणराज्य म पडता था इसलिए यहाँ पर भारत सरकार सजग रहना चाहती है। सरदार पणिक्कर न अपनी पुस्तक म लिखा है कि चीन का समथन करने के सम्बन्ध में भारतीय सरकार दो दलो म बँट गई थी—सरदार पटेल, राजाजी तथा पुराने नौकरशाह सम

थीने के विरुद्ध थे, वह समझते थे, कि इससे अमेरिका नाराज हो जाएगा। पर, नेहरूजी पक्ष मे थे। उत्तर प्रदेश के मन्त्री अब मुख्य मन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्द उत्तर के पडोसी से बहुत चिन्तित थे, इसलिए वह भी सीमा के मजबूत करने के पक्ष मे थे। माणा गाव के आगे अलकनन्दा पर एक स्वाभाविक पुल है, जिसे भीमसेन का पुल कहते हैं। कहते है आगे एक और भी इसी तरह का पुल है। सभी माणा वाले बदरीनाथ का तिब्बत वाला का देवता मानते है, जिससे यही सिद्ध होता है, कि वतमान बदरीनाथ मे किसी समय एक अच्छा-खासा बौद्ध विहार था, जिसका सम्बन्ध तिब्बत के थोलिंग मठ से था। अब भी दोना मन्दिरो का सम्बन्ध है और दानो एक दूसरे के पास भेट भेजते है। तिब्बत का यह पश्चिमी भाग शताब्दियो से डाकुओ का शिकारगाह रहा। लेकिन, माणा जसे हमारे व्यापारी उसके कारण अपने व्यापार को नही छाड सकते थे। इसके लिए हथियारबन्द हाकर जाना पडता था। कम्युनिस्ट अभी-अभी आए थे, इसलिए अभी डाकुओ को उच्छिन्न नही किया जा सका था। एकाध ही वर्षो बाद माणावालो को अपन साथ बन्दूक ले जान की जरूरत नही पडेगी, ले जाने पर भी उसे सीमान्त पर चीनी फौज चौकी पर रख देना पडेगा। पर उस वक्त तो बन्दूको की बडी आवश्यकता थी। माणा वाले १५ बन्दूकें चाहत थे, लेकिन हमारी काठ की सरकारी मशीनरी अपने ढग से ही चलती है, उसे किसी के जान माल की क्या पर्वाह? किसी तरह की उदारता दिखलाने पर एक बडे सिद्धान्त की अवहेलना करनी पडती—भारत की जनता स यहा की सरकार का जैसा खतरा पहले था जान पडता है, उसे वतमान सरकार भी वैसा ही समझती है इसलिए जनता को वह निहत्था करके रखना चाहती है, और अँग्रेजा के हथियार कानून मे जरा भी ढिलाई करने के लिए तैयार नही है।

माणा से लौटकर मध्याह्न भोजन मैंने सिन्ध पजाब क्षेत्र मे भगतजी के यहा किया। उन्ह कष्ट होता, यदि उनके आतिथ्य को छोडकर अतिथिशाला म आ जाता। यहा सभी चीजें मँहगी थी। आटा ढाई रुपय सेर से क्या कम हागा। दूसरी भी चीजे जो चमाली से मोटर से उतर या गरुड (अल्मोडा) से खच्चरो पर हाकर यहाँ आती थी, भाडे के मारे बहुत मँहगी हा जाती

थी। निश्चय ही सदावर्तों के लिए यह कठिन समय था। जितने रुपये म पहले वह सौ का भाजन दे सकते थे, उतने म अब बीस का भी नहीं द सकते। फिर सिन्ध पजाव क्षेत्र तो ऐसे दानाओ का था, जिनके नीड उजड चुके है।

लौटकर बदरीनाथ के पुराने कागज पत्र देखने की इच्छा प्रकट की। जान पडा अधिकाश कागज पत्र जोशी मठ म हैं। बगवाडीजी से कहने पर मालूम हुआ कि वहाँ उसका काफी ढेर है। यहा हमे १७वी सदी की वहियाँ मिली। इनमे चीजो का भाव ही नही बल्कि कभी कभी किसी मुकदमे म रावल का दिया फैसला भी दर्ज था। उस समय दास प्रथा थी। हो सकता है दास-दासिया के क्रय विक्रय का भी इसमे जिक्र हो। गोरखा शासन के पहले और उसके समय के भी कागज पत्र मिलेंगे जिनसे गढवाल के इतिहास पर प्रकाश पड सकता है। हमारे विश्वविद्यालयो म हर साल डाक्टरो के निकालने की होड लगी हुई है जिनम अधिकाश "हलदी न जाने फिटकरी, रग चोखा आए" के अनुसार चटपट पी एच० डी० या डी० लिट० बन जाना चाहते है। क्या उनम से कुछ को जोशीमठ के अभिलेखो, केदारनाथ बदरीनाथ के पण्डो की वहियो के अनुसधान म नही लगाया जा सकता ? मैंने बगवाडीजी को बहुत कहा, कि अक्तूबर म नारद कुड के भीतर की मूर्तियो की जाच पडताल होनी चाहिए, पर अभी तक उसके बारे में कुछ नही हुआ।

मन्दिर का घोडा सार घोडा की तरह काम न होने से घास चरने के लिए बयावान म छोड दिया गया था। यहा घोडे कभी कभी महीनो जगली घोडा का जीवन बिताते है। शाम ही गगासिंह को ताकीद कर दी गई थी, कि बडे सवेरे ही घोडे को ले आना।

२० मई के सवेरे गगासिंह दुरियाल घोडा लेने गए। मैंने सोचा था ७ बजे चल पडेंगे, पर हमे बदरीनाथ से निकलने म बहुत देर लगी। बगवाडी जी हर तरह की सहायता देने को तयार थे। दो ही दिन मे यहाँ कितने ही मित्र बन गए थे जिनके वियोग का मन पर असर होना ही था। सिन्ध पजाब-क्षेत्र म भोजन करके हम वहा से ११ बजे रवाना हुए। उतराई हो उतराई थी, जिसके लिए पैर तैयार थे। पूरी काचनगगा पार कर हनुमान

चट्टी छोड जल्दी हरियाली देखने के लिए उतावले हो विनायक चट्टी पर पहुचे। गगासिह पीछे रह गए थे, इसलिए भी थोडी प्रतीक्षा करनी पडी। यही माणावाले कुछ लोग मिल गए। वह कहने लगे, हजारो वर्षो से ढोरो और भेड-बकरियो को लेकर हम गर्मियो मे अपने गाव मे आते और जाडो मे नीचे चमोली और आग चले जाते है। पहले कभी यहाँ जगल रहे होगे, जिसमे हमारे पशुओ को चरने का आराम था। उस समय बाघा ढाने के लिए मोटर नही आई थी, अब तो सिवाय वहा वाले लोगो की गाली सुनने के हमे कोई लाभ नही है। हमारे पशु किसी के खेत म चले जाएँ तो सिरफुटौवल हो, और जगल मे जाएँ, तो झगडा। आखिर दुरियाल लोग भी तो नीचे नही जाते। वह विनायक, पाण्डुकेश्वर म ही अपना जाडा बिता देते हैं। उन्होने विनायक के सामने के देवदार और दूसरे जगलो को दिखला-कर कहा, कि सरकार यही हम भूमि दे दे, और हम अपने लिए जाडो का गाँव बसा ले। यह बिल्कुल उचित माग थी, और जनहित का हृदय म रखने वाली सरकार के लिए यह करना अनिवार्य था। पर हमारी सरकार की मशीनरी मे किसी को समझने की शक्ति है इस पर मैं विश्वास नही करता। पाँच वर्ष बाद भी आज माणावाले उसी चिन्ता मे घुल रहे हैं।

पाण्डुकेश्वर मे जरा ही ठहरकर कुछ फोटो लिये, जिसमे माणा की एक मारछा सुन्दरी कपडा बुनती भी थी। नीती और माणा दोनो ही मोन् रमेर या किरात जाति के लोगो की बस्तियां है। यह लोग तोल्छा और मारछा दो जातियो मे विभक्त है। तोल्छा एक तरह की गढवाली बोलते हैं, और मारछा दुभाषिया है। वह तोल्छा की भी भाषा बोलते है और अपनी भाषा म। मारछा भाषा किरात-भाषा है। पानी को वह 'ती' कहते हैं। माणा से आगे का एक निर्जन पडाव तीपानी के नाम से मशहूर है अर्थात् एक ही अर्थ के दो भाषाओ के शब्दो को जोड दिया गया है। पानी के लिए ती शब्द चम्बा के लाहुल स लेकर आसाम के नागा लोगो तक म मिलता है। किरात लोग मगोलायित थे, यद्यपि उनकी भाषा का चीनी और तिब्बती भाषा से बहुत दूर का सम्बन्ध है लेकिन इनके मुख पर हल्की-सी मगोलायित छाप देखकर लोग इन्हे तिब्बती समझने की गलती करते हैं, ये तिब्बती नहीं हैं यह मारछा लोगो की भाषा बतलाती है। मारछानियाँ सजते वक्त पैरों तक

लटकती एक ओल्नी लगाती है, जिसका सिर के सामने का भाग कमखाब या दूसरी तरह से बहुत अलंकृत रहता है। जान पडता है, यह उनका बहुत पुराना भेस है। शायद कत्यूरी रानियाँ चादर से इस तरह का सिंगार करती थी, अथवा तिब्बत की रानियां।

हम पौने ५ बजे घाट चट्टी म पहुँच गए। आगे अच्छी चट्टी दूर मिलती, और जोशी मठ छ हा मील था जहा ठहरना मुश्किल था, इस लिए रात को घाट ही म ठहर गए। आज घोडे पर कही चढने की जरूरत महसूस नही हुई। रात को उसको खिलाने के लिए दस बारह रुपये की घास आई जो भी आसानी से न मिलती, यदि गगासिह कही से उसका जुगाड न कर लाते। घाट चट्टी से थोडा ही ऊपर अलकनदा को पार करने के लिए एक पुल बना हुआ है, जिसको पार कर हेमकुण्ड और फ्लावर वेली (पुष्प उपत्यका) का रास्ता जाता है। फ्लावर वेली बरसात के दिनो म हजारा तरह के फूलो का उद्यान बन जाती है। इसकी ख्याति अब भारत से बाहर भी पहुँच चुकी है। हेमकुण्ड बडे ही रमणीक स्थान मे एक प्राकृतिक सरोवर है। किसी सिक्ख भक्त ने इसे देखकर ग्रथ साहब स वाणी निकालकर साबित कर दिया, कि दसमेश गुरु गोविन्दसिंह ने पिछले जन्म म यहा तपस्या की थी। चलो, सिक्खो का भी हिमालय एक सुदर तीथ स्थापित हो गया, नही तो यह बडी कमी रह जाती। जैनो का भी कोई स्थान ढूढना चाहिए। तीथयात्रा के बहाने लोगो का प्राकृतिक सौन्दय से स्नेह होता है, उनमे यात्रा के लिए साहस उत्पन्न होता है। हेमकुण्ड यहाँ से १२ मील बतलाया जाता था, अर्थात् उतना ही जितना बदरीनाथ।

जोशीमठ—२१ मई को सोमवार का दिन था। जोशीमठ म कुछ काम भी था, खासकर रावल वासुदेव से मिलना था, और आज ही आगे बढ जाना था। हम ५ बजे ही चल पडे। विष्णुप्रयाग तक पदल चलकर धौलीगगा पार जोशीमठ की चढाई शुरू हुई। घोडा काम आया। धौली गगा नीतीधुरा से आती है, और अलकनन्दा माणाधुरा से। धुरा यहाँ डाडा (जोत पास, कोतल) को कहते हैं अर्थात् जहाँ पर सबस नीचा ममझकर किसी पहाड के रीढ को पार किया जाता है। इन दोनो धुरा को पार कर तिब्बत म जाने का रास्ता है। दोनो नदियो के स्रोत की दूरी और दोनो की

धाराओ के देखन पर यह कहना मुश्किल हो जाता है, कि इनम से कौन गगा की मुख्य धार है। आजकल तो अलकनदा ही को माना जाता है। अलक केश का नही बल्कि कुबेर की अल्का का सक्षिप्त रूप है। और नदा ननद अर्थात् ननद का। पार्वती, गौरी अपन नैहर म नदा के नाम से ही प्रसिद्ध थी, इसलिए उन्हे नदादेवी कहा जाता है। इनके नाम से प्रसिद्ध गढवाल कुमाऊँ की सीमा पर अवस्थित शिखर आजकल भारत का सर्वोच्च शिखर है। कलाश के पास कही कुबेर की अलका पुरी थी। अलकनदा की उपत्यका म बदरीनाथ का मदिर है, जो पहले बौद्ध विहार था। यही पाण्डुकेश्वर क प्राचीन मदिर भी हैं, जिन्हे बौद्ध नही कहा जा सकता। धौली की उपत्यका मे जोशीमठ से कुछ ही मीला ऊपर तपोवन है जहा गरम पानी का कुण्ड और रुहेलो द्वारा ध्वस्त परित्यक्त कुछ पुराने समय के मदिर भी हैं। कत्यूरियो के अभिलेखा मे तपोवन और बदरीनाथ का उल्लेख आया जा इसके लिए भी हो सकता है। भविष्य बदरी की कल्पना शायद भूत बदरी के खयाल से ही इसके साथ जोडी गई। यह बदरी धौली की उपत्यका म है इसलिए प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के विचार स धौली का महत्व कम नही है।

जोशीमठ मे पहल मैंन नरसिह और दूसरी कत्यूरी-काल की मूर्तियो और मदिरा का देखा। ४१ बप पहले की यात्रा से खयाल आता था यहाँ और अधिक मूर्तियाँ उस समय मैंन देखी थी। रावल साहब ने भी इस बात का समथन किया। जान पडता है पुरानी मूर्तिया के प्रेमी या सौदागर यहाँ पहुँचने और चुपके से अरक्षित मूर्तिया का खिसकाते गए। उन्हाने बतलाया, कि मैंने यहाँ पहले एक सूय की खण्डित मूर्ति देखी थी, पर वह अब नहीं मिलती। रुहला के आकर मूर्तिया को खण्डित करने की बात पर श्रद्धालु हृदय जल्दी विश्वास करना नही चाहता, क्योकि इससे देवता की दिव्य शक्ति पर बट्टा लगता है। लेकिन, कही भी देवता की मूर्ति खण्डित होन पर वह बट्टा तो लगेगा ही। सोमनाथ की मूर्ति खण्डित हुई, विश्वनाथ की मूर्ति खण्डित हुई, उज्जैन के महाकाल की भी वही हालत हुई फिर बट्टा लगने से कहाँ तक उन्हे बचा सकते हैं? देवताओ की खुद की यही हालत होगी। रावलजी ने बतलाया, कि तपोवन की मूर्तियाँ खण्डित

जोशीमठ की उपलब्ध मूर्तियां प्राय खण्डित नही है। इसकी व्याख्या यही हो सकती है, कि पुजारियो ने स्हेलों को काफी रुपया या मूर्तियां को छिपा दिया होगा। रावलजी ने यह भी बतलाया, कि योरोप से प्रतिवर्ष चिट्ठी आती है जिसमे बदरीनाथ का "अपना देवता" लिखा रहता है।

जोशीमठ के इलाके मे सरकार की ओर से फल उगाहने का कोई प्रबन्ध नही किया गया। अपने ही लोगो ने सेब नारगी और दूसरे फल पैदा किये है। उनके स्वाद और आकार से मालूम होता है, कि यह फलो के लिए अनुकूल स्थान है। लेकिन सवाल है ढुलाई का। जब तक जोशीमठ या उसके नीचे तक मोटर की सडक नही आ जाती, तब तक इस विषय मे कोई प्रगति नही हो सकती। रास्ते म मुझे एक सज्जन मिल गए। उन्होने पिछले साल के कुछ सेब खाने को देते हुए कहा—हम अधिक दिनो तक इन्हे सुरक्षित रखने की विधि नही जानते। अगर भुइघरे खोद करके उनमे जाडा की बर्फ जमा कर दी जाए तो फलो को सुरक्षित रखने की समस्या नही रह जाती। लेकिन यह खर्चीला चीज है, जिसे साधारण गृहस्थ कैसे बर्दाश्त कर सकता है? बहतर यही होगा कि मोटरें यहा आ जाएँ और उसी दिन यह फल कोटद्वार और अगले दिन दिल्ली पहुच जाएँ।

जोशीमठ के शकराचार्य की गद्दी ढाई सौ वर्ष तक सूनी रही। बहुत पहले कत्यूरियो के समय यहा शकराचार्य नही, बल्कि पाशुपतो का पता लगता है। कत्यूरी राजा 'परममाहेश्वर" थे, इसलिए शकराचार्य के समय यहाँ कोई उनका बडा मठ कायम हुआ होगा, यह सदिग्ध बात है। हाँ, कत्यूरियो के बाद पाशुपतो की प्रधानता को शकराचार्य के मतानुयायियो ने छीन लिया। उसी समय तपोवन या बदरीनाथ का बदरी मन्दिर इनके हाथ मे आ गया। फिर, जैसा कि बतलाया, १८वी सदी मे गद्दीधर सन्यासी के मरने पर नम्बूदरी ब्राह्मण को गढ़वाल के राजा ने गद्दी पर बैठा दिया। इधर तीन दिशाओ म शकराचार्य के तीन बडे-बडे मठो के रहते उत्तर को शून्य देखकर वेदान्तियो को यह बात खटकती थी। भारत धर्ममहामण्डल के स्वामी ज्ञानानन्द ने इसके उद्धार का उपक्रम किया और अपने शिष्य स्वामी दयानन्द को शकराचार्य बनाना चाहा। लेकिन, शकराचार्य की शारदा गोवर्धन, शृगेरी मठो के गद्दीधर दण्डी सन्यासी होते हैं और ज्ञानानन्द तथा

उनके शिष्य शायद बाक़ायदा जदण्डी सन्यासी भी नहीं थे, इसलिए बाकी तीनों शंकराचार्यों का समर्थन उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता था। कुछ भी हो सवाल उठाने वाले स्वामी ज्ञानानन्द ही थे। जब अन्तिम निर्णय का समय आया, तो उत्तर के ही एक दण्डी का पक्ष दृढ़ मालूम हुआ और गोरखपुर के पंक्तिपावन सरजूपारी कुल के एक विद्वान् और अच्छे अर्थों में चलते पुर्जे महापुरुष का यह गद्दी मिली। सूनी गद्दी थी, नये शंकराचार्य का सारा प्रबन्ध करना था और इसमें शक नहीं, उन्होंने सूनी गद्दी को अच्छी तरह आबाद कर दिया। जोशीमठ में पीठ बन गया, लेकिन यहां रहकर मठ का पोषण और संवर्धन नहीं हो सकता था, इसलिए ज्योतिष पीठ के शंकराचार्य का अधिकतर बाहर रहना पड़ता।

जोशीमठ से चलकर हम खनोटी चट्टी में आए। यहाँ दूकानदार के घर के पास हरी हरी प्याज देखी। मैंने कहा—तुम्हारे यहां सामान लेकर भोजन हम तभी करेंगे, जब प्याज में से हमें कुछ दो। देने में क्या उज्र हो सकता था? आखिर सभी धर्मध्वजी नीचे के यात्री पास में प्याज के खेत के बारे में जानते ही होंगे कि इसने अपने खाने के लिए इसे लगा रखा है। यात्रियों का रोब सचमुच ही उत्तराखण्ड पर इतना पड़ा है, कि कुछ महीनों के लिए लोग मांस मछली तो क्या प्याज-लहसुन से भी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। हालाँकि ऋषियों ने दोनों हाथ उठा उठा कर घोषणा की है—"उत्तरे मांस भोजनम्"। वह समय दूर नहीं है, जब प्याज लहसुन ही नहीं सुलभ हो जाएंगे, बल्कि इन चट्टियों में अण्डे और आमलेट भी मिलने लगेंगे पका पकाया मांस और मछली भी तैयार मिलेगी। लेकिन, हमारी पीढ़ी को तो अभी उन दिनों को हसरत की निगाह से ही देखना है। दूकानदार ने बहुत बढ़िया चावल दिया था, और कितने ही दिनों बाद प्याज डाल कर गंगासिंह ने आलू की जो तरकारी बनाई थी, वह तो स्वर्गीय व्यंजन-सी मालूम होती थी।

भोजन और विश्राम के बाद हम गरुड़ चट्टी पहुँचे। अभी दिन था, किन्तु यात्रियों की भीड़ थी। देर से पहुँचने पर रात को ठिकाना का मिलना मुश्किल होता, इसलिए यहीं ठहर गए। आज २१ मील चल कर आये थे। अब चमोली १३ मील रह गई थी।

२२ को सवेरे साढ़े ४ बजे ही चल पड़े। घोड़े पर चढ़े ही हाट के पुल को पार किया। हाट इधर के पहाड़ों में राजधानी या बड़े नगर का पर्याय है। यहाँ का पुराना कत्यूरी-कालका मन्दिर उसका समर्थन कर रहा था। हाट कोई बड़ा गाँव नहीं है। मठ में पहुँच कर हमने चाय पी, और साढ़े ६ बजे चमोली में सीधे अस्पताल में गए। मुझसे मिलने के लिए सुन्दरियालजी से डा० विश्वास कम उत्सुक नहीं थे। उन्होंने कोशिश की कि तुरन्त छूटने वाली बस मिल जाए, लेकिन उसमें कोई स्थान खाली नहीं था। मध्याह्न-भोजन के लिए डा० विश्वास अपने बँगले में ले गये। मैं सबभक्षी और डा० विश्वास मछली के प्रेमी थे। वह अफसोस कर रहे थे कि यहाँ कोई खाने की अच्छी चीज नहीं मिलती यद्यपि मोटर का अड्डा है। चमोली में मछली दुर्लभ थी, और यहाँ से कुछ ही मील पर गढ़वाल के महासरोवर में लाखों रोहू खानेवालों की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन, डा० विश्वास का भोजन कम स्वादिष्ट नहीं था, और जिस प्रेम के साथ वह सामने रखा गया था, उसने उसे और भी मीठा कर दिया था। अच्छे चावल का भात और आलू प्याज की तरकारी थी। खाकर विश्राम किया। निश्चय था कि ३ बजे वाली बस में जगह मिल जायगी।

आजकल बदरीनाथ से लौटे यात्रियों की बड़ी भीड़ थी। हम बस में बैठ गये, किन्तु जितना ही था उसमें जगह नहीं मिली। [illegible]प्रयाग और [illegible]प्रयाग होते रुद्रप्रयाग पहुँचे जहाँ हमारी परिचित मोटर खड़ी मिल गई। रास्ते में एक जगह मोटर कुछ खराब हुई तो भी साढ़े ६ बजे हम श्रीनगर पहुँच गए। [illegible] अड्डे पर मौजूद थे और उनके यहाँ गर्मागरम भोजन भी तैयार था लेकिन जिनके साथ [illegible] घंटे हम [illegible] आये [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

नही रखते। इससे यात्रियो का बहुत कष्ट होता है। सारे भारतवष क यात्री जिस रास्ते चलते हा, वहा सबसे पहले सरकारी रोडवेज की बसें चलनी चाहिए, किन्तु बस के मालिक ऊपर प्रभाव डालते है, और यह काम होन नही पाता। दा बसा मे होड लग गई थी। एक तेज चलती भी नही थी, और रास्ता भी नही छोडती थी। दूसरी उससे आगे बढने के लिए फाड बाँधे थी। दाना की होड मे हम धूल फाँकनी पड रही थी। रास्ते म ब्यासी चट्टी पर दोना ओर की बसें ठहरी। घटा भर विश्राम मिला। यहा रोटी तरकारी पूरी तरकारी मिल जाती है। समय भी उसी का था, इसलिए सभी खाने म लग गए। हमारी बस मे सभी तीथयात्री महिलाएँ धम कमाने के लिए चली थी, लेकिन दा घडी के मले मे न जाने उनके किस स्वाथ को ठेस लगी, कि वह सारे रास्ते वाग्युद्ध करती आई।

साढे ११ बजे ऋषिकेश पहुँचा। देहरादून का टिकट भी मिल गया, और बस भी तैयार थी। दोपहर की धूप खोपडी की मज्जा को पिघला रही थी। जल्दी स जल्दी यहा से भागना चाहता था, लेकिन ड्राइवर को इसकी पर्वाह नही थी। वह साढे १२ बजे यहाँ से चला और दा घटे मे २७ मील चल कर मैं देहरादून पहुँचा। प० गयाप्रसाद शुक्ल के घर पर पहुचा। गर्मी के मारे बडा परेशान था, लेकिन साहित्य सघ म भाषण दना स्वीकार कर लिया था, जिसके लिए दो दिन यहा रहना जरूरी था। अपनी बेवकूफी पर पछताता रहा। शुक्लजी से यह सुन कर बडी प्रसन्नता हुई कि कमला विशारद पास हो गई।

२४ को दिन मे कुछ वर्षा हो गई इसलिए तापमान थोडा नीचे उतर गया। फिल्म धान के लिए दिये अधिकाश अच्छे आए।

२४ मई को साथी महमूद को ढूढन निकाला। उनके पिता का बगला एक बार देख चुका था लेकिन यह बहुत वर्षो पहले की बात थी। खैर, किसी तरह १२ सरकुलर राड म पहुचा। महमूद को टाइफाइड हो गया था। बेचारी रशीदा सालो से कसर के रोग से पीडित थी, पीछे उसी मे उन्हे अपना प्राण खोना पडा। दोना मिले। बतलाया—अब हम यहीं रहना चाहते हैं। पनक गृह म महमूद की बहिन नेत्र चिकित्सा का अस्पताल खोलने जा रही थी। उनकी कोठी म तो शरणार्थियो न नहीं दखल किया,

किन्तु बाहरी घर मे वह बैठ गए, जिनका हटाना मुश्किल था। महमूद ने तो धन और तुरन्त यश कमाने का रास्ता उसी वक्त छोड दिया, जबकि वह कम्युनिस्ट बने। किसी समय वह जवाहरलाल के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। उस रास्ते से वह आज कही दूसरी जगह पहुँच गए होते। परन्तु, उन्हे गरीबो का दुख दूर करने मे शामिल होकर उसे हटाने का प्रयत्न करना था। डा० रशीदजहा भी अनुकूल पत्नी मिली थी। दोनो की जोडी को जीवन भर एक साथ रहना चाहिये था। भारत मे कैंसर का अच्छा होते न देखकर महमूद रशीदा को मास्को ले गये लेकिन वहा से अपनी आशाओ पर पानी फेर कर अकेले लौटना पडा। ऐसे तपस्वी से मिलने की किसको इच्छा नही होगी?

२५ मई को मध्याह्न भोजन प० हरिनारायण मिश्र के यहा हुआ। मिश्रजी का दर्शन पहिले पहिल १९४३ मे हुआ था। तब वह यहा के डी० ए० वी० कालेज मे अध्यापक थे। अब सेवाविरत और बूढे हो गए थे। उनका सारा जीवन अध्ययन, अध्यापन और शिकार का रहा है। अध्ययन अब भी जारी था। पुस्तको का बहुत सग्रह था। दोनो ही कनौजिया हैं जिनकी वशावलि मे निरालाजी के अनुसार मास भोजन विहित लिखा हुआ है। शुक्लजी हैं, जो वशावलि की बात मानने से इनकार करते हैं, मिश्रजी हैं, जिनके बल पर अब भी कान्यकुब्जो की ध्वजा फहरा रही है। हर बार देहरादून जाने पर मिश्रजी का आग्रह कान्यकुब्ज भोजन के लिए होता। लेकिन मैं शुक्लाइनजी के भोजन से कैसे इन्कार कर सकता। निरामिष होने पर भी, सच कहता हू, स्वाद मे वह कम नही होता। यदि मैं अधिक खाकर हर बार पेट पर हाथ सहलाते घर छोडता हूँ, तो इसमे शुक्लजी या शुक्लाइनजी का दोष नही है। स्वाद ही ऐसा होता है, कि दो कौर कम करने की जगह दो कौर और पेट में चला जाता है। पर, मिश्रजी के आग्रह को भी ठुकरा नही सकता। और मास तैयार कराने मे वह कायस्थ या मुसलमान भाइयो का कान काटते हैं। कहते है—हमारे बाप दादो ने भी तो सैकडो पीढियो से यह भोजन किया है।

शाम का जुगमन्दर म्युनिसिपल हाल में हिन्दी साहित्य समिति की बैठक का सभापतित्व करना पडा। नगर के १५० चुने हुए साहित्य प्रेमी नर-नारी मौजूद थे। स्थानीय २३ साहित्यकारो को समिति ने 'सम्मान

पत्र' दिया। मैंने भी उन्हे बधाई दी। गोष्ठी को देखने से मालूम हुआ, कि देहरादून मे साहित्यिको की सख्या कम नही है। यह जानकर दुख हुआ कि उनकी मिलन सख्या साहित्य ससद् मृतप्राय है। मिलनी के बाद जल-पान का इतिजाम था।

मसूरी—२८ का सवा ८ बजे स्टेशन से मसूरी की बस पकडी। सीजन का समय था, इसलिए बसें बहुत जा रही थी, किन्तु मसूरी वालो को सतोष नही। कहते थे—"इस साल यात्रियो की सख्या कम है। लोग छोटे बडे होटलो मे ठहरते हैं बगले खाली पडे हैं। इनमे राजा या धनी लोग नही है इसलिए हमारी चीजें ज्यादा बिकती नही। उनकी शिकायत माकूल थी।

२ मई को हमने मसूरी छोडी थी, और २६ मई को वहा पहुँच रहे थे। पौने १० बजे बस किक्रेग पहुँची और सामान भारवाहक की पीठ पर रख कर ११ बजे घर पहुँचा। कमला के विशारद पास करने का समाचार पहले ही मिल गया था। इधर कई दिन से उनकी नक्सीर फूट रही थी। भुक्त-भोगियो ने इसका अच्छे से अच्छा उपचार बतलाया, लेकिन कमला उसे करने के लिए कभी तैयार नही हुई। जब नाक से खून बहता, तब याद आती। कमला के चचेरे भाई मगल ८ मई को ही यहाँ पहुँच गए। मालूम हुआ, कि महादेव भाई का दुबारा आपरेशन हुआ है। २६ दिन की डाक पडी हुई थी उससे भी भुगतना था।

३

पहला सैलानी मौसिम

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के साहित्य-योजना का काम चल रहा था। डा० सत्यकेतु "फ्रेंच स्वयं शिक्षक" लिख चुके थे। शीलाजी जीद के उपन्यास का "संकरा द्वार" के नाम से अनुवाद कर चुकी थीं। मारिशस के माधव वाजपेयी राम्या राला के प्रसिद्ध उपन्यास "जान क्रिस्तोफ" का अनुवाद करने के लिए तैयार थे। माधव मारिशस में पैदा हुए थे, जहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच दोनों बोलचाल की भाषाएँ हैं। उनका हिन्दी पर भी पूरा अधिकार था। आशा बँध रही थी, कि हम दस साल में बीस अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी को दे सकेंगे। लेकिन सभी बातें अनुकूल नहीं थीं। कुछ सहकारी गरियार बैल बने हुए थे, तो भी गाड़ी आगे निकल सकती थी, पर छापने की दिक्कत साहित्य सम्मेलन की तरह ही यहाँ भी पेश हुई। इसी को देखकर शीलाजी ने अपने अनुवादित उपन्यास को स्वयं प्रकाशित करने का निश्चय किया।

इस साल कमला को दो परीक्षाओं की तैयारी करनी थी—साहित्य रत्न प्रथम वर्ष और एफ० ए०। मैंने अभी से पुस्तकों को देखने के लिए जोर देना शुरू किया।

जून का महीना शुरू हो चला था। मसूरी देहरा में २६ जून को वर्षा का आरम्भ समझा जाता है। हमने अपनी क्यारियों में खीरा, सेम, फरासबीन आदि तरकारियों के बीज बो दिए। आठ से आशा की थी, लेकिन पिछले तजर्बे ने उसे अशुद्ध सिद्ध किया। बस में उधार के छ गो

रुपयों को निकाल देने पर अब १६ सौ रह गए थे, यह चिंता की बात थी। उधार लेना मेरे जीवन के सिद्धांत के विरुद्ध है। अब मिलनेवाले लोग आने लगे। २६ को प० हरिनारायण मिश्र आये। साहित्य की भिन्न भिन्न शाखाओं में उनकी रुचि तो है ही, साथ ही वह उर्दू के शायर भी हैं और फारसी का उनका अध्ययन बहुत गम्भीर है।

३१ मई की रात को खूब वर्षा हुई। सवेरे मालूम होता था, वर्षा शुरू हो गई। इस साल यद्यपि वर्षा पहले आरम्भ हुई, तो भी इस मौसिम का आरम्भ नहीं कहा जा सकता। और कामों के साथ पत्र पत्रिकाओं के आग्रहों को पूरा करने के लिए कुछ लेख लिख देना मेरे लिए आवश्यक था, उसमें कुछ पैसे भी मिल जाते थे जो खाली खीसे के लिए कम आकर्षण नहीं रखते थे। लेकिन लेख अधिकतर मैं ऐसे ही लिखता हूं, जो किसी पुस्तक के अंग बननेवाले हों। बदरीनाथ केदारनाथ पर दो लेख लिखे।

२ जून को श्री मुकुन्दीलाल जी (बैरिस्टर) आये। वह बराबर यहां नहीं रहते लेकिन उनकी अंग्रेज पत्नी अपनी चारपाई घरे पुत्र पुत्रियों को लेकर सारी गर्मी बरसात यहीं बिताने के लिए आ जाती थीं। उस समय वह बरेली से दो-तीन बार जरूर आते हैं और हर यात्रा में वह मेरे ऊपर कृपा किये बिना नहीं रहते। पति पत्नी को कुत्ता का बहुत शौक था। एक उनके पास ग्रेटडेन कुतिया बड़ी सुंदर थी दूसरे भी कई जात के कुत्ते थे, वह भी गर्मी बिताने के लिए यहां आते थे। पिछली बार कुत्ते का जिक्र आया था। वह कह रहे थे, हम कुत्ते का बच्चा दे सकते हैं लेकिन अब तो भूतनाथ इस घर में प्रतिष्ठित हो चुके थे और कमला का स्नेह भी उन्हें मिल चुका था। उनके आ जाने पर फिर घंटा दो घंटा साहित्य और कला के ऊपर बात चलते समय बीतते देर नहीं लगती।

३ जून को स्वामी सत्यस्वरूप जी आए। हमारी योजना में संस्कृत हिन्दी और हिन्दी हिन्दी कोश भी थे। कहने पर वह उसमें सहयोग देने के लिए तैयार हो गए। स्वामी सत्यस्वरूप जी पंजाब के शास्त्री और बी० ए० होकर अपनी विद्या से संतुष्ट न हो बनारस गए, और एक युग से वहां रह कर उन्होंने न्याय, वेदान्त और दूसरे दर्शनों का अध्ययन किया। ज्ञान की पिपासा के साथ साथ उनमें विचारों की उदारता है, और विद्या लिए कुछ

करना चाहते हैं। मैं भी इसके लिए उत्सुक हूँ, कि उनके ज्ञान का कुछ उपयोग होना चाहिए। वैसे अध्यापक के तौर पर वह उसको इस्तेमाल करते हैं, लेकिन विद्या लिखकर यदि कागज पर उतरे, तो और भी उपकारक हो सकती है।

पैसे के पानी का सूखना देखकर चिन्ता मुझे भी होती है, क्योंकि आत्मसम्मान को मैं अपना सबसे बड़ा धन समझता हूँ बल्कि कहना चाहिए, उसे प्राणों से भी अधिक मूल्यवान मानता हूँ। मैं किसी तरह मन को समझाता हूँ। कमला ऐसी स्थिति में घबड़ाने लगती। उनका घबड़ाना उचित भी है क्योंकि घर और अतिथियों का सत्कार उन्हें चलाना पड़ता है। मुझे यह देखने के लिए भी फुरसत नहीं, कि किस चीज की जरूरत है और क्या खर्च हो रहा है। बहुत बार कोशिश की कि खर्च पर नियंत्रण किया जाए लेकिन महीने में पाँच सौ रुपये से कम होने की नौबत नहीं आती। सोचता था जब पहली बार निकल गया था तो बीस रुपये महीने में भी काम चला लेता था। पीछे सौ रुपया भी पर्याप्त मालूम होता था। लेकिन आजका पाँच सौ भी तो द्वितीय विश्व युद्ध के पहले का सवा सौ रुपया ही है। लेकिन ऐसा समझ लेने से क्या अभाव की पूर्ति हो सकती है?

कुमठेकर जी अब काम कर रहे थे। काम करनेवाले तो आ गये थे, लेकिन जब देखा, कि नागार्जुन जी के वर्धा जाने पर भी अभी तक सिर्फ एक फार्म छपा है, तो हिम्मत छूटने लगी। नागार्जुन जी ने लिखा था—एक कम्पोजीटर है और प्रूफ रीडर है ही नहीं। यदि राष्ट्रभाषा का प्रेस नागपुर में होता, तो कोई दिक्कत नहीं होती। अधिक काम होने पर दूसरे प्रेस में दिया जा सकता था। प्रेस की कोई मशीन बिगड़ने पर वहाँ मिस्त्री मिल जाता। कम्पोजीटर और प्रूफ-रीडर बेकार फिर रहे थे, इसलिए उनके मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती। मैंने आनन्दजी को कहा भी—समिति के दूसरे विभाग हिंदी नगर के लिए काफी हैं, प्रेस को उठा कर नागपुर ले जाइए। लेकिन, आदमी को सब चीजों को आँखों के सामने देखने का लालच होता है।

ऊपर की कोठी ("हन हिल") में बहुत कमरे खाली थे, यदि कुछ और साहित्य प्रेमी मित्र भी आकर वहाँ रहें तो क्या हर्ज था। बनारस के

उदय प्रताप कालेज के अध्यापक श्री मोतीसिंह आए। फिर श्री कन्हैयालाल प्रभाकरजी भी आ गए। इस तरह धीरे धीरे हमारा यह मोहल्ला साहित्यिकों का मोहल्ला-सा जान पड़ने लगा।

"कुमाऊँ" और "गढ़वाल" को मैंने अधिकतर हाथ से लिखा था। कमला और मंगल उनको टाइप करने में लगे। कमला का आलिवेत्ती पर हाथ बैठा हुआ था किन्तु कितने ही महीनों से अभ्यास छूट गया था। मंगल रेमिंगटन के इस हिन्दी टाइपराइटर से अभ्यस्त नहीं थे, तो भी ६ जून को उन्होंने पांच पृष्ठ टाइप किया।

वक्त हिसाब को दलदर जा चिन्ता हो रही थी, वह साल भर के लिए दूर हुई जब किताब महल ने मार्च १९५१ तक की रायल्टी में ४३६२ का हिसाब भेजा।

हिन्दी का लेखक ठहरा और उसी के लिए एक तरह से अपना सारा समय दे रखा था। राजगोपालाचारी ने मंत्री के तौर पर वक्तव्य दिया कि शासकीय सेवाओं में हिन्दी की परीक्षा अनिवार्य नहीं है। महादेव भाई इससे बहुत खुश थे। वह समझते थे, हिन्दी को ही यह स्थान क्या दिया जाए? पर हिन्दी के अनिवार्य न होने का मतलब था अंग्रेजी का अपनी जगह से जरा भी टस से मस न होना। अंग्रेजी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी तरह का समर्थन प्राप्त हो, मैं इसे देखने के लिए तयार नहीं था। अंग्रेजी की इस अनिवार्यता के कारण नौकरियों पर कुछ लोगों का एकाधिपत्य होता जा रहा है, यह भी सहन करने की बात नहीं थी। यह तो मैं पसन्द करता था, कि किसी भी राज्य की विधान सभा की स्वीकृति के बिना हिन्दी को उसके लिए मान्य नहीं करना चाहिए। प्रदेश के भीतर अपनी भाषा छोड़कर हिन्दी का प्रवेश बिलकुल नहीं होना चाहिए। लेकिन, अन्तर्प्रान्तीय, केन्द्र और प्रान्तों तथा देश और विदेश के साथ के कारोबार में हिन्दी को क्या न स्थान दिया जाए? क्या वहाँ अंग्रेजी जमी रहे?

१० जून को श्रीमती सत्यवती मल्लिक अपने पुत्र और भाज के साथ आई। मसूरी उनके लिए नई चीज नहीं थी, लेकिन "हनविलफ" जरूर था। सत्यवती जी कलाकार महिला हैं। हिन्दी की लेखिका और सुषमामयी कश्मीर की नगरी श्रीनगर की कन्या हैं। दूसरे पुरुष स्त्री भी "हन

क्लिफ" के दरवाजे पर खड़े होकर जब सामने हिमालय की धवल शिखर पंक्तियों और उनके नीचे तह पर तह चढ़ती पर्वतमालाओं को देखते तो कवि वनन की वाणिग करते, मेरे चुनाव की बड़ी प्रशंसा करते। हालांकि चुनाव करते समय मैंने इसका ख्याल नहीं किया था।

खूबानियाँ पकी हुई थी। यहाँ वह जल्द में फलती हैं। और निचली जगहों में मई में। यहाँ तो साधारण-सी खूबानियों के ही वृक्ष हैं जिनके फलों में एक तरह का कसैलापन आता है। विशेष खूबानियाँ बिल्कुल मीठी, बहुत बड़ी और देखने में कमनीय कलेवरवाली होती हैं। लेकिन, उन्हें भी आदमी साल में एक दो दिन से अधिक नहीं खा सकता मन ऊब जाता है। कहाँ आम, जिससे पेट भरे और जी न भरे, और कहाँ उसमें उलटी खूबानी। भूत में खूबानियाँ देखी, तो खूब हाथ हरे करके पेट भरा। इसके बाद खूब कै करता रहा।

११ जून को सिंगासिंह के यहाँ मोमो खाने और तिब्बती चाय पीने की दावत थी। चार मील जाना पड़ता था। लेकिन, वहाँ जाने में मेरा मन कभी नहीं हिचकता था। जाकर तिब्बती लोगों से उनकी भाषा में बातचीत करने का मौका मिलता फिर उनसे तिब्बत के बारे में कितनी ही बातें मालूम होती। मोमो की शौकीन मेरी ही तरह कमला भी हैं। कलिम्पाग में बहुत से चीनी और तिब्बती रेस्तोरां हैं, जिनमे यह कई तरह की बना करती। कमला ने बचपन से ही उन्हें खाया था। पर मेरी यह धारणा गलत है कि सभी मांस पसन्द करनेवाले आदमी मोमो के जरूर दिलदादा होंगे। वहाँ एक सोगपो (मंगोल) गेगे (पंडित) भी मिले, जिन्होंने भी कुछ बातें बतलाई।

विनोदजी को अब यहाँ रहना पसन्द नहीं आ रहा था। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, दूसरे वह जन्मजात नेता थे, इस जंगल के कालापानी में रहना कैसे पसन्द आता ?

कानपुर के साथी संतोष कपूर आए। उन्होंने बतलाया—"पुरुषोत्तमजी अपने साधना प्रेस को बढ़ाना चाहते हैं। उसमें एक लाख रुपये पहले ही लग चुके हैं। प्रकाशन को भी हाथ में लेना चाहते हैं पर प्रेस का कोई प्रबन्धक नहीं मिलता।" मैंने कहा—"विमलाजी क्यों नहीं इस काम को हाथ में

लेती। डबल एम० ए० की बुद्धि बेकार रहने से क्या लाभ ? काम काम को सिखलाता है, संभाल ले।" दरअसल अखाड़े से बाहर रह कर पहलवानी पेच बतलाना बहुत आसान है। शायद जपने मत्थे पडती, तो मैं भी बगलें झाकता।

१३ जून को कमला की नक्सीर फिर फूटी। खून के गिरने से चिन्तित थी, और मुझे उन पर झुंझलाहट आती थी। कहता— ऐसा व्यक्ति नही देखा। अपनी भलाई के लिए भी बुद्धि से सोचने का तैयार नही होती। डाक्टर ने दवा दी है उसे भी जैसे ही खून बन्द हुआ, छोड दिया। डाक्टर कहते है—कल्सियम और विटामिन की कमी है। पर, उन्हे लेने के लिए तैयार नही। आश्चय और दुःख होता है। जीवन भर के लिए अपाहिज बनने का यह रास्ता है, लेकिन कौन समझावे ? वजन आठ पौंड घट कर सौ पौंड रह गया है। सिरदर्द की शिकायत बराबर रहती है।'

कमला निटिंग सिलाई कढाई अच्छा जानती है। घर में सिलाई की मशीन हो तो बहुत से सुभीते रहते है। सिंगर की मशीन हलकी और अच्छी होती है, लेकिन दाम दूना, इसलिए हमने स्वदेशी "उषा" २२४ रुपये में मँगवा ली।

वैद्य रामरक्ष पाठक छपरा से मेरे परिचित थे। उस समय वह पतले दुबले स्कूल छोड कर असहयोग मे काम करनेवाले १६-१७ वर्ष के लडके थे। कितने ही समय तक वह राजनीति मे काम करते रहे, लेकिन लम्बी जिन्दगी के लिए कोई स्थायी सहारा भी ढूंढने की आवश्यकता थी। फिर आयुर्वेद पढकर वैद्य हुए। अपने अध्ययन को जारी रखा, पुस्तकें लिखी। इस समय वह बेगूसराय आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल थे। इतनी तरक्की देखकर मुझे खुशी होनी ही चाहिए थी।

कमला दो दो परीक्षाओ के लिए तैयार नही हो रही थी। कह रही थी, इस साल साहित्यरत्न प्रथम खण्ड ही दूगी। मैं सोचता था, साहित्य रत्न की परीक्षा हो जाने के बाद तीन महीने और मिलेंगे, जिसमे एफ० ए० की तैयारी हो सकती है। पढाई को जल्दी जल्दी समाप्त करना मैं जरूरी समझता था, क्योकि भविष्य का क्या पता ?

फलो के देखने से मई का महीना भी बहुत प्यारा है। बिहार मे उस

समय लीचिया पकती है। पर, जून तो महीनो का राजा है, क्योंकि इसी समय फलो का राजा आम उत्तरी भारत म आने लगता है। भैया न अमृत सर से २२ जून को आमो का टोकरा भेजा। मसूरी मे भी आम दुलभ नहीं होते। हर तरह के आम और फल यहाँ पहुच जाते हैं, लेकिन दाम इतना बढ चढकर होता है, कि मालूम होता है, हम आम नही रुपया खा रहे हैं। खरीदने म हाथ भी सकोच से उठता है। यदि टोकरा बाहर से आ जाता, तो आम का भोज होने लगता। अब कुछ महीनो तक आम्र-उपासना होगी, इसका उछाह मन मे पैदा होने लगा।

मैंने कमला को लिखने के लिए प्रेरित किया। उन्होने दो कहानिया लिखी, और पत्रो मे भेजा लेकिन सम्पादको ने लौटा दिया। बड़े प्रयत्न करने पर वह लिखने के लिए राजी हुई थी, और 'सर मुडाते ही ओले पडे।" उनके उत्साह पर घडा पानी पड गया। मैंने बहुत समझाया, कि हर लेखक को ऐसी स्थिति से गुजरना पडता है, लेकिन मेरे कहने से क्या होता है? उन्हे तब तक विश्वास नही हुआ जब तक कि उनकी एक कहानी 'नया समाज" म छप नही गई। अब (१६५६ ई०) तक उन्होंने आठ कहानिया लिखी है, और आठो अच्छे पत्रो मे छपी हैं। इन कहानियो मे मेरा बहुत हलका-सा हाथ है, जो धीरे धीरे कम होता गया है। उनमे कहानी लिखने की और निबन्ध लिखने की भी प्रतिभा है। लेकिन, सबसे बडा दोष है आलस्य। कलम पकडने मे नानी मर जाती है।

श्री रामरक्ष पाठक छपरा के डा० शिवदास सूर के साथ मसूरी आए थे। एक से अधिक बार मिलने आए। रामरक्ष को मैंने बच्चा-सा देखा था, फिर जवान भी। डा० सूर की जवानी का चेहरा ही मुझे याद आता। वह छपरा म डाक्टरी प्रक्टिस अब कम ही करते हैं। उनके पिता लक्खी बाबू की दवाइयो की छपरा की बडी प्रसिद्ध दूकान थी। बडे भाई गुहा बाबू देश सेवा के किसी काम मे पीछे रहनेवाले नही थे। डा० सूर के चेहरे पर अब बुढापे की छाप थी, और सबसे अधिक डायबटीज का प्रभाव दिखाई पडा। वह इस समय मुझसे तीन वष बडे थे।

अब महमान राज और इतवार को विशेष तौर से आने लगे। अधिक तर हम चाय का प्रबन्ध करना पडता। स्वागत-सम्मान तथा चायपान और

भोजन कराने मे कितना आनन्द आता, किन्तु खाद्य-सामग्री दुर्लभ और महार्घ हो गई थी। इस समय यदि कोई मेहमान कहता कि मैं चाय नही पीता, तो मैं बडे मयत भाव से और दूसरे के भावो पर बिना ठेस पहुँचाए कहता—"आजकल के अतिथि का चाय न पीना महापाप है। इस युग म कोई भी गृहस्थ इसी के द्वारा आसानी से अतिथि सेवा कर सकता है। अतिथि सेवा हमारी पुरानी बपौती है, उससे वचित करने वाला आदमी पाप का भागी जरूर होगा। घर मे चाय मत पीजिए, चाय का व्यसन भी लगाना ठीक नही, लेकिन बाहर जाने पर अगर कोई एक प्याला चाय दे तो उसके पीने मे उजुर मत कीजिए।" मालूम नही इस व्याख्यान का कितनो के ऊपर असर पडा।

समिति के साहित्य का काम अब उत्साहजनक नही रह गया था। जीद के उपन्यास "ला पोरता" (सकरा द्वार") के बारे मे किसी ने आनन्दजी को सम्मति दी, कि वह अश्लील है। हद हो गई। यदि इस लेखक को दुनिया की चोटी का उपन्यासकार मानने मे उजुर नही हुआ, तो यह मीन-मेख निकाली गई। मैं सोचने लगा क्यो खामखाह की यह बला मोल ले? जितनी ही जल्दी वह टले उतना ही अच्छा।

२५ को जोधपुर के खैरवा की जागीरदारनी ठाकुरानी गुलाबकुमारी के यहा भोजन करने गए। वह १७५ रुपया मासिक पर कमरे लेकर स्टेशन पल्टन म रहती थी। अपनी मोटर म आई थी। साथ म मुसाहिब, तीन-चार नौकर नौकरानियाँ भी थी। भोजन सामिष और मारवाड के ठाकुरा सा बहुत स्वादिष्ट था। मै सोच रहा था, रियासतें गई, जागीरें भी अब जा ही रही है। पुरानी आमदनी अब नही रहेगी। फिर यह खर्च उठाना क्या आफत मोल लेना नही? लेकिन, आदमी एक स्थिति से दूसरी स्थिति मे पहुँचकर तुरन्त ही अपने को उसके अनुसार नही बना सकता।

शुक्लजी ने बनारस स लगडे आमो का पारसल भेजा, जो २७ जून को मिला। बनारस के साथ अपना पक्षपात ठहरा ही और दुनिया भी लगडा का लोहा मानती है, इसलिए शुक्लजी को रोम रोम स धन्यवाद दिया।

हिन्दी की कहानी पत्रिका "माया" ने कोई कृति देने के लिए लिखा था। मैंने कहा मध्य एसिया के ताजिक उपन्यासकार एनी के "अदीना"

का मैं दन क लिए तैयार हूँ। उन्होंने एक अंक म चित्र सहित उसे छापने का वचन दिया। यह जून क अंक म छप भी गया। कुछ चित्र तो मूल ताजिक पुस्तक क थे लेकिन कुछ चित्रकार न अपनी कल्पना से बनाए थ, जो अनुरूप नहीं थे। प्रेम का मुह ता "अदीना" ने देख लिया, लेकिन पुस्तकाकार प्रकाशित होने की नौबत अब (१९५६ ५७ म) आ रही है।

२९ जून को विनोदजी गए। अब ऐसा मालूम हो रहा था, स्वामी सत्यस्वरूपजी, धूमठेश्वरजी और हरिश्चन्द्रजी ही यहाँ रह जाएँगे।

मसूरी की अवस्था दिन पर दिन गिरती जा रही थी। पिछले साल के कितने ही दूकानदार चले गए। कुछ दूकानें बन्द हो गईं, लेकिन अधिकांश म नए फँसनेवाले आ जाते थे। एक को असफल भागते देखकर दूसरा भाग्य परीक्षा से कैसे बाज आ सकता था? २ जुलाई को टहलते हुए लण्ढौर तक गया। पुरुषोत्तमजी की दूकान बन्द देखी। उनकी तरफ स हरप्रसादजी काम कर रहे थे, जिनसे मालिक को संताप नहीं था। बस पुरुषोत्तमजी बडे अच्छे आदमी थे। कालेज म पढे हुए थे, इसे तो दोष नहीं कह सकते। पर उनके पास देहरादून और मसूरी म दो दो जगह लोहे की दूकानें थी। लडाई के समय और पीछे लोहेवाला ने दोनो हाथो नफा बटोरकर अपने को मालामाल कर दिया, लेकिन पुरुषोत्तमजी थे, कि उन्हें समुन्दर म घोंघे भी नहीं हाथ आए। इस समय दूकान बन्द रहना अच्छा नहीं था। पर, एक ही दो साल बाद उन्हें दूकान को बिल्कुल बन्द कर देना पडा। फिर व्यवसाय से भी हट गए, और कहीं नौकरी करनी पडी। दूसरे दूकानदार मुशीरामजी कह रहे थे, कि हम तो अपनी पूजी खा के जी रहे है। अपने मास को गला गलाकर आदमी कितने दिनो तक जीवन धारण करेगा? कबाडिया अपने लिए रो रहे थे। पहले की तरह अब साहब लोगो के बगलो की चीजें बेचने को नहीं मिलती। जो मिलती है, उनके खरीदार नहीं। एक अच्छा कारीगर बढई फलो की टोकरी रख के बैठा हुआ था। कह रहा था—"क्या करें? किसी तरह तो पेट का भरना है। काम नहीं मिल रहा था इसलिए फल बेच रहा हूँ।' मसूरी के ऊपर अधकार का एक गहरा पर्दा पडता दिखाई दे रहा था। लौटते वक्त प० गोविन्द मालवीय से भी थोडी देर बातचीत हुई।

३ जुलाई को स्वामी सत्यस्वरूपजी सस्कृत हिंदी काश का काम कर रहे थे। कुमठेकरजी कन्नड के एक उपन्यास का अनुवाद और हरिश्चन्द्रजी टाइप कर रहे थे।

किशोरी भाई जेल मे थे। वहाँ से स्वास्थ्य खराब होकर पटना अस्पताल मे पडे थे। यहाँ कुछ भीड थी, तो भी आने के लिए लिख दिया। ५ जुलाई को वह आए। आशा थी यहाँ उनके स्वास्थ्य म सुधार अवश्य हागा, लेकिन १३ दिन रहन पर भी वह वसे ही रहे। उनके शरीर पर कभी चर्बी नही वढी। जो आदमी दौड म चम्पियन बनने लायक हा कसरत और शारीरिक परिश्रम करने का आदी हो उसके शरीर मे चर्बी कैसे बढ सकती है? उनके मन म जैसा ही साहस उसी के अनुकूल उनका स्वस्थ शरीर था। देखने से ही मालूम होता था, कि उनका रोवा रावाँ नाच रहा है। जीवन के सभी अगा म उन्हान अपन साहस और निर्भीकता का परिचय दिया था। पढाई छोडकर काग्रेस मे शामिल हुए। मुजफ्फरपुर के सबस कमठ काग्रेस कायकर्ता क रूप मे वह हमारे सामने आए। काग्रेस को जब उन्हान देखा, कि इससे बेडा पार नही होगा, तो माक्सवाद का अध्ययन किया, कम्युनिस्ट बन, एक बडे नेता से वह साधारण स्वय सेवक बनने के लिए तैयार हो गए। अपने खानदानवालो और घरवाला की कुछ भी पर्वाह न करके उन्हाने अपनी स्त्री का उस समय पर्दे से बाहर किया, जबकि विहार मे कोई आदमी उसका नाम भी नही ले सकता था। पर्दे से बाहर ही नही किया, बल्कि उसे काम करन लायक बनाया। अफ्सोस, तरुणाई में ही वह साथ छोड गई। किशोरी भाई तब से बराबर अपनी धुन म लगे हुए है। उनका शरीर इतना दुबल साबित होगा, इसकी मुझे कभी आशा नही थी। पर, अब शरीर भी और साथ-साथ मन भी अपन को निबल साबित कर रहे थे। अब की जेल मे रहते उनके आदश उद्देश्य के ऊपर जो जबदस्त प्रहार हुए उनकी प्रतिक्रिया के कारण उनका मन भी अस्वस्थ हो गया। पहाड के किनारे पर चलते उनको डर लगता था, मैं गिर पडूगा। मन की स्थिति शरीर की व्याधि से भी ज्यादा बुरी हाती है व्याधि की औपधि का चमत्कारिक लाभ भी देखा जाता है लेकिन आधि दुश्चिकित्स्य है। उनका मन लगा रह, इसके लिए 'भागो नही बदलो" के नय सस्करण की कापी

तैयार करते मैं उन्हे सुनाता। हफ्ता बीत गया, लेकिन कोई सुधार नही हुआ। १७ जुलाई को स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ वह टहलने गए, एक जगह बेहोश होने लगे। जल्दी जल्दी रिक्शे पर बैठाकर उन्ह डाक्टर के पास पहुँचाया गया। उसके बाद किशोरी भाई ने कहा बिहार ही जाना अच्छा है। वहा पार्टी के काम म शायद मन बहल जाए। १८ जुलाइ को मगल के साथ उन्ह पटना भेज दिया।

१६ जुलाई को भैया (स्वामी हरिशरणानन्द), भाभी (जानकी देवी) अपनी छोटी बहिन के साथ पहुँच गईं। अब की उन्होने "लक्समोट" म ही रहने का निश्चय किया था। वैसे वह पहला सीजन बिता कर बरसात म आया करते थे। उस समय हमारे यहा भी भीड नही रहती, पर उनको कुल्हडी म ही रहने म आराम रहता। चीजे पास म मिल जाती। यह भी कहते थे—"इससे आना-जाना भी होता रहेगा।" टहलने के वह शौकीन हैं। सचमुच ७० के पास पहुचने पर भी उनके बाल भर सफेद हैं, पर चलते हैं आँधी की तरह। किसी काम के करने म उन्ह आलस्य छू नही गया।

पिछले साल प्रेस को देहरादून लगाने की बात हुई थी। एकाध घर भी देखे गए थे। लेकिन, भैया की व्यावहारिक बुद्धि ने बतला दिया, कि उसके लिए उपयुक्त स्थान देहरादून नही, बल्कि दिल्ली है। यदि किसी कारण काम न भी चला और उसे बन्द करना पडा, तो पैसा लौटने म देर नही होगी। भाभीजी देहरादून को पसन्द करती थी, मैं भी इस ख्याल से नज दीक चाहता था, कि अगर मेरी पुस्तकें छपेंगी, तो प्रूफ के देखने म दिक्कत नही होगी। वह तुले हुए थे—प्रेस को बढाएँगे, मोनो टाइप लाएँगे, बडी मशीन भी आ जाएगी।

बुढापे मे आमतौर से दाँतो मे दोष पैदा हो जाता है। मैं तो समझता हूँ यदि उस समय दाँत न रह, तो अच्छा। अक्सर उनम दद हो जाता, उनके बीच म खान की चीजें घुसकर कीटाणुओ को जन्म देती हैं, जो अन्त म पायरिया के कारण बनते हैं। पायरिया बडी बुरी चीज है। अपने लिए नही बल्कि जिससे बात की जाए उसको भी उसकी दुगन्ध आती है। मुझे एक वृद्ध का अनुभव था। ७० वष के बाद भी उनकी बत्तीसी बनी हुई थी। इसका वह अभिमान कर सकते थे, लेकिन मुह से दो हाथ दूर भी इतनी

गध आती कि बात करना असह्य हो जाता। शायद उनको न मालूम होती हो। मेरे मुह से कुछ गध आ रही थी। भैया ने कहा—पायरिया है। वद्ध मित्र का ख्याल आने लगा। भैया ने कहा—कोई चिन्ता नही। फिनाइल के सत् लेमाल का सीक म रुई लपटकर दातो के बीच हफ्ते मे एक बार लगा देने से दो तीन हफ्ते म ठीक हो जाएगा। भैया वैद्य हैं, लेकिन कूपमडूक वैद्य नहीं। चिकित्सा शास्त्र म जो भी नया आविष्कार होता है, उसके बारे मे हिन्दी पत्रो या पुस्तको म जो देखते ह, उसे बडे ध्यान से पढते है। प्रयाग के 'विज्ञान" के वह उसके जन्म से ही ग्राहक है और शायद उसका कोई भी अक एसा नही होगा, जिसे उ होने ध्यानपूर्वक नही पढा हो। उसकी नैया जब डगमगाने लगी, तो कितने ही वर्षों तक उसे भैया ने अपने खर्च से चलाया। वह इसके पक्षपाती है कि चिकित्सा सम्बन्धी आधुनिक आविष्कारो से वैद्यो को लाभ उठाना चाहिए और आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति और औषधियो के निर्माण तथा विश्लेषण के बारे मे साइन्स का उसी तरह उपयोग करना चाहिए, जैसे एलोपथी के डाक्टर लोग करते है। सामाजिक और राजनीतिक विचारो मे भी वह अति आधुनिक हैं। समाजवाद साम्यवाद पर उनका अटल विश्वास है। कभी कभी कह देते थे—"चिन्ता की क्या जरूरत है, दस बप मे तो साम्यवाद आ ही जाएगा।" मैं भी घुमक्कडो के लिए जब पहले पहल निकला, तो यह श्लोक हमेशा जीभ पर रहता था—"का चिंता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते।"

अब तिब्बत कम्युनिस्ट चीन का अग बन गया था। शान्तिपूर्वक ही तिब्बत ने चीन से अपने सहस्राब्दियो के पुराने सम्बन्ध को फिर से स्थापित कर लिया था। दिल्ली के कम्युनिस्ट विरोधियो को भी चपड करने की आवश्यकता नही हुई, क्योकि यह सब काम शान्तिमय तरीके से हुआ। शान्तिमय तरीके से ही इसका होना मैं भी वाछनीय समझता था। क्योकि तिब्बत मे भारतीय, चीनी तथा अपने देश की हजारो सास्कृतिक अनमोल निधियां सुरक्षित रखी हैं। ल्हासा का महान और तिब्बत का सब प्राचीन बौद्ध विहार ' जो-खड" सातवी सदी के मध्य मे बना। आज भी वहा वह पुरानी शताब्दियाँ मालूम होती है, जो आज भी हमारे सामने बैठी हुई है। दो दजन के करीब वहा के विहार पुरानी सामग्रियो के अद्भुत सग्रहालय हैं।

लडाई होती, तो उन्ह क्षति होती, जिनकी पूर्ति कभी नही हो सकती थी। फिर हजारो घर उजडते, आदमियो के प्राण जाते, दोनो देशो म पारस्परिक घृणा का सचार होता जो कितने ही समय तक चलता रहता। यह सब देखते हुए शान्तिपूर्ण चीन और तिब्बत के सम्बन्ध का स्थापित होना वाछनीय था। मैंने 'स्वागत नवीन चीन'' नाम से एक लेख पहले लिखा, और अब 'हमारा पडोसी चीन' लिखकर अपने भाइयो को बतलाना चाहा, कि चीन हमारा हमेशा के लिए पडोसी है, उससे भय खाने की जरूरत नहीं, बल्कि उसके सामने मित्रता का हाथ बढाना चाहिए। सौभाग्य से कम्युनिस्ट चीन के विरोधियो का बल कम हो गया, और हमारे दोनो देशो म गहरा भाईचारा स्थापित हो गया।

महेन्द्र आचार्य यहा के साहित्य विभाग के काम से हटने के बाद मद्रास पहुँच गए। वहाँ से उनका पत्र आया। भूल चूक के लिए क्षमा मागने का शिष्टाचार दिखाते हुए उन्होने कुमठेकरको ढागी और क्या-क्या लिखा। कुमठेकर वस्तुत एक बडे साधु हृदय के पुरुष थे और सहिष्णुता मे तो पृथिवी को मात करते है, यह पहले ही मैं लिख चुका हूँ। सबके लिए उनका हृदय और जेब खुले रहते है। ऐसे आदमी को पैसा की हमेशा दिक्कत रहेगी, और न पैसे रहने पर भी वह गुजारा कर लेगा, इसमे सदेह नही। उसे ढागी कैसे कह सकते है? वस्तुत महेन्द्रजी का स्वभाव पुराने संस्कृत पण्डितो की तरह का था जिसम कभी कभी बच्चो का सा भोलापन दिखाई पडता था। वह उदयपुर से अपने साथ शुद्ध घी कनस्तर भर कर लाए थे। मैं देखता था उनके साथी उसे उडाने के लिए तैयार थे, और महेन्द्रजी उसे जोगा करके कलयुग के अन्त तक ले जाना चाहते थे। महेन्द्रजी की इसम हार हुई। पैसे म भी वह सभल सभल कर खर्च करते थे। सचमुच ही हम सबको आश्चर्य हुआ, जब मालूम हुआ कि उन्होने कुमठेकर को सौ या अधिक रुपया उधार दे दिया है। यार लोग मजाक करते, इसलिए यह काम दोनो म चुपचाप हुआ था। कुमठेकर के मेहमान आ गए। आतिथ्य मे उन्होने साखर्ची दिखलाई। फिर पैसा कहाँ रहता? महीने मे पौने दो सौ की ही तो आमदनी थी। चलते वक्त महेन्द्रजी अपना पैसा न पा सके, और शायद दो एक बार चिट्ठी लिखी, तो भी उनका पैसा

लौट नही सका। इसीलिए बेचारे कुमठेकर ढोगी हो गए थे। कुमठेकरजी पीछे भी कई महीनो यहा रहे। सागवाले का भी रुपया बाकी था अख बार वाले का भी। चलते वक्त नही चुका पाए। ऐसे "आत्मद्रव्येपु लोष्ठ वत्" मानने वाले मस्त मौला। यदि 'परद्रव्येपु लोष्ठवत्' (दूसरे के धन को भी ढेला) समझे, तो उनको दोप नही देना चाहिए। हा, अखबार वाले के लिए हमे बडा दु ख हुआ, क्योकि बेचारा दूसरे एजेंट मे अखबारो को लेकर मीलो का चक्कर लगाकर रोज कोठियो मे उन्हे बाँटता था उसे ये रुपये दड भरने पडे। कुमठेकर बडे सीधे-सादे स्वभाव के थे, और मैस भी वैसा ही था। हमारे यहा काम करनेवालो मे बिनोद ही शेरवानी और जवाहरशाही पायजामे के पक्षपाती थे, नही तो बाकी लोग उसकी कोई पर्वाह नही करते थे। नीचे से अधिक सर्दी तो यहा थी ही। कुमठेकरजी को कपडा बनवाना पडा। वह भी गरम शेरवानी पायजामा बनवा लाए। अब वह अधिक सभ्य और शिष्ट मालूम होते थे, इसमे सन्देह नही। जेलो की भूख हडतालो और पिटाइयो ने उनके शरीर को बहुत कमजोर कर दिया था, पेट की बडी शिकायत रहती थी, बहुधा पावरोटी और दूध पर गुजारा करते थे। दूध गरम करने के लिए चूल्हे को जलाने की जगह बिजली की अगीठी म आसानी थी। वह उसका ही इस्तेमाल करते थे। दूसरे साथी सिर्फ रोशनी के लिए बिजली जलाते थे, बिजली के बिल मे समान पैसे के भागी होते थे, इसीलिए यह उन्हे पसन्द नही था। वह कह सकते थे, कुमठे-कर क्यो चूल्हे की बिजली का अलग पैसा नही देते ? मैं बतला चुका हूँ, कि कुमठेकर न धोखा देने के लिए किसी का पैसा अपने ऊपर रखना चाहते थे, और न यही चाहते थे, कि मेरा खच दूसरे बर्दाश्त करे। लेकिन अपने हृदय की उदारता की दवा कहाँ से लाते ?

"हन क्लिफ" मसूरी के एक छोर का सबसे अन्तिम बगला था, यह मैं बतला चुका हूँ। यह छोर जमुना की ओर था। इधर मील डेढ मील पर पहाडी गाँव आ जाते थे। इसलिए वहाँ की चीजें हमारे लिए सुलभ होती थीं। जिस वक्त गाँवो म साग-सब्जी तैयार रहती, उस वक्त हमे आधे दाम पर ताजी सब्जी मिल जाती। बनिये किसानो को चौथाई दाम भी देने के लिए तैयार नही थे। इसीलिए मैं बहुत चाहता था, कि कलिम्पाग दार्जि

लिए, नैनीताल की तरह यहाँ भी हफ्ते में दो दिन हाट लगे, जिसमें गाँव वालों की चीजें उपभोक्ता सीधे खरीद सकें। नई नगरपालिका के चुन जाने पर आशा हुई थी, कि इस दिशा में कुछ होगा। लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं किया। जमुना की मछलियाँ भी अक्सर गाँववाले लाते थे, और दो रुपए सेर की जगह रुपए सेर में मिल जाती थी। यद्यपि यहाँ की मशहूर मछली महासिर शायद ही कभी आती, पर दूसरी मछलियाँ अच्छी और काफी बड़ी होती। मछली मुझे माँस से कम स्वादिष्ट नहीं मालूम होती, पर जाने क्या अपने यहाँ बनी मछली में वह स्वाद नहीं आता, जो कि बचपन में छोटी छोटी मछलियों में मिलता था। जाड़े के दिनों में गाँववाले कभी-कभी जंगली मुर्गे भी मारकर लाते थे। शास्त्रों ने ग्राम्य कुक्कुट को अभक्ष्य कहा और अरण्य कुक्कुट को भक्ष्य। मैं ग्राम्य कुक्कुट को ग्राम्य शूकर-सा ही भक्ष्य मानता हूँ। पर ऋषियों की बात से भी इन्कार नहीं करता, और अरण्य कुक्कुट और शूकर को परम पवित्र भक्ष्य स्वीकार करता हूँ।

पं० कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर भी अब की गर्मियों में यहीं "हन हिल" में रहे। प्रभाकरजी के साथ मेरी देखादेखी १९३८ की है। मैं रूस से लौटते सहारनपुर में यों ही उतर गया। शहर को देखना, और यहाँ की कौरवी भाषा के सुनने का आनन्द लेना चाहता था। अचानक मिश्रजी से भेंट हुई और एक दो दिन उनका अतिथि भी रहा। उनकी कलम मुझे बड़ी प्रिय मालूम होती है। छोटे छोटे वाक्यों और छोटी छोटी घटनाओं को लेकर वह इतना अच्छा लिखते हैं, कि दिल खुश हो जाता है। शिकायत यही रहती है कि इतना कम क्यों लिखते हैं। "नया जीवन" को वर्षों से वह संपादन कर रहे हैं। किस तरह उसके घाटे को वर्दाश्त करते हैं, यह वही बतला सकते हैं, क्योंकि "नया जीवन" एक कस्बे से निकलता है, और उसका प्रचार बहुत सीमित है। प्रभाकरजी की भाषा सीखी हुई भाषा नहीं है। हिन्दी की मूल भाषा कौरवी है, और यही प्रभाकरजी की मातृभाषा है। उन्हें इतना ही करना पड़ता है कि लोकसभा के उन उच्चारणों और शब्दों को हटा दें, जिन्हें साहित्यिक हिन्दी ने मंजूर नहीं किया। मैं समझता हूँ, साहित्यिक हिन्दी को इतना अधिकार कभी नहीं होना चाहिए, कि वह हिन्दी का उसके मूल स्रोत से सम्बन्ध-विच्छेद करा दे। जिनकी मूल हिन्दी

मातृभाषा है, उन्हें मनमाने नियमों को मानने से इन्कार कर देना चाहिए। मिश्रजी, विष्णुप्रभाकरजी और दूसरे कौरवी क्षेत्र के लेखकों से मैं बराबर यही कहता रहा, कि आप अपनी कहानियों उपन्यासों और लेखों में लोक-भाषा की पुट दीजिए ताकि हमारी भाषा में अधिक लोच आए। मिश्र के साथ विद्यावती कौसल भी आई थीं जिनकी कविताएँ अक्सर "नया जीवन" मे निकला करती थीं। मेरा जीवन तो घड़ी की तरह चलता है। खुलकर समय व्यय करने मे यदि उदारता से काम लूँ, तो काम रुक जाए, तो भी शाम का एकाध घंटा और इतवार का सारा समय मैं अपना नहीं समझता। उसी समय अपने यहाँ आए हुए साहित्यिक मित्रों से बातचीत होती।

१९५० मे श्री परमानन्द पोद्दार ने मेरी कितनी ही पुस्तकों के एक सस्करण पर २५ हजार रुपया अग्रिम दिया। मुझे क्या मालूम था कि यह अग्रिम जी का जजाल साबित होगा। इन्कम टैक्स आफिसर ने इसको भी वास्तविक आय के साथ जोडकर उसे २९ हजार बना दिया, और फिर डटकर पाच हजार सुपर टैक्स लगाया। मैंने समझाने की कोशिश की कि यह आमदनी पर ब्याज रहित ऋण है, आमदनी नहीं है। लेकिन, इन्कम टैक्स अफसर ने इसे नहीं माना। अन्त में यह मामला रैवेन्यू-बोर्ड के पास गया। एक डेढ़ साल तो यही जान पड़ता था कि इसे भुगतना ही पड़ेगा, पर रायल्टी के अग्रिम के ऐसे औरों के भी झगड़े थे। पीछे इसे ऋण मानकर मेरी छुट्टी हुई। अग्रिम के लिए मुझे पछताना ही पड़ा। सोचता था, यदि अग्रिम न लिया होता तो मकान भी नहीं ले सकता और मसूरी में जहाँ चाहता वहा सस्ता मकान मिलना मुश्किल नहीं था। जब चाहता तब मसूरी भी छोड़कर कहीं दूसरी जगह जा सकता था। मकान लेने से यह लाभ जरूर हुआ, कि धीरे-धीरे चार हजार के करीब पुस्तकें जमा हो गईं, और उनसे मैं लाभ उठाता रहा। पर अब जब मसूरी छोड़ने का इरादा हो रहा है, तो मकान में लगे आधे दाम को लौटा पाने को भी मैं गनीमत समझता हूँ।

हमारे मकान के ऊपर दो ही हाथ पर अच्छी नासपातियों के दो-तीन वृक्ष हैं। अंग्रेजों ने अपने जगलों के बनाते वक्त यहाँ फलों के उत्पादन की ओर भी ध्यान दिया था। "हन हिल" में नासपाती, खूबानी, आड़ू, आदि

के बहुत से वक्ष लगे हुए थे, लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही मसूरी की ओर साढेसाती सनीचर ने कदम बढाना शुरू किया था। दूसरी विलासपुरियो से मसूरी की यह विशेषता थी कि यहा अग्रेजो ने खुद अपने लिए बगले बनवाये थे, नैनीताल मे उनकी योजना के अनुसार भारतीयो ने बगले बनाये थे। अपने लिए बनाए बगलो मे वह सब बात का पूरा ध्यान रखते थे, इसीलिए फल-फूल पैदा करने का अच्छा प्रबन्ध किया था। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद ही बहुत से और बगलो की तरह "हन हिल" भी अग्रेजो के हाथ से भारतीयो के हाथ म चला गया। कुछ दिनो यह जिन्द के राजा के हाथ मे रहा, फिर टेहरी ने ले लिया। किसी को यहा के बगीचो की ओर ध्यान देने की फुरसत नही थी। उपेक्षित वृक्ष धीरे धीरे सूखने लगे और मेरे यहा आने के समय अपने हाते म एक नासपाती और एक आडू का वृक्ष रह गया। नासपाती कठ नासपाती थी, जिसका चटनी ही की तरह उपयोग किया जा सकता है, यदि हनुमानजी की सेना उन्हे बकस दे—सौ भूत के रहते भी वह पकने के लिए तैयार नही थी। जरा सा पलक मारते ही वह पचासो की सख्या म आती और चुटकी बजाते बजाते फलो का साफ कर जाती। इसके लिए हमे कोई अफसोस नही होता, क्योकि नासपाती हमारे काम की नही थी। लेकिन, दो ही हाथ हमारी सीमा से बाहर की नासपातियाँ अच्छी जाति की मीठी नाखें थी। कोई उनकी खोज-खबर नही लेता, ना फाले बनाता, न खाद डालता। तब भी ये मेवेदार वृक्ष हर साल फलो से लदते। कोई फलो का रखने वाला नही था। भूत के मारे कभी-कभी पकने के समय तक आधे रह जाते, और फिर आसपास के लडको के काम आते।

"मध्य एसिया का इतिहास" लिखने का सकल्प पाच छ वर्षों स था। ग्रथ बडा था, इसलिए भी उसके लिखने का काम आसानी से शुरू नही किया जा सकता था। १ अगस्त को उसके लिखने म हाथ लगाया। १९८० तक सारी पुस्तक खतम कर डाली। १९५३ के शुरू म प्रेस म भी चली गई, लेकिन १९५६ तक उसकी एक जिल्द ही निकल पाई।

बन्दूक इस ख्याल स भी ली थी, कि रात बिरात कोई जगली जानवर आए तो उस पर इस्तेमाल कर लें, और एकान्त देख चोरो को भी आने की

अध्यापन की बडी सस्था जगल मे नही फल फूल सकती। जगल म उसे शहर के तल तक आन के लिए करोडो रुपए चाहिए, जिसमे कि उसके आसपास नगर बस जाए। तब भी इससे खाने पीने और शिक्षित समाज का ही सुविधा मिलेगी अनुसन्धान के लिए जिन साधनो की आवश्यकता है, वह वहा वर्षो जमा नही हो पाएँगे। नालन्दा को उस स्थिति मे पहुचाने की अभी कल्पना भी नही हो सकती। सौ पचास विद्यार्थी और बीस-पचास हजार पुस्तको से क्या काम बन सकता है? यद्यपि पटना मे सस्था के होने पर उसे प्राचीन स्थान का महत्व नही मिलता, लेकिन वहा अच्छा पुस्तकालय है, अच्छा म्युजियम है, बडी सख्या मे कालेजो के विद्यार्थी और अध्यापक है सबसे सहायता मिलती है। नालन्दा के लिए तभी आशा हो सकती है, जब कि वहाँ कृषि कालेज, वेटर्नरी कालेज जैसे दूसरे भी कई बडे-बडे विद्या सस्थान बन जाएँ और विद्यार्थियो और अध्यापको की सख्या हजारो तक पहुच जाए।

श्री सदानन्द मेहता भारतीय सर्वे विभाग मे काम करते थे। उस समय विभाग का एक भाग मसूरी म रहता था। पीछे अक्कल के अन्धो ने उसे देहरादून मे बदल दिया। मसूरीवालो को सौ दो सौ आदमियो के रहने से जो थोडी बहुत आमदनी होती थी, वह बन्द हो गई। मसूरी की समस्या है वर्षो से खाली और तेजी से उजडते बगलो की रक्षा कैसे की जाए? यहा के लोगो की जीविका का स्रोत कैसे सूखने न पाए? इसके लिए जरूरी था कि दिल्ली के कुछ बडे बडे दफ्तरो का यहा भेज दिया जाता। प्रान्तीय मन्त्रियो ने भी जोर लगाया, केन्द्रीय मन्त्रियो ने भी आश्वासन दिया, पर सर्वे विभाग वहा से हटने के लिए तैयार नही हुआ। मन्त्री हमारे पुराने नौकरशाही के हाथ की कठपुतली भर हैं। अधिकतर कठपुतली होने लायक ही हैं, उनमे ऐसी योग्यता नही कि अपने विभाग के नामा-सूत्र का सभाल सकें या उसकी बारीकियो को जान सके। आधुनिक ज्ञान विज्ञान से जिसका छत्तीस का सम्बन्ध है उसके हाथ म सारे भारत की शिक्षा की बागडोर है। जिसे मालूम नही चिकित्सा विज्ञान किस चिडिया का नाम है उसे ४० करोड लोगो के स्वास्थ्य की बागडोर द दी गई है। इसी तरह सभी जगह गुग-बावले भरे हुए हैं। फिर क्या वह गाव नौकरशाही पर अकुश

रख सकेंगे। अन्धों की लाठी वही तो है। मन्त्री यदि किसी विभाग के कार्यालय को मसूरी या शिमला भेजना चाहते है, तो नीचे के खुराट नौकर-शाह उसका विरोध करते है। विरोध क्या न करें, जब कि वे जानते हैं कि दिल्ली मे रहने पर हम मन्त्रियो के दरबार मे सलामी दे सकेंगे, उन पर प्रभाव डाल सकेंगे, और उसके जरिए अपना लोक परलोक बनाएँगे—अर्थात् अपनी भी जल्दी तरक्की करेंगे और अपनी अगली पौध के लिए अच्छी नौकरियाँ दिला सकेंगे।

सदानन्द मेहता इतिहास के एम० ए० थे। पत्रकारिता और रूसी भाषा मे भी डिप्लोमा लिया था। मैं जानता था, सर्वे विभाग ने पिछली शताब्दी के मध्य से हमारे बहुत से देशभाइयो को तिब्बत और मध्य एसिया की ओर भेज कर वहा से भूगोल और दूसरी बातो की जानकारी प्राप्त की। जिन लोगो ने अपने प्राणो को जोखिम मे डाल सब काम किया उनकी कोई पूछ नही, और अंग्रेजो ने सबका श्रेय आप लेना चाहा। एवरेस्ट की खोज लगाने वाले थे अद्भुत मेधावी राधानाथ सरकार। यदि उस शिखर का नया नाम रखना भी था, तो राधानाथ शिखर होना चाहिए था, लेकिन वह एवरेस्ट के नाम से मशहूर हुआ जो कि उससे पहले ही सर्वे विभाग से पेंशन लेकर विलायत चला गया था। किशनसिंह, नैनसिंह, किन थोव जैसे बहादुरो ने वह सारी सामग्री जमा की, जिससे तिब्बत और मध्य-एसिया का शुद्ध नक्शा बन सका। पर, अंग्रेज उनको भुला देना चाहते थे। घुमक्कड होने से ये मेरे सगे बन्धु थे, इसलिए मैं चाहता था, कि उनका काम दुनिया के सामने आए, और उन्होने जो मूल डायरियाँ तथा दूसरी चीजें सर्वे विभाग को दी थी उन्हे कीडो का भक्ष्य बनने से पहले ही प्रकाश मे लाया जाए। इसीलिए मैंने चाहा कि मेहताजी इस काम को लें, और इस अनुसन्धान पर पी एच०डी० करें। उन्होने उस काम को स्वीकार किया। बहुत-सी दिक्कते रास्ते म आईं। अन्त मे आगरा विश्वविद्यालय ने मेरे अधीन उन्हे अनुसन्धान करने का काम सौंपा। पर सर्वे विभाग या किसी सरकारी विभाग के ऊपर के अफसर कब चाहते हैं, कि जो काम वे न कर सकें उसे कोई दूसरा करे। वे कदम-कदम पर बाधा डालते रहे। मुझे मालूम हुआ कि किशनसिंह-नैनसिंह आदि की डायरियाँ दफ्तर के किसी

कान म फेंकी पडी हैं। मैंने इसके बारे मे राष्ट्रपति को लिखा। उन्होंने विभाग को लिखा। डा० शान्तिस्वरूप भटनागर का आग लग गई। चाहे उन्होने कभी उन डायरियो के बारे मे सुना भी न हो, पर वह और नीचे के नौकरशाह कैसे यह पसन्द करते कि एक ऐरा गैरा नत्थू खैरा उनके कर्तव्य की ओर अगुली उठाये। भटनागर के पत्र का मैंने मुहतोड जवाब देने की जरूरत नहीं समझी लेकिन यह जानकर मुझे खुशी हुई कि वे डायरियाँ देहरादून से मँगाकर दिल्ली के केन्द्रीय आलेख भडार (आर्काइव) म रख दी गई।

१३ अगस्त (१९५१) को माधवजी ने जीन क्रिस्तोफ' के एक अध्याय का फ्रेंच से हिन्दी म अनुवाद करके भेजा। अनुवाद बहुत सुन्दर था, और माधव इस काम के लिए उपयुक्त तरुण थे। लेकिन, मेरे लिए हाथ मलने के सिवा और करने को क्या था? राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की योजना का काम जिस ढिलाई से हो रहा था उसके कारण मैं निराश हो चुका था। यदि समिति की सहायता और तत्परता मिली होती, तो रोम्या रोला की यह अमर कृति ही नही बल्कि और भी कितनी ही कृतिया हिन्दी म आ गई होती।

१४ अगस्त को श्री मुकुन्दीलालजी आए। वह कला समालोचक, इतिहासज्ञ और लेखक तो है ही, साथ ही वह सिद्धहस्त शिकारी भी हैं। उम्र ६० से ऊपर होने पर भी उनका हाथ कभी कभी बन्दूक पकडने के लिए फडक उठता है। शिकारी बनने की तीव्र आकाक्षा मुझे कभी नहीं हुई, लेकिन शिकार यात्राओ को मैं हमेशा बडे चाव से पढता था। उस वक्त मन मचलने भी लगता, और नहीं तो किसी के साथ एक रात मचान पर बैठ लेना ही सही। ऐसे अवसर आए भी, पर मैं उनसे लाभ नहीं उठा सका। शिकार की पुस्तकों को पढने म जो आनन्द लेता है उसे यदि किसी शिकारी के मुह से बातें सुनने का मौका मिले, तो वह भी रुचिकर होता है। मुकुन्दीलालजी गढवाल के अपने एक शिकार की बात सुना रहे थे। वह और उनके एक साथी बघेरे के पीछे गए। मुकुन्दीलालजी की गोली से बघेरा घायल होकर एक झाडी मे चला गया। उनकी खाली बन्दूक लिए व झाडी के पास पहुँचे। उन्हे आशा थी, कि साथी की बन्दूक भरी हुई है। इसी बीच बुरी

तरह से घायल बघेरे ने झपटटा मार उनकी टाग पकड ली। साथी प्राण लेकर भागा। घायल बघेरे और निहत्थे आदमी का युद्ध शुरू हुआ। बन्दूक के कुन्दा से उसे मारते, और उसने इनकी टाग को चबाना शुरु किया। मनुष्य जीतता है या श्वापद? कितने ही मिनटो तक सदिग्ध लडाई दोनो की होती रही। बघेरा बहुत अधिक घायल था, इसलिए कुन्दो की मार से उसका काम समाप्त हो गया। जब तक प्राण सकट म था, तब तक होश हवास दुरुस्त थे। बघेरा मास और हड्डियों को काट रहा था, लेकिन उसकी आर उनका ख्याल नही था। वह सिफ इतना ही सोच रहे थे प्राण सबसे अधिक मूल्यवान् हैं उसे किसी तरह बचाना चाहिए। बघेरे के मरने के बाद वे बेहोश हो गए। पैर की कई हड्डिया टूट गई थीं। अस्पताल म कितने ही दिनो तक जीवन मरण के बीच मे पडे रह। अन्त म प्राण बच गया। पैरा मे बघेरे के चाबने का निशान अब भी पूरी तौर से दिखाई देता है, पर लँगडे बनने की नौबत नही आई।

१५ अगस्त १९५१ को अँग्रेजो का गए चार साल हो गये। उस दिन विशेष आयोजन किया गया था। गाधी चौक मे मुझे झडा फहराना था। अगस्त वर्षा का समय है, इस समय किसी समारोह का अच्छी तरह होना मुश्किल है। इस साल उस दिन वर्षा नही हुई। लोग काफी सख्या मे शामिल हुए। टौन हाल मे भी सभा हुई।

प्रकाशक के बार मे लेखको की शिकायत निर्मूल नही होती, और शायद प्रकाशको की शिकायत को भी सदा निर्मूल नही कहा जा सकता। पर, लेखक भिक्षु न होने पर भी अपनी मजूरी पाने के लिए हाथ के नीचे हाथ रखने के लिए मजबूर है, और प्रकाशक हाथ के ऊपर हाथ। इसका वह बहुधा दुरुपयोग भी करता है।

देहरादून मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का परीक्षा केन्द्र था। इस साल कमला साहित्यरत्न प्रथम खण्ड, हरिश्चन्द्र विशारद और मगल प्रथमा का वही फाम भरने के लिए गये। तीनो ने परीक्षा दी। हिन्दी मे कमजोर होने के कारण मगल उत्तीण नही हो सके, बाकी सभी सफल रहे।

एक दिन यो ही मैं अपना पासपोट ढूढने लगा। मैं अच्छी तरह जानता था, कि चमडे की थैली मे रख कर उसे सूटकेस मे सँभाल रखा है। एक

यकम ढूँढा दूसरा बकम ढूढ़ा, लेकिन यही उसका पता नही लगा। फिर भी मुझे दूसरा ख्याल नही आया, और यही समझा कि यही पडा होगा। लेकिन पडा हो तब मिले न। फिर लडाई क दिना म पासपोर्ट के गुम होने का ख्याल आया। अंग्रेजो ने अपने खुफियावालो को अधिकार दे रखा था, कि चाहे जैसे हो वह अपना काम बनाएँ। उनके हाथ म बिके लोग नीच से नीच काम कर सकते थे। विश्वासघात तो उनका पेशा था। एक तरुण, जो अभी ख्याई खुफिया का आदमी भी नही बन पाया था, अपने सम्बन्धी के घर म आने लगा जहाँ मेरा पासपोर्ट और कुछ और चीजें बक्स म रहती। वह वहाँ से उसे निकाल ले गया। दूसरी चीजो के उसके निकालने का अगर पता न लगा होता तो शायद मुझे मालूम ही न होता, कि यह उस आदमी की कारस्तानी थी। अब मुझे उसी बात का ख्याल आया। अंग्रेज चले गये। लेकिन उनके जानशीनो के लिए मैं पहले ही जैसा खतरनाक था। कलिम्पाग म भी खुफिया पीछे लगी थी, सारी चिट्ठियाँ सेंसर होती। हमारे रसोइये को खरीदकर उसे देखभाल के लिए नियुक्त किया गया था। जान पडता है, किसी समय वही पासपोर्ट गुम कर दिया गया। मसूरी म भी खुफिया की तदेही उसी तरह थी। जब कृपलानी तक खुफिया की शिकायत करते हैं और सरकार की लाडली अपने महाप्रभुओ के इस विश्वासपात्र व्यक्ति को भी छोडने के लिए तैयार नही, तो मुझे शिकायत करने का क्या अधिकार?

देहरादून फार्म भरने तीनो गये। बाकी दोनो के ऊपर गदहपचीसी ने जोर मारा और वह पैदल पर्वत यात्रा करते, एक दिन पहले ही मसूरी पहुँच गए। जानते, कि पहाड की मोटर की सवारी म कमला की हालत बुरी हो जाती है, खाली पेट रहने पर पित्त निकलने लगती है। लेकिन, अकेला छोड कर वह चले आए। अगले दिन दोपहर को कमला परेशान परेशान मोटर के अड्डे पर उतरी और ११ बजे वर्षा म भीगती हुई पहुँची।

२४ अगस्त को वर्धा से बुरी खबरें आने लगी। आनन्दजी कुछ साल पहले ही समिति छोडने की बात कर रहे थे, उनके रोक रखने मे मेरा बडा हाथ था। अब वहा दो दल बन गये। एक पक्ष उनके पीछे हाथ धोकर

पडा। मुझे ख्याल आने लगा, क्यो मैंने उन्हे पहले ही समिति मे हटने नही दिया। मैं सोचता था। समिति को इतनी बडी बनाने मे जिसका हाथ है, उसके द्वारा साहित्य निर्माण म भी भारी काम हो सकता है, इसीलिए वैसा न करने दिया। अब पछता रहा था। दूसरे कामो मे लगे हुए भी आनन्दजी ने अपनी लेखनी को ताक पर नही रखा, यह इसीसे मालूम है, कि उन्होने जातक जसे महान् ग्रथ का पालि से हिन्दी मे सात जिल्दो मे अनुवाद करके हिन्दी के भण्डार को भरा। वे और भी पुस्तके समय समय पर लिखते रहे। समिति मे न रहने पर वे देश विदेश घूम कर भी बडा काय कर सकते, (जा समिति से हटने के बाद वह कर रहे हैं)। यह घाटे का सवाल नही था। दोना पक्षो म मेरे मित्र थे। मैं किसी का पक्ष ले इस सघप मे एक तरफ कैसे हो सकता था ? मेरी इस तटस्थता को कुछ मित्र पसन्द नही करत थे। असल मे यह सघप इतना उग्र न होता यदि समिति से कुछ आदमिया को निकालने का प्रयास आनन्दजी न न किया होता। जो समिति को दस वप से चला रहा हो और जिसे वहाँ जमी हुई भिन्न भिन्न विचारा वाली मण्डली से काम लेने का तजर्बा हो उसके सामने मैं अपनी राय क्या द सकता था ? मैं समझता था, दोप गुण किसम नही होने। पर, उसके लिए किसी को काम से निकलना अर्थात् रोजी से वचित करना अच्छा नही है।

इधर सम्मेलन मे भी सघप उग्र हा गया था। जहा ४०-५० हजार विद्यार्थी परीक्षाआ मे बैठते हो, वहा पाठय पुस्तको मे अपनी पुस्तका का लगना बडे लाभ की चीज है, हजारो लाखो का वारा न्यारा है। सरकारी टेक्स्ट बुक कमेटिया मे जो घूस का बाजार गरम दिखाई देता है उसका कारण भी यही लाभ है। जहाँ गुड हो वहाँ चीटियाँ जरूर आती हैं। इसीलिए सम्मेलन की परीक्षाआ के ऊपर प्रकाशक भनभनाने लगे। धीरे धीरे उन्होने सम्मेलन पर अपना अधिकार जमा लिया, और अब वे नग्न नत्य करना चाहते थे। दूसरे उसके विरोध पर उतारू हुए। सम्मेलन की नियमावली में सशोधन करने की इसलिए भी जरूरत थी कि उस पर व्यवसायिया का प्रभुत्व न जमने पाये, और विद्वान् साहित्यकार ही उसके भाग्य-निर्णायक हों। लेकिन, टडनजी की दीघसूत्रता को क्या कहा जाए ? जब समय था,

तब उन्होने ढिलाई की, अब मुकद्दमेबाजी शुरू हो गई। सम्मेलन को डूबने का डर नही, तो उसके काम के बिगडने का डर तो जरूर हो गया। पिछले पाच वष ऐसे थे, जब कि हिन्दी की परिभाषाओ के साथ साथ साहित्य निर्माण का बडा काम किया जा सकता था, लेकिन, मुकद्दमेबाजी ने उसे ठप्प कर दिया, और रिसीवर (आदाता) बैठकर राख के नीचे आग को बचाये रखन की कोशिश करता रहा।

२५ अगस्त को मन कुछ आकाश की ओर उडने और कहने लगा—"हृदय तरग तो सदा ही उडता रहता है। कभी उसकी तरगें ऊपर उठती है कभी नीचे। कभी गति तीव्र होती है, कभी धीमी। आज धीमी गति रही, न अधिक ऊपर न अधिक नीच उठी। ये तरगें व्यक्तिगत कारणो से भी होती है और समष्टिगत कारणो से भी।"

२६ अगस्त को एक मगोल प्रौढ आए, जो आज से ३० ३५ वष पहले अपनी जन्मभूमि को छोडकर तिब्बत चले आए थ। वहा वर्षों रहकर तिब्बती साहित्य पढते रहे। उनके साथ उनकी एक छोटी लडकी भी थी। बाह्य मगोलिया के एक छोट मोटे राजा के मत्रीपुत्र थे। रूसी क्राति के बाद उसका असर मगोलिया पर पडा। सुखे बातिर (सुखबहादुर) के नेतृत्व म मगोल जनता ने अपने स्वेच्छाचारी सामन्ता के खिलाफ विद्रोह किया। इसी समय यह अपने स्वामि-पुत्र के साथ मगोलिया से भागे। दोनो घोडे पर चढकर बडी मुश्किल से सिक्याग पहुचे और फिर महीनो बाद ल्हासा आए। दोनो कुछ दिनो तक पढते रहे। इन्होने तान्त्रिक शास्त्रो और विधियो का अध्ययन किया, फिर भारत चले आए। भारत म तिब्बती लामा तान्त्रिको की बडी प्रसिद्धि है। धीरे धीरे यह पटियाला के राजा के पास पहुँचे और वहा तान्त्रिक राजगुरु बन गए। राजा को जितना ही स्त्रियो और कुत्तो का शौक था, उतना ही तत्र मत्र का भी। आय से अधिक खच का परिणाम चिन्ता होता ही है, और उस चिन्ता को दूर करने के लिए राजा ने मन्त्र-तन्त्र की शरण लेनी चाही। हमारे मित्र वहाँ राजगुरु बनकर कई वष रहे। अच्छा बगला मिला था, नौकर चाकर भी थे और मासिक वेतन भी निश्चित था। जब महाराजा मरे, तो उनके उत्तराधिकारी ने पिता की सभी शौकानी की चीजो को हटाया। मगोल तान्त्रिक लामा भी घर से बेघर और बेरोज

गार हुए। १५-२० हजार रुपये उनके पास थे। मसूरी मे लण्ढौर बाजार के तिब्बती लोगा का वह जानते थे। यही चले आए। सीधे सादे लोग इनसे पूजा पाठ भी करवाते थे। चाहिए था, उस रुपये से कोई स्थायी काम करते। पर सो नही हुआ। एक तरुणी न दिल चुरा लिया। 'वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योपि गरीयसि", वह प्रेम मे पागल थे, लेकिन तरुणी वृद्ध के प्रेम मे पागल क्यो हा? दूसरा नौजवान बीच मे पडा और खाने-उडाने से जा ल्टा पटा बच रहा था उसे लेकर स्त्री भाग गई। लड़की भी छोड गई। नून तल लकडी की जोगाड करने मे बेहाल थे। दो दो चार चार आने की सूई धागा, छुरी कैंची जैसी चीजें लेकर सडक पर बैठ जाते और उससे जो आमदनी होती, उसी पर गुजारा करते थे। जाडा मे दिल्ली मे चले जाते वहा भी वही बात। मैंने उनसे कहा "तिब्बत चले जाइये। वहाँ गाँवो म नये स्कूल खुल रहे हैं, आपको पढाने का काम मिल जाएगा।" लेकिन दूध का जला छाछ को भी फूंक्कर पीता है। वह समझते थे कम्युनिस्टो से जान बचाकर मैं मगोलिया से भागा था, फिर तिब्बत के कम्युनिस्टो के पास जाऊँ, तो कही सूद-दर सूद सहित बदला व न लें। यहाँ रहते हिन्दी भी वह कामचलाऊ सीख गए, कुछ पढ भी लेते। पर, इतना ज्ञान नही था, कि उससे साहित्यिक सहायता का काम कर सकते। पटना, नालन्दा और दूसरी जगहो से मुझे मित्रो ने किसी तिब्बती अध्यापक के भेजने के लिए कहा था। मैंने चाहा कि वह वहाँ लग जाएँ। पर, उन्होंने अपने मन से ही नागिन की।

३१ अगस्त का कमला की पहली कहानी 'नया समाज' मे छपी देखी। लेखिका को अपार हर्ष हो, तो इसमे आश्चर्य क्या, जबकि पहले एक जगह से उनकी कहानी लौट आई थी। 'नया समाज" हिन्दी की सर्वोच्च पत्रिकाओ मे है। मुझे यह प्रसन्नता हुई कि अब कमला का हाथ खुलेगा, और लिखने के लिए तैयार होगी। हाथ खुला। उन्होंने अब तक आठ-नौ कहानियाँ लिखकर छपवाई हैं। उनकी भाषा और लेखन शैली मे संशोधन करने की गुंजाइश कम से-कम होती गई, पर दीर्घसूत्रता का कोई इलाज नही मिला। बरसात म हमारे बगले के सामने की विस्तृत पर्वतश्रेणियाँ हरियाली से ढँक जाती जो जाडा गुरू होने ही नगी होकर निस्तेज पहाडियो

जैसी बन जाती। दाहिनी ओर पर्वत पार्श्व वृक्षों से ढँके होते हैं। पहाड़ों में जिस तरफ धूप अधिक समय तक ठहरती है, उधर नमी की कमी के कारण जंगल नहीं उग पाते, और दूसरी तरफ नमी के कारण छायादार जंगल रहते है। इस नियम को अधिक वर्षा वाले पहाड़ों पर लागू नहीं किया जा सकता।

घड़ी यंत्र की तरह जीवन चलता रहे, यह अच्छी बात तो नहीं मालूम होती। पर, यदि निश्चित किए हुए काम में समय इस तरह बीते, तो उससे संतोष होता है। मेरे घंटे अपने आप काम के बीच से सरकते जाते। हफ्ते में सिर्फ रविवार का आना मालूम होता था, क्योंकि उस दिन काम को स्थगित रखकर मित्रों के साथ मिलना जुलना होता। बाकी छः दिनों के जाने का पता ही नहीं लगता। दिन बीतते सप्ताह, सप्ताह बीतते महीने, महीने बीतते वर्ष इसी तरह समय चला जाता है। "कल जो हमारे लिए तरुण थे, आज वे वृद्ध भी नहीं दीख पड़ते, और उनकी स्मृति मात्र बच रही है। पर, यह तो जीवन का नियम है।"

१८ सितम्बर को साथी महमूद जफर और डा० रशीदजहाँ आईं। मैं समझता था वे ठहरेंगे। रशीदा को मुझसे बड़ी शिकायत थी। कहती थी—"मैं आकर झगड़ूँगी।" पर, आध घंटा ही रह करके चले गए। झगड़ा यही करना था, कि मुझे वह उर्दू का विरोधी समझती थीं। रशीदा स्वयं उर्दू की अच्छी लेखिका थीं। हिन्दी का विरोध करने पर मुझे जिस तरह क्षोभ होगा वैसा ही क्षोभ करने का उन्हें भी अधिकार था, पर मैं अपने को उर्दू का विरोधी नहीं पाता। इतिहास ने हिन्दी को एक दूसरा रूप दिया जिसमें देशी भाषाओं को निकालकर अरबी फारसी के शब्दों को भरा गया। पर अब तो वह इतिहास की बात है। भाषा बन चुकी, और उसमें गालिब-जैसी प्रतिभाओं ने अनमोल रचनाएँ रची। यह निधि हमारी है। उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। मैं नहीं चाहता, कि पुरानी नई या आगे की उर्दू की कृतियों से हम वंचित होना पड़े। उनकी रक्षा होनी चाहिए। उर्दू का वृद्धि और विकास करने का मौका मिलना चाहिए। हाँ, यह मैं जरूर चाहता हूँ, कि उर्दू के निर्विवाद प्रचार के लिए, अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचने के लिए यह जरूरी है कि वह नागरी में भी छपे। राज्य भाषा सो भी फारसी अक्षरों में, बनाने का आग्रह नहीं किया जाए,

जिस इलाके या प्रदेश के अधिकाश लोग उसे चाहते हो, नही तो आमखा का वैमनस्य पैदा होगा, जो उर्द के लिए भी अनिष्टकर होगा। रशीदजहा की कितनी बाते याद आती हैं। जब समय से पहले ही इस प्रतिभाशालिनी महिला के चल बसने का खयाल आता है, तो बहुत दु ख होता है। वह झगडा करने के लिए फिर नही आई। महमूद उनके प्राणो को बचाने के लिए मास्को ले गए, जहा से वह अकेले लौटे।

मसूरी मे दो सीजन (सैलानिया के मौसिम) होते हैं। एक मई जून का वर्षा शुरू होने तक एक या डेढ महीने मे, कभी उससे भी पहले खतम हो जाता है, दूसरा अक्तूबर मे वर्षा के बाद प्राय एक महीने का होता है। मसूरीवालो को अपने नगर की अवस्था दिन पर दिन बिगडते देखकर चिता होनी स्वाभाविक है। वे हर तरफ हाथ पैर मारते हैं। अक्तूबर के मौसिम को अधिक भीड भाड का करने के लिए महोत्सव (फेस्टिवल) करने का रवाज चल पडा है, जिसमे दस बीस हजार स्वाहा कर देने के सिवाय और लाभ तो देखने म नही आता। अबकी साल फेस्टिवल के उद्घाटन के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्य म त्री श्री गोविंदवल्लभ पन्त आए। स्वागत के लिए चार-पाँच द्वार बनाये गए थे। भाषण हुए। इससे मसूरी की नैया भवर से बाहर नही निकल सकती। उसके निकलने का एक ही रास्ता है, चार-पाच हजार कमचारियो वाले दिल्ली के कुछ दफ्तर यहाँ लाये जाएँ। वहा ऐसे दफ्तर है, जिनको दिल्ली म रहने की कोई जरूरत नहीं। शाम को माल रोड पर किताब घर से कुल्डी तक कुछ गुलजार जरूर मालूम होने लगता था। अधिकाश सलानी पजाबी थे। बीच बीच म कुछ बिहारी, बगाली भी दीख पडते थे।

३० सितम्बर को रविवार था। पहले सीजन म तो कम ही, लेकिन दूसरे सीजन मे कभी-कभी देहरादून वाले भी पिकनिक के लिए मसूरी पहुँच जाते हैं। आज प० गयाप्रसाद शुक्ल के साथ डी० ए० वी० कालेज के २७ छात्र आए। कम्पनी बाग मे सवा ६ बजे कवि-गोष्ठी चली। कुछ लडको न अपनी कविताएँ पढी, एक को छोडकर बाकी को निरी तुकबन्दी भी नही कह सकते थे। तुकबन्दी क लिए भी तो कुछ छन्द और दूसरी बातें सीखने की जरूरत होती है, जिसको हमारे तरुण जरूरत नही समझते। अगर साहित्य

उनका विषय है, तब तो कुछ पढने के लिए मिल जाता है, नही तो स्वयम्भू कवि अपनी धुन म चाहे जो भी गायें, उन्ह सफलता की आशा नहीं हो सकती। उसके बाद लडको के प्रश्नो का उत्तर मुझे देना पडा। दोपहर तक गोष्ठी बडे आनन्द से चलती रही। फिर हम घर लौट आए। साथ म भैया, भाभीजी और शुक्लजी के साथ कुछ और तरुण भी थे। लोगो को अपनी ओर खीचने के लिए घुडदौड करने का भी आरम्भ इस साल हुआ। म्युनिसिपैलिटी से बाहर और हमारी कोठी के नीचे आधे मील पर अँग्रेजो ने लम्बा-चौडा मैदान पोलो के लिए बनवाया था। वह खाली पडा था। उसी म घुडदौड कराई गई। सोचा, क्या जाने इसी से मसूरी का भाग्य लौटे। उस साल पहला इन्तजाम था इसलिए अच्छे घोडे नही मिल सके, और यही के किराये पर चलने वाले लद्दू घोडो को दौडाया गया। घुडदौड म पैसे लगाने वाले भी निकल आए। यद्यपि उनकी सख्या इतनी नही थी, कि वह घुडदौड का आश्रय बन जाते। हमारे ऊपर खाली "हन हिल" कोठी से पोलो मैदान दिखाई पडता था, इसलिए हम यही से उसे देख सकते थे, यद्यपि आवाज यहा तक नही पहुँच पाती थी। घुडदौड होने जा रही है, जूआ होगा, इसके विरोध म आज सवेरे नगर मे जुलूस भी निकाला गया। इसका यह लाभ तो था, कि अनजान लोगो को भी घुडदौड का पता लग गया। पर, जुलूस मे उत्साह नही दीख पडता था, न उसम अधिक आदमी थे। मसूरी अँग्रेजो के शासन काल म भी कुछ सालो से म्युनिसिपल कमटी से वचित थी, उसके राज बरोज के काम का प्रबन्ध सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी करता था। सर्वेसर्वा देहरादून के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। अँग्रेजो के समय से ही नौकरशाही की ऐसी परम्परा है, कि वह जनता से कोई आत्मीयता नही स्थापित कर सकती। इस परम्परा को काग्रेसी सरकार ने भी कायम रखा।

४

दूसरा जाड़ा

अंग्रेजों के जाने के बाद होनेवाले पहले चुनाव का समय आया। संविधान बनाने से पहले ऐसी बातें कही गई थीं, जिससे मालूम होता था, कि हमारा शासन नीचे से ऊपर तक लोकतांत्रिक होगा। बीसियों वर्ष से कांग्रेस ने भी घोषणा दोहराई थी, कि हमारे प्रदेश भाषावार बनेंगे। लेकिन, शासन के अपने हाथ मे आने पर और कांग्रेस के सगठन के आचूड भ्रष्टाचार मे डूब जाने के बाद नेताओं को मालूम होने लगा कि इतनी लोकतंत्रता हमारे हक मे अच्छी नही होगी। पहले प्रातो के राज्यपालो का लोक निर्वाचित होने की बात कही गई थी, लेकिन सविधान बनाते वक्त इसको हटाकर राज्यपाल को केन्द्रीय सरकार का पुन बना दिया गया। अब ससद (पार्लियामेट) के एक भवन (राज्य-सभा) को भी निर्वाचन से वचित कर दिया गया, और उसकी जगह ससद के लोक सभा के सदस्यो को उसे चुनने का अधिकार दिया गया। जनता की राय को तभी ससद या विधान सभा ठीक तरह से प्रकट करनेवाली कही जा सकती है, यदि पार्टियो को मिले वोटो के अनुसार उनके सदस्य माने जाएँ। ऐसा होने पर निश्चय ही कांग्रेस सर्वेसर्वा नही बन सकती। इसीलिए, आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त नही माना गया।

मसूरी मे भी चुनाव की धूम मचनेवाली थी। कुछ मित्रो ने मुझसे कहा, कि हम लोग आपको पार्लियामेट मे भेजना चाहते है। मैंने कहा मैं खडा होना नही चाहता। मैं तो वोटर भी नही हूँ। वोटर होने के लिए उस

स्थान म छ महीन रहन की शत थी, और मैं मसूरी म अभी तीन महीने से आया था। ३ अक्तूबर को यह भी पता लगा, कि अब सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी गाधी टोपी को लाल रग म रग लिया है। काग्रेस के भ्रष्टाचार और उसके प्रति लोगो म जो दुर्भाग्य पाया जाता था, उससे कितनी ही पार्टिया और दूसरे लोग समझन लगे, कि काग्रेस की नैया तो अब डूबेगी ही, इस लिए हमे उसके साथ लगे रहन की जरूरत नही। सोशलिस्ट पार्टी चुनाव के मैदान म आई। काग्रेसवाले अपने उम्मीदवार सब जगह खडे कर रहे थे, सोशलिस्ट भी नही चाहते थे, कि उनके उम्मीदवार किसी चुनाव क्षेत्र म न रह। यदि सोशलिस्ट पार्टी ने कम्युनिस्ट पार्टी से समझौता किया होता, तो इसमे शक नही कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकाश चुनाव-क्षेत्रो म काग्रेस को सफलता नही मिली होती। पर, जाने या अनजाने सोशलिस्ट पार्टी ने माना समाजवाद को भारत म न आने देने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

हार होने मे कोई सन्देह नही रह गया, तो जर्मनी ने हथियार डाल दिया। जापान भी बिना शत वही करन के लिए तैयार था। उस समय अमेरिका ने जापान के दो नगरो पर परमाणु-बम फेंककर पूजीवाद के आततायीपन का प्रमाण दिया। निरीह मनुष्यो को इस तरह मारने का प्रयोजन केवल यही था, कि रूस अमेरिका की थैलीशाही के एकाधिपत्य को दुनिया के ऊपर कायम होन म बाधा न डाले। अब तक वह उसी को लेकर बढ बढकर गाल बजाता, सारे रूस की सीमा के ऊपर पहुँचकर लडाई के लिए ताल ठोक रहा था। यह सब होते भी ६० करोड आबादी का चीन देखते-देखते अमेरिका के हाथ से निकल गया। सोवियत के नेताओ न इससे पहले ही कह दिया था, कि परमाणु बम पर अब अमेरिका की इजारादारी नही है। पर, अमरिका इसे मानन के लिए कैसे तयार होता? दुनिया की सारी जातें अमरिका के परमाणु बम के ऊपर नजर गडाए हुई थी। वह समझती थी, कि इसाके कारण अमरिका आज दुनिया का सबसे बडा शक्तिशाली देश है। अगर उन्हे मालूम हो जाए कि रूस भी इस हथियार मे पीछे नही है तो उनकी हिम्मत टूट जाती। अमेरिका अब तक इनकार करता रहा। लेकिन, अक्तूबर के पहले सप्ताह म रूस ने

नही, बल्कि अमेरिका ने घोषित किया, कि सोवियत रूस मे दूसरे परमाणु बम का विस्फोट हुआ।

हिन्दी—७ अक्तूबर को खुरजा डिग्री कालेज के प्रिंसिपल श्री पी० डी० गुप्त आए। वे आगरा विश्वविद्यालय के प्रभावशाली स्तम्भो और योग्य प्रिंसिपलो मे है। कोई हिन्दी भाषाभाषी जब अग्रेजी मे बोलने का आग्रह करता है, तो मुझे न जाने कैसा मालूम होता है। वह कह रहे थे, ' विद्यार्थियो के अनुशासन भग करने मे विद्यार्थी ही केवल दोषी नही है।" हरेक योग्य अध्यापक यही कहेगा। यदि वह अपने विद्यार्थियो को दुधमुहा बच्चा नही मानता और विद्यार्थियो के भावो का भी आदर करना जानता है, तो उसे कभी विद्यार्थियो के अनुशासन भग को देखने का अवसर नही मिलेगा। वह कह रहे थे, विद्या की योग्यता विद्यार्थियो मे कम होती जा रही है। साथ ही यह भी बतला रहे थे, कि अग्रेजी की योग्यता की कमी जिस तरह तेजी से गिरती जा रही है, उसके कारण बडी हानि होगी। हिन्दी के उच्च शिक्षा का माध्यम होना गुप्ता साहेब अभी दूर की बात, या वाछनीय नही समझते थे। अध्यापक और विद्यार्थी हिन्दी पुस्तको और हिन्दी भाषा का इस्तेमाल अधिकाधिक कर रहे थे। इसे हटाना अब सभव नही था। उनको अफसोस था, कि अग्रेजी के शिक्षा माध्यम होने पर सारे भारत मे जो उच्च शिक्षा की एकता देखी जाती है, वह हिन्दी के कारण भग हो जाएगी।

शायद फेस्टिवल के सम्बन्ध मे ही मसूरी मे कवि सम्मेलन भी किया गया। लेकिन, जिनके पास पैसा था, वह ऐसे सम्मेलन के प्रेमी नही थे। दूसरो ने कह दिया बुला लो। बहुत से कवि यहा पहुँच गए। लेकिन, यहाँ सम्मेलन के स्थान का न कोई प्रबन्ध था, न खाने पीने का। बेचारे कवियो को बैरग लौटना पडा। श्री सत्येन्द्रजी (बद्रीपुर) इस फजीहत के बारे मे बतला रहे थे।

हिन्दी के बारे मे नेहरूजी कहते है वह कठिन नही होनी चाहिए। वास्तविक बात तो यह है, कि वह चाहते हैं, बिना पढ़े लिखे बोलचाल से जितना उनका ज्ञान है उसी को हिन्दी भाषा का मान लिया जाए। ७ अक्तूबर को रेडियो पर वह बोल रहे थे, जिसमे निम्न शब्दो का उन्होने

।, हादसा, यकीनन, सदमा,
प्रयोग किया था—वाक्यात, दिमाग, वाक्यखतरनाक, गलत तरीके, गलत
मौके, गायव, इन्सानियत, जज़बा कश्मकश, वहिन्दीवाले इन शब्दो को नही
नतीजे, जलसे, इजहार, खयालात आदि। धारण की समझ के बाहर के
इस्तेमाल करते और ये शब्द यकीनन जनसा। इसपर नेहरूजी का फतवा
हैं। हिन्दी पढे भी इन्हे समझने म असमथ हैं उन्होने भी मौलाना के साथ
है हिन्दी गलत रास्ते पर जा रही है। पहले (हा जाने पर चाहते हैं, कि
उदू का पक्ष लिया था अब हिन्दी के मजू
हिन्दी उदू का रूप ले। प्रान मन्त्री लियाकत अली को

उसी दिन मालूम हुआ, पाकिस्तान के प्र्से निकला था—"पाकिस्तान
किसी ने गोली मार दी। मरते वक्त उनके मुह पाक्त अली दोना पाकिस्तान
की खुदा हिफाजत करेगा।" जिन्ना और लिकिस्तान की सरकार मे शर
के सर्वेसर्वा थे और दाना ही विदेशी थे। पा पजाबियो का छूट मिली।
णार्थी मुसलमान छा गए, पूर्वी पाकिस्तान में आश्चय नही। इस समय
इसके लिए लोगा के मन मे ईर्ष्या हो, तो कोन्ल थे। अधिकार गवनर जेन
ख्वाजा नजीमुद्दीन पाकिस्तान के गवनर जेनरल मे होता है, यह समझ कर
रल के हाथ मे नही, बल्कि प्रधान मन्त्री के हऔर रातारात प्रधान मन्त्री बन
नजीमुद्दीन अपनी गद्दी से नीचे खिसक जाए रही, और ऊपर से अमेरिका
गए। पाकिस्तान मे स्थिति बरावर डावाडाल म भी भ्रष्टाचार, और कम
का पजा उस पर मजबूत होता गया। भारत्रन पर वे कुछ नही है।
जोरिया हैं लेकिन पाकिस्तान से मुकाविला व भोज दिया। हम दोना अपन

१२ अक्तूबर को किशनसिह ने मोमो का खाने वाला हरेक आदमी इसे
मन का ख्याल करके यही समझते थे, कि मासकिन उन्हे पसन्द नही आया।
पसन्द करेगा। भैया को भी साथ ले गय। लेसवसे पहला पक्का मकान है,
वहाँ से मलिगार गए। मलिगार मसूरी कापी वप पहले जिन दीवारा का
यद्यपि यह कहना ठीक नही है, क्याकि सवा इसम कई दजन कमरे हैं और
बनाया गया था, वही अब भी मौजूद है। 1दिखाई पडता है। सर्वे विभाग
स्थान ऐसी जगह है, जहाँ से दूर दूर का दृश्य यहाँ पर भरे हुए थे। मेहता
का एक दफ्तर मसूरी म रहता था, जिसके कर्मन गए थे। चाय पीने का समय
जी सपरिवार यही थे। उनके यहाँ हम चाय प

नही था, तो भी उन्होंने तैयारी कर रखी थी। वहा से ५ बजे लौटकर भैया के यहा दुबारा चाय पी।

२१ अक्तूबर (इतवार) मेहमानो के आने का दिन था। पहले एक तिब्बती गेशे(पडित)आये। वह हिन्दी नाममात्र जानते थे। फिर भैया भाभी और मेहताजी आये। पीछे मेरठ वाली शकुन्तलाजी के साथ उनके सम्बन्धी मुरादाबाद के एक तरुण साहु आये। मैंने अपनी जीवनी मे मुरादाबाद जाने और वहाँ पर एक साहुजी के यहा रहने का जिक्र करते लिखा था, कि उन्होंने दस दरियाई कमडल रख रखे थे, और चाहते थे कि नौ और साधु मिल जाएँ तो दसवा बन कर मैं घर से निकलूँ। यह सख्या दा से कभी अधिक नही हुई। कोई घुमक्कड दूसरो के आने की प्रतीक्षा मे महीनो या वर्षों उनके पास क्यो रहता? आखिर मे मेल्को की तुलाई ही सिद्ध हुई होगी जैसा कि मैंने कुछ सप्ताह रह कर वहा से खिसक कर किया। तरुण ने बतलाया कि वह मेरे ही चचेरे परदादा थे। मुझे मालूम था कि साहु की माँ और छोटे भाई ने मुझे खिसकने के लिए बहुत प्रेरित किया था। तरुण ने यह भी बतलाया, कि वह तो नही रहे, लेकिन मेरे परदादा अब भी जीवित हैं वृन्दावन वास करते है।

२२ अक्तूबर को भैया और भाभीजी की विदाई की चाय थी। उस दिन हम 'लक्समौंट' गये। बरसात के महीने हमारे बहुत हँसी खुशी से गुजरते थे, क्योंकि जून या जुलाई मे आकर भया और भाभीजी अक्तूबर मे यहाँ से लौटते थे। अब फिर अगले साल उनसे मुलाकात होने वाली थी।

२८ अक्तूबर वाले रविवार को तरुण शिव शर्मा एक ब्रजवासी सगीतज्ञ तरुण को लेकर आये। सगीतज्ञ के सीधे सादे रूप का देखकर मालूम होता था कोई गँवार होगा। पर भेस से भूल नहीं करनी चाहिए, इसका मुझे काफी तजर्बा था। तरुण एफ० ए० तक पढ़ा हुआ था। सगीत उसकी खानदानी विद्या थी इसलिए उसे मन लगा कर सीखा था। यहाँ ब्रजवासी डाक्टर भादुरी के साथ अब की गर्मियाँ बिताने [illegible] आया था, और कुछ कथा-वार्त्ता करके खर्च चला लेता था। सगीत से मेरा द्वेष नहीं है, यद्यपि रूढिग्रस्त सगीत को मैं पसन्द नहीं करता। मैं यह भी चाहता हूँ कि सगीत की स्वर लिपि [illegible] होनी चाहिए। मुरादाबाद [illegible]

लिपि) आज सारे विश्व में चल रही है। सारे यूरोप, सारे अमेरिका, एसिया के भी सभी देश और जापान उसको ही अपनाए हुए हैं। हमारे संगीत को बाहर वाले इस नोटेशन द्वारा आसानी से समझ सकते हैं। जिस तरह सारी दुनिया का एक साथ एक नाप-तौल होने से सबको सुभीता है, और अपनी डेढ़ ईंट की अलग मस्जिद बनाना हानिकारक है, उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय नोटेशन के बायकाट करने की सोचना हानिकर और बेकार है, क्योंकि आखिर उसे अपनाना ही पड़ेगा। यूरोपीय नोटेशन में यह भी लाभ है कि वह ग्राफ या फोटो जैसा है। देखने मात्र से किसी राग की दूसरे राग से कितनी समानता और कितनी असमानता है यह मालूम हो जाता है। शिक्षित तरुण को देखकर मैंने कहा, कि संगीत का तुलनात्मक अध्ययन करो और लोकगीतों का भी संग्रह करके उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्वरलिपि में बद्ध करो। संगीत घुमक्कड़ के लिए स्वावलम्बी बनाने का बहुत भारी साधन है इसका उदाहरण वह तरुण स्वयं था। वह भारत में कितनी ही जगहों में घूमा हुआ था, और संगीत बल पर ही।

पैसा कम ही रह गया था। जो अग्रिम लिया था, उसमें २० हजार मकान और पलंग पर ही खर्च हो गये थे बाकी भी उठ चुका था। खर्च के घटाने के लिए सोचता—रसोइये को हटा दें, अपने हाथ से खाना बना लिया करें। पर, उसके साथ बरतन माजने का भी प्रश्न उठ खड़ा होता था, जिसके लिए नीचे के शहर की तरह कुछ घंटे काम करने वाले नौकर नौकरानियां यहां नहीं मिल सकते थे।

३० अक्तूबर को दीवाली थी। मैंने तो मसूरी की कोई दीवाली नहीं देखी। एक आदमी को घर देखने की भी जरूरत पड़ती थी। कमला और लोगों के साथ जरूर चली जाया करती। आदमी को त्यौहारों की बड़ी आवश्यकता होती है। दु:खी जीवन में भी उनके कारण जरा देर के लिए सरसता आ जाती है। मसूरी के दूकानदार बेचारे अपना ही मांस खाकर जी रहे थे, तो भी उन्होंने भी अपनी दूकानें सजाई थीं। हमारे आसपास भी पाँच छ दूकानदार हैं जिन्होंने भी लक्ष्मी के आवाहन की कोशिश की।

श्री कृष्णप्रसाद दर इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस के वस्तुतः विधाता थे। उन्होंने ही एक छोटे से प्रेस को बढ़ा कर उसे एक बहुत बड़े प्रेस का रूप

दिया, और सबसे बडा काम जो किया, वह था छपाई सफाई में लॉ जर्नल प्रेस का भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ प्रेसो मे हो जाना। १९३३ से ही मेरी पुस्तके वहा छपने लगी थी। छपाई-सफाई के साथ जिस मुस्तैदी से वह काम करते थे, उसके कारण मैं उनका बहुत प्रशसक हू। कोई भी वर्धिष्णु व्यवसाय अधिकाधिक पूजी की माग करता है। व्यावसायिक उन्नति को ही एकमात्र देखने वाला वह पुरुष दूसरे पहलू को नही देखता। ला जर्नल प्रेस मे मशीनो और काम के बढने का परिणाम यह हुआ कि वह पैसे वाला के हाथ मे चला गया, तो भी उन्होने दर साहब की योग्यता को देखकर उन्हे मैनेजर के पद पर रखा। प्रेस ने अपना प्रकाशन भी आरम्भ करना चाहा। दर साहब ने मुझे पुस्तक देने के लिए लिखा, अग्रिम भी दिया और मैंने 'गढवाल', 'कुमाऊँ' 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' तीन पुस्तको को देना स्वीकार किया। 'गढवाल' का वह छाप सके, 'कुमाऊँ' मोनो मे पच हो चुका था। उसी वक्त मालिको को दर साहब की जरूरत नही रह गई और उन्होंने उन्हें हटा दिया।

नवम्बर मे भूत सात महीने का हो रहा था। दिन मे सेर आटा और हफ्ते मे दो दिन आधा आधा सेर गोश्त उसे मिलता। अभी वह लम्बा छरहरा था। खूब इधर उधर दौडता था। उसको क्या पता था, कि देश मे अन्न का कितना कष्ट है?

३ नवम्बर तक सर्दी आ गई, और केवल दोपहर को ही उसका पता नही लगता। नौकर चला गया था और कमला को भोजन ही नहीं बनाना पडता था, बल्कि बरतन भी मलना पडता था। कमला का [illegible] की तैयारी भी करनी थी।

श्रीमती मोहिनी जुत्शी—मोहिनीजी [illegible] महिला हैं। कश्मीरी पण्डितो के परिवार मे [illegible] ब्याही गई लखनऊ के इजीनियर मुन्नी [illegible] के दादा-परदादा अफगानिस्तान में [illegible] का जमाना बिगडा तो वह [illegible] फारसी बोलती थी। [illegible] याद मे ही चला था। [illegible]

पहले ही से अपने बच्चों को अग्रेजी पढ़ाने लगे। यद्यपि लडकियों के लिए उतनी अग्रेजी की माग नही थी लेकिन २०वी सदी के आरभ मे पैदा हुई मोहिनीजी को अग्रेजी मैट्रिक पास करने का मौका मिला, और उसके बाद अध्ययन उनके लिए व्यसन बन गया। अग्रेजी के साथ उर्दू से भी उनका शौक था, उर्दू कविता कहने लगी। उनके कविगुरु प० ब्रजमोहन दत्तात्रेय 'कैफी' थे। और उनकी कविता का मैं टौन हाल की सभा मे सभापति रहते सुन चुका था। वह ४ नवम्बर को और भी सुनने की मैंने इच्छा प्रकट की। जुत्शी साहब बहुत दिनो तक गोरखपुर मे डिस्ट्रिक्ट इजीनियर रहे, अब अवसर प्राप्त थे। पति पत्नी दोनो की रुचि एक तरह की नहीं थी लेकिन दोनो म सौहार्द्र बहुत था। जुत्शी साहब हरेक बात मे बडे उदार विचार रखते है। दोनो के तीन पुत्रिया और तीन पुत्र है। इस दम्पती को व्याव हारिक ज्ञान कितना है यह इसी से मालूम होगा, कि उन्होने अपनी सन्तानो को उच्च शिक्षा दिलाते हुए कला की ओर नही बल्कि साइस की ओर बढाया। एक लडका डाक्टर होकर इग्लैंड पढने गया, और वही प्रेक्टिस करते विवाह करके बस गया। अग्रेज बहू के लिए सास के दिल मे वैसा ही स्नेह है, जैसा किसी कश्मीरी लडकी के लिए होता। एक लडका बाप की तरह इजीनियर और तीसरा रसायन की इजीनियरिंग करके अमेरिका सात-आठ वर्षा तक रहा। पहले तो जान पडता था, कि वह अमेरिका से नही लौटेगा। इसके लिए मोहिनीजी को बहुत चिन्ता रहती थी। तीनो लडकियो को उन्होने डाक्टर बनाया। दोनो कश्मीरियो स बाहर अपना ब्याह किया, पिता माता का उन्हे पूरी तौर से आशीर्वाद मिला। ऐसे सुसस्कृत दम्पती से परिचय और सम्पर्क होना बडी प्रसन्नता की बात है, इसे कहने की जरूरत नही। एक साल सीजन म वे नही आए, तो हर रविवार को उनका अभाव खटकता था।

हर साल की तरह अब के साल भी ७ नवम्बर का रूसी क्रान्ति का महोत्सव आया। रेडियो द्वारा मैं भी उस महोत्सव मे शामिल हुआ। यह महोत्सव सिर्फ रूसियो और सोवियत की दूसरी जातियो के लिए नहीं, बल्कि सारी दुनिया के श्रमजीवियो का महान् पर्व है। साम्यवाद का पहले पहल साकार रूप मे पृथ्वी पर रूस म ही अवतीर्ण हुआ। आज वह दुनिया

म अकेला नही है। पूर्वी युरोप मार्क्स के बतलाए पथ पर चलकर सुख औ समद्धि की ओर तेजी से बढ रहा है। युगो का पिछडा महान् चीन भी उनसे कदम से कदम मिलाकर चल रहा है। भारत को अंग्रेजो से छुटकारा लिए चार वर्ष हो गये। यहाँ कांग्रेस ने नैया को भ्रष्टाचार के दलदल फँसाकर लोगो को परेशान कर रखा है, जब कि दो ही वर्ष मे चीन कहाँ कहाँ चला गया ?

कुल्लू-लाहुल के सीमान्त पर जास्कर, जम्मू कश्मीर का एक भाग जहाँ के लोग लद्दाख की तरह तिब्बती भाषा और बौद्ध धर्म के अनुया हैं। जोमा देकोरो न हँगरी से आकर यही वर्षो रहते तिब्बती पढी। तिब्ब भाषियों के साथ मेरी विशेष आत्मीयता है। लाहुल के ठाकुर मगलच और डा० भगवानसिंह ने अपने पत्र मे लिखा कि जास्कर के लोग घ खा रहे हैं। पाकिस्तानी एक बार उनके भीतर घुस आए थे, जहाँ से भगा दिये गए, लेकिन जास्करियो की कोई खोज-खबर लेनेवाला नही है अपने पुराने सम्पर्क के कारण राष्ट्रपति हो जाने के बाद भी राजेन्द्र बाबू पास ऐसी तकलीफो को चिट्ठी द्वारा पहुँचाने से मैं बाज नही आता थ मैंने उन्हे लिखा। जवाब से मालूम हुआ, कि सहायता भेज दी गई है। लेकि सरकारी सहायता को बीच मे उडा लेनेवालो की सख्या कम नही होती।

रूस से आए अब चार वर्ष हो गए थे। कई बार अपने मन मे भी आ और मित्रो ने भी कहा, कि इस यात्रा को लिख डालें। अन्त मे १२ न म्बर को मैंने 'रूस मे पच्चीस मास" को लिखना शुरू किया। यह १९ के अन्त मे १९४७ के अन्त तक की यात्रा थी, और उसके लिख लेने के ब मुझे इच्छा नही हुई, कि तृतीय जीवन यात्रा मे उस काल को भी शामि करूँ।

कई दिनो अपने हाथ से भोजन बनाने और बरतन साफ करने के ब कहने पर पडोसिन बरेठिन (धोबिन) ने भोजन बनाना स्वीकार किय मातबरसिंह से वह अच्छा भोजन बनाती थी। इससे कमला को पहले फुरसत मिली।

नवम्बर के मध्य तक सफेद की पत्तियाँ गिर गई थी, और वे पेड से दिखाई देने लगे। चेस्टनट (पाँगर) और नासपाती की पत्तियाँ

पड गई थी, कुछ दूसर वक्षा के पत्ते क्लेजी रग के हा गए थे। एक बिना गध का सफेद फूल था जिसे मैंने वेहया फूल नाम रख दिया था, क्योंकि कही डाल दिया जाए तो वहा से हटन का नाम नही लेता। हमन एक जगह उसके लिए स्थान छोड दिया था, और केवड के तरह के पत्ता वाला यह पौधा हर साल वहा झुरमुट बाधकर खडा हा जाता। जाडा म सबसे पहले यह सूखता और बसत म सबसे पहले हरा होने लगता। वसे इसके सफेद छोड कर और भी रग के फूल सुगधो न हान पर भी गुलदस्ते की शोभा बढाते है।

१८ नवम्बर को श्री सत्यप्रकाश रतूडी आए। कई वर्षो स उन्होंने मसूरी से एक साप्ताहिक पत्र "हिमाचल" निकाल रखा है। वैसे मसूरी स तीन अग्रेजी पत्र न जाने कितन वर्षो से निकल रहे है। उनका काई खरीदार है, इसका भी पता नही। पर मसूरी के स्टोर और अग्रेजी ढग के दूकानदारा को अपने अस्तित्व का पता हरक बगले तक पहुँचाना जरूरी है, यह काम ये अग्रेजी पत्र करते हैं जिसके कारण उन्हे विज्ञापन मिल जाते है। यहाँ के सैलानी अधिकतर काले चमडे वाले अग्रेज होते हैं। अग्रेजा के नौ वर्ष जान के बाद आज भी मसूरी की सडको मे जितनी अग्रेजी बोली जाती हैं, शायद उतनी अग्रेजा के समय मे भी नही बोली जाती होगी। आज जितनी लिप्सटिक और पौडर का खच यहाँ है, उतना अग्रेजो के समय म भी नहीं रहा हागा। ऊपर से ढेर का ढेर काजल भी हमारी सुन्दरिया को चाहिए। ऐसे सैलानिया का हिन्दी "हिमाचल" की क्या जरूरत ? मुझे यही समझ म नही आता था कि रतूडीजी कैसे इसे चला रहे है। कभी वह किसी के यहाँ नौकरी करते, और पेट काटकर आठ पृष्ठ के हिमाचल को निकाल देते। अध्यापक रहकर भी उन्होंने ऐसा किया। जब इस तरह आदमी जुटा हुआ हो, तो "हिमाचल" क्यो नहीं निकलता। कभी-कभी कुछ हफ्ता या महीना के लिए वह अस्त भी हा जाता पर फिर प्रकट जरूर हाता। उसम मसूरी की ही खबरें नही रहती, बल्कि टेहरी गढवाल की खबर भी होती, इसलिए बाहर उसके कुछ ग्राहक थे। जब यहाँ उसका चलाना मुश्किल हा गया, तो रतूडीजी उसे ऋषिकेश ले गए। वहाँ शायद अधिक अनुकूल परिस्थिति है और अब भी वह निकल रहा है।

राजेन्द्र बाबू के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री चक्रधर शरण के पत्र से मालूम हुआ, कि राष्ट्रपति ने जास्कर सम्बन्धी मेरे पत्र को अपने पत्र के साथ प्रधान मन्त्री के पास भेज दिया है। चक्रधर शरण तब से राजेन्द्र बाबू की छाया की तरह से रहे, जब वह बिहार मे अधनग्न फकीर की तरह कांग्रेस के कामो मे दिन रात लगे रहते थे, यद्यपि सभी जानते थे, कि राजेन्द्र बाबू मे असाधारण प्रतिभा और त्याग है, पर, वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति होंगे, इसका किसको पता था? राजेन्द्र बाबू ने जिसको एक बार अपना लिया, वह सदा के लिए उनका हो गया। मुझे इस समय याद आते थे मथुरा बाबू, जो असहयोग मे वकालत छोड़कर पीछे राजेन्द्र बाबू के साथ हो गए और चक्रधर बाबू की तरह बराबर उनके साथ रहे। लेकिन मथुरा बाबू, न भारत को स्वतन्त्र देख सके, न अपने "बाबू" को इस महान पद पर आसीन। उस दिन जब राजेन्द्र बाबू का प्रथम राष्ट्रपति होना निश्चित हो चुका था, उसी समय एक दिन पार्लियामेन्ट भवन मे एकाएक राजेन्द्र बाबू के साथ चक्रधर बाबू से मुलाकात हो गई। उन्होने पहले ही की तरह पैर छूकर मुझे प्रणाम किया। मैं इसे नही पसन्द करता, लेकिन, किसी का हाथ कैसे रोकता! भावी राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी होने के बाद भी उनकी सरलता और सौजन्यता इस बात से स्पष्ट थी। चक्रधर बाबू के बारे मे इतना कहने की इसलिए भी आवश्यकता पड़ी, कि थोड़े ही समय तक वह राष्ट्रपति के सहायक रह सके। फिर उनका मस्तिष्क बिगड़ गया। आज वह कांके (रांची) के पागलखाने मे है। वहां रखने के सिवा अच्छी तरह रहने का कोई दूसरा स्थान नही रहा था। मनुष्य का मस्तिष्क उसके जीवन के लिए कितनी मूल्यवान् निधि है।

"रूस मे पच्चीस मास" के लिखाने के समय यह ख्याल आया, कि १९३३ से १९३६ तक की कितनी ही यात्राएं जो बिना लिखी पड़ी है, उन्हे भी लिखवा देना चाहिए। "मेरी जीवन यात्रा" के तीन भागो मे मैंने जन्म से ६३ वर्ष पूरा करने तक की बाते लिखी है। घुमक्कड़ी करने के समय की यात्राओं को मैं छोड़ नही सकता था, उनमे से कितनो को मैं पहले ही लिख चुका था। "रूस मे पच्चीस मास" का छोड़कर बाकी यात्राओं का सक्षेप मे इस पुस्तक मे दे रहा हूँ, जिसके कारण पुनरुक्ति भी हुई है।

२२ नवम्बर की डायरी में मैंने लिखा "२०५० रुपये बैंक में रह गए हैं जिनमें से ५०० उदयनारायण पाडे को भेजने हैं, फिर १५५० ही रह जाते हैं।" अभी तक मैं दूसरों के मन से आर्थिक पीडाओं को देखता था, क्योंकि मैं अजगरी वृत्ति से रहता था, न अपना कोई घर था, न अपना परिवार। अतिथि बनाने के लिए देश और विदेश में सैकडो गृहपति तैयार थे, इसलिए मुझे नून तेल लकडी की फिक्र नहीं हो सकती थी। यात्राओं और शोध-कार्य के लिए पैसो की जरूरत जरूर थी, लेकिन उनके अभाव में काम में अड़चन होती, तो उन्हें कुछ दिनों छोड़ देने में भी कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन अब वह बात नहीं थी। मैं गृहपति था, गृहपति के हरेक कर्तव्य का पालन करना चाहता था। खासकर अतिथि सत्कार में तो मुझे बडा आनन्द और सन्तोष आता था। समझता था, मैंने जीवन भर जो आतिथ्य पाया है, उसका थोडा सा बदला इस रूप में दे रहा हूँ—अतिथि ऋण से उऋण होने का यह मार्ग है। सबसे अधिक चिन्ता इसकी होती थी कि गर्मियों में कहीं ऐसी स्थिति न हो जाए कि "तृणानि भूमिरुदक वाक्चतुर्थी" सत्कार का मेरे पास साधन रह जाय।

२५ नवम्बर को दिन भर बादल रहा। कल रात और आज की वर्षा ने धरती को ऊपर ऊपर से भिगो भर दिया। नासपाती की पत्तियाँ अरुण वर्ण हो गई, और दूसरे साग कितने ही सूख गए। गाठ गोभी राई, बन्द गोभी, पहाडी मटर पर जाडे का कोई वश नहीं चलता। ये बर्फ में ढँक कर भी फिर हरे हरे निकल आते है। मिर्च के पत्ते निम्न तापमान में सूख जाते टमाटर उससे भी कमजोर है। इन दोनों की जडो को अगर हिमीभूत न होने दिया जाये, तो अगले वसन्त में फिर इनमें हरे पत्ते निकल आते हैं।

'रूस में पच्चीस मास' २६ नवम्बर को समाप्त हो गया। बीकानेर के प्रकाशन के पास उसके कुछ भाग छपने के लिए भेज भी दिये। मेरी पुस्तकों के अधिक दाम होने की शिकायत अनेक पाठकों को है। लेकिन, बीकानेर के प्रकाशन ने दाम रखने में हद कर दी। पुस्तक का दाम पाँच रुपये से अधिक हर्गिज नहीं होना चाहिए था, लेकिन उन्होंने आठ रुपये रखा। बेबस लेखक बेचारा क्या करे। दाम सस्ता रखने के लिए स्वयं

प्रकाशक बनना और भी आफत माल लेना है यह तीन पुस्तकों को स्वय प्रकाशित करके मैंने देख लिया।

२७ नवम्बर को मालूम हुआ, कि भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) ने ८६ हजार मे दिल्ली फैजबाजार (दरियागज) मे जमीन खरीद ली, जिसका अर्थ है जमीन लेने मे ५५ हजार तक पहुँच गए होगे। फिर जमीन लेने से ही तो काम नही होता, मकान बनाने के लिए उससे भी अधिक ही रुपया चाहिए। दिल्ली म और ऐसे मौके पर मकान बनाना कभी घाटे का सौदा नही हो सकता भैया की इस दूरदर्शिता का मैं कायल था।

पहाडी दीवाली—पहाड मे विशेषकर गढवाल और उसके पश्चिम वाले हिमालय म दीवाली उसी दिन नही होती, जिस दिन सारा भारत उसे मनाता है। हमारी दीवाली ३० अक्तूबर को हुई थी, जबकि पहाडी दीवाली २६ नवम्बर को हुई। हमसे सबसे नजदीक का गाव कण्डी था, जो यहा से दो मील के करीब होगा। उस दिन भोजन करके हम कण्डी गाव की ओर चले। सारा रास्ता उतराई का था। हरी का घर गाव से काफी पहले ही पडता था। वे हमारे यहाँ दूध और साग सब्जी दिया करते थे। उनके घर पहुँचने पर देखा कि वह पीकर भूत बने हुए है। घरवाले दूसरे भी उतने मस्त नही थे। शायद सोचा—शाम के करीब आने पर पान का समय होता है। पर, हरि ने सोचा—शुभस्य शीघ्रम्। तो भी उन्होने अपनी लुटपुटाती जीभ और लटपटाते हाथो से हमारा स्वागत सत्कार किया। यहा से और भी काफी नीचे उतरकर हम उस छोटी नदी के किनारे पहुँचे, जो कम्पनी बाग और चडालगढी के एक पार्श्व का पानी अपने साथ ले जाकर अन्त मे केम्पटी फाल बनकर गिरती पडती जमुना की शाखा म जा मिलती है। पानी पार कर थोडी सी चढाई म खेतो के बीच लेकिन पहाड की बाहो पर कडी गाँव आया। ४० ६० घर थे, जिनमे २० के करीब ब्राह्मणो और उतने ही खशो और हरिजनो के थे। आज दीवाली के दिन कडी गाव का क्या पूछना? "मधु वाता ऋतायते" की बात चरितार्थ हो रही थी। हवा मे भी मद्य की सुगध उड रही थी। गाव मे एक जगह लोग ढाल पर नाच रहे थे। हमारा धोबी नन्दू ढोल बजाने मे अव्वल था, यह देखकर हमें भी गर्व हुआ। आज सब घरो के दरवाजे खुले हुए थे, जहाँ भी

पहुच जाइए मधु (मद्य) का कटोरा सामने हाजिर था। मैं अपने को अभागा समझता था। नन्दू खूब पीकर तालसुर के साथ ढोल पीट रहा था। नाच के लिए वाद्य अत्यावश्यक है, और उसे हरेक आदमी नही बजा सकता, इसलिए उस दिन नन्दू की बडी कदर थी। पहाड मे खश और मैदानी दो तरह की सस्कृति है। ऊँची नाक वाले अपने को बडा समझ मैदानी सस्कृति को अपनाते है। उनकी देखादेखी खश भी उसे मानने के लिए मजबूर है लेकिन कडी गाव और मसूरी के इन पहाडो के दूसरे गाँव जौनपुर इलाके पडते हैं—जमुना के इस पार जौनपुर और उस पार जौनसार है। दोनो के ऊपर जमुना के दोनो किनारे खाई का इलाका है। खाई से एक बडी पर्वत माला को पार करके कनौर (किन्नर देश) मे जाया जा सकता है। किन्नर की सीमा तिब्बत से मिलती है। जौनपुर-जौनसार खाई कनौर तिब्बत मे सभी पाण्डव विवाह वाले देश है। जौनपुर और जौनसार इनमे मैदान से सबसे नजदीक पडते हैं। पाचो पाण्डवो का अपनी एक पत्नी द्रौपदी से बसर गुजर होता होगा, इसे यहाँ आखो देखा जा सकता है। पाचो पाण्डव द्रौपदी के अतिरिक्त और भी पत्नी रखने के लिए स्वतत्र थे जो यहाँ बहुत कम सम्भव है। जहाँ पाण्डव विवाह चल रहा हो, वहाँ मद्य का पुराना रीति रवाज सबसे अधिक सुरक्षित होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। गाँव से बाहर के खेतो मे होली जली। लोगो को क्या पता कि नीचे होली और दीवाली मे चार महीने का अन्तर होता है। इन्होने होली दीवाली दोनो एक ही साथ कर ली। हमारी दीवाली वाले समय पहाड मे फसल काटने की भारी भीड रहती है, इसलिए वह उस समय निर्द्वन्द्व त्योहार नहीं मना सकते। शायद इसीलिए यहाँ वाले उस दिन दीवाली नहीं मनाते।

होली भी रात को नही दिन-दोपहर को जली। उसके लिए लोगो ने घास और लकडी पहले से ही जमा कर रखी थी। जलाकर लोग गाते बजाते-नाचते गाँव की तरफ लौटे। गाँव के बीच मे रखे घास के पूले से लोग रस्सा बटने मे लगे हुए थे। आज और कल यहाँ रस्साकशी होगी जिसमे एक तरफ स्त्रियाँ होगी और दूसरी तरफ पुरुष। यह जरूरी नही है कि पुरुष हो हर गाव जॉन। स्त्रियो की सहायता के लिए उनकी लडकियाँ और शायद दामाद भी सहायता करते हैं। यह रस्सा, दो गाँव मे पुरुष

विजयी हो रहे है। रस्साकशी रात को होने वाली थी, तब तक हम रह नही सकते थे, न अगले दिन ही आने वाले थे। यहाँ के सभी लोग लम्बी-पतली नाक वाले और गोरे थे। शुद्ध खशमुद्रा यहा दीख पडती थी। कभी-कभी मूछा वाले आदमी भी देखने मे आ जाते थे। सवा ३ बज गए। देखा, कटे हुए एक खेत म १० १२ तरुणिया और लडकिया नाच रही हैं। नाच बहुत कुछ किन्नरा जैसा ही था। वह सूर्यास्त के समय जमता। हमारे रहते रहते सख्या कुछ और बढी, पर पूरे जोश के साथ अभी नाच-गाना शुरू नही हुआ। स्त्रिया पाती से खडी होकर हाथ मे हाथ मिलाये नाच रही थी। चाहे किसी जात के खश स्त्री-पुरुष हा—ब्राह्मण भी—सभी मद्य पीकर नाचने-गाने का आनन्द लेते हैं। कडी गाँव पवतीय द्राणी के नीचे है, जिसके चारा तरफ ऊँचे ऊँचे पहाड खडे है। दिन के बीतने के साथ सब जगह नीरवता छाती जा रही थी, और उसम गाने वालो के कठ से निकले गीत की प्रतिध्वनि चारा आर छा रही थी। आज से ढाई हजार वर्ष पहले मैदान म भी यही समाँ रहा होगा। साढे ३ हजार वष पहले सप्तसिन्धु के आय सोम (भाँग) पीकर इसी तरह अपना मनाविनोद करत होगे। कितनी प्राचीन स्मृतियाँ इस नृत्य के साथ बधी हैं।

१ दिसम्बर को साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ३० पुस्तकें आईं। कुछ तो महारद्दी थी। अनाडी लोगो को भारत के इतिहास और भूगोल का लिखन का शौक चरांये तो वह कूडा-कक्कट छोड और क्या लिख सकते हैं।

दिसम्बर के शुरू हाने ही जाडे न काफी प्रगति कर ली थी। दिन मे अधिकतम ताप ५० डिग्री पर था, अर्थात् हमारे शरीर के तापमान स ४४ ४५ डिग्री नीचे। पर अभी बफ बनन के लिए १७ डिग्री और नीचे उतरने की जररत थी, जो रात को किसी समय भी हो जाता था। मिम पामग अपने मकान "बिल्डेर" के बेचन की चिन्ता म थी, कोई गाहक नहीं मिलता था। किसी समय इस मकान के ६० हजार मिल रहे थे। उन वक्त उन्ह क्या पता था कि मसूरी का आज का दिन देखना पडेगा। बडी बहिन ७० के पास पहुँच रही थी, शरीर से बहुत कमजोर और हृदय से और भी दुबल थी, जिसके कारण बहुत चिन्ता थी।

चौधरी न दा मार्च बडे सेना म कई साला से सेना करनी शुरू की

थी। वह खाली पड़े हुए थे। हमारे पास वाला खेत 'अरान हौस" के साथ सम्बद्ध था, जिसकी मालकिन मिसेज किदवाई एक अंग्रेज महिला थीं। इसमें कुछ फलदार और कुछ शौकीनी के वृक्ष लगे हुए थे। चौधरी कई साल जोत चुके, तब मिसेज किदवाई ने उन्हें बेदखल करना चाहा। लेकिन अब चौधरी का उस पर कानूनी हक हो गया। वह अधिकतर मटर और बन्दगोभी उगाते। ये चीजें ऐसे समय पैदा होतीं, जब इनका नीचे अभाव होता इसलिए अच्छे दाम पर बिक जातीं।। आजकल वह बन्दगोभी बेच रहे थे।

हमारे हैपी वेली की पुलिस चौकी के दीवान (राइटर कान्स्टेबल) श्री कुंजजी साहित्यिक रुचि रखने वाले तथा अपनी गढवाली भाषा के कवि थे। वह अक्सर हमारे यहाँ आकर पुस्तकें और अखबारों का पढ़ने के लिए ले जाते। उस दिन बतला रहे थे "आजकल चुनावों की धूम है। टेहरी राजा का नामिनेशन पेपर रद्द हो गया, लेकिन माँ श्री कमलेन्दुमती का नहीं, इसलिए वही बेटे की जगह पर खड़ी है। छोटा लड़का और कितने ही पुराने दरबारी भी कांग्रेस के उम्मीदवारों के खिलाफ चुनाव के लिए खड़े हैं।" आखिर टेहरी जिले के चुनाव में कांग्रेस का एक भी आदमी नहीं चुना गया। राजकुमार राजमाता और उनके दरबारी ही बाजीमार ले गये। यह क्या? जनता ने क्या भलाई कांग्रेसी शासन में देखी थी कि वह उसके उम्मीदवारों को वोट देती? छपरा में एकमाके चुनाव क्षेत्र से श्री अखिलानन्द सिंह स्वतन्त्र खड़े हुए थे। कांग्रेस की ओर से मेरे पुराने सहकारी लक्ष्मी नारायणसिंह लड़ रहे थे। अखिला ने समझा चुनाव क्षेत्र छोटा है साइकिल से एक छोर से दूसरे छोर का तीन चक्कर एक दिन में लग सकता है, कांग्रेस बदनाम है, इसलिए मैं चुन लिया जाऊँगा। पर, असफल रहे।

४ दिसम्बर को ल्हासा से श्री त्रिरत्नमान साहु का पत्र आया। यह पढ़कर मेरे हृदय को भारी धक्का लगा, कि एक मास पहले गेन्दुन छोम्फेल (सघधमवधन) का देहान्त हो गया। एकाएक मुँह से निकला— 'हसरत उन गुंचों पर है जो बिन खिले मुरझा गए।" प्रथम श्रेणी के चित्रकार प्रथम श्रेणी के तिब्बती भाषा के कवि बौद्ध-दर्शन के अच्छे पण्डित धमवधन तभी हो चुके थे, जब १९३४ में वह मेरे साथ पहली बार तिब्बत से भारत

आए। इसके बाद वह दस बारह वर्ष तक भारत ही मे भिन्न भिन्न जगहो पर रहे। अग्रेजी की योग्यता काफी हासिल कर ली, और सबसे बढकर बात यह कि दृष्टिकोण आधुनिक और वैज्ञानिक हो गया, इतिहास और सामाजिक आर्थिक-समस्याओ के बारे मे भी। मेरे घनिष्ठ सम्पर्क मे आने के कारण वह मार्क्सवाद-समाजवाद की ओर झुके। उन्होने अपनी कविताओ मे इन विचारो को रखा। दो-तीन साल पहले वह अपने देश लौटने के लिए तिब्बत गए। वह तिब्बत के सबसे उत्तरी भाग अम्दो के रहने वाले थे। विद्या के प्रेम ने उनसे आराम और सम्मान का जीवन छुडवाया। बचपन मे ही वह अवतारी लामा मानकर एक मठ के महन्त बना दिये गए थे, लेकिन जब देखा कि उससे विद्यार्जन मे रुकावट होती है तो सब छोड छाडकर ल्हासा मे आ वहा के डेपुग विहार के सबसे बडे तथा तिब्बत के भी महान तम विद्वान् गेशे शेरब के विद्यार्थी हो गए। गेशे शेरब चाग काइ शेक के दरबार मे सम्मानित थे, लेकिन वह सबसे पहले कम्युनिस्टो की ओर होने वाला मे थे। अब इस तरुण विद्यार्थी के काम का समय आया, जबकि चीन और तिब्बत लाल हो गए। जब गेशे की लेखनी और दिमाग अपनी करामात दिखाने के लिए उन्मुक्त थे। लेकिन, वह पहिले ही चल बसे।

मसूरी मे एक तरफ तो यह पुकार थी, जिसके साथ मन्त्री लोग भी कम से कम जबानी सहानुभूति दिखलाना चाहते थे, केन्द्रीय सरकार के कुछ आफिस यहा पर स्थानान्तरित कर दिये जाएँ, पर काम उलटा हो रहा था। सर्वे विभाग के सौ दो-सौ आदमी जो अपने आफिस के साथ यहा रह रहे थे, अब उन्हे भी देहरादून भेजा जा रहा था। श्री सदानन्द मेहता ने अपनी पत्नी के साथ ६ दिसम्बर को आकर यह समाचार दिया। मसूरी का जाडा कुछ लडको के लिए भले अच्छा नही हो, लेकिन यदि पहाड का एलाउस दिया जाना तो वह भी यहा रहने के लिए तैयार हो जाते। वैसा करने की जगह आफिस देहरादून जाकर लण्ढौर बाजार के दूकानदारो के दुर्भाग्य का कारण बना।

बादल ही जल वर्षा करते है। वही तापमान के अधिक नीचे जाने पर हिम वर्षा करने लगते हैं। देखते देखते हम बादलो की गतिविधि के विशेष परिणाम मालूम होने लगे थे। हमारे नीचे की ओर अमुग्गा की शाखा अलग

बहती थी, जिसके रास्ते होकर कभी कभी बादल ऊपर का चढते। जोधपुर की ठाकुरानी का नौकर दुर्गा तो इन बादलो को देखकर अचरज करता— 'दुनिया मे बादल ऊपर से आते है और यहाँ नीचे से"। वह नही जानता था कि मैं स्वय साढे ६ हजार फुट की ऊँचाई पर हूँ। ऊपर कम्पनी बाग के साथ खडा चडालगढी का पहाड है, जिसके परले पार देहरादून की उपत्यका है। यदि नीचे नलगर से और ऊपर चडालगढी के आने वाले बादल टकराते तो वर्षा जरूर होती। बादल अभी बहुत कम ही कभी कभी दिखाई पडते थे। रात को सर्दी बहुत हो रही है, इसका पता सवेरे चौधरी के घर की छत को पाले से सफेद हुई देखकर लगता था।

दिसम्बर मे मसूरी मे सैलानियो का कही पता न था। यहाँ के बहुत से दूकानदार भी अपनी दूकानें बन्द कर नीचे चले गए थे, इसलिए रविवार के दिन यहा स्थायी रहन वाले मित्रो म से ही कोई आता। ६ दिसम्बर को डा० सत्यकेतु और शीलाजी आईं, प्रा० भारतभूषण भी अपने धनानन्द कालेज के दूसरे अध्यापक जोशीजी के साथ आए। कमला न स्वागत के लिए हल्वा और विशेष तौर से फलाहारी कबाब बनाया। बिस्कुट तो सदा हाजिर रहना ही था। सैलानियो का मौसिम नही था, इसलिए धोबिन का कपडे धोने की फिकर नही थी, और वह रसोइदारिन बन गई थी। भारत भूषणजी कमला को अग्रेजी पढा दिया करते थे। उनको परीक्षाओ का तजर्बा था, इसलिए उनकी पढाई मुझसे कही अच्छी होती, अग्रेजी कविता तो मेरे लिए सूखी मालूम होती।

यात्रा के पन्ने" के नाम से मेरी छूटी हुई यात्राएँ इस वक्त लिपिबद्ध हो रही थी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मे काम करने वाले साथी अभी यही थे। पता लगा सम्मेलन के सभापति ने मुकदमा कर दिया है और समिति बैंक से पैसा नही निकाल सकती। साथियो को चिन्ता हो रही थी, क्योंकि उनका वेतन नही आया था और आगे भी उन्हे पैसे की जरूरत थी। आपसी झगडे के कारण होते हुए काम को ठप्प करना कभी उचित नही।

"गढ़वाल" "कुमाऊँ" लिख लेने के बाद मुझे ख्याल आया, दार्जिलिंग और कुमाऊँ के बीच के नेपाल को भी लिख डालना चाहिए। उसमे हाथ

लगाते हुए मैंने अपने कुछ नेपाली मित्रों को बतलाया, कि नई सामग्री के संग्रह के लिए मैं इसी जाड़े नेपाल आ रहा हूँ। श्री धर्मरत्न जी के पिता महिला साहु ल्हासा में छोसिंसा प्रधान व्यापारी थे। एक धनाढ्य पिता की सन्तान होते, पिता की उदारता के कारण दिवाला के दिन उन्हें देखने पड़े, और यहाँ वह आकर मुनीम हो गए थे। उनके विचार बड़े ही उदार थे, और मेरे लिए तो वह हर तरह की सहायता देने के लिए हर वक्त तैयार रहते थे। एक बार आत्मसम्मान को ठेस लगी, और उन्होंने पिस्तौल से अपने जीवन को समाप्त कर दिया। उनके पुत्र धर्मरत्न को मैं उसी समय से जानता था जबकि वह लड़के थे। किसी आदमी के मर जाने पर भी "धरै पाछिलो नाम" अनुचित है। धर्मरत्नजी को बचपन में काम करना पड़ा था और पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिला था। जो कुछ पढ़े थे, उसमें और अपने तजर्बे के बल पर नेपाल के स्वतन्त्रता आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया। वर्षों जेल में रहे। इस समय उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त साथी मिल गए, जिनसे धर्मरत्नजी विद्यार्थी बन गए। अपने ज्ञान को उन्होंने बहुत बढ़ाया। इस समय वह नेपाल सरकार में उप मन्त्री (भूमि [illegible]) थे। उन्होंने लिखा, कि नेपाल जरूर आवें, जो भी सहायता मुझसे हो सकेगी, मैं करूँगा।

१६ नवम्बर को जम्मू कश्मीर युनिवर्सिटी ने व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रित किया। पहले जमाना होता, तो खुशी से स्वीकार कर लेता लेकिन अब तो मसूरी में मैंने [illegible] ले रखा था, और वहाँ से अनिवार्य होने पर ही मैं बाहर निकलता, इसलिए इन्कार कर देना पड़ा।

लेकिन, जब मूछा का सवाल हो जाए, तो दूसरी तरफ भी वह तन जाती है। भूख हडताल करने वाले तरुण को बाते कहते-कहते आँसू भरते और गला रु धते देखा, तो मुझे बहुत दुःख हुआ। दूसरे मित्र भी इसको क्या बर्दाश्त करते? खैर बात रफा दफा हो गई।

वेतन की अनिश्चितता थी लेकिन २० दिसम्बर को ही दिसम्बर का वेतन आ गया, तो सबने सन्ताप की सास ली। दिसम्बर के साथ अब साहित्य निर्माण कार्यालय का यहा से बन्द करने का निश्चय हो गया। तजर्बा बहुत अच्छा नही रहा, उसमे कारण यही था, कि कुछ हाथ का काम करना नही बात बनाना अधिक पसन्द करते थे। २८ दिसम्बर को अब "हन हिल" (ऊपर की कोठी) खाली हो जाने वाली थी।

मालूम होता था युगो बाद २१ दिसम्बर को भगवती भाई का पत्र आया। श्री भगवतीप्रसाद मुसाफिर विद्यालय आगरा के मेरे सहपाठी थे। हम लोग साथ सपने देखा करते और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बडी बडी योजनाएँ बनाते थे। मुसाफिर विद्यालय के बाद एक उपदेशक विद्यालय खोलने के लिए मुझे जालौन जिले मे जाना पडा। उसके लिए भगवती भाई पहले ही वहाँ पहुँचे थे। अब हम दोनो वर्षों से अलग थे। हमारे रास्ता म भी अन्तर आ गया था, पर स्नेह और पुरानी स्मृति पहले ही जैसी मधुर थी। उन्हे अभी मालूम हुआ कि मैं मसूरी म रहता हूँ।

समय समय पर मनुष्य की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं यद्यपि उनके जिम्मेदार अधिकतर बाह्य कारण ही होते हैं। 'मानसिक जगत् में भी मौजे होते हैं जो कभी हर्ष बनते हैं कभी अवसाद। जैसे (काई) अत्यन्त प्रशान्त सागर दुर्लभ है वैसे ही विचारवान् पुरुष हृदय वीचि रहित नही हो सकता। मानव अजर पशु है। पशु होते भी उससे भिन्न है। भिन्न होने के कारण ही उसके अनुभव—हर्षामिश्र या विषादामिश्र—बहुत तीव्र होते हैं।"

२४ दिसम्बर को आनन्दजी शाम का सूर्यास्त के समय जल्दी जल्दी म आए। अगले ही दिन उन्हे चला जाना था। समिति के नाता म समिति की कार्यकारिणी न आनन्दजी का समर्थन किया था पर अब यह निश्चय कर चुके थे, कि उनका मनोरथ छोड देंगे। अगले दिन वह ? बजे चले गये।

उसी दिन जामिया मिलिया के प्रोफेसर फारुकी के साथ हमारे पिछले साल के तरुण मित्र चौहान आए, जिन्होने विलायत से लौटकर यहाँ बच्चो के लिए स्कूल खोला था। आजकल वे जामिया म अंग्रेजी पढा रहे थे। कह रहे थे पिछले साल हमे कितने ही दिन खाने के भी लाले पड गए थे—एक शाम खाते, तो दूसरे शाम भूखा रहना पडता। इगलैण्ड म मजे से अध्यापकी कर रहे थे। स्वतन्त्र भारत मे बडी बडी उमग लेकर आए थे। खैर, अब उनको काम मिल गया था।

उनके तरुण मित्र मुसलमान होते भी जामिया और आधुनिक समय के ख्याल से मुझे नवीन विचारो वाले मालूम हुए। उर्दू लिपि और उर्दू भाषा का पक्षपात होना मेरी दृष्टि मे कोई बुरा नही है। कुछ भेंट करने का सवाल आया, तो मैंने अपनी "वोल्गा से गगा" के उर्दू अनुवाद की एक कापी दे दी। मुझे उसका न पहले और न लिखते समय ही ख्याल आया था। अगले साल मालूम हुआ, कि उस तरुण अध्यापक ने अकबरकालीन कहानी "सुरैया" जब पढी तो उन्हे बहुत गुस्सा आया—एक मुसल्मान लडकी का हिन्दू के साथ ब्याह? अक्षतव्य अपराध। उन्होने अपना गुस्सा पुस्तक को फाड कर उतारा। सचमुच यह अविश्वसनीय बात थी। मैंने इस्लाम को नीचा दिखाने के लिए यह नही लिखा था। मुसल्मान तो पहले ही से लाखो की तादाद मे हिन्दू लडकियो से ब्याह करते आए थे पर, उससे हमारी सामाजिक समस्या नही सुलझी। वह तभी सुलझ सकती थी, जब हिन्दू मुसलमान दोनो परस्पर ब्याह करते और अकबर की बेगमो की तरह स्त्री को अपने धर्म मे रहने की पूरी स्वतन्त्रता रहती।

समाचार सुनने के लिए भारत और पाकिस्तान दोनो के रेडियो कई वर्षों से सुनता हूँ। दूसरे प्रोग्रामो के सुनने के लिए समय निकालना मुश्किल है पर कभी-कभी वह मिल जाने पर लोक गीतो या लोक भाषा के प्रोग्राम को सुनना पसन्द करता हू। लोक गीतो म गजब की ल्यड धो घों देखने मे आती है। मालूम नही रेडियो के प्रोग्राम बनानेवाले कौन से लोग हैं? न भाषा की शुद्धता का ख्याल किया जाता है न लोकगीतो के साथ जिन बाजे को लोग इस्तेमाल करते हैं उसकी ओर ध्यान दिया जाता है। सितार इसराज, सारगी, तबला सभी बाजे उनके साथ बजते हुए श्रोता के सिर म

पीडा पैदा करत है। ऐसा क्या होता है? दुनिया म कही भी ऐसा अयाय नही किया जाता, और लोक गीता का लाक वाद्या के साथ ही गाया जाता है। रूस चीन या किसी भी दूसर देश म यही देखा जाता है। आज वक्त तो कोई आधुनिक नौसिखिया कवि नकली लोक-गीत बना कर दे देता है। एक बार "स्टटसमेन" म एक समालोचक ने लखनऊ के एसे प्रोग्राम की बडी तीव्र आलोचना की थी।

३० दिसम्बर को कमला मगलजी के साथ परीक्षा देने देहरादून गईं। "साहित्य रत्न" के पास हो जान की आशा थी उन्ह एफ० ए० की परीक्षा की तैयारी करने के लिए तीन महीन थे।

३१ दिसम्बर को समाप्त होने वाले सन् १९५१ के काम का लेखा जोखा निम्न प्रकार रहा (१) "गढवाल" (२) "कुमाऊ" (३) "अदीना" (४) "रूस मे पच्चीस मास" (५) "यात्रा के पन्ने", (६) "सूदखोर की मौत", (७) "तिब्बत म तीसरी बार" को लिख कर समाप्त किया। सब मिला कर २८०० पष्ठ हुए। अगले साल के लिए भी उतने ही पष्ठो के लिखने का सकल्प किया।

५

१९५२ का आरम्भ

१ जनवरी का धूप थी। दिन मे सर्दी नही थी पर, शाम का बहुत बढ गई। न जाने क्यो मसूरी मे शाम को सर्दी ज्यादा मालूम होती है और सवेरे को कम। हालाकि नीचे इसे उल्टा देखा जाता है। उस दिन कमला के साथ मैं बाजार गया। कुल्हडी से भी काम चल सकता था लेकिन लण्ढौर के मित्रो से मिलने का लाभ रोकना हमारे बस की बात नही थी। जाने पर मालूम हुआ किशनसिंह बहुत बुरी तरह से बीमार हो गए थे। पट मे भारी दद था। दो ही तीन दिन पहले यहा से दिल्ली गये। लण्ढौर की दूकानें उतनी बन्द नही थी, लेकिन लाइब्रेरी और कुल्हडी की बहुत कम खुली थी। गुड आठ आना सेर सुन कर विश्वास करने का मन नही करता था। कुछ ही पहले हम १२ १४ आने मे ले गए थे। काफी के लिए गुड की चासनी मुझे अच्छी लगती है।

बाजार के लिए निकलने पर शायद ही कभी ७ ८ बजे रात से पहले घर लौटना पडता।

२ जनवरी को सवेरे उठकर देखा, तो सारी भूमि (वफ की) बजरी से ढँकी हुई है। ये फुटकिया वच्च की तरह कडी नही, बल्कि मुलायम होती हैं। जब तापमान पर्याप्त नीचे नही गिरता, तो पानी बजरी बनकर धरती पर उतरता है। दिन भर आकाश बादलो से घिरा था और हवा तेज रही। कई बार बजरी भी पडी। बराडे म तापमान ४० डिग्री था, बाहर तो वह अवश्य हिमबिन्दु के पास रहा होगा। आज लिखने पढने से छुट्टी थी।

मकान में लकड़ी जलाकर स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ बातें करते रहे। सुंदर साज बज रहा हो और नाचने वाला नाचे नहीं, तो यह साज का अपव्यय है। उसी तरह यदि लकड़ी की आग जल रही हो और उसमें आलू या सकरकन्द भून कर खाया न जाए, तो जान पड़ता है आग अकारथ जा रही है। कभी अपने साधु-जीवन का ख्याल आता था। प्रशंसा करने का मन करता। साधु जीवन यदि घुमक्कड़ी का जीवन हो, तो वह बड़ा ही मधुर और आकर्षक होता है। लेकिन, अब उसके लिए परिस्थिति प्रतिकूल होती जा रही है। हमारे युग में साधु को कोई सरो-सामान की जरूरत नहीं थी भारत में कहीं वह विचर सकता था। हमारा तजर्बा ताजा नहीं था, तो भी मालूम होता था उसमें कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं। पर, मुझे विश्वास है, घुमक्कड़ हर परिस्थिति में अपने लिए रास्ता निकाल सकता है। मेरी नवतरुणाई में मिले वृद्ध घुमक्कड़ साधु अपने समय का जब वर्णन करते, तो मालूम होता कि उस वक्त और भी स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता थी।

कमला को एफ० ए० की परीक्षा देनी थी, जिसके लिए तीन महीने भी नहीं रह गए थे। जब उनको परीक्षा की पुस्तकों से विमुख देखता, तो मुझे झुंझलाहट आती और उनकी अव्यवस्थित चित्तता के लिए कुढ़न लगती वह न अपनी अक्ल से काम करना जानती, न दूसरे की बात ही मानतीं। यह 'मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त' वाली बात थी। कमला को स्वयं इसकी चिन्ता होनी चाहिए थी। इस तरह के मुद्दों का ध्यान में मुझे काफी वर्षों बाद सफलता मिली, जब कि देखा, यह किसी परीक्षा में पेश होने का नाम नहीं लेतीं। पर परीक्षा के दिन जब नजदीक आते तो यह अथक दस-दस मिनट का इस्तेमाल करती। कालेज के विद्यार्थी भी तो ऐसा ही करते हैं और परीक्षा के अन्तिम दिनों में किताबों पर पिल पड़ते हैं।

जीवन की दर्शनी पर नजर दौड़ाते हुए मालूम पड़ता था— जीवन में हर एक क्षण के मधुर पान के लिए कुछ-न-कुछ बाधा या आवश्यकता है जिसमें [illegible] होता रहता है। [illegible] अनुभव होता है। लेकिन सांसारिकों का [illegible] है। भारत के पारम्परिक [illegible] है।

मेरे पास एक रायफल और एक पिस्तौल का लाइसेंस था साथ ही रेडियो का भी लाइसेन्स वष के अन्त म बदलवाना पडता था। रेडियो के लाइसेन्स मे कोई दिक्कत नही होती। डाकखाने मे गए पुराना लाइसेन्स दिखलाया, १५ रुपय दाखिल किए और नया लाइसेन्स ले आए। लेकिन हथियार का लाइसेन्स बदलवाना भारी सिरदद मोल लेना था। उसे सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट ही बदल सकता था। आफिस म चलान लिखवाओ फिर सरकारी बैंक म घटा जाकर प्रतीक्षा करके पैसा दो, फिर इस रसीद का लेकर बाकायदा दरखास्त लिख क्यू म एस० डी० एम० साहब के सामन रख कर क्यू म प्रतीक्षा करो। और कही एसे एस० डी० एम० हुए, जो हफ्ते मे एक दिन मसूरी के लिए देना भी बुरा मानते है और हर सनीचर को वहा पहुँचने पर इतिजार करन के बाद टेलीफोन पर खबर देते है कि अब की बार साहेब नही आएँगे तो दिमाग की कैफियत के बारे मे क्या कहना? क्या इसके लिए भी उसी तरह की आसानी नही पैदा की जा सकती थी, जैसे रेडियो लाइसेन्स की? माना, सरकार के लिए यह उससे कही अधिक खतरनाक चीज है, और इसीलिए सरकार की ओर से बडी साव-धानी बरती जाती है। लेकिन, रुपया लेकर एस० डी० एम० साहब ही इसको आसानी से कर सकते थे, तीन जगह दौडाने की क्या जरूरत? ४ फरवरी का हमने स्वामी सत्यस्वरूपजी को हथियार देकर भेजा, तो मालूम हुआ, दूसरे के हाथ से हथियार भेजना कानून के खिलाफ है। खुद गये। दरखास्त पर स्टाम्प लगाना जरूरी था, लेकिन स्टाम्पफरोश के पास स्टाम्प ही नही था। खैर, उसे लगाने का जिम्मा क्लर्क ने ले लिया।

श्री भरतसिंह उपाध्याय द्वारा लिखित "पालि साहित्य का इतिहास" (सम्मेलन से प्रकाशित) मेरे पास आया। अगली पीढ़ी अपने को अयोग्य नही साबित कर रही है, यह उसका उदाहरण था। हिन्दी भाषियो मे पालि की ओर विशेष ध्यान देने वाला मैं पहला आदमी था। मुझे कितनी अडचनो का सामना करना पडा था, इसे जीवन यात्रा के दूसरे भाग के पढनेवाले अच्छी तरह से जान सकते है। मेरे आरम्भ करते समय पालि का विशाल वाङ्मय बिल्कुल अपरिचित-सा था। "धम्मपद" को छोड और किसी पुस्तक का हिन्दी मे अनुवाद नही हुआ था, और न इस विशाल साहित्य मे क्या-क्या है, इसे

जानने का हिन्दी म कोई साधन था। मैंने, फिर आनन्दजी ने और बाद म भिक्षु जगदीश काश्यप ने हिन्दी को पालि-साहित्य के अनुवादो से समृद्ध किया। लेकिन अभी यह काम पूरा नही हुआ है। उपाध्याय भरतसिंहजी ने इस पुस्तक को लिखकर हिन्दीवालो के सामने रखा, कि पालि साहित्य मे क्या कुछ है, और क्या हमे उसका अवगाहन करना चाहिए। भरतजी ने एक और भी महत्वपूर्ण ग्रथ अपने पी० एच० डी० की थेसिस के रूप म लिखा जिसम उन्होंने पालि त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओ मे आई भौगोलिक और सामाजिक सामग्री का पूर्ण तौर से विश्लेषण किया। हमारे इतिहास और प्राचीन भूगोल पर पालि वाङ मय बहुत जगह मौलिक प्रकाश डालता ह, जिसके जाने बिना विद्वान् भी गल्ती कर बैठते है।

जनवरी मे मेरी दिनचर्या थी—सवा ७ बजे उठकर शौचादि स निवृत होना, थोडा सा काम, फिर चाय पीना। फिर कमला को ११ बजे तक पढाना लिखाना उसके बाद अपना स्वाध्याय या सशोधन। भोजन १ से डेढ बजे तक, फिर डाक और पत्र पत्रिकाओ का पढना साढे ४ ५ बजे सध्या की चाय और फिर कुछ किसी पुस्तका को दोहराना, शाम को साढे ८ बजे भोजन, कुछ पढना पढाना या लिखना। ६ बजे रडियो से समाचार सुनना, फिर घटा दो घटा पढ कर ११ बजे के आसपास सो जाना।

जनवरी के दूसरे सप्ताह म पहुचत पहुँचत देश म हुए चुनावो के परिणाम निकलन लग। अब तक के निकले परिणामो से मालूम हुआ, कि काग्रेस का सभी जगह बहुमत है। हैदराबाद, ट्रावनकोर और मद्रास जैस कुछ प्रान्तो मे वामपथी, विशेषकर कम्युनिस्ट भी काफी सख्या मे आय हैं। पहले दक्षिण ही के निर्वाचन परिणाम निकल फरवरी मे उत्तरी भारत के भी परिणाम निकले। उत्तर प्रदश और बिहार मे काग्रेस की भारी विजय हुई और दोनो प्रान्तो मे एक भी कम्युनिस्ट नही चुना गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश से तो शायद ही कोई काग्रेसी चुना जाता, यदि कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट मिल जाते। पर सोशलिस्टो न तो कसम खा ली है कि चाहे कुछ भी हो जाये हम कम्युनिस्टो के साथ मिलकर नही काम करेंगे। मरे अपने जिले के एक चुनाव क्षेत्र स मेरे घनिष्ठ मित्र स्वामी सत्यानन्द काग्रेस की ओर स विजयी हुए लेकिन उनको जमानत जब्त हो गई। उम्मीदवारो म सबम

अधिक वोट उन्हें मिले थे, इसलिए वह चुने गये, लेकिन सारे दिये हुए वोटों मे जितना प्रतिशत वोट उन्हें मिलना चाहिए था उतना नहीं मिला, इसलिए जमानत जब्त करानी पड़ी। आजमगढ़ से श्री झारखण्डे राय चुन गए, जो अब वहाँ के कम्युनिस्ट नेता हैं। दक्षिण मे कम्युनिस्ट काफी प्रभाव रखते हैं, यह उनकी निर्वाचन की सफलताओ से मालूम होता है, पर उत्तर म उनका प्रभाव इतना कम क्यों है। यह उनके और देश के दूसरे हितैषियो के भी सोचने की बात है। यह निश्चय ही है, कि भारत का सुखी भविष्य कम्युनिज्म पर निर्भर करता है, चीन का कम्युनिस्ट होना भी यही बतला रहा है। जब हम अपने देश की छोटी से बड़ी हरेक समस्या को सभी भ्रष्टाचार और मूड़ा-बक्टा को देखते हैं तब भी यही मानना पड़ता है, कि कम्युनिज्म ही इसकी एकमात्र दवा है। शिक्षित और विचारशील जनता के मनोभाव को देखते हैं, तो सभी किसी न किसी समय कम्युनिज्म की ओर टकटकी लगाए दीख पड़ते हैं। इसलिए कम्युनिस्टो के प्रभाव के बढ़ने म सभी की दिलचस्पी है। उत्तर मे सिर्फ नगरों तक रहना और गाँवों म एकाध जिलो को छोड़कर कम्युनिस्टो की निष्क्रियता कैसे हटेगी? वस्तुत उनम एक तरह की पथाई सकीर्णता दिखलाई पड़ती है। वे अपने विचारो और मित्र मडली की एक खाल बना कर उसी के भीतर रहने म सतोष कर लेते हैं। उन्हे जनसाधारण और गावो मे घुसना है, जिस तरह अग्रेजो के विरुद्ध काग्रेस का आन्दोलन घुसा। पथाचार्य या पथ चेले बनने से यह सफलता नही मिल सकती। जिस तरह हड्डियाँ मास के भीतर अपने को छिपा कर अभिन्न हो जाती है, उसी तरह उन्हे जनसाधारण से अभिन्न बनना है। हाँ, हड्डी की तरह ही, मांस बन कर वह जनगण के ढाँचे को सँभाल नही सकते। भाषा, साहित्य, सस्कृति के बारे मे भी वे गहराई के साथ ठीक तौर स विचार नही करते, जैसा कि रूस या चीन म किया गया है। इसके लिए विरोधी उन्हे भाषा साहित्य सस्कृति का शत्रु कहकर लोगो म भ्रम और स देह पैदा करते है। दक्षिण मे उत्तर की अपेक्षा कम्युनिस्ट बहुत अधिक जनसाधारण के भीतर घुल मिल गए। जनता की भाषा उनकी लोक-कला उनके दु ख सुख सबम अभिन्न होकर शामिल हो गए। उत्तर म अभी जनता की अपनी भाषाओ—मैथिली, भोजपुरी, मगही, छत्तीस गढी

बुंदेलखण्डी, मालवी, राजस्थानी, ब्रज, कौरवी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, अवधि—के महार लोगों के हृत्य के भीतर घुसने का प्रयत्न नहीं किया गया, उन्होंने इन लोक भाषाओं में अपना साहित्य नहीं तैयार किया। जब तक इस तरह के साहित्य को लोगों में पाट नहीं दिया जाता, जब तक यहाँ की लोक कला और लोक गीतों को पूरी तौर से अपनाया नहीं जाता, तब तक लोगों की आकांक्षा रहते हुए भी कम्युनिस्ट उन पर अपना प्रभाव पूरी तौर से फैला नहीं सकते।

चुनाव में असल में वामपक्षियों के आपस के झगड़े और सोये वोटरों ने कांग्रेस को जिताया। शायद ही कहीं आधे वोटर वोट देने गये हों। अधिकांश ने 'कोउ नृप होउ' का अनुसरण किया, और कांग्रेस सरकार से पलने वाले सारे अपने अनुयायियों के साथ वोट देने पहुँच गए।

२३ जनवरी को नेपाल में फिर एक क्रांति होने की खबर आई। राणाशाही को हटाकर एक दूसरी तानाशाही ने उसका स्थान लिया। जन साधारण का हित न होते देखकर डा० के० आइ० सिंह ने हथियार रखने से इन्कार कर दिया। समझौते के बहाने उन्हें पकड़ कर काठमाण्डू की जेल में डाल दिया गया। जेल के रक्षक तो मंत्री और अधिराज नहीं होते साधारण गरीबों के लड़के ही बन्दूक लेकर पहरा देते हैं, जिन्हें प्रभावित करना मुश्किल नहीं। के० आई० सिंह ने उन्हें प्रभावित किया और रक्षियों ने स्वयं जेल से बाहर आने में उनकी मदद की। उन्होंने राणाओं को छोड़ सबदली सरकार कायम करने की माँग की। थोड़े से आदमियों को लेकर वह चाहते, तो काठमाण्डू पर अपने अधिकार को कुछ दिनों और कुछ महीनों तक कायम कर सकते थे, लेकिन व्यर्थ की खून खराबी को पसन्द नहीं किया। वह अपने कुछ साथियों के साथ तिब्बत की ओर चले गये। अब नेपाली सरकार को खुल कर वामपक्षियों को दबाने का मौका मिला। कोइराला मन्त्रिमंडल ने २५ जनवरी को नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया। नेपाली मन्त्रिमंडल नेहरू को अपना आदर्श मानता है, और छोटे कोइराला तो नेहरू की तरह अपनी शेरवानी में लाल गुलाब भी लगाते हैं।

रमादेवी की दिक्कत हमारे सामने खड़ी हो रही। डा० सत्यकेतु के यहाँ

टेहरी का मुसल्मान लड़का इस्माईल खाना बनाता था। वह आने के लिए तैयार था लेकिन कमला पसन्द नही करती थी। कह रही थी—भाभीजी (जानकी देवी) आएँगी, तो उनके लिए खाना कैसे बनेगा ? पीछे भी एक मतब एक मुसलमान रसोइया कम तनखाह पर मिल रहा था, वह तैयार था, कि उसका नाम कोई सिंह रख दिया जाए। मेहमानो को इसका क्या पता होता। आखिर हमारे मेहमानो को अच्छी तरह मालूम है, कि हम सबके हाथ का खाते है। जो हमारे हाथ का पानी पीना चाहता है, वह यह जान करके पीता है, इससे हमारा धर्म भ्रष्ट नही होगा। फिर हमे ऐसे नौकर को रखने मे क्या एतराज होना चाहिए!

जाडो मे मसूरी आना भाभीजी के लिए असाधारण बात थी। उनकी चिट्ठी आ चुकी थी, और अभी मगलजी मोटर अड्डे पर जाने की तैयारी ही कर रहे थे, कि ३१ जनवरी को भाभीजी आ पहुँची। रसोइया नही था इसलिए मेहमान बनकर आई भाभीजी को कमला की रसोई मे शामिल होना पडा। भाभीजी को इस यात्रा का यह फायदा हुआ, कि उन्होने जीवन मे पहली बार ४ फरवरी को चारो ओर बर्फ की सफेद चादर फैली देखी। पत्ता पत्ता मे बर्फ मढी हुई थी। बर्फ बहुत मोटी नही थी, इसलिए दोपहर तक बहुत कुछ पिघल गई। खूब सर्दी थी। आग जला कर उसके पास बैठे बातें करते समय काटना पडा। नौ दिन रहने के बाद ८ तारीख को भाभीजी यहा से गई।

जब अपना वजन १६४ पौड देखकर कुछ प्रसन्नता हुई, क्योकि मैं बहुत समय से साध रखता था १६० पौड पर पहुँचने की। वजन कम करने मे डायबेटीज ने सहायता दी थी, इसमे शक नही, और इसलिए उसमे उतनी प्रसन्नता भी नही हो सकती थी। पिछले साल के घाव से शिक्षा लेकर अब मै इन्सुलिन का भक्त हो गया था। अपने इन्सुलिन लेने पर उस जगह ही मे लिया जा सकता जहा गुठली भी बन जाती थी। इसके सिवा कोई चारा नही था, कि इन्सुलिन लेने का काम कमला स्वय अपने हाथ मे ले।

गाजियाबाद के श्री राधामोहन भटनागर एक विचित्र धुन के आदमी है। पति पत्नी दानो घर मे है, आटे की कुछ बिजली की चक्कियां हैं जिनसे खर्च के लिए काफी पैसा आ जाता है। पत्नी अपने राम भजन मे रहती हैं

और पति के शौक को पसन्द नहीं करती। पति को शौक है, दर्शन-सम्बन्धी संस्कृत के ग्रन्थों को ढूंढ ढूंढ कर जमा करना। कहीं छपी किसी पुस्तक का बतलाइए, वह पैसा खर्च करके उसे मँगाने के लिए तैयार हैं। मुझसे भी उन्होंने पुस्तकों के नाम मांगे, मैंने कुछ नाम बतलाये भी। पिछले १५-२० वर्षों से वह इस काम में लगे हुए हैं। दर्शन सम्बन्धी संस्कृत और उनके अनुवाद तथा स्वतन्त्र ग्रन्थों की उनके पास हजारों पुस्तकें जमा हो गई हैं। जिन पुस्तकों को जमा कर रहे हैं, उनमें क्या लिखा हुआ है, इसे जानने की उन्हें परवाह नहीं। वह यह भी चाहते हैं, कि दर्शन का अध्ययन किया जाए। उसके लिए लोग सुख सुविधा के साथ कहीं रहें और पुस्तकों का उपयोग करें। उन्होंने देहरादून में जमीन ले ली, पीछे उस पर एक मकान भी बनवाया, जिसमें पुस्तकों के रखने के कमरे के अतिरिक्त कुछ रहने के भी कमरे हैं। अभी मकान नहीं बना था, तभी मैंने कहा था—"जमीन को बेच दीजिए। मसूरी में बना-बनाया सस्ता बहुत अच्छा बँगला आपको मिल जाएगा। उसमें पुस्तकालय खोलवाइये। दर्शन की पुस्तकों के पढ़ने वाले बहुत लोग आपको नहीं मिलेंगे। जो थोड़े से लोग मिल सकते हैं उनके लिए अच्छा रहने का प्रबन्ध हो जाने पर मसूरी भी अनुकूल होगी।" पर भट नागरजी को यह बात पसन्द नहीं आई। उनकी धुन का मैं प्रशंसक हूँ।

२५ फरवरी को एक ज्योतिषाचार्य तरुण (हरिहर पांडे) का लम्बा पत्र मिला। वह मेरे सगोत्री और एक जिले के ही नहीं, बल्कि मेरी अपनी सगी बूआ की ननद के पुत्र थे। उनकी मां को मैंने छोटी उमर में देखा था। तरुण ने अपने जीवन और आकांक्षाओं के बारे में उस पत्र में लिखा था। उनके खानदान में पुरोहिती नहीं गुरुआई होती आई है—लोग उनसे मंत्र दीक्षा लेते थे। उनके चचा एक सफल ज्योतिषी थे, अर्थात् उनकी भविष्यवाणियों पर लोगों का विश्वास था। इसी कारण हरिहर पांडे भी बनारस संस्कृत कालेज से ज्योतिषाचार्य हुए। फलित भाखने के लिए आचार्य होने की जरूरत नहीं थी। बुद्धिवादी होने से उनका फलित ज्योतिष पर से विश्वास हट गया था। सम्भव है अपने सगोत्री और सम्बन्धी होने के कारण मेरी पुस्तकों को भी कुछ चाव से पढ़ा हो। अब वह गुरुआई और ज्योतिष से घृणा करते थे। १९१४ में पैदा हुए, अर्थात् इस समय ३८ वर्ष के हो चुके थे।

उत्तरी भारत मे काफी घूमे थे। लम्बी चिट्ठी बतला रही थी, कि उनमे लिखन की शक्ति और प्रतिभा है। मुझसे कुछ पथ प्रदशन मागा था। मैंने लिखा, भारतीय ज्योतिष गणित शास्त्र का एक नवीनतम इतिहास लिख डालो। वे बगला और मराठी म भी इस विषय के ग्रथो को पढ चुके थे, इसलिए वे इस काम के अधिकारी भी थे। लेकिन, ज्ञान और अधिकारिता पर्याप्त नही है। किसी को लाठी के हाथ किसी काम मे जोडा नही जा सकता। जब अपने भीतर आग लगती है, तभी मनुष्य कठिन-से कठिन काम करन का बीडा उठाता है। हरिहर पाडे के दो तीन और पत्र आए इसके बाद चुप हो गए। दर्शन के एक-दूसरे विद्वान् को—जो ब्राह्मण और बौद्ध दोना दशनो के जानकार है—मैंने आग्रहपूवक तिब्बती भाषा पढकर उसमे अनुवादित बौद्ध ग्रथो के अध्ययन से अपने लिए नया कायक्षेत्र बनाने के लिए कहा, लेकिन उसका कोई फल नही हुआ।

पाकिस्तान के बनने के साथ ही मुस्लिम लीग के नेता पूर्वी पाकिस्तान मे बगला का दबाकर उर्दू को लादने के लिए तुले हुए थे। चार साढे चार वर्षो तक आग भीतर भीतर सुलगती रही। १६५२ के फरवरी के चौथे सप्ताह मे वह भभक उठी। मुसलमान अपनी बगला भाषा को अपनी ही भूमि से उच्छिन्न देखने के लिए तैयार नही थे। आन्दोलन ने जार पकडा। सरकार ने गोलियाँ बरसाकर उसे दबाना चाहा। ८ आदमी ढाका मे अपनी मातृ भाषा के लिए बलि चढे। मुस्लिमलीगी शासको ने अपने पैरो म अपने हाथ से कुल्हाडा मारा। हाल मे सविधान बनते समय किसी को यह पूछने की भी हिम्मत नही हुई। पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू के समकक्ष बगला क्या बनाई जा रही है? उस दिन की कुर्बानिया बेकार नही गइ। आज शहीदो के दिन वहा सरकारी छुट्टी रहती है, लोग बडे सम्मान से उन वीरो को याद करते हैं।

तजबा करत ५ माच को मालूम हो गया, कि कमला इजेक्शन दना पूरी तौर से सीख गइ। पहले उनका हाथ काँपता था, हिम्मत नही होती थी। आजकल के जमान मे इजेक्शन देना हरेक स्त्री पुरुष को सीख लेना चाहिए। कितनी ही दवाइया है, जो इजेक्शन द्वारा तुरन्त असर करती हैं, और जिनका उपयोग घर घर होने लगा है। हरेक इजेक्शन के लिए

निर्भर रहना खर्चीली और बेकार की बात है।

बम्बई से डा० जगदीशचन्द्र जैन का पत्र आया, कि मैं २३ मार्च को चीन के लिए रवाना हो रहा हूँ। मैंने साधुवाद और समर्थन करते कहा, कि वहां जाकर बड़ा संस्कृत चीनी चीनी संस्कृत कोश तैयार करें। दो साल रहकर डा० जैन भारत लौटे। बड़ी उमर में चीनी लोगों में रहकर भाषा तो सीखी जा सकती है लेकिन हरेक शब्द के लिए नियत अक्षर हजारों की तादाद में सीखना अपने बूते की बात नहीं रह जाती। डा० जैन की पुत्री चक्रेश अपने पिता से अधिक भाषा और अक्षर सीखकर वहां से लौटी। डा० जैन के चीन जाने के समाचार के सुनने के बाद ही १२ मार्च को डा० अल्तेकर का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था, कि "प्रमाणवार्तिकभाष्य के छपाने का प्रबन्ध हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस में हो गया।" मैं भाष्य के अपने जीवन में प्रकाशित होने से निराश हो गया था, इसलिए यह समाचार मेरी प्रसन्नता का भारी कारण था। बड़ी तत्परता से छपकर "प्रमाणवार्तिक भाष्य' १९५४ में निकल भी गया।

१५ तारीख को एक बहुत पुराने मित्र के पत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। १९१५ मे मैं मिर्जापुर जिले के अहरौरा कस्बे में श्री रामखेलावनसिंह के घर में एक महीने बिल्कुल घर की तरह रहा था। उस समय रामखेलावन जी आर्यसमाज के कर्मठ सदस्य और अध्ययनशील तरुण थे। उनके घर में रहने समय मुझे 'चन्द्रकान्ता" और "जासूस' के पढ़ने का मौका मिला था। रामखेलावनजी एक आदर्शवादी तरुण थे। उनके पिता ने अपने सभी निरवलम्ब सम्बन्धियों को अपने साथ रखा था। तम्बाकू और दूसरा रोजगार खूब चलता था, इसलिए वह भार नहीं थे। पर १९१८ में जब रोजगार बहुत मन्दा हो गया था सिर्फ घर के शरीर के साथ का तम्बाकू का व्यापार ही अवलम्ब रह गया था। इतना बोझ बर्दाश्त करना उनके सामर्थ्य से बाहर की बात थी, लेकिन रामखेलावनजी कह रहे थे—'जब तक दम है तब तक उन्हें निरवलम्ब नहीं करूँगा।' उनका बहुत-सा रुपया कर्ज में फँसा हुआ था, जिस दिन का लोग नाम नहीं लेते थे। आज ३७ वर्षों बाद उन्हीं 'श्री रामखेलावनसिंह भीमसरी इत्यादि" का पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अब वह वृद्ध थे। मैंने अपनी जीवन-यात्रा के प्रथम भाग में

उनके बारे मे जो अपने उद्‌गार प्रकट किए थे वह उनकी आखा के सामने से गुजरा। उस समय मैं केदारनाथ था, इसलिए उन्हे मुश्किल से ही समझ मे आया होगा, कि उसी व्यक्ति का नाम अब राहुल है। लेकिन अहरोरा का नाम और काल स्पष्ट था। बहुत दिन हो जाने के कारण मैं उनका नाम भूल गया था।

१६ माच का सवेर से ० बजे तक बजरी पडती रही। दोपहर तक डेढ दा इच मोटी चादर बिछ गई। इसी समय बादल फट गया और सूय की तेज किरणे बजरी का पिघलान लगी। रात का भी कुछ बादल और बफ पडती रही। १७ तारीख का हात म बफ पडी हुई थी। दक्षिण की तरफ से पहाडा पर वृक्षो के सफेद सफेद पत्ते भी दिखाई पड रह थे। लेकिन, शाम या अगले दिन तक बफ क रहने के लिए बहुत मोटी तह की जरूरत थी, जो नही थी। माच म तो जाडे का मौसम भी नही रह जाता, इसलिए इन जाडा का यह अतिम हिमपात था।

कमला की एफ० ए० की परीक्षा का केन्द्र यही घनानन्द इटर कालेज था। वहा सवेरे पहुँचने की जरूरत थी, घर से जाने मे दो ढाई मील पडता इसलिए १८ को अगले तीन दिना के लिए वह शीलाजी के यहाँ चली गई। मैं भी साथ गया, अब थोडी भी चढाई चढने पर थकावट मालूम होती थी। खासकर यदि बात करने मे मन भूला न हो। माच के महीने म लोग अपने लिए बगला या कमरो का रिजव कराने लगते हैं। हपी वेली क्लब के बारे मे मिसेज मेकल्‌ कह रही थी कि अभी तक एक भी कमरे के लिए कोई माँग नही आई।

हाल के चुनाव के बारे मे मैं निम्न निष्कर्षो पर पहुँचा था—

१ अधिक जनता सुप्त है जिससे प्रतिगामिया का लाभ हुआ।

२ प्रगतिशील दलो न आपस म लडकर सचेतन जनता क वोटो का बाट दिया।

३ हिन्दी क्षेत्र म वामपक्षी दल केवल शिक्षिता और शहरिया म है।

४ उत्तर प्रदेश, विशेषकर उसका पूर्वी भाग वामपक्षिया क अधिक अनुकूल था।

५ सोशलिस्ट अपने को प्रगतिशीलता और समाजवाद का इजारेदार

मानते है। उनके कथन पर पूजीपति कितना विश्वास करते हैं यह इसी से मालूम है कि स्वार्थ और विचार मे प्रगतिगामियो ने भी उनका पल्ला पकडा और वोटो को रुपये से खरीदने से भी बाज नही आए।

६ सोशलिस्टो की कम्युनिस्ट विरोध की यही अन्धी नीति रही, तो वे समाजवाद के नही, बल्कि शोषको के समर्थक रहेगे।

७ नेहरू के वादे थोथे है। जहा तक देश के भीतर समाजवाद का सम्बन्ध है वह प्रतिगामियो के अगुवा छोडकर और कुछ नही है।

८ आज के जमाने मे चीन के साथ सहानुभूति प्रगतिशीलता की कसौटी है।

९ अमेरिकन साम्राज्यवाद विश्व की जनता का और उसकी प्रगति का सबसे बडा शत्रु है। यह उसने हिरोशिमा पर अणुबम मारिया और चीन पर कीटाणु बम और ईरान की जनता की तूदे पार्टी को खूना हाथ ध्वस करके दिखला दिया है।

१० अपने पैरा पर चलना और सभी प्रगतिशीलो और वामपक्षिया का सयुक्त मोर्चा यही एकमात्र रास्ता हमारे देश के लिए आगे बढने का है।

२१ मार्च को परीक्षा देकर कमला घर चली आईं। तीना प्रश्न पत्र सन्तापजनक हुए है। हमको अफसोस हो रहा था, कि विशारद की परीक्षा से लाभ उठाकर क्या एक विषय को छोड दिया। वह सभी विषयो को लेकर आसानी से पास हो जाती। पर उस वक्त तो परीक्षा म बैठन की उनकी हिम्मत ही नही थी।

उसी दिन अदालत का समन मिला। साहित्य सम्मेलन पर प० जय चन्दजी ने मुकदमा कर दिया था और मैं भी उसकी स्थायी समिति का मेम्बर था इसलिए यह समन था। मेरी दृष्टि मे यह काम किसी भी सम्माननीय साहित्यकार के लिए बिल्कुल अयुक्त था। क्या उनको और कुछ काम नही रहा, कि सम्मेलन को मुकदमेबाजी का अखाडा बनाने मे अपना अगुवा बने?

शिवकुमार शर्मा एक साहसी तरुण हैं। पढने म भी अच्छे रहे। यह 'साहित्यरत्न' की परीक्षा से मालूम था। लिखने की शक्ति भी विकसित कर सकते हैं। लेकिन, अधिक जोश आदमी के सोचने की गहराई को कुछ

कम कर देता है। अब वह यात्रा पर निकलने वाले थे। चाहते थे, सभी हिन्दी के मुख्य मुख्य पत्रों का यह सूचित कर दूँ, कि शिवकुमार शर्मा यात्रा पर निकल रहे हैं। मैंने समझाया, ऐसे पत्रों का स्थान सम्पादकों की रद्दी की टोकरी होगा। पत्रों की सिफारिश द्वारा परिचय नहीं प्राप्त करना चाहिए, और न वह हो सकता है। अपनी लेखनी से ही परिचय करने की इच्छा रखनी चाहिए। दो चार लेख अगर दो-चार पत्रों की रद्दी की टोकरी में जाएँ, तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। लेख की एक कापी अपने पास रहे और दूसरी को पत्रों में भेजकर भाग्य परीक्षा करनी चाहिए। अनेक पत्रों के यहाँ यदि उसकी वही गति हो, तो सम्पादकों को नहीं अपने को दोष देना चाहिए, और आगे अपने को सुधारने की कोशिश करनी चाहिए।

भैया और भाभीजी का लगातार तकाजा आ रहा था कि अमृतसर आ जाएं। मेरे साथ जाने का मतलब था, काम की क्षति। सौभाग्य से भैया के अमृतसर के मित्र मास्टर नानीराम आ गए थे, और इन्हीं के साथ कमला देहरादून से २६ को अमृतसर गई। मार्च का अन्त नीचे के लिए कोई सुखद मौसिम नहीं होता।

मित्र या किसी भी सन्निकट के सम्पर्क रखने वाले को कर्ज देना मेरी नीति के खिलाफ है। अगर देना ही हो, तो पाने के लिए नहीं देना चाहिए। ३१ मार्च को एक परिचित ने कुछ रुपये कर्ज मांगें। अव्वल तो तुरन्त खयाल आया, कि इसका मतलब सम्बन्ध को बिगाड़ना होगा। लेकिन, इस समय तो मालकिन ही घर में नहीं थी, कि उनको देने के लिए सिफारिश करता।

३ अप्रैल को मुंगेर कालेज के इतिहास के प्रो० राधाकृष्ण चौधरी की चिट्ठी के साथ एक पुराने शिलालेख का फोटो आया। यह शंख लिपि में था, जो उत्तरी भारत के अतिरिक्त जावा में भी मिली है। मैंने लिखा, अभी तक इसकी वर्णमाला पढ़ी नहीं गई है। इसका कारण एक यह भी रहा कि अभिलेख कुछ ही अक्षरों के मिले थे, यह अभिलेख बड़ा है इस लिए कोशिश करें, तो शायद आप पढ़ सकें। इस लिपि में द्वितीया के चन्द्र की तरह की शिरोरेखाएँ, बल्कि शंख की आकृति बनानेवाले अक्षर होते हैं। हमारे देश में पिछले सौ सालों से पुरातत्वीय अनुसन्धान का काम हो रहा है, और पिछली आधी शताब्दी तक तो वह ज्यादा तत्परता से हुआ।

पर, अभी देश की पुरातात्विक सामग्री का शतांश भी आविष्कृत नहीं हुआ। जिस देश की संस्कृति और इतिहास जितना ही पुराना होता है, उसकी पुरातात्विक सामग्री भी उतनी ही मात्रा में अधिक, और जमीन के भीतर ज्यादा दूर तक छिपी होती है। पूर्वगामियों ने पुरातात्विक क्षेत्र का पथ-प्रदर्शन मात्र किया है। अभी बहुत सी उपलब्धियां करने को बाकी हैं। हमारे तरुण विद्वानों में इसकी तरफ रुचि है, यह जानकर खुशी हुई। उन्हें साधनों की शिकायत करते हाथ पर हाथ रखकर बैठना नहीं चाहिए। एक-एक बूंद से तालाब भरता है, फिर तालाब अपने भक्तों को अपने आप ही ढूंढ लेता है।

८ अप्रैल को कमला के साथ बाजार गए। वे कल ही अमृतसर से लौटी थीं। लण्डौर में किशनसिंह से मुलाकात हुई। बीमार होते दिल्ली गए थे, वहां बीमारी और बढ़ी। अभी भी दुबले थे। जाने पर "कहां उठावें कहां बठावें" में वह पड़ जाते और चाय पीकर जाने का आग्रह तो कितनी ही बार मानना पड़ता। चार हाथ चौड़ी और दस बारह हाथ लम्बी जगह थी, जिसको उन्होंने तीन कोठरियों में बांट रखा था। बाहर की कोठरी (ओसारा) दूकान का काम देती थी बीच की गोदाम का और पीछे की रसोई थी। पति पत्नी और लड़का तीन प्राणी इसी में गुजर कर रहे थे। जीविका का साधन जुटाने में दोनों को रात दिन एक करना पड़ता है। पत्नी तिब्बत और चीन के कुछ क्यूरियो के सामान लेकर बड़े होटलों में घूमती। किशनसिंह पर से मजबूर थे इसलिए दूकान पर बैठे रहते। लड़के को पढ़ाने की बहुत कोशिश की, लेकिन उसमें न उसके लिए रुचि थी और दिमाग था।

६०वें वर्ष की पूर्ति—९ अप्रैल १८९३ (बैसाख अष्टमी रविवार संवत् १९५०) को मेरा जन्म दिन था। आज (९ अप्रैल १९५२ में) को मेरा ६०वां जन्मदिवस था। कितने ही जन्मदिवस उस वक्त हुए, जब मुझे होश नहीं था। होश आने और आत्मनिर्भर हो जाने के बाद मुझे कभी ख्याल नहीं आया, कि जन्मदिवस का भी कोई महत्व है। न कभी किसी मित्र ने ही इसका ख्याल दिलाया। हमारे जैसे कुल में, जिसके ऊपर लक्ष्मी और सरस्वती का वरदहस्त नहीं उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं पड़ती। ये अमीरों के चोचले हैं, इसे मैं मानता हूं। कमला ने जब इसका जिक्र किया,

तो मैंने कहा, जैसे ५९ जन्मदिन बीते, वैसे ही ६०वें को भी बीत जाने दो। लेकिन उन्होंने एक न मानी, और ९ अप्रैल (बुध) को उसे मनाने का निश्चय कर लिया। मैं रविवार की छुट्टी रखा करता हूँ उस दिन काम के दिन भी छुट्टी मनाई। दोपहर बाद एक छोटी सी पार्टी हुई, जिसमें श्री सदानन्द मेहता और श्री शिव शर्मा के अतिरिक्त नीलाजी, डा० सत्यकेतु और उनके दोनों छोटे बच्चे आये। पहली बार जन्मदिन मनाना विचित्र सा मालूम हुआ।

अप्रैल का महीना नीचे गर्मी का है, यहाँ उसे जाड़े का अन्त कहा जा सकता है। शिवकुमार यहीं से ही अपनी घुमक्कड़ी पर जाने वाले थे।

इधर इन्सुलिन अधिक नियमपूर्वक लेने लगा, जिसके कारण वजन का बढ़ना मुझे प्रिय नहीं था। लेकिन प्यास और पेशाब का कम होना तथा दिमागी खुमार का मिटना प्रसन्नता की बात थी।

कमला पढ़ने में अच्छा दिमाग रखती है लिखने की भी उनमें शक्ति है। दोनों कामों में आलस्य है ऐसी राय देना अच्छा नहीं होगा। यही कहना चाहिए अभी भीतर से जबर्दस्त प्रेरणा या बेकरारी उन्हें नहीं होती। मैं भी पढ़ने लिखने में बहुत अच्छा था लेकिन किसी के कहने पर चल कर मेहनत करने के लिए तैयार नहीं होता था। जब जिज्ञासा प्रबल हुई, तो स्वयं नींद हराम करने लगी, और कितनी ही बार किताब पकड़े या लिखते यह भी नहीं मालूम हुआ कि अब भिनसार हो रहा है। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त सुई बुनाई कढ़ाई के काम में भी उनका बहुत दूर तक प्रवेश है। बाज वक्त परीक्षा के लिए तैयारी का काम छोड़कर, वह उसमें लग जाती। तीसरा गुण उनमें है संगीत के लिए बहुत सुन्दर कंठ और जल्दी से किसी भी गीत को अपने गले से उतारना। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मैं कोई साज सीखूँ। हमारा मकान यदि शहर के नजदीक होता, तो दस पन्द्रह रुपया मासिक पर कोई उत्साही सिखाने के लिए मिल जाता। मसूरी निम्न वर्ग के लोगों के लिए है, उसकी लड़कियों के लिए गायन, वादन और नृत्य आज अनिवार्य चीज समझी जाती है। योग्य या धनी वर मिलने में ये गुण सहायक होते हैं। कितनी ही शताब्दियों तक ये ललित कलाएँ उच्च और मध्य वर्ग में उपेक्षित रहीं। अब पश्चिम के सम्पर्क में आने के बाद लोगों

ध्यान उनकी ओर गया। पश्चिम के सम्पर्क मे जो जितना ही पहले आया उसने उतना ही पहले इन्हे अपनाया। हिन्दी क्षेत्र वाले इसमे सबसे पीछे रहे। हा, सामन्त वर्ग ने इसका पूरी तौर से बायकाट नही किया। मसूरी मे इसीलिए कुछ सगीत के उस्ताद रहते है। और लोगो की तरह आज उन्हे भी बडी शिकायत थी, अब हमारे कदरदान नही रहे। कदरदान अधिकतर निम्न मध्यम-वर्ग के शिक्षित थे, जो आर्थिक सकट के शिकार हो रहे थे। हम रोज रोज तो उस्ताद को तीन चार मील दूर बुला नही सकते थे, इस लिए ४० रुपये मासिक पर मगल, बृहस्पति और शनिवार को उन्हे सिखाना शुरू किया। साज मे वायलिन को पसन्द किया गया। देशी वाद्यो मे सितार या वीणा जिस तरह अधिक सम्माननीय और कलात्मक माने जाते हैं वही बात विदेशी वाद्यो मे इस हलके से बाजे की है। साथ ही इसमे यह भी एक खूबी बतलाई जाती है, कि इसमे यूरोपीय और भारतीय दोनो के सगीत को उतारा जा सकता है। इस कला से मुझे आनन्द न आता हो, यह बात नही है। पर सगीत के लिए मुझे कठ नही मिला, शायद उसी कारण मुझे गाने की रुचि नही हुई। सगीत के राग रागिनियो की पहचान के बारे मे तो यही कहना चाहिए कि भैस के आगे बीन बजाना। लेकिन, जब घर मे सगीत सिखाई होने लगी, तो बबस उसे सुनना पडता। उस्ताद चाहते थे अपने ढग से सिखाना, जिसका अर्थ था जगल मे भटकने के लिए छोड देना। हम जानते थे, कि ज्यादा महीनो तक हम खर्च बर्दाश्त नही कर सकते, इसलिए सबसे आवश्यक चीजो की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए मुझे प्रयत्न करना पडा। बगला और हिन्दी मे छपी सगीत सीखने की कुछ पुस्तकें मँगाई जिनसे पता लगा, कि दस ठाटे मूल हैं, बाकी राग रागिनिया उनके ही विस्तार है। दो चार बैठको के बाद मैंने कहा, पहले इन दसो ठाटो का सिखाइये। उस्ताद ने बेमन से इसे स्वीकार किया। दो चार दिना के बाद उस्ताद ने कहा गाने की इच्छा तो कोई भी कर सकता है, उनमे से कितनो को उसके अदा करने की शक्ति भी हो सकती है। पर, मधुर कठ और हरेक ट्यून को जल्दी पकड लेना सबके बस की बात नही है। कमला का यह सर्टीफिकेट उस्ताद ने दिया, जो भी सुनते हैं वह इसको मानने के लिए तैयार है। सगीत के गहन भेदो को वह वैज्ञानिक

तौर से अच्छी तरह पहचान सकती है, लेकिन यहा भी उनके भीतर से दबाव होना चाहिए। वह दो महीना तक बायलिन और सगीत सीखती रही। २० २२ ठाट के अतिरिक्त १० १२ और राग-रागिनियो का ज्ञान किया। वायलिन पर भी हाथ बैठ गया। यदि चाहती, तो स्वय इसको आगे बढा सकती थी लेकिन वायलिन को तो एक तरह से उन्होने बन्द करके रख दिया। गुनगुनाने का शौक पुराना है इसलिए गाह बगाह गा लेती है वह भी अधिकतर सिनमा के गाना को। अब भी उनकी इच्छा है, कि वाद्य और सगीत के लिए और समय लगा कर कुछ सीखे। इस जगल का निवास सचमुच इस विषय म प्रतिकूल सिद्ध हुआ।

१२ अप्रैल का हमारे मुहल्ले मे एक पागल कुत्ता भागता आया। उसने दो तीन आदमियो के साथ हमारे पडोसी लेडली साहब की भैंस को भी काट खाया। मुहल्ले का सबसे बडी जात का कुत्ता हमारा भूतनाथ है पर मजबूती तथा शरीर दोनो म चौधरी का टाइगर बडा है। हपी वेली का गेर रतिलाल का कुत्ता गब्बू है, जिसके सारे शरीर म ही नही चेहरे पर भी बडे बाल हैं। टाइगर हो या भूत किसी से भी भिडने के लिए वह हर वक्त तैयार रहता है। प्रतिद्वंद्वी को देखते ही अपने पिछले पैरो से मिट्टी फेंकते ललकारता है— 'हिम्मत है तो आ जाओ।' कभी उसे अखाडे से भागते नही देखा गया। भूतनाथ भिड जाते हैं, लेकिन बडे-बडे पत्थरो को ढोते-ढोते उनकी दाढे घिस गई हैं, जबकि गब्बू की सूई-जैसी तेज है। इसलिए लडने म वह किसी को भी लोहू लोहान कर सकता है। पागल कुत्ते मे भी वह लडने के लिए तैयार हो गुथ गया। डर हो गया कही गब्बू भी उसके पद चिह्न पर न चले। लेकिन, लम्बे बालो के कारण दाँत भीतर तक नही घुसे। उसको दवाई से धो दिया गया। हमारे पडोसी नन्दू धोबी के हाथ म भी पागल कुत्ते ने मुह लगा दिया था, लेकिन दाँत नही गडा। उस स्पिरिट लगा दी। सारे मुहल्ले म आतक छा गया। किवदन्तिया सुनी जाने लगी, कि उसने शहर के कई आदमियो को काटा है। १३ अप्रैल को साढे ७ बजे सवेरे वह हमारे फाटक के पास से होते ऊपर की ओर जाता दिखाई पडा। उसको इस तरह छोडना हितकर नही था। तरुण ज्ञान लेडली अपनी बन्दूक और सगर को लिए पीछे पडे। कुत्ता जगल के रास्ते की ओर भागा जा रहा

था। एक जगह जान ने बन्दूक चलाई, लेकिन कारतूस में आग नहीं लगी। कुत्ता एकाएक पीछे की ओर मुड़ा। पतली पगडंडी थी। कुत्ते ने लेडली के पैरों में दांत गड़ाये, तीनों सँकरे रास्ते से नीचे दस पन्द्रह कदम लुढ़क कर झाड़ी में जा रुके। कुत्ता फिर भागा और ये दोनों आदमी भी पीछे पीछे गए। पागल कुत्ते का काटना भयंकर चीज है। जंगल से कहां कहां घूमते फिर वह चालविल होटल के फाटक पर जब पहुँचा, तो लोगों ने उसे मार डाला। पता लगा स्नैण्डौर की ओर भी किसी पागल कुत्ते ने बहुतों को काटा था, उसे भी आज ही मारा गया था।

डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने लेडली की भैंस की बचने की आशा नहीं प्रकट की, तो भी उसको कई इञ्जेक्शन दिए गए। जान को काटने का हमें बहुत अफसोस हुआ। वह बड़े ही मिलनसार और उदार तरुण हैं, साथ ही अपने वृद्ध पिता की एकमात्र सन्तान। इञ्जेक्शन दिए गए, महीने बाद जब घाव भर गया और कोई दूसरा लक्षण नहीं प्रकट हुआ, तो बरसात की थोड़ी सी आशंका के होने भी सबको संताप हुआ। पागल कुत्ते पागल गीदड़ के काटने से भी हो जाते हैं। हम भी अपने भूत की चिंता होने लगी। आखिर उसे क्या पता है, कौन कुत्ता या सियार पागल है और कौन नहीं। यही खैरियत है, कि बघेरे के डर के मारे हम सूर्यास्त के बाद भूत को बाहर रहने नहीं देते, और सियार अधिकतर रात को ही निकलते हैं।

श्री निरत्नमान साहु (नेपाल) के पुत्र प्रत्येकमान ल्हासा में बहुत सालों से रहते थे। उनकी चिट्ठी जब तब आ जाया करती थी। पिता ने पढ़ाने की बहुत कोशिश की थी वह उसके लिए खर्च कर सकते थे, लेकिन पढ़ने की भी कुल में परम्परा चाहिये बल्कि कहना चाहिये, कि परिवार का वातावरण विद्या का विरोधी नहीं होना चाहिए। नेपाल के नेवार व्यापारियों में विद्या को अनावश्यक माना जाता है। लिखना पढ़ना और हिसाब कर लेना इतने ही भर की उनको आवश्यकता होती है। तिब्बत के व्यापारियों का तो सबसे आवश्यक जो चीज है वह है तिब्बत से जीवित सम्पर्क स्थापित करके वहां की भाषा और रीति रिवाजों का समझना। इसीलिए वहाँ इनके लड़के अधिक दीख पड़ते हैं। जब पढ़ने का समय बीत जाता है, फिर पढ़ने में समय और श्रम लगाना सम्भव नहीं होता। २२ अप्रैल को ल्हासा से प्रत्येक

मानजी का पत्र आया, जिनमे मालूम हुआ कि वहाँ के पुराने निहित स्वार्थ कम्युनिस्टो के आगमन को हृदय से दिल मे ले रहे है और कम्युनिस्टो के नरम बर्ताव को उनकी कमजोरी समझ कर आशा रखते है कि तंग होने पर वह तिब्बत छोड के चले जाएँगे। यह भी मालूम हो रहा था कि भूमि सुधार के लिए वहाँ कुछ नहीं किया जा रहा है। बहुजन का अपनी तरफ जल्दी खींचने के लिए यह आवश्यक था कि अर्ध-दास किसानो की ओर सबसे पहले ध्यान दिया जाता। ऊपर से देखने से यह शिथिलता या देरी अवाछनीय मालूम होती है, लेकिन कम्युनिस्ट अपने और अपनी शक्ति पर विश्वास करते हैं। वे जिस तरह शान्ति के साथ तिब्बत मे प्रविष्ट हुए उसी तरह वहाँ के लोगो का साथ लेकर आगे बढना चाहते है। उन्होने सबसे पहले ध्यान दो चीजो पर दिया। यातायात के लिए मोटर सडक के द्वारा तिब्बत को चीन से मिला देना और कृषि फार्मों द्वारा किसानो को आँखो दिखलाना, कि नये ढंग से कृषि की उपज और भिन्न भिन्न साग सब्जियाँ और अनाज को कितना अधिक पैदा किया जा सकता है।

जाग्रत अवस्था मे मनुष्य बाह्य जगत् से सम्पर्क रखता है। स्वप्न की वस्था के लिए बाह्य जगत् का सम्पर्क आवश्यक नहीं है। उसके लिए मन ऊपर जीवन भर के जो अनुभवो के चित्र अंकित है, वही बाह्य जगत् का ान लेते हैं। स्वप्नो के द्वारा भविष्यवाणी की बात पर मुझे विश्वास नही ार न दूसरे तौर से महत्व देता। स्वप्न मे भी वे कभी कभी मनोरजन ार मनस्तोष का काम करते है। बहुत साल पहले तिब्बत मे एक बार मैंने प्न मे देखा था, कि दिग्नाग और धर्मकीर्ति के नष्ट समझे जानेवाले मूल स्कृत ग्रथ मुझे सपने मे मिल गये। उस समय मुझे उनका ही ख्याल बरा : बना रहता था। २७ अप्रैल की रात को स्वप्न मे जायसवाल जी को ा। वह कुर्सी पर उसी मेज के सहारे बैठे थे, जहाँ वह लिखने पढ़ा करते म करते थे। मेज कमरे के भीतर और कुछ खुली सी जगह में थी। मेरे चते ही मुस्कराकर मिले। लेकिन, बात नही हो पाई। मालूम होता , वह इंगलैण्ड मे थे, बुलाने पर मैं उनके पास गया था। पुराने मधुर तियाँ जिस रूप मे भी आएँ, आनन्ददायक होती हैं। स्वप्न, शायद मनो ा तक ही सीमित नहीं है, यह तो इसी से मालूम था, कि हम कभी

भूत को सोते सोते भूकते देखते थे, अर्थात् वह भी स्वप्न देख रहा था।

१८ अप्रैल कमला के लिए बड़ी प्रसन्नता का दिन था, क्योंकि "नया समाज" उनकी कहानी "बेचारी सरस" छापने के लिए मंजूर कर ली गई। कहानी पहले-पहल छप कर आने पर उन्हें अपार प्रसन्नता हुई।

प्रकाशक सममें चलती पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए लालायित रहते हैं लेखक का भी उधर झुकाव होना स्वाभाविक है। पर, मैं कभी किसी की फर्माइश पर पुस्तक लिखने का आदी नहीं हूँ। मेरे एक प्रकाशक ने रसायन पर पुस्तक लिखने के लिए कहा। शायद वह टक्स्ट बुक के तौर पर उसे लिखवाना चाहते थे। मेरे मन में पहले ही प्रतिक्रिया हुई। रसायन तो मेरा विषय नहीं रहा। उन्होंने देखा था, मैंने अपनी "विश्व की रूप रेखा" में रसायन की बातें कही हैं, इसलिए उस पर लिख भी सकता हूँ। मैंने उन्हें निराश किया। एक दूसरे प्रकाशक ने भारतीय संस्कृति के ऊपर उसी ख्याल से पुस्तक लिखने के लिए कहा लेकिन अपना विषय होने पर भी पाठ्य पुस्तक का ख्याल आते ही लेखनी ने चलने से इन्कार कर दिया।

श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री मेरे बहुत दिनों के परिचित थे। तब वह कलिम्पाग के मिशन हाई स्कूल में पढ़ाते थे। किशोरी भाई के साढ़ू होने से भी उनके साथ घनिष्ठता थी। बम्बई में भी वह मिले थे, और अब बीकानेर में शादूल पब्लिक स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे। उन्होंने राजपूताना युनिवर्सिटी से पी एच० डी० के लिए अनुसन्धान करने में मुझे सुपरवाइजर बनने के लिए कहा। मैंने स्वीकार कर लिया। वह कुछ समय उन्होंने दिया, लेकिन इसके लिए जितनी तन्मयता चाहिए, उसके लिए वह तैयार नहीं थे। जिसके कारण काम पूरा नहीं कर सके। ६ मई को उसी के सम्बन्ध में वह मसूरी आये।

मई महीने में मित्रों के आने के बारे में चिट्ठियां मिलने लगीं। धूपनाथ जी ने आने के बारे में लिखते हुए बतलाया था—अब गाँव क्तरसन में राशन की दुकान खुल गई है। अनाज के बारे में छपरा बहुत दिनों से स्वाव लम्बी नहीं है। उतनी घनी आबादी भारत में शायद ही किसी जिले की हो। छपरा के लाखों आदमी देश के दूसरे शहरों में जाकर रोजी कमाते हैं हजारों ने बिहार के कम घनी आबादीवाले जिलों में जाकर खेती शुरू कर दी।

१५ मई को ठाकुरानी गुलाबकुमारी आई। पिछले साल वह पूरे राजसी ठाठ से आकर स्टेपल्टन होटल म उतरी थी। अपनी मोटर थी, साथ म आधे दजन के करीब नौकर-चाकर और मुसाहिब थे। अब की केवल एक नौकर और एक लडकी के साथ आई थी। नये भारत म रियासतो और वहाँ के जागीरदारो पर जो प्रभाव पड रहा था, उसका ही यह उदाहरण था। जो सामन्त "ते ते पाव पसारिये, जैती लाबी सौर"। इस वाक्य को जल्दी समझने मे समय होगा, वे अधिक अच्छे रहगे।

निर्वाचन से पहले पिछडी जातियो म कुछ सुगबुगाहट हुई थी, विशेषकर बिहार और उत्तर प्रदेश मे वे बडी जाति के शासन से ऊब कर विद्रोह करने की बात कर रह थे। छूत-अछूत दोना प्रकार की पिछडी जातिया मिलकर आबादी की ७०-८० सैकडे हैं। उनके सतक हो जाने पर यह निश्चय ही है, कि लोकतन्त्र मे "ब्राह्मण-क्षत्री-लाला" के अगुआपन के लिए कोई सभावना नहीं रह जाती। पर, बडी जातिया या उनम भी मुट्ठी भर सामन्त अपने सख्या बल पर हजारो वष से देश के सारे वैभव के स्वामी होते इन्ही शोषितो और पीडितो को हथियार बनाकर अपना काम बनाते आये हैं। काग्रेस के 'ब्राह्मण क्षत्री लाले" पचायतो के चुनाव के वक्त घबरा गये थे, उनके परो के नीचे से धरती खिसकती सी मालूम हुई थी। उस समय वे शायद भूल गये थे, कि शत्रु की शक्ति को शत्रु की छूट से धता बताया जा सकता है। चुनाव के समय उन्होने ऐसा ही किया। शोषित नेताओ म से जिनको अधिक प्रभावशाली देखा, उन्ह काग्रेस का टिकट दे दिया। वे बैल की जोडी की जय मनाने लगे। चुनाव के बाद दो चार को पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बना देने भर से उनका काम निकल गया।

तीसरे हफ्ते मे श्री धूपनाथसिंह आ गय। अब हमारी कुटिया मे बहार थी। धूपनाथजी का मेरे साथ सौहार्द्र तीस वष से ऊपर का है जिसका उल्लेख जीवन यात्रा म जगह-जगह हुआ है। उनकी सच्चाई और सरलता सोने मे सुगध है।

मैं अपने से समझता था, कि हरेक समझदार आदमी बुद्धि के सामने सिर झुकाने के लिए मजबूर होगा, लेकिन तजर्बे ने बतलाया, कि दुर्योधन के नाम से मशहूर वाक्य ठीक है—"जानामि धर्म न च मे प्रवृत्ति,

जानाम्यधम न च मे निवृत्ति । "बुद्धि के मूल्य का जानते हुए भी यदि उसकी सम्मति ठुकरान के लिए आदमी तैयार हो जाता है, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पडता है। बुद्धि जिस वक्त कान म कुछ धीमे धीमे बात करना चाहती है, उसी वक्त दिमाग मे झटका लगता है, और आदमी बुद्धि को निराश करके दूसरी ओर दौड पडता है। दुनिया म सभी आदमियो मे केवल गुण ही गुण नही होते, कुछ दोष भी होते है। अगर उनके दोषो ही को देखा जाए तो आदमी की जीवन यात्रा कठिन हो जायेगी। अपने मित्रो की सख्या बढाना जरूरी है। यदि जरा-जरा से दोषो के लिए "अय न, अय न" कहते हुए सबका प्रत्याख्यान किया जाये, तो आदमी अकेला रह जायेगा। लेकिन, किसी का हाथ पकड कर रास्ते पर चलाया नही जा सकता। मनुष्य को समाज में पैदा होने पर भी बहुत बातो मे अपने आप पर छोड दिया गया है। ठोकरे खाकर वह अपने आप ही सभलता है।

रियासतो का विलयन हुआ। वहा के राजाओ और सामतो के शताब्दियो नही सहस्राब्दियो मे चले आते जीवन की समाप्ति बहुत नजदीक है, और उसकी समाप्ति के साथ ऐतिहासिको और समाजशास्त्रियो मे ही नही बल्कि दूसरे भी पाठको के लिए सामन्ती युग के बारे म जानने के सारे साधन नष्ट हो जाएँगे। मेरा ख्याल कितने ही दिनो से हो रहा था, कि सामन्ती जीवन को लिपिबद्ध करना चाहिये। अपने मित्रो से इधर कुछ वर्षो मे कहता रहा। हा भरनेवाले तो मिले लेकिन करनेवाले कोइ नही दीख पडे। मैंने सोचा इसे अपने हाथ से ही करना चाहिए, और २६ मई को "राजस्थानी रनिवास" के लिखने मे हाथ लगाया, जो वस्तुत अभी-अभी हमारे सामने खतम होते समाज का काल्पनिक नही वास्तविक चित्र है।

३० मई को साहित्याचार्य श्री बलभद्र ठाकुर आये। चाय पीते समय दूकान पर अपना पोटफोल छोड आये थे लौट कर जाने पर वह मिल गया। उन्हें पहाड की ईमानदारी पर जरूरत से अधिक विश्वास हो गया। किसी समय जरूर पहाड म ईमानदारी का राज्य था, पर जबसे जीवन-सघर्ष बढा, उचित श्रम करने पर पेट भरने का ठिकाना नही रहा, तब से पहाडियो न भी मैदानियो का रास्ता पकडा।

३१ मई को परीक्षा परिणाम निकल आया। कमला एफ० ए० पास

हो गई, एक विषय छोड़ने का अब अफसोस कर रही थी।

अब सैलानी खूब दिखलाई पड रहे थे। हमारे देश मे आधुनिकता अब असूयपश्याओ तक म फैल गई है, बल्कि कहना चाहिए भोग के सारे साधन सुलभ होने के कारण उनम आधुनिकता के तेजी से फैलने की सभावना और भी अधिक थी। राजस्थान की रानिया और राजकुमारियाँ अपनी राजधानी मे भले ही असूर्यपश्या हो, भले ही वहा काले सीसे लगी बन्द मोटर मे उन्ह बाहर जाना पडता हो, लेकिन मसूरी के माल पर उन्ह देख कर कोई कह नही सकता, कि ये पर्दे की रानिया है। एक तरुण रानी जिनका केश कट चुका है, कभी सिर खोले पतलून पहने घूमती दिखाई पडती तो कभी घाघरा लुगडी पहने। उनको अपने राजस्थानी ननिहाल का और यूरोपियन साज सज्जा का अभिमान है।

२ जून को पृथिवीराज और राजकपूर का नाम सुन करके हम "आवारा" फिल्म देखने गए। अभी उसकी विदेशो म ख्याति नही हुई थी, तो भी मैंने लिखा था—"अब तक देखे भारतीय फिल्मो म अच्छा है, इसमे सन्देह नही। सब दृष्टि से अच्छा कहना पडेगा।" अधिकतर फिल्मो से मुझे निराश ही लौटना पडता है इसलिए भी "आवारा" को देखकर सतोष हुआ था। लौटते समय वर्षा और ओले पडे। वर्षा के मारे तो हम भीग गए। स्टेण्डड के पास रिक्शा लिया। गाधी चौक तक आते आते रिक्शेवाले भी लथ पथ हो गए और आगे चलना उनके लिए सभव नही हुआ। मित्तल जी के स्टोर मे पहुँचे। चाय पिलाकर ही उन्होने सतोष नही किया, बल्कि भोजन भी कराया। साढे १० बजे वहाँ से पैदल रवाना हुए और ११ बजे बाद घर पर पहुचे।

जून मे 'रूस म पच्चीस मास" का बीकानेर से प्रूफ आने लगा। पुस्तको के लिखने मे मुझे जितना आनन्द आता है, उससे कही अधिक आनद उनके प्रूफ देखने मे आता है। पुस्तको का लिखना माना उनका गर्भ मे आना है, और प्रकाशित होना जन्म लेना। आदमी इससे अपने परिश्रम को समझता है।

६ जून को स्वामी सत्यस्वरूपजी आए। हमारे लिए अब स्थान की समस्या थी। वस्तुत एक ही तो लम्बा-सा कमरा है, जिसमे विभाजन

करके हमने दो बना लिया है। और मेहमान को उसमे रहने के लिए कहने मे सकोच मालूम होता है, लेकिन स्वामीजी और बलभद्रजी ने उसे पसन्द किया।

अतिथिया से भरे साधुओ के मठो को मैंने वर्षों देखा है। वह सह जीवन तथा साधु सेवा मुझे हमेशा बहुत पसन्द आई। अतिथियो का समागम और उनकी सेवा मेरे लिए लालसा की चीज है। लेकिन, यहा देख रहा था अपना मकान लेने पर भी उनको रखने के लिए स्थान देना सभव नही था। धूपनाथजी एक महीने के बाद १० जून को गए। गर्मियो मे उन्हे काम से छुट्टी रहती है, लेकिन वर्षा के आरम्भ होते ही खेती के काम को देखना पडता है। वह छपरा के अपने गाव अतरसन मे न रहकर भागलपुर म खेता बारी करते है। काम मे उनका मन भी लग जाता है, और साथ ही जीविका की चिन्ता भी नही रहती।

डा० किरणकुमारी गुप्ता अपने भतीजे प्रो० प्रताप के साथ आइ। उन्होने और मैंने भी सोचा था, कि साहित्यिक कार्यो के बारे मे कुछ काम होगा। खासकर उन्होने 'अग्रवाल विवाह प्रथा'' लिखने का जो काम अपने हाथ म लिया था विवाह सम्बन्धी सैकडा गीत जमा कर लिए थे, उसके कारण मैं और भी सहयोग देने के लिए उत्सुक था लेकिन आने के दिन ही प्रो० प्रताप को जोर का बुखार आ गया। यदि पहाड मे आकर अपनी या अपने साथी को बीमारी का सामना करना पडे, तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है। फिर नीचे लौटने की ही इच्छा बलवती होती है। क्योकि वहाँ चिकित्सा और शुश्रूषा का अधिक सुभीता रहता है।

११ जून को श्री गयाप्रसाद शुक्लजी, प्रिंसिपल कालीप्रसाद भटनागर की पत्नी के साथ आए। प्रिंसिपल भटनागर हमारे प्रदेश के जाने माने शिक्षा विशेषज्ञ तथा यहा से सबसे बडे कानपुर के डी० ए० वी कालेज के प्रिंसिपल थे। (इन पक्तियो के लिखने के समय अब वह आगरा युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर हैं।) प्रिंसिपल भटनागर उदार विचारो के आर्य समाजी हैं, जिसका मतलब है धर्म के बहुत भीतर घुसकर मायापच्ची करने से दिमाग को अलग रखना। लेकिन, उनकी इस कमी का उनकी पत्नी पूरा करती हैं। वह योग और आत्मवाद के पीछे मीरा हैं। सचमुच वह मीरा

ही है, क्योंकि कीतन म वह बाज वक्त तन्मय हो जाती है। गुरु म अपार श्रद्धा रखती है। सौभाग्य से उन्हे एक महिला सिद्धा मिल गई थी, लेकिन जान पडता है "घर का जोगी जोगिना, आन गाव का सिद्ध" की कथा चरिताथ हुई। हाथ मे आने से अधिक पाने की इच्छा रखती है। कानपुर मे रहते बाल शिक्षा के लिए कुछ समय देती। गर्मियो और बरसात मे वर्षों मे पहाड की आदी हो गइ, मसूरी आ जाया करती थी। कालेज की छुट्टियो का अधिक समय प्रिंसिपल साहब भी यही बिताते थे। उन्हे एक दजन वष से अधिक किराए के बगलो म रहत हो गए। प्रिंसिपल साहब उससे सतुष्ट थे। श्रीमती भटनागर की इधर इच्छा होन लगी कि अपना बगला होना चाहिए जिसे अपनी रुचि के फूलो से सजाया जाए अपनी रुचि के अनुसार बनाया जाए। मैंने अपने पडोसी "किल्डेर" बगले को दिखलाया। उन्हे बहुत पसन्द आया। ऐसे बगले के कानपुर म होने पर तो २५ हजार रुपये मुह देखाई देनी पडती है। कितने ही समय तक यही मालूम होता था, कि "किल्डेर" की स्वामिनी वही होगी। वाक मे अच्छा या बुरा जो काम हो जाता है वह हो जाता है, देर होने मे चीज के गुण ही नही दोष भी मालूम होते है फिर वह काम नहो हो पाता। मैं सोचकर कहता हूँ, कि मकान को न लेकर श्रीमती भटनागर ने अच्छा ही किया।

श्री भारतभूषणजी का इस साल ब्याह हुआ। उस समय मास्टर विश्वम्भरदयालजी भी यही पर थे। ब्याह होकर नई-नई बहू आई थी। १२ जून को हम भी वहाँ पहुँचे। मसूरी मे मौजूद बहुत से इष्ट मित्र चाय-पार्टी मे जमा थे। बहू ग्रेजुएट थी, जो आजकल के जमाने के लिए कोई असाधारण बात नही थी। मास्टर विश्वम्भरदयाल भी खुश थे।

नए मिलनेवाला म १३ जून को प्रयाग के डा० कपिलदेव व्यास आए। वह मसूरी क लिए नए नही थे। मेरे आने से पहले कई साल तक तो वह हमारे ऊपरवाली कोठी की बगल मे 'हन ली" म ठहरा करते थे। प्रयाग के मालवीय होने के कारण चाहे डाक्टर हो या वकील, अपने साहित्य और सस्कृति की ओर कुछ रुचि होती है। व्यासजी हर साल आत, "हन ली" मे नही ठहरते, जहाँ भी ठहरें हमारे यहाँ दशन देने की कृपा जरूर करते हैं।

१५ जून को स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ पेटलाद (गुजरात) के ७० वर्ष के एक सेठ आए। वह तीर्थ व्रत और परोपकार में काफी धन खर्च करते हैं, और विद्या से भी शौक रखते हैं। बातचीत होने पर मैंने सलाह दी, कि दान पुण्य के पात्रों में साधुओं के आश्रमों का ही नहीं, बल्कि साहित्यिकों के आश्रमों का भी ख्याल रखना चाहिए। मुझे मालूम होता था, "किल्डेर" खरीदकर उसे साहित्यिकों का आश्रम बना दिया जाए। यह कहने में मेरा क्या बिगड़ता था, यद्यपि मैं जानता था, कि कान में बात डालने और उस पर हूँ हूँ करने का यह अर्थ नहीं, कि वह काम हो ही जाएगा।

यहां से १० अप्रैल को ही शिवकुमार घुमक्कड़ी के लिए निकले। ढाई महीने बाद २० जून को वह जमुनोत्री, गंगोत्री, केदार-बदरी होकर लौटे। अपनी यात्रा का विवरण बड़े उत्साह से सुना रहे थे। यद्यपि वे घिसी पगडंडियां हैं, लेकिन घुमक्कड़ी जीवन के क ख सीखने के लिए यह नीचे की रेल की यात्रा से कहीं अधिक उपयुक्त है। उनसे बात हो रही थी, तभी हमारे दार्शनिक श्री रामचन्द्रसिंह भी आ गए। वह भारतीय दर्शन और धर्म निरपेक्ष दिव्य जीवन के प्रचार की धुन में हैं। सारी योजना वह लीजिए संस्था भी उनकी जेब में चलती है। चाहे वह व्यावहारिक न हो, किन्तु जैसे शुद्ध, सरल और भटकती अद्भुत प्रतिभा के हृदय से बात निकल रही थी, उन्हें कौन सुनना नहीं चाहेगा? शाम को अपनी पत्नी सहित सत्येन्द्रजी (बदरीपुर) भी आए। सत्येन्द्रजी और उनकी पत्नी के प्रति हमारी विशेष आत्मीयता है। यह ऐसे दम्पती हैं, जिनके आदर और स्नेह पाने में हम दोनों एकमत हैं। इतने मित्रों के समागम से आज का शुक्रवार महोत्सव का दिन मालूम होता था। शिवकुमारजी अब मानसरोवर जाने का सकल्प और बलभद्रजी भी साथ देने की बात कर रहे थे।

डा० सत्यकेतु के ज्येष्ठ पुत्र श्री विश्वरंजन ने एम० ए० छोड़कर एल एल० बी ले लिया। अबके साल उन्होंने प्रथम श्रेणी में उसे पास किया। लेकिन वकालत की परीक्षा वस्तुतः युनिवर्सिटी में नहीं बल्कि कचहरी में होती है, जहां सबसे अधिक प्रतियोगिता है और मुश्किल से १० प्रतिशत वकील निश्चिन्त जीवन बिताने में सफल होते हैं।

पंडित हरनारायण मिश्र देहरादून से आए। वृद्ध साहित्य प्रेमी हैं।

पढा बहुत, और मौखिक तौर से उसका उपयोग भी बहुत किया, लेकिन उनकी लेखनी हमेशा सकोची रही है। उनके फारसी के ज्ञान को देखकर मैंने कहा, आप एक 'पारसी काव्यधारा" लिख डालें। पहले हिचकिचाए, लेकिन जब मैंने बतलाया, कि मैं भी आपको सहयोग देने के लिए तैयार हू, तो उन्होने उस काम को अपने हाथ म लिया। कुछ महीनो तक तो मालूम हुआ कि हिन्दी की यह कमी पूरी हो जाएगी, और विश्व के एक उन्नत साहित्य की कृतियाँ हिन्दी मे आ जाएँगी। मैंने उन्हे बतलाया था, मूल को भी नागरी अक्षरो म बाँये पृष्ठ पर रखें और हिन्दी अनुवाद उसके सामने दाहिने पर। मिश्रजी डायबेटीज के पुराने मरीज थे। अब आँख भी जवाब देने लगी। आदमियो को देख सकते थे। किताब का पढना उनके लिए मुश्किल हो गया, फिर 'पारसी काव्यधारा' का ख्याल छोडना पडा। कभी-कभी ख्याल आता है, क्या उसे भी मुझे करना होगा। मैंने 'सस्कृत काव्यधारा" लिखने के लिए दूसरे मित्रो को कहा था। जब कोई नही आया तो स्वय ही उसे करना पडा। "पालि काव्यधारा" और 'प्राकृत काव्यधारा" के बारे मे भी दूसरे मित्रो को वर्षों से कह रखा है, लेकिन अभी कोई सुगबुगा नही रहा है। पहले वे दोनो हो जाएँ, तभी "पारसी काव्यधारा" को हाथ मे लिया जा सकता है। जीवन चाहिए, काम की कमी नही है।

जून के साथ अच्छे-अच्छे आम आने लगे। और मसूरी मे महगे भले ही हो लेकिन वे बिल्कुल सुलभ हैं। २५ जून को श्री पुरुषोत्तम कपूर (कानपुर) का भिजवाया लखनऊ से दसहरी का पार्सल आया। अतिथियो के साथ आम का इस ऋतु मे भोज हो जाना मामूली बात थी। अधिक प्रेम से आम्रसेवा करने के लिए १० बजे दिन का समय हमे ज्यादा अनुकूल मालूम होता है।

२६ जून को गुजरात की रानी बेरिया आई। प्रौढ और वृद्ध अवस्था मे सामन्त लोगो की धर्म की ओर विशेष भक्ति होती है। स्वामी सत्यस्वरूप और उनके गुरु स्वामी गगेश्वरानन्द का उनसे परिचय था। धर्म की मेरी निरपेक्षता भी धर्माचार्यों और धार्मिको की उपेक्षा का पात्र नही बनती। रानी साहिबा का कुछ परिचय मिला था। उनकी नतनी हमारे

बिहार के डुमरांव के महाराज की पुत्री थी। वह बचपन से ही अपग है सब तरह की दवाइया की, लेकिन उससे कोई लाभ नही हुआ। अब महात्माओ की आशा है। वृद्धा शिक्षिता हैं। गुजरात के राजवशो का राजस्थान के राजवशो से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है, दोनो की भाषाएँ भी बहुत नजदीक हैं, इसलिए गुजरात के अत पुरो मे हिन्दी का प्रवेश कोई असाधारण बात नही है। उन्होने चाय छोड रखी थी सयोग से हमारे यहाँ काफी मौजूद थी।

ठाकुरानी गुलाबकुमारी भी अभी हमारे बगले मे ही ठहरी थी। लेडली के "अर्टेन" के बारे म बातचीत हुई। बूढे लेडली युग के भाडे स एक पैसा कम करने के लिए तैयार नही होते थे, लेकिन किराये पर न लगने के कारण उन्होने आधे "अर्टेन" को साढे तीन सौ रुपया साल पर दे दिया। मसूरी के मकान साल भर के किराये पर ही उठते हैं, आप चाहे बारहो महीने रहे या दो महीने।

३० जून का महीने का अन्त था। इसी दिन हमारे दो घुमक्कड मित्र शर्मा और वल्लभद्रजी पाण्डवो के रास्ते पर पैर बढाने के लिए आगे बढे। पाण्डव बल्कि हिमश्रेणियो के पार नही पहुँचे थे जबकि हमारे दोनो तरुण घुमक्कड उसके पार कैलाश मानसरोवर का धावा बोलने जा रहे थे। बूढा पहलवान जिस तरह अखाडे के किनारे बैठकर दाव-पेच सिखलाता है, वैसी ही मुझसे भी आशा रखी जाती है। मैं इसके बारे म "घुमक्कड शास्त्र" लिख चुका हूँ। मेरे कहने के अनुसार दोनो घुमक्कडो ने बिना कुली का सहारा लेकर अपने शरीर के बल पर यात्रा करने का निश्चय किया। आवश्यक चीजें उन्होने झोले म रखकर अपनी पीठ पर रखीं। शिवकुमार की पीठ पर २० सेर से क्या कम बोझा होगा? ठाकुर महाशय के लिए उससे दो-तिहाई ही काफी था। यात्रा की प्रगति के लिए आगे की [illegible] न करने के बारे यहाँ लिख रहा हूँ। [illegible] [illegible] मोटर से भी जा सकते थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अन्तिम [illegible] [illegible] २० [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नेलग और उसके आगे के डाड तक पहुँच गई। कम्युनिज्म के कीटाणु उधर से भारत की ओर न बढ़ें, इसके लिए सरकार ने वहा पुलिस बैठा दी। दोनो घुमक्कडो को वहा रोक लिया गया और वेतार से बातचीत होने लगी, यह खयाल करके, कि यदि अधिकारियो की अनुकूल सम्मति आ गई, तो आगे जाने की इजाजत दे दी जाएगी। शायद एक हफ्ते तक वे वही रुके रहे, कोई जवाब नही आया। दोनो ही चाहते, तो किसी मिनिस्टर का प्रमाण पत्र ले सकते थे, किन्तु अभी तक ऐसा होता देखा नही गया था। निराश होकर शिवकुमार ने निश्चय किया हमे ये हथकडी बेडी लगा बन्दी बनाकर तो रखे नही है, रात को हम निकल भागें। यह मैदानी या हमारे पहाडो का इलाका नही था, जहा पगडडियो को पकडकर कुछ मील पर दूसरा गाव मिल सकता था। बीसियो मील तक वहा न कोई गाँव मिला। न पहाडो पर वृक्ष वनस्पति थी। भटककर आदमी कहा जाता, इसका भी पता नही। सौभाग्य से मानसरोवर हो आया एक तरुण साधु उन्हे मिल गया जो भी पुलिस के कारण गतिरुद्ध था। वह ठीक से पथ प्रदर्शन करेगा, इसकी तो सम्भावना नही थी, क्योकि एक बार हो आया आदमी ज्यादा से-ज्यादा पडाव वाले थोलिंग या किसी दूसरे पडाव वाले गाव को जान सकता था, वहा पहुँचने से पहले बयाबान मे दूसरी पगडडिया मिल सकती थीं, जो गाँवो की तरफ नही, बल्कि किसी चरागाह की ओर ले जाती। रास्ते मे आदमी के मिलने की सम्भावना कम थी, और मिलने पर भी तिब्बती भाषा दोनो मे से किसी को नही मालूम थी। तो भी दोनो ने साहस से काम लिया। आधी रात के बाद एक दिन वे भाग निकले। यह मालूम ही था, कि कास्टबल उनका पीछा करने के लिए नही आ सकते और यदि आना भी चाहते तो तब तक वे १५-१६ मील दूर चले गए होते। वस ही हुआ। शिवकुमार थोलिंग गए कैलाश देखा, मानसरोवर की भी परिक्रमा की। पुरड् (तक्लाखर) पहुचे, तभी उन्हें कम्युनिस्ट सैनिक मिले। वह रहे थे वहाँ कोई पूछ ताछ करने वाला नही था। कम्युनिस्ट सैनिको ने उन्हे बडी खातिर से चाय पिलाई, और वे काफी प्रभावित होकर वहाँ से लौटे।

दो माल रहते अब "हन क्लिफ" के दोष भी मालूम होने लगे। सोचने लगा, नाहक हमने २० हजार से ऊपर इस बगले पर खर्च किए। "अर्द्धेन"

की तरह का कोई बगला चार-पाच सौ रुपये साल मे मिल जाता। मन कहने लगा, यदि यह बिक जाए, तो वही करे। मकान के खूटे से बधन के प्रति पहिले पहिले दुर्भाव पैदा हुआ।

२ जुलाई को दिल्ली की जामिया मिलिया के कुछ छोटे लडके अपने दो अध्यापको के साथ आए। कुछ लडके ल्हासा के मुसल्मान थे, और वहाँ के मेरे परिचितो को जानते थे। तिब्बती भाषा बोलने से उन्होने अधिक आत्मीयता महसूस की। ल्हासा के मुसलमान सभी जगह पुराने विचारो वाले मुसलमानो की तरह धर्म के मामले मे बडे कट्टर होते हैं। बौद्धो की लडकी ब्याहने के लिए हमेशा उत्सुक रहते है, लेकिन मजाल क्या कि कोई बौद्ध उनकी लडकी ले जाए। उनके लिए बौद्ध धर्म और विहार तथा उनके साहित्य काफिरो की चीज है, लेकिन वहा उनकी सख्या दाल मे नमक के बराबर है। चाहते है, कि हमारे लडके पक्के मुसल्मान हो, इसके वास्ते उपयुक्त सस्था देवबन्द हो सकती थी, जहा अरबी भाषा और इस्लामी दर्शन का अध्ययन अध्यापन होता है। लेकिन, ल्हासा के मुसलमान व्यापारी हैं, उन्हे भारत मे आना-जाना पडता है। अग्रेजी के महत्व को समझते हैं, इसी लिए वे अपने लडको को जामिया मिलिया मे भेजे हुए थे। लडको मे से कुछ अब समझने की भी शक्ति रखते थे। एक लडका बडे गौर से सामने टगी माओ त्से-तुग की तस्वीर को देख रहा था। मार्क्स और लेनिन से उसका परिचय नही था। पर यह जानता था कि अब ल्हासा की सडको पर अध्यक्ष माओ की जय बोली जा रही है। मैने कहा, अरबी पढना तुम्हारे लिए धार्मिक उपयोग की चीज है किन्तु नये तिब्बत मे उर्दू और अग्रेजी का उतनी उपयोगिता नही है जितनी कि तिब्बती भाषा की। वहा का सारा काम तिब्बती मे हो रहा है, यह उसे मालूम था। लेकिन, अभी उनके पिता पुराने युग के थे।

"राजस्थानी रनिवास" पर हमारी कलम नियमपूर्वक चल रही थी और उसके लिखे हुए को टाइपराइटर-सी जा रहे थे।

मकान का लेने वक्त मैंने गलती की थी जो उस अपने नाम लिया था, यद्यपि मैं जानता था, कि कमला उसकी मालकिन है। अब उस गलती को सुधारने की जरूरत थी। ३१ जुलाई को मुझे बडा सन्तोष हुआ जब श्री

विश्वरजनजी की सहायता से दानपत्र रजिस्टरी कमला के नाम हो गई। दो तीन सौ के बरबाद होने का सवाल रहा, बगले पर तो कई हजार बरबाद कर चुके थे।

रजिस्टरी के बाद हम बाजार से लौट रहे थे, तभी रास्ते म कमला देहरादून से लौटती मिली। वह रही थी, गर्मी के मारे जान निकल रही थी। बडी मुश्किल मे मोटर के अड्डे तक अपने का रोककर लाई जहा कै हो गई। 'नेपाल" लिखने की कल्पना मन मे चुलबुला रही थी। वह अपने साथ पर्सिवल लेंडन के ' नपाल" की दो जिल्दा को ले आई थी। मैंन सोच लिया, कि अब "नेपाल" मे हाथ लगाना ही होगा और साथ ही जनवरी १९५३ मे नेपाल यात्रा भी करनी हागी।

५ जुलाई का "प्रमाणवार्तिकभाष्य" का पहला प्रूफ आया। मुह म निकला—"कुफ्र टूटा खुदा-खुदा करके"। १६-१७ वष बाद इस ग्रथ का और मरा सौभाग्य खुला।

उसी दिन शायद उसी डाक से बनारस से एक करुणाजनक चिट्ठी एक तरुण कहानीकार की मिली। उनकी पचासा कहानिया पत्र पत्रिकाओ म छप चुकी थी, पाठक उन्हे पसन्द करते थे। उनका अपने और अपने सम्बन्धियो के छोट से परिवार का चलाना मुश्किल था। आज यदि आधा पट खा लेते, तो कल की चिन्ता दिल का सुखाने लगती, भद्र वग के होन के कारण उसके साथ ही "सम्भावितस्य चाकीर्तिर मरणादतिरिच्यते"। वह अपमान की जिन्दगी का जीना कैस पसन्द कर सकते थे? कहानिया के लिए काई प्रकाशक पैसा दन के लिए तैयार नही था। प्रकाशक भी तभी किसी पुस्तक का प्रकाशित करने के लिए तैयार होता है, जब उसे विश्वास हाता है, कि यह पुस्तक बिकेगी। नय लेखक पर वह कैसे विश्वास कर सकता है? मेरी सिफारिश को प्रकाशक रद्दी की टोकरी मे डाल देगा, यह मुझे विश्वास ही था, लेकिन अपन तरुण सधर्मा को निराशापूर्ण पत्र लिखना उचित नही था।

६ जुलाई को पटना से आमो का पासल श्री वीरन्द्रजी ने भेजा। चार-पाँच ही खराब हुए किन्तु वे उतन मीठे नही थे। उस दिन उत्तरकाशी से लिखा बल्भद्रजी का भी ४ जुलाई का पत्र मिला, जिससे मालूम हुआ,

कि वे गगोत्री की ओर रवाना होने वाले हैं। शिवकुमारजी का उसमें उल्लेख न होने से मैंने यही समझ लिया, कि शायद दोनों का मन नहीं मिला। अगले दिन शिवकुमारजी की चिट्ठी आई, उन्होंने एक दिन पहले लिखा था। मालूम हुआ, धरासू पहुँचने में उन्हें चार दिन लगे। सचमुच ये ज्यादा थे। मैं एक दिन और दो घंटे में उत्तरकाशी से मसूरी पहुँचा था। शिवकुमार बोझा भी अधिक उठा सकते थे, चलने में उनके पैर फुर्तीले थे। मथिल पण्डित ने कभी पीठ पर बोझा नहीं उठाया था। शिवकुमार भी अभ्यस्त नहीं थे। दोनों की काठी में अन्तर था। एक जूए में एक तेज और एक गरियार बैल बांध दिये जाएँ, तो तेज बैल की जो हालत होती है, वही शिवकुमार की थी। वह कुढते होंगे ठाकुर महाशय भी हमारे पैरों से पैर मिलाकर क्यों नहीं चलते ?

पिछले साल से बरसात के दिनों में पैरों में नीचे लाल लाल दाग से निकल आते थे। मेरा खेत में काम करने का रोज का नियम चलता था। बरसात के दिनों में छोटे छोटे कीडे बहुत हो जाते थे, जिनके काटने से ये लाल चित्ते निकलते थे। यदि खुजलाता, तो पक जाते, मैं उससे बचता था। डर लगता था, कहीं ये ज्यादा बढ न जाएँ। खुजली भी जोर की होती थी। ३१ जुलाई को इसके लिए पेनिसिलिन का इजेक्शन लिया।

स्वामी सत्यस्वरूपजी भी दो तरुण घुमक्कडों की बात में पडकर एक बार खयाल करने लगे, कि मैं भी चलूं लेकिन उनके मनोरथ ज्यादा बलवान् नहीं हुए। पहले ही बतला चुका हूं कि वह भारतीय दर्शन विशेषकर न्यायशास्त्र के अच्छे विद्वान् है साथ ही ग्रेजुएट होने से आधुनिक बातों का भी काफी परिज्ञान रखते हैं। किसी भी विद्या अर्जित किए पुरुष का अपने ज्ञान का फल अगली पीढी को देना मैं अनिवार्य समझता हू, इसी को पुराने जमाने में ऋषि ऋण से उऋण होना कहा जाता था। मैं इधर स्वामीजी को बराबर जोर देता रहा आप "गगेश उपाध्याय" की 'तत्व चिन्ता मणि' को हिन्दी में करें। टीका नहीं, बल्कि ऐसा अनुवाद, जिसमें वह स्वतंत्र ग्रन्थ मालूम हो। "तत्वचिन्तामणि" न्याय का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। गगेश उपाध्याय नव्य न्याय के विधाता हैं। उनकी लकीरों पर ही आज के विद्वान् चलने के लिए बाध्य हैं। 'तत्वचिन्तामणि' दो-ढाई सौ पृष्ठ का ग्रन्थ है,

लेकिन उसकी एक एक पंक्ति में एक एक पृष्ठ नहीं बल्कि एक एक पुस्तिकाएँ सन्निविष्ट हैं। सारी पुस्तक के एक दो दर्जन पन्नों को पढ़कर आज लोग महान् नैयायिक बन जाते हैं। उन पन्नों को छोड़कर बहुतों ने सारे ग्रन्थ को कभी आँखों से देखा भी नहीं। इस ग्रन्थ में उक्त महान् दार्शनिक ने १२वीं सदी तक के भारतीय दर्शन का अपनी देन के साथ रख दिया है। हमारे दर्शन के विकास को इसे जाने बिना समझा नहीं जा सकता। मैंने भी इसके कुछ ही पृष्ठ पढ़े हैं। ग्रन्थ कठिन है यह मैं मानता हूँ। लेकिन, साधन सम्पन्न पुरुष यदि उसमें पड़ जाए तो यह कार्य असाध्य नहीं है। स्वामी सत्यस्वरूप साधन सम्पन्न हैं, कुछ वर्ष लगेंगे और इसके साथ ही देश के न्याय के बड़े बड़े विद्वानों को भी घूम घूमकर सहयोग लेना पड़ेगा। स्वामीजी के लिए भारत में चारों खूंट घूम आना मामूली बात है। मैंने कहा पहले प्रकरण उपप्रकरण आदि के साथ मूल की एक शुद्ध कापी तैयार कीजिए। बहतर होगा, यदि यह मूल छप जाए। "तत्वचिन्तामणि" को छपे और पुस्तक के खतम हुए बहुत वर्ष हो गए हैं। फिर इसका एक साधारण तौर से अनुवाद कीजिए, जहाँ समझने की दिक्कत है, वहाँ मूल ही को रख दीजिए। दुबारा फिर सारे को दोहराइए, और जितना साफ हो सके उतना साफ कीजिए। फिर पण्डितों से भी सहायता लीजिए। स्वामीजी ने प्रयत्न करके देखा, तो "तत्वचिन्तामणि" की अनेक टीकाएँ, अनुटीकाएँ मुद्रित या अमुद्रित मिलीं, जिनमें कुछ मूलानुसारिणी हैं। यदि इन सबकी सहायता ली जाए, और पाँच छः वर्ष खर्च किया जाए, तो 'तत्वचिन्तामणि' का अनुवाद क्या नहीं हो सकता? हाँ, इसके लिए अपने पर और साथ ही हिन्दी पर भी विश्वास होना चाहिए। अगर किसी को यह खयाल है, कि दर्शन के उच्च ग्रन्थ को लोग हमेशा संस्कृत ही में पढ़ते रहेंगे, तो वह इस काम को नहीं कर सकता। पर जरा सा सोचने पर ही यह बात साफ मालूम होने लगेगी कि जब साइन्स की उच्च शिक्षा पश्चिमी ... और काण्ट के उच्च दर्शन हिन्दी द्वारा हमारे विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाएँगे, तो "तत्वचिन्तामणि" को क्या नहीं लोग हिन्दी में पढ़ना ... किसी न किसी को इस महान् ग्रन्थ का अनुवाद करना होगा फिर क्यों न हाथ लगाएँ?

६

मजदूर संघ में

लोग बेकार झूठ क्या बोलते है ? एक दिन एक व्यक्ति शराब पीकर आए। मुह से शराब की गध आ रही थी, बोलने चालने पर भी उसका असर था। मैंने शराब कभी नही पी, और इस रेकार्ड को कायम रखना चाहता हू, इसलिए मैंने उसमे हाथ कभी नही लगाया। लेकिन, मैं शराब पीने को पाप नही समझता, न पीने वाले को दुराचारी मानता हूँ। आखिर मैंने भाग तो कभी पी ही थी। उसका भी नशा होता है। आदमी अधिक पीने पर सुध-बुध भी खो बैठता है। मेरी दृष्टि मे शराब और भाग मे कोई अतर नही। अगर मात्रा की बात है, तो दोनो के लिए एक-सी है। अगर कोई सयमी नही है तो उसे दया का पात्र समझना चाहिए घृणा का नहीं। लेकिन, उस दिन उस व्यक्ति ने कसम खाकर कहना शुरू किया, मैंने शराब नही पी, तो मुझे जरूर बुरा लगा। आखिर गध तो साफ भेद खोल रही थी।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर पहले पुरुष थे, जिन्होने कुछ बातें बतलाते बौद्ध-ग्रथो के प्राप्ति-स्थान का पता दिया। तब से हमारा सम्पर्क घनिष्ठ होता गया। उस समय (प्रथम विश्व युद्ध के मध्य मे) एक "धम्मपद" छोडकर और किसी बौद्ध ग्रन्थ का हिन्दी मे अनुवाद नहीं था, और न स्वतन्त्र तौर से ही ऐसे ग्रन्थ लिखे गए थे जिनसे बौद्धधर्म मे परिचय प्राप्त करने मे सुविधा हो। बगभाषी और बौद्ध होने से उन्हें कुछ सुभीता था। उन्होने एक बगला बौद्ध मासिक पत्रिका का भी मुझे पता दिया था। मैं कहँ

सकता हूँ कि बौद्ध साहित्य भडार के दरवाजे पर पहुँचाने वाले वही थे। इनका देहान्त होने पर मैंने "नया समाज" मे उनकी जीवनी पर एक छोटा सा लेख लिखा। लखनऊ म उनके बनवाए बौद्ध विहार (रिसालदार बाग) और उनकी सग्रहीत हजारो पुस्तको को मैं जब भी लखनऊ जाता हूँ, देखता हूँ। और उनकी स्नेहिल मूर्ति सामने आती है। उनके शिष्य भिक्षु प्रज्ञानन्द ने अपने गुरु के विहार की रखवाली का ही भार अपने ऊपर नही लिया है, बल्कि वह वहा से बौद्ध ग्रन्थो के प्रकाशन का भी काम कर रहे हैं।

किदवाई पिल्ले—मिस्टर किदवाई आई० सी० एस० हमारे प्रदेश के जिला-जज थे। उन्होंने "हन क्लिफ" के पास ही एक बडे बगले (आराम हौस) को खरीदा, जो यहाँ के असाधारण बगलो म है। बगला और उसके कमरे ही बहुत विशाल नही है, बल्कि उसमे बगीचे के अलावा आगे पीछे काफी लम्बी चौडी समतल भूमि है। इसे देखकर मुझे खयाल आता, कि जिस समय हमारे यहाँ कम्युनिस्ट देशो की तरह बच्चो की परवरिश का खयाल किया जाने लगेगा तो यह उनके लिए बहुत उपयुक्त स्थान होगा। यहा उनके फुटबाल, हाकी, कबड्डी खेलने के लिए बहुत जमीन है, और बगले के आस-पास इतना बगीचा है जो फलो और फूलो की बहुत बडी बारी हो सकता है। खैर यह तो भावी भारत की बात है। किदवाई पेन्शन पाए या शायद बिना पाए ही मर गए। उन्होंने एक अग्रेज महिला से विवाह किया था, जो गर्मी और बरसात म बराबर यहा आकर रहा करती थी। बगले की मरम्मत करना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी, उनके दामादो ने भी बगले के ऊपर दावा कर रखा था। मुकदमा चला। इसलिए भी पैसा खर्च करने मे सकोच करती थी। शायद किदवाई कोई बडी सम्पत्ति छोडकर नही मरे थे। किदवाई की एक लडकी पाकिस्तान मे और एक लडका आसाम म सरकारी नौकर था। केरल के श्री पिल्ले अच्छे इजीनियर थे। उन्होंने भी एक अग्रेज महिला से शादी की। उनकी एक लडकी किदवाई के लडके से ब्याही थी। दोनो सन्ताने इन्डो आग्लियन थे, इसलिए वे एक दूसरे को समझ सकते थे। दोनो समधिनें एक ही बार इसी साल यहा आकर रही थी। उससे एक या दो साल बाद बेचारी मिसेज किदवाई जाडो मे समधी के पास प्रयाग गईं, और वहीं उनका देहान्त हो गया। लडके को

आसाम से खर्च करके मसूरी आने की फुरसत नही। मिस्टर पिल्ले इजीनियर मलावार के नायर अर्थात् ब्रह्मक्षत्र थे, जिनके यहाँ सस्कृत पढना मामूली बात है। वहाँ के नम्बूदरी ब्राह्मण शत प्रतिशत शिक्षित और प्राय सभी सस्कृतज्ञ होते हैं। कितने ही नायर, नम्बूदरियो की सन्तान होते हैं, इसलिए पिता के खून के साथ उन्हे सस्कृत की घुट्टी मिलती है, यह कहना अतिशयोक्ति नही है। पेन्शन के बाद पिल्ले साहब इतिहास मे लगे हुए थे। उनका सिद्धान्त था कि भारत के कोलो और द्रविडो के मिश्रण से आर्य पैदा हुए। यही से वे पश्चिमी युरोप की ओर गए। मोहनजोदडो की मूक लिपि को पढने का दावा कई महापुरुष कर रहे हैं उन्होने इस पर लिखा भी है, पर पिल्ले साहब अभी लिखने का विचार ही कर रहे हैं। वे भी लिपि के कुजी पाने की बात कह रहे थे, और यह भी कि मोहनजोदडो से आज तक इतिहास की अखण्ड परम्परा विच्छिन्न नही हुई। उन्होने तीन जिल्दो मे पुस्तक के लिखने का सकल्प किया है, जिनमे से एक जिल्द अमरिका मे किसी प्रकाशक के पास चली भी गई है।

इस खब्त के लिए कुछ कहना मेरे लिए बेकार था। मैंने कहा आप इजीनियर हैं। पाश्चात्य वास्तुकला के पण्डित होते हमारी वास्तुकला पर क्यो नही कोई पुस्तक लिखते? उन्होने अपनी लिखी एक छपी पुस्तक मुझे दी। लेकिन ओस चाटने से प्यास कैसे बुझती?

शिव शर्मा की चिट्ठी नेलग से आई जिसमे लिखा था, कि पुलिस ने हमे रोक रखा है। यह भी मालूम हुआ, कि वहा उन्होने कहा हम राहुलजी की बीबी को देखने तिब्बत जा रहे है। यह झूठ ही नही था, बल्कि अगर पुलिस को पता लग गया, कि मुझसे हजरत का सम्बन्ध है, तो वह कभी सीमान्त लाघने नही पाएँगे। वलभद्रजी की चिट्ठी अगले दिन आइ। वे नेलग से बागौरी लौट आए थे, और सोच रहे थे, कि यदि कैलाश नही जा सके तो बदरी केदार होकर लौट आएँ। मसूरी मे वर्षा ८० इच से ज्यादा हमारी तरफ और देहरादून की ओर के एक स्थान मे १२० इच तक होती है जो मामूली वर्षा नहीं है। ऐसी वर्षा के साथ बिजली का कडकना मामूली बात है। २२ जुलाई की रात को मूसाधार वर्षा हो रही थी। इसी समय बडे जोर की बिजली कडकी। मालूम हुआ, कि हमारी छत जमीन मे दब

जाएगी, उसके साथ ही घर की बिजली बुझ गई। अगले दिन पता लगा, चालविल के पास के एक देवदार पर बिजली गिरी है। हमारे बगले से भी वह देवदार दिखाई पडता था। जान पडता था, पाण्डुवर्ण का कोई दैत्य खडा है, जिसकी मुडहीन लम्बी गर्दन है सामने फैले दो हाथ हिटलरी सलाम कर रहे हैं। २४ जुलाई को भैया आए। वे उसे देख आए थे। कहने लगे, उसके टुकडे दूर दूर तक फैले हुए है। २६ को मैं भी जिज्ञासा पूर्ति के लिए वहाँ पहुँचा। चालविल के पीछे के एक बगले के पास देवदार था। उसका सिर उसी तरह छिन्न हो गया था, जैसा कभी इन्द्र ने वृत्रका किया होगा। तीन दिशाओ मे वह फटा था, आग कही नहीं लगी थी, लेकिन बिजली उसके एक तने की छाल को छीलते जमीन मे घुस गई थी। देवदार बहुत ऊँचा वृक्ष होता है, और बिजली पृथिवी के सबसे ऊँचे स्थान पर भू विद्युत से मिलन करना चाहती है। पहाड मे यह प्रसिद्धि है बिजली अक्सर देवदारो पर गिरती है।

१३ जुलाई को भाभीजी का दिल का दौरा आ गया। दो बरसातो म वे बराबर हँसती हँसाती रही। बात बात मे व्यग करक मुरझाये दिल को खुश कर देने की उनके पास कला थी। उनकी तरुणाई और भी नवतरुणाई मे परिणत हो जाती थी, जब वे चुहुल करती। दिल का दौरा उनकी सारी प्रसन्नता को अपने साथ ले गया, और अगले दो गर्मियो मे तो मालूम ही नही होता था, कि यह वही जानकीदेवी है। चेहरे पर हमेशा हवाइया उडती रहती किसी चीज मे मन नही लगता। जहाँ सिनेमा देखना उनके बडी चाह की बात थी, वहा वे उसके नाम से भी डरती थी। किसी के मरने की खबर सुनाने का मतलब है उनके दिल मे दौरा पदा करना। मनुष्य का शरीर यत्र कितना भगुर और कोमल है?

डा० सत्यकेतु के कनिष्ठ पुत्र अमिताभ—जिसे हम बाबा कहते हैं—का ३१ जुलाई का जन्मदिन था। हम प्राय इस बाबा और उसकी बहिन उषा के जन्मदिन की पार्टी म उपस्थित होते थे। बच्चा को जब एक बार अपने जन्मदिन की आदत हो जाती है, तो उसका अभाव उन्ह खटकता है, बडी लालसा से वे उस दिन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। उस वक्त वे अपने बाल मित्रो को भी बुलाते हैं। बाबा की पार्टी से हम डा० के० एन० गैरोला के यहाँ गए।

१९४२ के आन्दोलन मे डा० गैरोला ने हिंदू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो का नेतृत्व किया था, उस सघर्ष के वे प्रधान नेताओ मे थे। सघर्ष के समय ही मुझे उनके बारे मे मालूम हुआ था। यहा आकर मुलाकात हुई। बाबा की पार्टी से मैं उनसे मिलने गया। वे मसूरी के मजूरो के सगठन के एक नेता थे। मैं यहा रहने लगा था, वे यहा गर्मियो मे कुछ समय के लिए आते थे। उन्होने जोर दिया, कि आप मजूर सभा के सभापति बनें। मैं अब लेखनी के काम को छोडकर किसी दूसरे काम मे हाथ नही लगाना चाहता था खासकर मजूरो और किसानो के सगठन मे हलके दिल से शामिल होना मैं पसन्द नही करता था। लेकिन, उन्होने बाध्य किया। ३ अगस्त को यहाँ की मजूर सभा का मैं सभापति भी चुन लिया गया जिसकी, सूचना देने उसी दिन मन्त्री और उप मन्त्री मेरे पास आए। सभा मे बोझा ढोने वाले और रिक्शा के मजूर शामिल थे। दोनो ही यहा बारहो महीना रहने वाले नही थे। बोझा ढोने वाले अधिकतर नेपाली थे, और रिक्शा वाले गढवाली। गढवाली भारवाहक एक मन से अधिक बोझा उठाने मे अपने को असमर्थ पाता है, जबकि नेपाली के लिए दो मन बोझा उठा लेना मामूली बात है। कितने ही तीन मन से भी ऊपर उठाकर ले चलते हैं। नेपाली मजूरी कम लेने को भी तैयार थे जबकि गढवाली अपने कम बोझे का कम मजूरी मे ले नही जा सकते थे। वर्षों की प्रतियोगिता के बाद बोझा ढोने का काम नेपालियो के हाथ मे चला गया और काम का बटवारा हो गया। बोझा केवल सैलानियो के सामान के रूप ही मे नही होता, बल्कि खाने पीने और व्यापार की दूसरी चीजें भी उसमे शामिल थी। नेपालियो मे से बहुत-से जाडो मे भी यही रह जाते हैं। मजूरो के असली नेता इनमे सगठन करने के लिए कभी पहुँचे ही नही। मजूरो का सगठन एक शक्ति है जिसे हथियाने से दूसरे बाज कसे आ सकते थे? मुझसे पहले उनकी सभा के सभापति यहाँ के एक लखपति होटलपति थे और मन्त्री बड़े स्टोरो के स्वामी, यहाँ के सबसे धनी व्यापारी। खैर, एक साल देखने का मैंने निश्चय कर लिया।

श्री टीकाराम बुज हर्पीवेली चौकी मे पुलिस के रजिस्टर कान्स्टेबिल थे। वे साहित्य प्रेमी थे, यह मैं पहले बतला चुका हूँ, साथ ही बडे सरल और सज्जन पुरुष थे। रविवार को वे पुस्तको और पत्रिकाओ को लेने-लौटाने

भूटान-आसाम के हिमालय पर पुस्तकें लिखकर सारे हिमालय का परिचय हिन्दी पाठकों के सामने रख सकता।

पुस्तकों के प्रकाशन की अड़चन देखकर अब दिमाग में खयाल आया, कि क्यों न स्वयं प्रकाशक बना जाए। कम-से-कम तजर्बा करने में क्या हर्ज है।

१२ सितम्बर को शिवकुमार आ पहुँचे। उन्होंने नेलंग के रास्ते थोलिंग, कैलाश मानसरोवर होते गरब्याग और अल्मोड़ा के रास्ते दिल्ली जाने की अपनी सारी यात्रा की बातें बतलाई। कुछ गम्भीरता की कमी तो जरूर है, लेकिन इस तरुण के साहस की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने और किसी यात्रा के बारे में सलाह माँगी, मैंने कहा, अल्मोड़ा जिले की सीमा से घुसकर सारे नेपाल में होते दार्जिलिंग निकल जाओ।

सितम्बर के अन्त में दूसरा सलानी सीजन आरम्भ हो जाता है। ३० सितम्बर को स्वामी सत्यदेवजी और श्री मुकुन्दीलालजी से मुलाकात हुई। स्वामीजी को देखकर हमेशा मुझे उनका बनारस वाला रूप और सरस्वती में प्रकाशित होने वाले उनके स्फूर्तिदायक यात्रा-सम्बन्धी लेख याद आते हैं। बिना जाने उनके यात्रा सम्बन्धी लेखों ने मुझे प्रेरणा दी, यह कहूँ, तो अनुचित नहीं होगा। इस प्रकार मैं अपने को उनका ऋणी मानता हूँ। जब कभी भी भेंट होती है, तो मुझे उनकी बातें सुनने में बड़ा आनन्द आता है। वर्षों से वे आँखों से वंचित हैं, किन्तु आवाज में अब भी वही कड़क है।

किसी कृति का आरम्भ यद्यपि क्रमशः होता है किन्तु होता है अभाव से ही। इसका उदाहरण मेरा ऐतिहासिक उपन्यास 'विस्मृत यात्री' है, जो कि इसी साल (१९५६) प्रकाशित हुआ। १९५१ में नरेन्द्र यश ने अपनी ओर मुझे आकृष्ट किया। फिर खयाल में आने लगा कि ऐसे महान् घुमक्कड़ को लेकर कोई उपन्यास लिखना चाहिए। उपन्यास लिखने से पहले ३० सितम्बर को मैंने घुमक्कड़ नरेन्द्र पर एक लेख लिखा। दो वर्ष और लगे, उसे उपन्यास के रूप में कागज पर उतरने में। 'राजस्थानी निवास' का भी आरम्भ इसी तरह अभाव से हुआ। मसूरी आने से पहले यदि कोई कहता कि आप इस विषय पर कभी पुस्तक लिखेंगे, तो मैं मानने के लिए तैयार न होता। अब वह ग्रंथ तैयार हो गया था, और दिल्ली के 'हिन्दु

स्तान' साप्ताहिक ने धारावाहिक रूप से उसे निकालने के लिए लिखा था।

मजूर सभा के सभापति हुए, तो उसके लिए कुछ करना भी जरूरी था। मजूरो की सबसे बडी शिकायत यह थी कि उन्हे बरसात मे बाहर भीगना पडता है और रिक्शो के रखने के लिए कोई जगह नही है। कुछ स्थानो पर टिन के घरो के बनाने की आवश्यकता थी। हम दो-तीन आदमियो के साथ उस समय की नगरपालिका के मुख्याधिकारी तिवारीजी से मिलने गये। अभी सरकार ने म्युनिसिपल कमेटी को बर्खास्त करके प्रबन्ध अपने हाथ मे ले रखा था और प्रबन्ध एक योग्य डिप्टी-कलक्टर के हाथ मे दे दिया था। वैसे सर्वेसर्वा देहरादून के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे मजूरो की शिकायतें हमने रखी, यह भी बतलाया कि इन इन स्थानो पर रिक्शा-शेड बनने चाहिएँ। हमारे मन्त्री और उप मन्त्री भी बीच मे बातो को बतला रहे थे। मेरी तो वह इज्जत करने के लिए तैयार थे, क्योकि मैं प्रसिद्ध व्यक्ति था, पर जब हमारे मन्त्री और उप मन्त्री को उन्होने सूम कह डाला तो मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे डर लगा मेरे साथी भी कुछ जवाब न दे बैठें। लेकिन उन्होने बडे जब्त से काम लिया। नौकरशाही मे यह बहुत बुराई है कि वहाँ दास और स्वामी दो ही वर्ग है। अपने मे ऊपर के अफसर या मन्त्री स्वामी हैं। उनकी चरण धूलि सिर पर रखना नौकरशाह अपना धर्म समझता है। जब से अग्रेज गये हैं तब से तो सचमुच ही चरण धूलि ली जाने लगी है। जो स्वामी नही और अपने समान वर्ग के नही हैं, वे सभी दास है उनके साथ उसी तरह का बर्ताव होना चाहिये। भला ये लोग जनता के साथ आत्मीयता कैसे स्थापित कर सकते हैं! जान पडता है, इस सारे सडे ढाचे को उखाड फेंकने के सिवा और कोई रास्ता नही।

वैसे नैयाजी अक्तूबर के अन्त तक रहा करते थे, लेकिन अब के साल भाभीजी की मानसिक दशा के कारण रहने की इच्छा नही हुई, और वह २३ सितम्बर को ही यहाँ से अमृतसर चले गये। उस दिन हम भी विदाई देने के लिए गये थे। शकराचार्य का जलूस निकल रहा था। जोशी मठ के शकराचार्य अब की वर्षावास मे यही रहे। शिक्षा के विस्तार के साथ साथ ज्ञान ही का नही अज्ञान का भी विस्तार होता है, प्रकाश का नही मूढता का भी प्रसार होता है। शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के साथ यह आवश्यक

हा जाता है। मुझे मालूम है, जब मैं पहली बार घुमक्कडी के लिए निकल कर मुरादाबाद पहुचा था, ता वहा पाठकजी के सुपुत्र ने मेरे साथी देहाती अनपढ साधु को बडी तुच्छ दृष्टि से देखा था, और उस डरा धमकाकर भगा दिया था। किन्तु वही किसी आधुनिक शिक्षित साधु के सामने साष्टाग पडने के लिए तैयार थे। शकराचार्य अग्रेजी के विद्वान् नही थे, लेकिन सस्कृत के अच्छे पण्डित थे, और बाल्न चालने का ढग भी उन्हे मालूम था। उनके पास दिल्ली से अपनी कार पर लोग सत्सग के लिए आते थे। आई० सी० एस० पुरुष के बारे मे तो नही, लेकिन आई० सी० एस० की स्त्री के आने के बारे मे जानता हू। ऐसे ब्रह्मलीन पुरुष विलासपुरी म क्यो आते हैं, उनके लिए ता तपोभूमिया और तप पूत पुरिया उपयुक्त होती। पर भक्त ही भगवान् को नही ढूढते, बल्कि भगवान् भी भक्तो का ढूढा करते हैं। वे पहले हेपी वैली के ही एक बडे बगले म रहते थे। किरायेदार आ जाने पर मालिक ने उन्हे बाहर के घर मे रख दिया। यह अपमानजनक बात थी, लेकिन पैसे का सवाल था। फिर वह कुल्हडी मे एक राजा साहब के बगले मे चले गए। उनके साथ १२-१४ आदमियो की मण्डली रहती थी। व्याख्यान के लिए लौड-स्पीकर लगाया जाता था। कुछ चढावा चढाने पर इन्कार होने से लाग समझते थे कि वह किसी से कुछ नही लेते, लेकिन इसका मतलब यही था कि वह दस-बीस रुपयो को लेना आवश्यक नहीं समझते थे। यहा से जाने के बाद सहारनपुर मे ७० ८० हजार की उनके यहा चोरी हा गई। दाई मे पेट थोडे ही छिपता है। २४ घटे साथ रहनवाले भक्तो ने सोचा हागा, इतना रुपया उनके पास रहने की जरूरत नहीं इस लिए वह हल्का करके चले गए। पुलिस ने किसी को पकडा या नही, यह नही मालूम। हा, यह पता लगा कि दिल्ली मे जाने पर किसी भक्त न मैसूर से चन्दन का सिंहासन बनवाकर उन्हे अर्पित किया था। जगद्गुरु का चौमासा खतम हा रहा था, और उसी विदाई के लिए यह जलूस निकाला गया था। जगह-जगह तोरण बदनवार लगे। लोगा ने आरती उतारी।

सीजन भर हमारे यहाँ बच्चू काम करता रहा। पहली जगह जिन लोगा के यहाँ काम किया, उनकी सिफारिशी चिट्ठियाँ उसके पास थी, और हमारे 'बिलडेर' वाले पडोसी न भी उसकी तारीफ करते हुए यह बतलाया

था कि वह हमारे नौकर का सम्बन्धी है। यदि रसोइया हरिजन हो, तो एक विशेष मानसिक आनन्द मिलता है। मैंने उसे रख लिया। खाना अच्छा बनाता था मुस्तैद भी था। कमला ने भण्डार भी उसी को सुपुर्द कर दिया था। २४ सितम्बर को मालूम हुआ, वह भाग गया। देखा जाने लगा, तो मालूम हुआ कि टिन के दूव और खाने की दूसरी चीजें सब गायब है। कुछ बरतन भी लापता है। दो अच्छी अच्छी कटोरियाँ एक बार गायब हो गई थी, तो उसने लण्ढौर से आये एक तिब्बती मित्र की लडकी पर लाछन लगाया था। क्या क्या चीजें उसने गायब की, इसका पता उसी दिन नही मालूम हो सका। पास पडोस म पूछने पर मालूम हुआ कि वह यहा से आटा चावल आलू बराबर ले जाकर बेचा करता था। रजाई दरी हमारे यहाँ से गायब थी। चौकीदार कल्याणसिंह से मालूम हुआ कि उनसे कुछ रुपया उधार ले गया और रतिलाला ने भी रुपये उधार देने की बात की। भिक्खू लाला से मालूम हुआ कि वह रात को १० बजे यहाँ आया था। अन्त मे यह भी पता लगा कि वह 'हालीवुड' के चौकीदार की बीबी को भी भगा ले गया। चौकीदार ने बहुत दौड-धूप की, लेकिन बच्चू कहाँ से हाथ आता ?

डा० किरणकुमारी गुप्ता के पति श्री बाबूलाल गुप्त एम० ए० ही रह गये थे। सचमुच ही पति के लिए विद्या म अपनी पत्नी से एक सीढी नीचे रहना अपमान की बात थी, और गुप्तजी पत्नी से बुद्धि मे कमजोर नही थे। उन्होने अपने पी एच० डी० का विषय 'लका मे भारतीय' लिया। वह हलके दिल से अपने निबन्ध मे नही जुटे, जैसा कि आजकल अक्सर देखा जाता है। अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए वह लका भी गये। मैंने उनको कुछ परामर्श दिया था। अब उन्हे अपनी थीसिस पेश करनी थी, उससे पहले मुझे भी दिखलाकर सुधार करना चाहते थे। मैं भी एक परीक्षक था। ३० सितम्बर को वह आये, और उनके निबन्ध को देखकर कुछ सुझाव दिये।

अब की छोटे सीजन के मिलनेवालो मे डा० हेमचन्द्र जोशी और छपरा के वकील बाबू शिवप्रतापजी थे। बाबू शिवप्रताप असहयोग के जमाने मे तरुण थे, और उन्होने आन्दोलन मे काम किया था। देशभक्त मजरूल हक्के

गाँव के पास रहनेवाले होने से वह उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आये थे, और हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक सम्बन्ध में बहुत उदार दृष्टि रखते थे। उर्दू पढ़ना बिहार में बहुत कम देखा जाता है, और शिवप्रताप बाबू का उसका भी परिचय था। उनसे बिहार के बारे में बातें मालूम हुईं। वह तरुण चेहरा मुझे याद आता था, जो बुढ़ापे में परिवर्तित हो गया था।

'क्लिडेर' बचने के लिए पूसग बहिने बहुत चिन्तित थी। जाड़ा सिर पर आ रहा था। जाड़े से बड़ी बहन के लिए बड़ा डर था। श्रीमती मोहिनी जुत्शी ५ अक्तूबर को आईं तो उनसे भी मैंने बात की। मैं 'क्लिडेर' का आनररी एजेन्ट बन गया था। उसमें स्वार्थ यही था कि कोई अच्छा पड़ोसी आकर बस जाये। २८ हजार में वह मिल सकता था। जुत्शी दम्पती ने उसे देखा, उन्हें भी पसन्द आया। मैंने कहा, ऊपर-नीचे चार परिवारों के लिए अलग-अलग सूट हैं अगर साढ़े छ हजार रुपया लगाने के लिए चार व्यक्ति तयार हो जायें, तो इसे मुफ्त ही समझिए। लेकिन साझे में रहना अभी हमारे यहाँ पसन्द नहीं किया जाता। साझे में रहने के लिए एक दूसरे के साथ जिस सहिष्णुता का बर्ताव करना चाहिए, उसे हमने सीखा नहीं। ९ अक्तूबर को श्रीमती भटनागर ने बातचीत करके २४ हजार पर 'क्लिडेर' को लेना तै कर लिया। हमने समझा, श्रीमती भटनागर और प्रिंसिपल कालिका प्रसाद अब हमारे पड़ोसी बन जाएँगे, लेकिन निश्चित करके भी बात पूरी नहीं हो सकी। उस सीजन में प्रायः पूरे समय जुत्शी परिवार यहीं रहा, और रविवार को उनके दर्शन जरूर हुआ करते थे। मोहिनीजी शायरा ही नहीं हैं बल्कि कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं। उन्होंने अपनी कई कहानियाँ सुनाईं। विचार आधुनिक और बड़े उदार थे। कहानियाँ सभी स्त्रियों की समस्याओं को लेकर थी, और उनकी हमेशा कोशिश रही कि अपनी हिरोइन के ऊपर पाठक की कृपा को आकृष्ट न किया जाए, बल्कि आत्मगौरव और आत्मावलम्बन के लिए किये गए प्रयत्न की पाठक दाद दें। जुत्शीजी इन्जीनियर हैं। कह रहे थे कि मुझे थोड़ी-सी जमीन मिल जाये तो मैं पाँच छ हजार में उसी पर एक छोटा सा साफ सुथरा बंगला खड़ा कर दूँगा। देवदार की लकड़ियों की अधिकता के साथ बने बंगले का मैं बड़ा प्रशंसक हूँ। कनावार रायरिक के नगर आश्रम में एक ऐसे ही

बगले म रहा था, जहाँ देवदार की भीनी भीनी सुगन्ध उसके दरो दीवार से आकर चित्त का प्रसन्न रखती थी।

१५ अक्तूबर को प्रभा वहिन आ गईं। सरदार पृथिवीसिंह का हाल-चाल बतलाया। अन्धेरी (बम्बई) मे एक बालिका विद्यालय मे व अध्यापिका थी। वहाँ से बहुत सी लडकियो को सैर करान के लिए लाई थी। उनसे मालूम हुआ, कि सरदार चीन गये हुए हैं। उन्ह उसी दिन मसूरी देखकर लौट जाना था। मैं भी उनके साथ लण्ढौर के आखिरी मकान मलिगार तक गया, फिर वल्लभ होटल तक पहुँचाकर लौट आया।

१७ अक्तूबर का माचवेजी मधु शरद, बाबा और दूना के साथ आए। बाबा (असग) कभी अपने नाम को अचिगा कहता था, अब वह शुद्ध बालने लगा था। मराठी और हिन्दी दोना पर अधिकार था। अचिगा कहने का वह आत्मगौरव पर प्रहार मानता था। उसका स्थान लेने क लिए वहिन दूना तैयार थी। मधु—माचवेजी के भतीजे—इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे साइन्स के अच्छे विद्यार्थी थे, अब वे दिल्ली की अनुसन्धानशाला म काम कर रहे थे। वे कुछ ही दिना के लिए मसूरी आए थे। हमारे घर मे बच्चा से चहल-पहल हाने लगी।

प्रकाशन खोलने का आरम्भ हमन राजस्थानी रनिवास" से करन का निश्चय किया। श्री विश्वरजन अपने प्रकाशन के काम से लखनऊ जा रह थे उन्ह आठ सौ रुपय का ड्राफ्ट नशनल हरल्ड प्रेस के लिए दे दिया। दा हजार से अधिक इस पुस्तक पर लगे। उसके बाद वोल्गा से गगा" के अग्रेजी अनुवाद को भी हमन छपवाया, अन्त मे तीसरी पुस्तक, "बहुरगी मधुपुरी" प्रकाशित हुई। प्रकाशन मे मैं सफल नही हो सकता था क्योंकि उसके लिए पूरा समय नही दे सकता था। प्रकाशन करने से भी बढकर विक्रय का प्रबन्ध करना था। जब तक एक दजन पुस्तकें न हो, तब तक अपना सफरी एजेंट रखना मुश्किल है। सफरी एजेंट हमन रखा, उन्ह कुछ अग्रिम दिया, और अफसोस यह कि डा० सत्यकेतु से भी अपने विश्वास पर अग्रिम दिलवाया। वह खा पीकर बैठ गए।

१९ अक्तूबर क रविवार को मोहिनीजी के साथ उनकी सहपाठिनी सत्या गुप्ता आईं। उन्होंने तीन-चार साल पहले एम० ए० किया था,

स्वास्थ्य खराब था। कहने लगी, मुझे कोई काम बतलाइये। वह सहारनपुर के तीतरा गांव की थी। परिवार दादा के समय से आर्यसमाजी था, जो लोक कला के लिए हानिकारक बात थी। तो भी मैंने कहा, आप कौरवी लोकगीतों और लोक कथाओं को जमा करें। यदि हजार जमा करके ला सकें, तो मैं कुछ और बतलाऊँगा। मैंने इस तरह का परामर्श कितनों को दिया होगा, इसलिए मुझे कैसे विश्वास हो सकता था सत्याजी उस बात को सीरियसली लेंगी ?

२० अक्तूबर को पेकिंग से डा० जगदीशचन्द्र जैन का पत्र आया। वे वहाँ युनिवर्सिटी में हिन्दी पढ़ाने गए थे। अभी चीन का सारा ध्यान आर्थिक समस्याओं को हल करने में लगा था। इस समय सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान सम्बन्धी कामों में पूरा ध्यान देने के लिए उसके पास फुर्सत नहीं थी। उन्होंने लिखा था, यहाँ अभी अनुसन्धान का वातावरण नहीं है। वह इस विचार से गए थे कि यदि अनुकूल हो तो अपने सारे परिवार को वहाँ बुला लेंगे, साथ में अपनी बड़ी लड़की को ही ले गए थे।

१७ नवम्बर तक अब सर्दी बढ़ गई थी। ऋतु परिवर्तन का असर पड़ा, और नाक जुकाम के साथ पकी सी मालूम होती थी। जरा भी घाव या फोड़े का सन्देह हो, तो तुरन्त उसकी तरफ ध्यान देना चाहिए, यह मैं सीख गया था। पेनिसिलिन ली, नाक छूने में भी दर्द होता था, और ठुड्डी में भी एक जगह घाव था। पेनिसिलिन और इन्सुलिन लेते चारपाई पर पड़े रहना आवश्यक था। २० तारीख से ही कुछ आराम मालूम होने लगा।

मसूरी में श्री भटनागर नायब-तहसीलदार थे। बड़े भले आदमी थे। नायब-तहसीलदार भर्ती हुए और अब एकाध साल में नायब-तहसीलदार के पद से ही पेन्शन लेने वाले थे। उनकी लड़की शकुन्तला एक स्कूल में पढ़ाती थी। भटनागरजी बाद के लिए कोई काम ढूंढ रहे थे। बुढ़ापे के साथ जीवन की निश्चिन्तता हमारे देश में बल्कि किसी भी पूंजीवादी देश में असम्भव है। पेन्शन के बाद वह कभी किसी एजेंट के यहां नौकरी करते रहे और कभी किसी के प्राइवेट सेक्रेटरी बने। चिन्ता के भारी भार को एकाध ही साल बाद मृत्यु ने उतार दिया, उनकी पत्नी और पुत्री निरालम्ब हो गई।

एक धनाढ्य तरुण विधवा के बारे में मालूम हुआ, कि वह अपने सजा

तीय एक डाक्टर से ब्याह करना चाहती ह, जिसके बच्चे आर दूसरी पत्नी मौजूद हैं। इतना बडा कदम तीन चार महीने के परिचय से ही उन्होंने उठाने का निश्चय किया था। मुझे इसके लिए बहुत खेद हुआ। लाखो की सम्पत्ति की आज वह मालकिन है। नवीन सम्बन्ध स्थापित हाते ही उनके दायादा को मौका मिल जाएगा, जो उन्हाने फूटी आखा देखना नही चाहते। उनकी घनिष्ठ परिचिता ने भी इसे अनुभव किया, और मैंने भी जोर देकर उनसे कहा कि उन्ह समझावें, कम-से कम छ महीने के लिए रुक जाएँ। एक और उदाहरण हम लागो के सामने था, जबकि एक डाक्टर महिला न दूसरे एसे ही डाक्टर से ब्याह किया। आज जिन्दगी भर उस पछताना पड रहा है। आज के समाज मे ता स्त्रिया हाथ पैर बाँधकर पुरुषा के सामन पटक दी गई है। बडी खुशी हुई, जब मालूम हुआ कि उक्त तरुणी ने अपने खयाल का बदल दिया। अब अपने समाज की सेवा मे लगी हुई है।

चालविल होटल हमारे बगले से डेढ दो फर्लांग पर ही है। सवाय और चालविल दोनो यहाँ के बहुत बडे हाटल हैं जिनमे सौ सौ कमर हैं। चार्ल-विल को यह भी अभिमान है, कि पचम जाज के दिल्ली म गद्दी पर बैठने के समय उनकी रानी यहाँ कुछ दिनो रही थी। अग्रेजो के शासनकाल मे उस कमरे को खाली रखा जाता था, और वहा राजा रानी की तस्वीर विराजती थी। ऐसे होटल म डाकखाने का रहना जरूरी था। पहले चालविल का डाकखाना बारहा महीने रहता, लेकिन अब कितने ही वर्षो मे उसे १ अप्रैल को खोलकर ३० अक्तूबर को बन्द कर दिया जाता था। मैंने डाकखाने के अधिकारियो से लिखा पढी की, तो ऊपर से जवाब आया घाटे को यदि आप पूरा करने क लिए तैयार हों, तो हम खोल सकते ह। इसका अथ यही था, कि हम खोलना नही चाहते। पुस्तका के प्रूफ बराबर आते थे। "प्रमाणवार्तिकभाष्य" के कई फार्मों का प्रूफ आया, जिसे मैंन अपन रसोइया खुशहाल के हाथो डालने के लिए भेज दिया। वह चालविल के डाकखान के लेटर बक्स मे डाल आया। प्रेस वाले कितने ही दिना तक इन्तिजार करते रहे फिर लिखा। खुशहाल से पूछने पर मालूम हुआ, कि वह यहा के लेटर-बक्स म डाल आया, जो १ अप्रल १९५३ को ही खुलेगा। बडे पोस्टमास्टर के पास कहा, उन्होंने आदमी भेजकर उसे निकलवाया।

३ दिसम्बर को मालूम हुआ, कि प० रामदहीन मिश्र अब नही रह, १ दिसम्बर को उनका देहात हो गया। ६८ वप के आयु की मृत्यु अकाल मृत्यु नही होती, किन्तु वह अब भी कायविरत नही हुए थे। सस्कृत के विद्वान् और हाई स्कूल के अध्यापक से यह आशा नही की जा सकती थी, कि वह व्यवसाय की बडी कल्पना करेंगे। उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के समय ही पुस्तक लिखने और फिर प्रकाशन का काम हाथ मे ले लिया। आज वह पटना के सबसे बडे प्रकाशक हो गए। उन्होंने अपने संस्कृत साहित्य के गम्भीर ज्ञान का लाभ हिन्दी वालो को देने के लिए कई पुस्तकें लिखी, जो हमेशा याद रहगी। मेरी भी दो पुस्तको के एक सस्करण को उन्होंने प्रकाशित किया था। उनसे और उनके सुपुत्र देवकुमार मिश्र से सदा मेरी आत्मीयता रही। एक एक करके पके आमो का टपकना ही होता है, किन्तु छूटी डालियाँ कुछ समय तक जरूर खटकती हैं।

८ दिसम्बर को फीजी से नानीदास की चिट्ठी आई। वह १ दिसम्बर को डाली हुई थी। उपनिवेशो मे बसे भारतीयो के घनिष्ठ सम्पक म आने की मेरी हमेशा आकाक्षा रही, जिसकी पूर्ति कभी नही हो सकी, और अब तो शायद उसकी तमादी भी लग गई है। तो भी जब कभी कोई ऐसा अवसर मिलता है, तो मैं सम्पक स्थापित करने से बाज नही आता। उनके पास मैंने कुछ अपनी किताबें भेजी, और उन्होंने भी वहाँ के कुछ प्रकाशन भेजे। उनसे मालूम होता था कि फीजी मे हमारे लोगो ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। वहाँ आधे के करीब सख्या उनकी है। कुली बनकर गए हमारे भोजपुरी और अवधी क्षेत्र के भाई अपनी तीसरी पीढी म सभ्य और सुसस्कृत बने दीख रह है। उनके साथ अधिक जीवित सम्बन्ध स्थापित करने की जरूरत है। वैसे भारत के स्वतन्त्र होने के बाद हमारी सरकार के प्रतिनिधि इस दिशा म कुछ काम कर रहे हैं। अग्रेज उपनिवेशो ने अपने आरम्भिक जीवन पर बहुत सुन्दर उपन्यास और कहानियाँ लिखी हमारे लोग भी वैसा क्यो नही करते? डा० बाबूलाल गुप्ता ने लका मे भारतीयो के बारे मे अपना महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। मैंने उन्हें सुझाव दिया था, कि आप डी० लिट० के लिए 'उपनिवेशो मे भारतीय' ले, और इस पर एक बडा ग्रन्थ लिखें। वैसे हमारे लोगो का ध्यान इस तरफ जाएगा जरूर,

लेकिन उसे जल्दी जाना चाहिए, ताकि बहुत-सी अभी भी उपलब्ध सामग्री नष्ट न हो जाए।

१२ दिसम्बर को सीवान के बाबू बैजनाथप्रसाद किसी विवाह के सम्बन्ध मे देहरादून आकर हमारे पास भी आए। ७० वर्ष के हो गए थे लेकिन मुझे तो वह वैसे ही मालूम होते थे जैसा बीस वर्ष पहले देखा था। आर्यसमाज के बिहार मे वह अग्रदूत थे और सीवान (छपरा) मे उन्होने डी० ए० वी० हाई स्कूल खोल कर उसे डिग्री कालेज तक पहुँचा दिया उनका जीवन तपोमय है। सभी उनका सम्मान करते है। पजाब से प्रौढ आर्यसमाजियो को दाढी रखने की बीमारी लगी, वह बिहार मे बैजनाथबाबू तक पहुँच गई। दाढी पूरी सफेद है। दुबले वह हमेशा ही रहे, लेकिन स्वास्थ्य की शिकायत कभी नही हुई। देर तक छपरा और सीवान के बारे मे बात होती रही। मालूम हुआ, दो साल से छपरा जिले मे यह दूसरा डिग्री कालेज चल रहा है। तीन सौ से ऊपर लडके है, अभी भी दो हजार रुपया मासिक का घाटा लग रहा है। बतला रहे थे कि आर्थिक कठिनाइया भयकर रूप से लोगो को पीडित कर रही है, खून और डकैती आम हो गई है, जिसके कारण सम्पन्न लोग गावो को छोडकर शहरो मे आ रहे है।

लोक-भाषाओ और लोक-साहित्य की ओर विशेष रुचि के कारण कही भी इस विषय मे यदि कोई काम होता हो तो मैं उससे प्रसन्न ही नही होता बल्कि भरसक प्रोत्साहन और सहायता भी देना चाहता हूँ। हिन्दी क्षेत्र की सभी लोक भाषाओ के प्रेमी इसे जानते हैं, और वह बराबर अपनी कृतियो और कठिनाइयो को मेरे पास भेजते है। श्री रामनारायण उपाध्याय ने नीमाडी लोक गीतो का एक सग्रह १७ दिसम्बर को मेरे पास भेजा। अभी अच्छे प्रकाशक ऐसी कृतिया को छापने के लिए तैयार नही है, इसलिए अच्छी छपाई न होने की शिकायत नही करनी चाहिए। उपाध्यायजी के सगृहीत गीत बहुत सुन्दर थे। मैं उन्हे पढ गया। देखा मारू (पति प्रियतम) बन्नाबन्नी (दुल्हा दुल्हन) आदि कितने ही उसके शब्द कौरवी हरियानी और मारवाडी से मिलते है। जिस तरह पचाली या मध्यदेशीय भाषा नैनीताल की तराई से लेकर मध्यदेश मे मराठी और छत्तीसगढी की सीमा तक फैल गई, वैसे ही उसकी पश्चिमी पडोसी कौरवी स्थानीय परिवर्तनो

के साथ राजस्थानी मालवी होते नीमाडी तक चली गई। वस्तुत नीमाडी और मालवी एक ही भाषा है। इसका सबूत इस संग्रह के निम्न वाक्यों से मालूम होता है

"धनी म्हारो देस मालवो, मुलुक नेमाड गावडा को छे रिनवास।" कौरवी है, हरियानी म से मारवाडी मालवी निमाडी मे छे हो गया है।

१८ दिसम्बर का नागरी प्रचारिणी सभा के मन्त्री ने सूचित किया कि सभा ने मुझे 'वाचस्पत्यसदस्य" निर्वाचित किया। लिखा "शिरोधार्य है।"

कमला ने इस साल साहित्यरत्न की परीक्षा का फार्म भरा था। परीक्षा देने के लिए २५ दिसम्बर को वह देहरादून गई। और वहाँ से ३१ दिसम्बर को लौटी। वह हमेशा ही परीक्षा देने के बाद निराशा प्रकट करती थीं पर लिखने और समझने की शक्ति उनम है। परीक्षक अपने दूसरे हजारो परीक्षार्थियो के स्तर को देखकर पास फेल करता है इसलिए मुझे पास होने मे सन्देह नहीं था।

२६ दिसम्बर को छाती म हल्का हल्का दर्द जब तब मालूम होने लगा। सर्दी के कारण होगा। सोचने लगा, यदि लोमडी की छाल का गर्म जाकेट इस्तेमाल करे, तो शायद दर्द कम हो। दो तीन दिन तक दर्द रहा, इसके बाद बन्द हो गया। आदमी को सिर पर रहने समय ही रोग याद आता है।

राजस्थान मे राजपूत जगली सूअर के मास को बहुत पसन्द करते हैं। हमारे पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार म तो इसे वैसे ही अभक्ष्य समझते है, जैसे गाँव के सूअर को। राजस्थान मे राजा और ठाकुर जगली सूअरो का शिकार दूसरे को करने नही देते थे। इसलिए उनके लिए वह बहुत सुलभ थे। ठाकुरानी गुलाबकुमारी ने २६ दिसम्बर को आठ दस सेर सूअर के साटे भेजे। उनके कहने से मालूम होता था कि वह कनस्तर का कनस्तर भेजा जा सकता है लेकिन उन्होने यह ख्याल नही किया था कि रियासतो और जागीरो के उठने के बाद लोग जगली सूअरो के शिकार से बाज नही आएँगे। खेतो के चर जाने पर भी पहले डण्डे के भय से हाथ नहीं उठाते थे। सचमुच हो एक दो साल बाद सूअरो का उच्छेद सा हो गया और 'शूकर मार्दव" मिलना मुश्किल हो गया।

साल का अन्तिम दिन ३१ दिसम्बर था। कमला देहरादून से भीगनी

हुई आई। आज साल का लेखा जोखा किया। "यात्रा के पन्ने" और "रूस मे पच्चीस मास" छप कर निकल गये। "राजस्थानी रनिवास" छप चुकी है, प्रेस से बाहर जाने की देर है। इस साल के ग्रथ लिखे हैं—(१) "मध्य-एसिया का इतिहास (२)" (२) "गढवाल", (३) "नेपाल"। डेढ हजार पृष्ठ लिखना असतापजनक नही कहा कहा जा सकता।

"नेपाल" मे प्राप्य सामग्री को इस्तेमाल कर चुका था, और चाहता था, नेपाल जाने से पहले उसे पुस्तकाकार बना ले। इसमे भी सफलता हुई थी।

इस साल आर्थिक कठिनाइयो के सामना करने की सम्भावना थी, लेकिन सब मिलाकर नौ हजार से कुछ ऊपर आमदनी हुई। जमा करना तो मैंने सीखा नही है। प्रकाशन हाथ मे लेने से खर्च बढ गया।

दाम्पत्य जीवन के बारे मे आचार्य गोवर्धन (११०० ई०) ने कितना सुन्दर लिखा है—

"निष्कारणापराध निष्कारणकलहरोषपरितोषम्।
सामान्यमरणजीवनसुखदु ख जयति दाम्पत्यम्।"

(जिसमे अकारण अपराध अकारण कलह रोष परितोष हैं।
एक साथ मरण, जीवन, सुख दु ख वाला दाम्पत्य (जीवन) जिंदाबाद)

कमला और मेरे स्वभाव मे अन्तर है, बल्कि विरोध भी है। जहाँ बुद्धि के पीछे आख मूद कर जाने के लिए तैयार हैं, वहा कमला उसको धता बताती है। इस पर मुझे आश्चर्य होता है। उन्हे मुझ पर आश्चर्य होता है। कि मैं क्या नही समझ पाता। लेकिन, आचार्य के कहने के अनुसार रोष के परितोष मे बदलने मे देर नही होती।

आचार्य ने एक और भी बात बतलाई है, जो उनके समय मे उचित मानी जाती थी, जब कि स्त्री को समानता का कोई विशेष न बोध था, न समाज म उसका स्थान था—

"गृहिणीगुणेषु गणिता विनय सेवा विधेयतेति गुणा।
मान प्रभुता वाम्य विभूषण वामनयनानाम्।"

(गृहिणी के गुणो मे नम्रता, सेवा और आज्ञाकारिता ये गुण गिने गए हैं। सुनयनाओ के मान, प्रभुता और सौदर्य को भूषण कहा गया है।")

७

नेपाल मे

१९५३ का पहला दिन आया। सवेरे देखा आकाश घने बादलो से ढका हुआ है। दोपहर तक वर्षा होती रही और तापमान नीचे गिरता गया। फिर बजरी पडी और अत मे हिम ने गिर कर सारे भूभाग को ढाक दिया। सर्दी कल से ही बहुत थी, और कमरे को आग जलाकर गरम किया गया था। अगले दिन और भी अधिक बर्फ दिखाई पडी। पिछले दो सालो म इतनी बर्फ नही पडी थी। दो तीन इन्च से कम मोटी क्या होगी? सवेरे बर्फ का बडा सुन्दर दृश्य था। पत्ते पत्ते और बाड की लौहजालिया रुपहली हो गई थी। जब तक यह दृश्य मसूरी से बाहर से कोई देखने के लिए आए, तब तक गायब हो जाता है। क्योकि पतली बर्फ ७ ८ बजे के बाद पत्ता को नही मढे रह सकती। दूर से वृक्ष देखने मे सामान्यत सटे मालूम होते हैं लेकिन ऐसे समय बर्फ पीछे आकर हरेक वृक्ष को अलग अलग कर देती है। मसूरी मे रहने का हिमदर्शन एक आनन्द है।

४ जनवरी को हमने सवेरे मसूरी से देहरादून जा शुक्लजी के यहाँ भोजन किया। यहा सर्दी कम थी। फोटो के लिए कुछ फिल्म खरीदे और एकाध और चीजें। रात को ७ बजे लखनऊ की रेल पकडी। डब्बे म अकेले सवारी करने वाले के खून होने की खबर अखबारो मे निकली थी। कमला ने आग्रह किया कि पहले दर्जे म न चलें। दूसरे दर्जे म रात को खाना मिले या न मिले यह भी भय था। खर, हमे सोने के लिए जगह मिल गई। अगले दिन सवेरे पौने ९ बजे गाडी लखनऊ स्टेशन पहुँची। उतर कर श्रीमती

प्रकाशवतीजी के यहाँ जा, चाय पीकर बुद्ध विहार गए। अकस्मात स्मृति मान्याल मे मुलाकात हो गई। आजकल वह नैनीताल म पढ रही थी, और अभी घर आई थी। भोजन के बाद नेशनल हरल्ड प्रेस मे ' वाल्गा टु गगा'' की दो हजार प्रतिया छापने के लिए कागज का दाम दे दिया। श्री श्याम सुन्दर श्रीवास्तव ने प्रेस दिखलाया। छपाई की इतनी अपटू डेट मशीनें शायद ही किसी प्रेस म हागी। आश्चय हाता था फिर यह प्रेस क्या लस्टम पस्टम चल रहा है।

पटना—रात का ही हमने गाडी पकडी और ६ जनवरी के ७ बजे पटना पहुँच गए। वीरेन्द्रजी, अद्भुतजी स्टशन ही पर मिल गए। ठहरने का प्रबन्ध वीरेन्द्रजी के यहा हुआ था। पत्रो मे निकल जाने के कारण कितने ही इष्ट मित्र आए, लेकिन व्याख्यान देन का नेपाल से लौटने के बाद ही निश्चय किया था। नेपाल विमान से जाना था, जो रोज रोज नही जाता था हमे वह गुरुवार को ही मिलने वाला था।

७ तारीख का भोजन अद्भुत शिवचन्दजी के यहा हुआ। शिवचन्दजी को बचपन ही स मैं जानता हूँ। उनके पिता आचाय कपिलदेव शर्मा का असहयोग के समय से ही मेरा घनिष्ट परिचय रहा है। उनके घर मे स्त्रिया तक ही नही, बल्कि काम करनेवाली नौकरानी भी सस्कृत बोलती। घर मे सस्कृत बोलन का प्रण था। एक तरफ वह लौट चला गृहा मानव की ओर' मनोवृत्ति का परिचय देते, दूसरी ओर ब्राह्मण-ब्राह्मणी अपने हाथ से अपने घर के पाखाने को साफ करते। शिवचन्दजी न सरजूपारिया से बाहर बगाली लडकी से ब्याह किया, लेकिन इसको कपिलदेवजी ने बुरा नही माना। शिवचन्दजी मासखार हैं यद्यपि उनके यहाँ सैकडा पीढ़िया से माँस खाया जाता रहा। लेकिन पत्नी माँसखार कुल म पैदा हुई। उस दिन मछली के कई प्रकार के व्यजन तैयार किये गये थे। नलिनजी और दूसरे साहित्यिक भी शामिल हो गए थे। यह छाटा माटा भाज बन गया था।

भोजन के बाद म्युजियम गया। क्यूरेटर द्वार साहब मिले। अपने लाए सग्रह को देखा और नई चीजें जो इधर सगृहीत हुइ, उन्हें भी। फिर नीचे जायसवाल प्रतिष्ठान म डा० अल्तकर के पास गया। डा० अल्तकर विद्वान् भी और बडे चुस्त भी है। सचमुच ही जो आदमी केवल वेतन के लिए काम

करता है, उसमे चुस्ती कहा से आ सकती है ? डा० अल्तेकर बराबर अनुसन्धान म लग रहते हैं। भारतीय सिक्को के बारे म उनसे बडा ममज्ञ आज कोई नही है। तिब्बत से तालपत्रो के फोटो १६-१७ वर्षो से यहा आकर पडे हुए थे, अब वह उनके प्रकाशित कराने के प्रयत्न मे है। मेर द्वारा सम्पादित प्रमाणवार्तिकभाष्य का तो बहुत सा भाग छप भी चुका है। चाय पीने के लिए वह अपन घर पर ले गए। अल्तेकर साहब को इस बात का अफसोस था, कि बिहार म सस्कृत की आर युनिवर्सिटी के विद्यार्थी ध्यान नही दे रहे है। बिहार के पण्डितो की महिमा सारे भारत मे मशहूर है—प्राचीन काल मे ही नहीं, अर्वाचीन काल मे भी। पिछले पचास वर्षों म यहाँ के हर जिल मे सैकडो सस्कृत के विद्यालय खोले गए। मिथिला म तो शायद ही काई ब्राह्मण ग्राम होगा, जिसमे सस्कृत पाठशाला न हो। अब हिन्दी द्वारा उच्च शिक्षा का द्वार खुल जाने और कितने ही सुभीतो के कारण एक एक जिले मे दो दो तीन तीन डिग्री कालेजो के होने से कालेजा की पढाई की आर उन विद्यार्थिया और उनके अभिभावको का ध्यान गया है, जो सस्कृत विद्यालया तक ही अपनी शिक्षा को सीमित रखते थे। इसके कारण सस्कृत क परीक्षार्थियो की कमी हुई हैं। सचमुच ही यह बडी समस्या हमारे सामने है, कि पुरानी परिपाटी के सस्कृत के गभीर विद्वानो की परम्परा को कस उच्छिन्न होने से बचाया जाए।

८ जनवरी को चाय पीकर हवाई अड्डे पर पहुचे। काठमाण्डू से खबर आई, कि अभी वहा के अडडे पर कुहरा है। जब तक वहाँ स कुहरा हट न जाए, तब तक विमान कस उडता ? कुछ देर इन्तजार करना पडा। फिर विमान उडा। गगा को पार करते समय ही हिमालय के शिखर दिखाई दने लग। फिर छपरा के भीतर से होत गडक पार हम चम्पारन क ऊपर पहुँच। चौरस भूमि को पार करके नीचे तराई क जगल और फिर चुरिया (शिवालिक पवत श्रेणी) आ गई। जगल पिछले सौ साला मे बहुत कट गया है, लेकिन अब भी उसक अवशिष्ट भाग को देखने पर कजली वन की कहावत याद आती। विमान नीचे के स्थाना का देखकर ही आग बढता है। नेपाल उपत्यका का पानी बागमती वहा ले जाती है, थोडी दर म विमान उसक ऊपर से उडन लगा। मेरी नजर हिमशिखरा पर थी। दाहिनी आर निरभ्र

आकाश मे उनकी निर्मल छटा आखो के सामने थी, बाइ ओर कुछ धुध थी। उत्तर की ओर पूर्व पश्चिम तक हिमश्रेणियाँ चली गई थी, इनके ही परले पार तिब्बत है। दक्षिण जाकर एक हिमश्रेणी दक्षिण की ओर मुड जाती है, जिसमे ही धौलागिरि का उच्च शिखर है।

नेपाल—गिरि मेखला को लाघ कर अब विमान उपत्यका के ऊपर उड रहा था। यहा दृश्य अपना खास आकर्षण रखता था। भादगाउँ, पाटन काठमाण्डू के नगर अनेक गाव और बीच बीच मे बागमती तथा उसकी सहायक नदियो की धाराएँ दीख पड रही थी। अड्डे पर पहुचने म देर नही लगी। पटना से चलकर ८५ मिनट बाद हम नेपाल की धरती पर उतर गए। अड्डे पर ही श्री जनकलाल शर्मा, श्री धर्मरत्न यमि, उनके चचा श्री मानदास और दूसरे मित्र मिले। नेपाल म प्रवेश करना पहले बहुत मुश्किल बात थी। सिर्फ शिवरात्रि के दिन एक हफ्ते के लिए छूट मिलती नही तो राणाशाही ने ऐसी कडाई कर रखी थी, कि कोई भारतीय घुस नही सकता था। हा अँग्रेजो के लिए कोई उतनी रुकावट नही थी, सिर्फ खबर दे देना काफी समझा जाता था। राणाशाही के उठने का एक लाभ तो यही है, कि आप अपने जिले के किसी मजिस्ट्रेट की दस्तखत मुहर के साथ अपना फोटो बनवा लें, और बेखटके साल के किसी समय नेपाल चले जाएँ। हमारे सामान को कस्टम (जकात) वालो ने देखा, और छुट्टी मिल गई। वारपर पहले जनकलालजी के घर पर गये। वही भोजन का इन्तिजाम था। ठहरने के लिए श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने पुतली सडक पर अवस्थित अपने बँगले को दे दिया था। बँगला साफ-सुथरा था, किन्तु हम तो यहाँ नेपाल सबधी सामग्री जमा करने के लिए आए थे, जिसके लिए लोगो से अधिक मिलने जुलने की आवश्यकता थी। यह बँगला मुख्य शहर से दूर था।

शाम को टहलने के लिये निकले। मानदासजी के यहा गये, फिर भाजू-रत्न साहु के यहा। उसी दिन जगतरत्न साहु से भी मिल आए।

९ जनवरी को शुक्रवार था। आकाश बादलो स ढँका हुआ था। आधी रात से सर्दी बढती और सवेरे अधिक हो जाती थी। मसूरी मे इससे उलटा है, शाम को बढ कर आधी रात के बाद वह कम हो जाती है। मसूरी म हमारा घर साढे छ हजार फुट पर था, और यह नगर चार हजार फुट पर

है। तो भी बादल वर्षा के कारण सर्दी मसूरी जितनी मालूम होती थी।

प्रूफ साथ ले आए थे। उसे भी लौटाना था। इसके लिए भारतीय दूतावास के डाकखाने मे गए, जो ठहरने के स्थान से काफी दूर था। राणा-शाही के जमाने मे नेपाल उपत्यका की दुलभ समतल भूमि का एक बडा भाग राणाओ के महल और बाग बगीचे के रूप मे परिणत हो गया। रनिवास के लिए जेल की तरह ऊँची चहारदीवारी का घिरावा आवश्यक था, इसलिए उनके महलो से नगर के सौंदय का वटटा ही लगा। नारायणहिटटी महल एक शताब्दी तक श्रीहीन पडा था। इस बीच पृथ्वीनारायण की सन्तान केवल गुडिया राजा बने रहे। अब शक्ति राजा त्रिभुवन के हाथ म थी इसलिए वहा बहुत चहल पहल दिखलाई देती थी। नेपाल मे मोटर छोड और कोई सवारी नही है। सडके भी इतनी खराब हैं, कि घाडे के ताये या साइकल रिक्शे का चलना मुश्किल है। फिर राणाशाही के समय की परम्परा है, कि सामान्य जन शासक जाति के सामने सवारी पर न निकलें। जनकलालजी हमारे पथ प्रदशक थे। घूमते घामत माहिला गुरु श्री हेमराज शमा के यहा पहुचे। मैं कम्युनिस्ट विचार रखता हू, यह उनको मालूम था और मुझे भी मालूम था, कि वह परम निरकुश सामन्तवाद के समथक हैं। तो भी सस्कृत, भारतीय सस्कृति तत्सम्बन्धी अनुसधान एसी चीजें थी, जिनके कारण हम मे १६ वष से घनिष्ठता स्थापित हो गई। सबसे पिछली बार जब मिले थे तो माहिला गुरु शासन के एक सबल स्तम्भ और प्रभावशाली राजगुरु थे। अब राणा चले गए, इसलिए वह पानी के बाहर मछली जैसे थे। आयु का उनके ऊपर पूरा प्रभाव था। पहले ही की तरह खुले दिल से बडे प्रम से मिले। दो तीन घटा साहित्य और अनुसधान की चर्चा चलती रही।

धमरत्नजी आकर अपने घर ले गए जो नहर के भीतर था। यहाँ हम मिलने-जुलने म अधिक अनुकूलता थी, इसलिए अगले दिन मे हम यहा चले आए। उनके पतक घर को सरकार ने राजनीतिक अपराध के कारण जब्त कर लिया था जो अभी तक नही लौटा था। उन्होंने किसी का अपरित्यक्त सा तिमजिला बहुत बडा घर खरीद लिया था, जिससे वह सन्तुष्ट नही थे और उसी हाते मे अपने लिए बगला बनवा रहे थे। उसी दिन साहु धर्म

मान के सहकारी ८३ वष के बूढे मिले। आँखो से कम सूझता था। सडक पर चलते वक्त मालूम होता था कि ककाल चल रहा है। पुराने युग के अवशेष थे। उनसे कितनी ही बातें मालूम हो सकती थी, लेकिन इस उमर मे स्मति भी तो धोखा देती है। उस दिन नाटककार श्री बालकृष्ण सम और दूसरे कितने ही भद्रजन मिलने आए।

१० जनवरी को मैं और कमला, जनकलालजी और दूसरो के साथ देवपाटन गए। यह उस मुहल्ले का नाम है, जिसम भारतविख्यात पशुपति का मन्दिर है। यद्यपि बस्ती सटी चली गई है, लेकिन किसी समय यह काठमाण्डू से अलग नगर था। यही प्राचीनकाल मे नेपाल की राजधानी रहा। १४वी सदी के मध्य मे बगाल के मुसलमान शाह ने तिरहुत की राजधानी सेमरौनगढ को ध्वस्त करके नेपाल पर चढाई की थी, जिसे छिपाने की बराबर कोशिश की जाती रही, यह हम बतला आए हैं। पशुपति मुख लिंग के रूप म है, अर्थात् वह उस काल से पूज्य रहते आए है, जब कि पाशुपति धम उत्तरी भारत मे सवत्र फैला हुआ था। मुस्लिम आक्रमण के समय पशुपति मन्दिर को लूटा गया, मूर्ति को खण्डित किया गया। यह खडित मूर्ति अब भी सडक पर एक जगह पडी हुई थी। पहले यह पास के कलास "ध्वसावशेष' पर थी, जिसे पशुपति के पुजारी ने उठवाकर यहाँ सडक के किनारे रखवा दिया। मुखलिंग, शिश्नलिंग यहा काफी हैं। सारा देवपाटन मुहल्ला अपने धरातल और अन्तस्तल मे पिछले दो हजार वर्षो की ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर होता है। किसी समय इसका भी भाग्य खुलेगा।

आज महाकवि देवकोटा के दशन हुए। वह बहुत बातो मे निराला से मिलते जुलते हैं, यद्यपि इतने नही कि उन्ह अप्रकृतिस्थ कहा जा सके। निरालाजी आजकल कितने ही दिनो से अब अँग्रेजी मे बात करते हैं। देवकोटाजी अपना एक बडा नाटक अँग्रेजी पद्य मे लिख रहे थे, जिसके कितने ही अशो को उन्होने सुनाया। उनका अग्रेजी पर अधिकार है। पर अपनी भाषा छोड कर अग्रेजी म कविता करने से क्या मतलब, जब कि यह निश्चित है, कि अग्रेज अमेरिकन नही है, उनकी कृतियो की पूछ इग्लैण्ड अमेरिका म होनी मुश्किल है। लेकिन धुन है। हा, उन्होने नेपाली भाषा के उपयोग न

करने की कसम नही खाई है, और वह उसमे बराबर लिखते रहते हैं। गद्य-पद्य, नाटक, निबन्ध, खण्डकाव्य, महाकाव्य सबमे उनकी लेखनी निरबाध साधिकार चलती है। मस्तमौला हैं। कागजा पर कविता उतार रहे हैं, फिर कोई लडका खेलने आया, ता कागज को उसे दे दिया या स्वय ही फाडकर फेंक दिया। फिर दुबारा लिखते हैं। उनकी कितनी ही कविताएँ नष्ट हो चुकी हैं। मैंने तरुण मित्रा से कहा—इनकी रक्षा की कोशिश आप लोगा को करनी चाहिए।

फिर बालचन्द्र शर्मा से मिलते और कुछ जगहो मे गए। भोजन वहीं नेपाल की एक महिला नेता श्रीमती प्रभादेवी के यहाँ हुआ। नेपाली भोजन म मुझे एक विचित्र रस मिलता है। एक बार किसी भोजन के साथ आदमी का जब पक्षपात हा जाता है, तो वह कम होने का नाम नही लेता, निरामिष भाजन भी मधुर मालूम होता है। दाल, भात और कितनी ही तरह की सब्जिया सभी नेपाली महिला के हाथ मे पहुँचकर अमतरस म डूब जाती हैं। राणाशाही के खिलाफ सघर्ष करने वाला मे नेपाल उपत्यका की महिलाएँ भी शामिल हुईं, उन्होंने तरह तरह से अपमान और कष्ट सहे। प्रभादेवी उनम से एक थी।

सरकार ने किसानो की अवस्था बेहतर बनाने के लिए भूमि-सुधार कमीशन बनाया। मेरे स्वागत मे उसकी तरफ से हिमालय होटल म चाय पार्टी का प्रबन्ध था। ३ बजे हम वहाँ पहुँचे। नगरी के २५ ३० गणमान्य पुरुष मौजूद थे। वह भूमि सुधार के बारे मे मेरे विचारो को जानना चाहते थे, जिसे मैंने बतलाया। वहा से उठते उठते अँधेरा हा गया। हमारा सामान पहले यमिजी के घर पर चला गया था इसलिए हम वहाँ चले गए। रात के १० बजे तक गोष्ठी चलती रही। नेपाल मे मेरी पुस्तकें पढी जाती हैं। मैं खतरनाक आदमी था तब भी छिप कर यहाँ के जो तरुण मेरे पास पहुँचते थे, अब वह प्रौढ हो चुके थे।

नेपाल राणाशाही के जूये से मुक्त तो हुआ, लेकिन इस वक्त एक विचित्र परिस्थिति मे था। राणाओ और उनके जैसे स्वार्थ वालो की रक्षा के लिए गोरखा दल कायम हुआ जिसके पास अब भी बहुत पैसा और पुराने लग्गू भग्गू हैं। राणा और धिराज के आपस मे ब्याह-सम्बन्ध होते रहे हैं, जिनके

कारण धिराज कभी पसन्द नही कर सकते, कि राणा कौडी के तीन हो जाएँ। बाकी कई दल हैं जो सभी राजशक्ति केवल अपने हाथ मे रखना चाहते है। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला एक समय सबसे शक्तिशाली मन्त्री रहे। धिराज से खटपट हो गई। उन्हे हटाकर उनके बडे भाई मातृकाप्रसाद कोइराला को आगे बढाया। दोनो भाइयो का वैमनस्य इतना गहरा है, कि वह कभी मिल सकेंगे इसम सन्देह है। प्रजा परिषद्, राष्ट्रीय काग्रेस आदि कुछ और पार्टियाँ भी इसी तरह अलग अलग ढपली अलग अलग राग वाली हैं। कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी घोषित है, किन्तु लोगो का उसकी ओर अधिक झुकाव है। यह तो इसी से मालूम होगा, कि कुछ दिनो बाद उपत्यका की नगरपालिका के चुनाव म उन्ही को अधिक वोट मिले। नेपाल की उत्तरी सीमा पर तिब्बत म कम्युनिस्ट जो नवराष्ट्र की रचना कर रहे है, उसका प्रभाव नेपाल पर पडेगा, इसे कहने की आवश्यकता नही। यह भी ठीक है, कि भारतीय सरकार चाहे कम्युनिस्ट चीन के साथ कितना भी सद्भाव रखती हो, नही चाहेगी, कि लोग उससे प्रेरणा लें। राजा त्रिभुवन चार पीढी से नजरबन्द बन्दी रहे। उन्होने आज की दुनिया देखी नहीं, इस लिए भविष्य का पथ उनके लिए साफ नही है। बँधे हुए हाथो को खुला देख कर उन्हे चारो तरफ मारना यही काम है।

भादगाउँ मे—१२ जनवरी को जीप स बनेपा तक हमे जाना था, लेकिन साढे ६ बजे तक जब वह नही आइ, तो टुडीखेल के अड्डे मे आने जाने के १४ रुपय में एक टेक्सी ली। कमला, मेरे सिवा पाच और मित्र साथ थे। रास्ते मे ठेमी गाव मिला, जो अपने मेहनती किसानो के लिए प्रसिद्ध है। आजकल का कृषि विज्ञान इन्हे क्या सिखला सकता है? यह अगुल अगुल जमीन को बेकार नही रहने देते। काठमाण्डू साग सब्जी वेचने जाते हैं। वहाँ कही कूडा ककट या पाखाना पडा देखते है, तो उसे उठा ले जाते हैं। नेवार किसान को खेती करते समय पाखाने से बिल्कुल परहेज नही। इस बात मे वह चीनी और जापानी किसान जैसे हैं।

साढे १० बजे हम भादगाउँ पहुँचे। बाहर के पक्के पोखरे पर मोटर खडी कर दी। पोखरे का तल आसपास से ऊँचा है उसमे काफी पानी है, लेकिन साफ रखने की कोशिश नही की गई है। उसके किनारे बीसियो तिब्बती

स्त्री-पुरुष डेरा डाले बैठे हुए थे। जाडे के दिनो मे वह चीजो के क्रय विक्रय के लिए नेपाल आया करते हैं। वह इतना ही जानते थे, कि ल्हासा म मर्पो (लाल) आ गये हैं। दो वष हो गए, अब भी उन्होने कम्युनिस्टो के किसी काम को अपनी आखो नही देखा।

भादगाउँ उपत्यका तीन महानगरो म सबसे छोटा है, लेकिन पिछले काल मे यही प्रधान राजधानी रहा। नान्यदेव की सतानें जब मैदानी राज्य और राजधानी सेमरौनगढ की मुसलमानो के हाथ म चले जाने पर भागने क लिए मजबूर हुई तो वह पहले यही आई फिर राजा ने अपने तीन लडको मे राज्य को बाट दिया जिसके कारण कातिपुर (काठमाडू) पाटन और भादगाऊँ तीन राजधानिया हो गइ। तीनो ही नगरा के निवासी नेवार आपणजीवी हैं। आजकल यातायात की सुविधा के कारण अधिकतर लोग काठमाण्डू से चीजें खरीदना चाहते हैं, इसलिए व्यापार व्यवसाय म उसी की प्रधानता है। राजधानी के पुराने अवशेषो को देखने हम शहर मे गए। पहले ही से लोगो को पता था। एक जगह भोजन का प्रबन्ध हुआ। भादगाऊँ अपने जुजुधौ (राजदही) के लिए मशहूर है। छिछले चौडे बरतन मे दही जमाई जाती है, जो थक्का बन जाती है। कुछ मीठा भी मिला दते है। काठमाण्डू वाले भी जुजुधौ बनाने की कोशिश करते हैं लेकिन उसम भादगाउँ जैसा स्वाद नही होता। नेपाल उपत्यका का प्रधान भोजन भात है। हमारे लिए भात दही के साथ भैंस का मास भी था। भैंस का मास दो-तीन जातियो को छोड यहाँ के सभी लोग खाते हैं, और वह बाजार मे उसी तरह खुला बिकता है, जैसे बकरे का माँस। "नाय" अधिक अच्छी तरह से गला कर बनाया गया होता, तो अच्छा लगता। वह चिमडा बहुत था। पर, जुजुधौ के सामने उसकी क्या पूछ होती ? जुजुधौ जितना चाह उतना खा सकते।

भोजनोपरान्त यहाँ का राजमहल दखन गए। सुवणद्वार यहाँ की अद्भुत कृति है। पिछले भूकम्प न पुरानो निशानियो को नहीं मिटाया। अब भी राजप्रासाद, तलेजु मन्दिर आदि यथापूव थे। कितनो की दीवारों मे चित्र थे।

लोगो के सामने व्याख्यान नहीं दिया, पर खान के समय गोष्ठी हो

गई। सब देखने के बाद ४ बजे हम मोटर के अड्डे पर चले आए। टैक्सी इस बीच मे एक से अधिक बार काठमण्डू हो आई थी। सवा ४ बजे हम उस पर बैठकर ५ बजे अपने दरवाजे पर उतर गए।

श्री बालचन्द्र शर्मा न नेपाली म नेपाल का सबसे अच्छा इतिहास लिखा है, जिससे मैंन भी काफी लाभ उठाया था। उनसे पूर्वाह्न म भी बातचीत हुई। अगले दिन और शाम को तो ५ बजे से ६ बजे तक उनसे ही सत्सग होता रहा। मैंन अपने लिखे इतिहास के कुछ ही भागो को सुनाया।

धिराज न काग्रेसी मन्त्रिमडल को तोडकर सलाहकारो का शासन स्थापित किया था। जिनमे ल देकर एक ही केसरशमशेर को योग्य और कार्यतत्पर कहा जा सकता था। एक मत्री को शराब पीकर मस्त रहना और २ बजे दिन से पहले सोकर उठन से फुर्सत नही थी। इनकी अयोग्यता और दु शासन के फल इनके अधिष्ठाता को भोगना पडेगा, इसमे क्या सन्देह है ?

१४ जनवरी की शाम को हमार रहन के स्थान से थाडी दूर पर साहित्यकारो की गोष्ठी हुई, जिसमे श्री बाबूराम आचाय, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, बालकृष्ण सम, बालचन्द्र शर्मा, भीमनिधि तिवारी, सिद्धिचरण, केदारनाथ व्यथित, महानन्द सापकोटा, चित्रधर उपासक आदि सभी महान् साहित्यकार उपस्थित थे। गोष्ठी तीन घण्टे तक रही। कविया ने कविताएँ सुनाई, समजी न अपने नाटक का कुछ भाग बडे नाटकीय ढग से दोहराया। मैंने भी अन्त मे कुछ कहा। गोष्ठी मे मुझे मालूम ही नही हो रहा था, कि मैं किसी पराई भाषा के साहित्यिको मे बैठा हूँ। सचमुच ही भाषा और साहित्य के तौर पर नेपाली हमार हिन्दी-क्षेत्र की अनेक भाषाओ मे एक है। चम्बा तक फैली हिमालय की भाषाओ से उसका घनिष्ट सम्बन्ध है। इस एक गोष्ठी से नपाली साहित्य की प्रगति का पता लग गया। उस दिन दोपहर का भोजन कम्पौंडर चन्द्रभानजी के यहाँ हुआ, जिसम सूअर का स्वादिष्ट भोजन भी सम्मिलित था। चन्द्रभानजी को राष्ट्रीय आन्दोलन के समय बहुत कष्ट उठाना पडा था।

अबकी मै ऐसे समय नेपाल मे आया था, जब आसमान बारबार बादलो से घिरा रहता, बूदाबादी भी होती रहती थी। यमिजी के हाते म

जितनी खाली जमीन थी, सब खेत बनी हुई थी। ऐसी उगाऊ भूमि का कैसे छोड़ा जा सकता था, जब कि कोई किसान उसे अच्छी मालगुजारी पर लेने के लिए तैयार था। नेपाल मे खाद डालने की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है, साथ ही किसान हर वक्त हाथ मे कुदाल लिए खड़ा रहता है। बीज भी शताब्दियो से उन्होने अच्छे पैदा किये हैं, और पानी की भी दिक्कत नही है। हमारे हाते मे दो दो तीन तीन सेर के गोभी के फूल लगे थे, जिन्हे यहा बड़ा नही माना जाता। मूली तो यहा दस-दस सेर की काट कर बिक रही थी।

१५ तारीख का मध्याह्न भोजन श्री कलानाथ अधिकारी के यहा हुआ। कलानाथजी मैकमिलन कम्पनी मे अच्छे वेतन पर नेपाली प्रकाशन के अधिकारी थे। स्वतन्त्र नेपाल की सेवा करनी चाहिए, यह ख्याल करके नौकरी छोडकर चले आये। वामपक्षी विचारो को रखते हैं, और मौके मौके हर जगह बहस मे भिड जाने के लिए तैयार रहते हैं। सगीत का घर भर को प्रेम है। लोक गीत बड़े सुन्दर ढग से गाते हैं, और रचते भी हैं। यदि वह लोक गीतो के सग्रह म लगते तो बडा काम करते, पर इसके महत्व को समझ नही पाते। आधे दजन बच्चे और दोनो प्राणियो का खर्च ऐसी बेकारी मे भारी सकट का कारण था। भोजन के बाद भी ३ बजे तक हम वही रहे। बच्चो ने गीत सुनाये। उनकी बहिन किशोरीजी बड़ी सुकण्ठी हैं और नेपाल रेडियो पर गाया करती है। उन्होने भी अपने गीत सुनाये। मधुर सगीत का आनन्द लेते हुए भी बीच बीच मे मेरे हृदय म टीस उठती थी, जब ख्याल करता, कि इतने बड़े परिवार की कुछ भी पर्वाह न कर यह तरुण अपने निश्चिन्त जीवन को छोडकर यहाँ चला आया।

आज शाम का सास्कृतिक सघ मे जाकर भाषण देना पडा। मेरे पुराने मित्र डा० दिल्लीरमण रेग्मी अध्यक्ष थे। पहले माहिला गुरुजी भी कुछ बोले।

दूसरे कामो के साथ साथ मेरा ध्यान बराबर अपनी पुस्तक के लिए नये आंकडे और नई सामग्री लेने की ओर था, शर्माजी का मकान अब अखंड गोष्ठी-स्थल बन गया था। लिखने-पढने का मौका नही मिलता था, इसके लिए मुझे अफसोस नही था।

१६ जनवरी को सस्कृत छात्रो की सभा मे बोलना था। राणाओ के सघर्ष के समय यहा के सस्कृत छात्रो ने बडी हिम्मत का परिचय दिया था। मैं उनकी सभा मे जाना चाहता था, लेकिन वह दो घटा दर से आए, और उधर कन्या मन्दिर का प्रोग्राम सिर पर आ गया था। सस्कृत छात्रो मे जाने से इन्कार करना पडा, जिसका उन्हे दु ख होना ही चाहिए था, पर मेरा क्या कसूर ? हा, उस समय इस इन्कार का अधिक अफसोस हुआ, जबकि मालूम हुआ कि कन्या मन्दिर मे सभा नही होने वाली है।

१७ जनवरी का मध्याह्न-भोजन श्री माधवजी के यहा हुआ। माधवजी मारिशस मे पैदा हुए। फिर भारत मे आकर उन्होने युनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त की। आज के सम्पादकीय विभाग मे बडी योग्यता से काम कर रहे थे। मारिशस को उनकी जरूरत थी, लेकिन वह भारत से नेपाल चले आए। फ्रेंच, अग्रेजी और हिन्दी तीनो पर उनका अधिकार था। यहाँ कोई स्थायी नौकरी नही थी सिर्फ ट्यूशन का भरोसा था। व्याह कर लिया था, और एक शिशु पुत्री भी आ गई थी। मैं तो उनसे कहता था, छोडो, मारिशस मे जाकर काम करो।

१८ जनवरी को म्यूजियम देखने गए। श्री चन्द्रमान मास्के कलाकार है, और राणाशाही की जेलो मे वर्षो रह चुके है। वही इसके क्यूरेटर थे। पिछली बार इसे देखा था, तब से अब सामग्री बहुत अधिक है। उसे अच्छी तरह व्यवस्थित करके रखा भी गया है। लेकिन, नेपाल के लिए ये अनुरूप नही हैं, जहाँ कि प्राचीन वस्तुओ का भडार भरा पडा है। किसी अग्रेज ने लिखा था, यहाँ मकानो से अधिक मन्दिर हैं और लोगो से अधिक मूर्तियाँ। इन मूर्तियो मे बहुत सी खडित जगह-जगह चौरस्तो, गलियो और खेतो मे पडी हुई हैं। इनमे कुछ डेढ-डेढ हजार वर्ष पुरानी भी हैं। उन्हे म्यूजियम मे सगृहीत होना चाहिए। शिलालेखो का इतना कम सग्रह कर जगह-जगह बरबाद होने के लिए उन्हे छोड देना खटकता था। चित्रपटों का सग्रह अच्छा ही कहना चाहिए लेकिन सबसे अधिक सग्रह पुराने हथियारो का था, जिनमे द्रव्यशाह और पृथ्वीनारायण के अपने हाथ के शस्त्र भी थे।

म्यूजियम से फिर किन्दु विहार गए। तिब्बत की पहली यात्रा मे यहाँ मैंने अज्ञातवास किया था। बगीचे के उस एकान्त मकान को ढूँढा, जिसमे

रात के वक्त आध घटे के लिए बाहर निकलने के सिवा मैं इस ख्याल से बराबर बन्द रहता कि राणाशाही को पता न लगे, और मेरे तिब्बत जाने में बाधा न हो। पर उसे न देख पाया। किन्दु में पहले एक विहार था, अब वहां तीन बन गए थे। पिछले बत्तीस वर्षों में बौद्ध धर्म की ओर लोगों की रुचि ज्यादा बढ़ी। तीन विहारों में एक का नाम कुशीनारा है। एक विहार में एक तिब्बती सम्माननीया भिक्षुणी ठहरी हुई थी।

म्यूजियम से इधर आने में परेड का बहुत बड़ा मैदान मिला, जिसके एक तरफ सिपाहियों की बैरकें हैं। भारतीय सेना के अफसर नेपाली सेना को सिखाने पढ़ाने का काम कर रहे हैं। लोग शिकायत कर रहे थे—"पहले के सिपाही मेहनती थे। फसल के समय जाकर घरों में काम करते थे। अब विशेषज्ञों ने उन्हें सिखलाया है, कि तुम्हारा काम सिर्फ बन्दूक चलाना और राइट लेफ्ट करना है। इसलिए वह सुकुमार हो गये।" हमारे काम चार अफसर और दूसरा क्या सिखलाएँगे? वह सिर्फ अंग्रेजी सेनिकों के बारे में जानते हैं और उन्हीं को अपना आदर्श मानते हैं। उन्हें मालूम नहीं, कि चीन और रूस के पास भी भारी पलटन है जो भयंकर लड़ाइयों में तप कर विजयी होकर निकली है। वहाँ सेना को सिर्फ कवायद परेड तक अपने काम की इतिश्री समझने नहीं दिया जाता। तिब्बत में नहरों और सड़कों का जाल बिछाने में सैनिक बड़ी तत्परता से काम कर रहे हैं।

किन्दु से स्वयंभू गए। यह यहाँ का सबसे पवित्र और पुराना बौद्ध स्तूप है। लेकिन गन्दगी देख कर तबीयत बिगड़ जाती है। बन्दरों ने और सत्यानाश कर रखा है। वहाँ से कुछ नीचे उतरकर आनन्द विहार में गए। यहाँ गुरुकुल की तरह का एक विद्यालय खोला गया है, जिसमें तीन श्रेणियों में विद्यार्थी पढ़ते हैं। मानुरत्न साहु के उत्साह और भक्ति का यह प्रमाण है।

लौट कर घर आए। श्री बालकृष्ण समशेर के यहाँ से मोटर आई और खाना पीने के लिए उनके घर गये। बालकृष्ण राणा वंश के हैं। बहुत सुन्दर है यह यदि मूल्य मगर नहीं, तो गोरा जरूर रंग, और मगरों के साथ उनका सम्बन्ध भी रहा। पाल्पा के राजा मगर थे, जिनका ब्याह-सम्बन्ध नीचे के राजपूत घरानों में होता था। पुराने राजाओं के चेहरे पर मंगोल

यित मुख मुद्रा वतलाती है कि उनमे मगर-गुरु ग जैसे किरातवशी जातियो का रक्त है। पर प्रभुत्व प्राप्त करन के बाद राणा अपन को सूयवशी सीसोदिया के साथ सम्वन्ध जाडे विना कैसे रह सकते थे ? उन्होने उदयपुर के राणा तक दौड मारी—हमे अपन वश मा स्वीकार कर लें। स्वीकार कर लेत, ता कोई हज नही था। आखिर आज राजस्थान के सूयवशी चन्द्रवशी, जाट और मराठे राजाओ से विवाह सम्वन्ध करते ही ह। राणाओ ने यद्यपि ब्याहता या रखेल रखने के लिए दरवाजा खोल दिया था, पर अपन को श्रेष्ठ साबित करन के लिए असली उन्ही सन्ताना को मानते थे, जो राजपूत स्त्रिया स हाती थी। समजी के पिता भी राजपूत माता की सन्तान नही थे, इसलिए वह तीन सरकार के अधिकारियो की सूची मे नही आ सकते थे। चाह तीन-सरकार वनने का अधिकार न हो, पर पिता की उदारता का लाभ ता पुत्र का मिलता ही है। समजी के पिता भी मौजूद थे, और समजी भी अब दादा की उमर क थे। राणा वश म इधर विद्या का कुछ प्रचार हुआ पर कला और साहित्य की ओर विशेष प्रगति किसी ने नही की। समजी इसके अपवाद ह। उनका सारा घर कला और साहित्य का प्रेमी है। वह स्वय श्रेष्ठ नाटककार है। उनका पुरानी मूर्तियो का सग्रह बहुत सुन्दर और वडा है जिससे मालूम होता है कि वर्षों से उन्होने इस तरफ ध्यान दिया था। चित्रकला का भी उन्ह शौक है। चाय पीत परिवार से बातचीत करने म हम बडी प्रसन्नता हुई।

१६ का रात का भाजन श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहा इन्द्र चौक मे हुआ। रौनियार लाग भाजपुरी इलाके के निवासी व्यापारी है। पुरान समय म भी इनके साथ (कारवा) चला करते थे, जिसे सुनकर मुझे 'शोभनायका' का पवाडा याद आता। शिवप्रसादजी के पूर्वज नपाल क साथ कपडे का व्यापार बहुत पुरान काल से किया करत थे। बैलो पर कपडा लाद कर वह यहाँ पहुँचते और उसे बचकर चले जाते थे। एक बार उनका कपडा बिका नही। लाग कपडा लौटा कर ले जान की जगह वह यही रुक गए। फिर तो ऐसा हुआ कि वह यही वस गय। आज उनकी चौथी या पाचवी पीढी चल रही है। अब देश से उनका इतना ही सम्बन्ध है—कि व्याह शादी करने भर का हैं। शिवप्रसादजी से नही मालूम हुआ, लेकिन पुस्तक भडार लहे

रियासराय के स्वामी श्री रामलोचनशरण बिहारी से पीछे पता लगा, कि शरशाह के योग्य मत्री और पीछे हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से कुछ दिनो के लिए दिल्ली के सिहासन पर बैठने वाले वीर का जन्म रौनियार कुल में ही हुआ। पश्चिम के और पूर्व के बनियो मे खास कर भोजपुरी-क्षेत्र के बनियो मे एक अन्तर यह है, कि जहाँ पश्चिम वाले अग्रवाल आदि घासाहारी होते है वहाँ पूर्व वाले मासाहारी। शिवप्रसादजी की मा सिवान (छपरा) की थी। उन्होने छपरा के ढग का सामिष भोजन तैयार किया था।

२१ जनवरी को माहिला गुरु हमारे यहा चले आए। यह कोई आश्चर्य की बात नही थी, उनका स्नेह ऐसा ही मेरे ऊपर था। पर उनका स्वास्थ्य अब बहुत खराब था, और चेहरे पर बुढापे का बहुत असर भी था इसलिए मुझे यह अच्छा नही लगा। मैं उनके पास स्वय जानेवाला था। वह कहने लगे—कोई बात नही, बहुत दूर नही था, मैं धीरे धीरे चला आया। फिर तीन घटे तक उनसे नेपाल के इतिहास पर बातचीत होती रही। वह नेपाल के विश्वकोश थे, इसलिए उनसे बात करने मे बडा आनन्द आता था। मैंने अपने हिमालय सम्बन्धी ग्रथा मे वहा की जातियो के बारे मे भी एक अध्याय रखा है। नेपाल के ढाई-तीन सौ भिन्न भिन्न ब्राह्मणो की सूची भी दी है। नेपाली ब्राह्मण कुमाइ और पूर्बिया दो भागा मे विभक्त हैं। मैं यही सुनता आया था, कि कुमाई ब्राह्मण लोग कुमाऊँ से आए हैं। महिला गुरु का परिवार भी कुमाई ब्राह्मण कहा जाता था। जब प्राप्य सामग्री का विश्लेषण किया, तो मुझे मालूम होने लगा, कि कुमाई का मतलब आजकल के कुमाऊँ से नही है, बल्कि पुराने कुमाऊँ से है, जिसकी सीमाएँ कर्नाली और उसकी शाखाओ तक फैली थी। हो सकता है, कत्यूरियो के वक्त सप्तगडी के क्षेत्र मे भी कुमाऊँ का शासन रहा हो। यह लोग अपने पुराने सम्बन्ध के कारण कुमाई कहे जाते रहे होगे, जिसे आज कल के भूगोल के साथ जोडकर लोग यह ख्याल करने लगे, कि यह लोग कुमाऊँ से आए हैं।

मैंने अपना विचार माहिला गुरु से कहा। उन्होंने समर्थन करते हुए कहा—यह बिल्कुल सभव हो सकता है।

उस दिन हनुमान ढोका आदि काठमाण्डू के पुरान राजप्रासाद देखने गए। नेपाली बाजार म लोगो म बडा असतोष फैला हुआ था, क्योकि नेपाली रुपय का भाव गिरता जा रहा था। जो कभी भारतीय रुपये के बराबर थी, वह अब भारतीय रुपये का १५१ रुपये पर पहुँच गई थी—मेरे सामन ही १६० तक चली गई। नेपाल भारत से भारी परिमाण म चीजें मँगाता है, जिनमे से कितनी ही शौकीनी की होती है। जितनी मात्रा म चीजें मँगाता है, उतनी ही मात्रा मे उतनी ही अपनी चीजें नेपाल बाहर भेज सकता, इसके ही कारण नेपाली रुपये का दाम गिरता गया। उस समय व्यापार म किसी व्यवस्था का पता ही नही लगता था। कस्टम से आख बचाकर चीजो को मँगाना, बडे-बडे लोगो का चोरबाजार मे शामिल होना ऐसी चीजें थी, जिनके कारण हालत दिन पर दिन बदतर होती जा रही थी। २१ जनवरी को युद्धसडक के एक भोजनालय मे हम भोजन करने गए। दो आदमी के भोजन पर चार रुपया खच करना पडा, और उस भोजन को बहुत अच्छा नही कहा जा सकता था।

नेपाल उपत्यका गोरखा शासन से पहले शुद्ध नेवार भाषा का देश था। १८वी सदी के उत्तराद्ध म गोरखा शासन राजधानी के स्थापित होने के बाद यहाँ पश्चिमी नेपाल के लोग भी आकर बसने लगे। तो भी यहाँ के बहुसख्यक लोग नेवार भाषा बोलते हैं। जिसको हम लोग नेपाली भाषा कहते है, उसे वह गोरखाली भाषा कहते है। नवारी भाषा का अपने को नेपाल भाषा कहना बिल्कुल उचित है पर दोनो भाषाओ को अलग करने के लिए एक को नेपाल और दूसरे को नेवार भाषा कहना ठीक होगा। पर, नेवारभाषी लोग अपने अधिकार को छोडने के लिए तैयार नहीं है। नेवार भाषा किरात भाषा वश से सम्बन्ध रखती है यद्यपि उसम सस्कृत के तत्सम और तदभव शब्द बहुत भारी सख्या म मिलते हैं। इसका लिखित साहित्य भी बहुत पुराना और समृद्ध है। अब तो उसम पत्र पत्रिकाएँ भी निकलती हैं, साहित्य सृजन भी हो रहा है। नेवार महिलाओ मे अब भी कितनी ही ऐसी मिलेगी, जो गोरखाली भाषा नही समझती। २२ जनवरी को नेपाल भाषा साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन उसी हनुमान ढोका के विशाल आँगन म हुआ, जिसम आज से पौने दो सौ वष पहले वह राज-

भाषा के तौर पर विराजमान थी। नेवार सरस्वती आज उस आँगन में मुखरित हो रही थी। बाहर के आँगन के एक तरफ के फाटक से हम भीतर के एक छोटे आँगन में गए, जहाँ कोत पर्व हुआ था—बाछा महारानी के हुकुम से जगबहादुर और उसके भाइयों ने निहत्थे आदमियों के साथ खून की होली यहीं खेली थी, उनका निर्मम वध किया था। वह बरामदा भी मौजूद था, जहाँ से उस निष्ठुर रानी ने हुकुम देकर इस वीभत्स दृश्य देखने का आनन्द प्राप्त किया था।

नेवार भाषा का यह पहला अधिवेशन था, लेकिन उसके देखने से साफ पता लगता था, कि नेवारभाषियों में सांस्कृतिक परिपक्वता है।

पटना के श्री कीर्तिराज ढाक्वा मेरे बहुत पुराने कृपालु मित्र हैं। प्रथम तिब्बत यात्रा में मैं छिपकर नेपाल से वहाँ गया था, और महीने भर से अधिक की यात्रा करने के बाद शिगचे में उनके घर पर ठहरा। इन्हीं से मैंने अपना रहस्य बतलाया। कीर्तिराज उस वक्त तरुण थे, लेकिन अब वह ३० ३२ वर्ष बीत भी तो चुके थे। ढाक्वा तिब्बत से व्यापार करनेवाले नेपालियों में बहुत धनी और सम्मानित माने जाते थे। कीर्तिराजजी ने मेरी बड़ी सहायता की थी, और यदि मैं टशील्हुनपो में रहना चाहता, तो उनका घर मेरा स्वागत करने के लिए हाजिर था। उन्होंने अपने घर में भोजन करने को बुलाया। २३ जनवरी को हम उनके साथ मोटर पर चले। रास्ते में वह वृक्ष देखा, जिस पर लटकाकर शहीद शुक्रराज शास्त्री को गोली मारी गई थी। वृक्ष को काटना राणाशाही भूल गई, लोगों ने उसे सिन्दूर से टीक रखा था।

बादल खुलने का नाम नहीं लेता था, सर्दी की शिकायत ज्यादा मैं नहीं कर सकता था क्योंकि मसूरी की सर्दी का अभ्यासी था। जिस तरह नेवार किसान अपनी भूमि के एक एक अंगुल का मूल्य मसूल करना चाहता है, वैसे ही नेपाली गृहस्थ अपने घर के एक एक अंगुल अवकाश को बेकार जाने नहीं देना चाहते। जितनी ऊँचाई में हमारे दो मंजिला मकान होते हैं, उतने में वहाँ चौमंजिला बन जाते हैं। हमारे "हन क्लिफ" के बंगले की ऊँचाई में तो वह चौमंजिला घर बनाते और उस समय विशेषकर जाड़ों में यह अधिक आरामदेह होता क्योंकि थोड़ी सी भी आग जलाने से

उसके भीतर की हवा गरम हो जाती। हाँ, यह शिकायत जरूर होती, कि मेरे जैसे आदमी को हर दरवाजे मे सिर बचाने की कोशिश करनी पडती। बाहर से मकानो को देखने से चाहे वह कितने ही साधारण से मालूम होते, गलियाँ और आगन गन्दे दिखाई पडते, किन्तु भीतर वह अच्छे साफ और सुन्दर सजे हुए होते। पाटन के कितने ही व्यापारियो का सम्बन्ध तिब्बत से है। उनके कमरो के सजाने म तिब्बत की चीजो का उपयोग किया जाता है। पाटन अपने पुराने मन्दिरो के लिए काठमाण्डू से कम प्रसिद्ध नही है, बल्कि धातु के बतनो और मूर्तियो के बारे म वह आगे है। काठमाण्डू और पाटन के बीच मे सिर्फ बागमती का अन्तर है, जिसे कही भी आप पार कर सकते हैं। मोटरके लिए लोहे के पुल से ही गुजरना पडेगा, जो थापाथली मे पडता है। पाटन भी नेपाल के तीन राजाओ मे एक की राजधानी रहा। वहा का मछेन्द्र विहार बहुत सम्माननीय देवालय है। इसका सम्बन्ध सिद्ध मछेन्द्र से नाहक जोडा गया है। वस्तुत यह बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का विहार है। पाटन के राजाओ के मन्दिरो और महलो के बनाने का बडा शौक था। कृष्ण मन्दिर को तो नीचे देश के नमूने पर पत्थर का शिखरदार बनाया गया है। वैसे नेपाल के मन्दिरो की अपनी विशेष शैली है, जो यहा से तिब्बत चीन होते जापान तक चली गई है। उनमे लकडी का इस्तमाल ज्यादा होता है, जिसके कारण भूकम्प को भी वह अधिक सहन कर सकते हैं। कमला ने कुछ बतन खरीदे। चाय पीने के लिए फिर हम कीर्तिराजजी के घर पर गए। नीचे उपत्यका मे वर्षा हुई, लेकिन नेपाल-उपत्यका को घेरने-वाले पहाड छ सात हजार फुट से भी ऊँचे है। उन पर बर्फ पड गई थी। उपत्यका म शायद ही कभी बर्फ पडती हो। घर लौटने पर मालूम हुआ, श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला आए थे।

२४ जनवरी को सराफो ने हडताल कर दी। नेपाली रुपये का भाव इतना अनिश्चित हो गया था, यह इसी से मालूम होगा, कि एक दिन मे तीन चार रुपये का अन्तर पड गया था। भला ऐसी स्थिति म कौन सिक्को के विनिमय का काम करने की हिम्मत करता।

उस दिन ४ बजे श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला अपनी मोटर लेकर आए। उनके साथ कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा के घर पर गए। विश्वेश्वर-

प्रसाद नेपाली सिद्धहस्त लेखक हैं, यद्यपि राजनीति इस तरफ बढने के लिए उन्हें समय नही देती। देवकोटा को देखकर तो मुझे बार बार निरालाजी याद आते थे—वैसा ही अकृत्रिम सौहार्द और वैसी ही काव्य प्रतिभा। अभी उनकी आयु ४४ वर्ष की थी। उनका तरुण पुत्र हाल ही मे मरा था, जिसका भारी रज हृदय पर पडा था। वह उसे मुह पर आने देना नही चाहते थे। कितने ही दिनो तक वह 'नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति' मे सौ रुपये मासिक पर नौकरी करते रहे। वकालत के साथ पटना युनिवर्सिटी के वह ग्रेजुएट थे, तो भी वह ऐसी स्थिति मे थे। खुद भी वह अपनी कृतियो की सुरक्षा की परवाह नही करते। लिखते फाडते भूलते उन्हे देर नही लगती। उनकी २६ पुस्तकें समिति की उपेक्षा से नष्ट हो गई। प्रेम थियेस को उन्होने नेपाली भाषा मे भी लिखा है। एक बार १२ १३ सर्ग लिख चुके थे, जो नष्ट हो गए। अब फिर उसे दुबारा लिख रहे थे। खेतो के बीच मे एक मकान मे वह सपरिवार रह रहे थे। अब की नेपाल-यात्रा मे सबसे अधिक जिस व्यक्ति ने आकृष्ट किया, वह महाकवि देवकोटा थे।

२५ जनवरी को भोजनोपरान्त जनकलालजी के साथ मैं बौद्धा चला। काठमाण्डू और देवपाटन से अलग स्थान मे नेपाल का यह सबसे बडा बौद्ध स्तूप है, जो आयु मे भी बहुत पुराना है। इसकी महिमा तिब्बत और मंगोलिया तक फैली हुई है। नजदीक ही समझा था लेकिन चलते चलते मालूम हुआ कि चार मील से कम न होगा। इस विशाल स्तूप की परिक्रमा के चारो ओर दुमजिले तिमजिले घर हैं, जिनके निचले भाग मे दूकानदार और उपरले भाग मे तीर्थयात्री ठहरते हैं। जाडा होने से आजकल बहुत-से तिब्बती लोग आए हुए थे। चिनिया लामा के पास गए। प्रथम तिब्बत यात्रा मे इनके पिता मे भेंट हुई थी, और इन्हीं के एक घर मे ठहरा लामा के साथ तिब्बत जाने की लालसा से स्वेच्छापूर्वक मैंने नजरबन्दी स्वीकार की थी। उस समय यह तरुण थे। इनके पिता चीनी थे, लेकिन यहाँ आकर उन्होने तिब्बती स्त्री से ब्याह किया। कितने ही वर्षों बाद मिले थे, इस लिए लामा को पहचानने मे कुछ देर हुई। बूढे हो गए थे—विलासी जीवन और शराब की छूट जो थी। लोग कह रहे थे—खूब धन कमाया है। कुछ देर बैठे वमन मे बात करते रहे। उनसे पता लगा, कि सावया के पुनरागत

महल के मेरे कृपालु लामा अब नही रहे। उनके बाद डोलमा प्रासाद के लामा गद्दी पर बैठे। तिब्बत के तीर्थयात्रियो से मालूम हुआ, कि उन्हे अपने साथ पैसा लाने मे कोई रुकावट नही है, पिछले साल से भी इस साल अधिक यात्री आए हैं। लाल सैनिक अभी सभी सीमान्ती डाडो पर नही पहुँचे हैं। जागीरदारी पर अभी हाथ नही लगाया है, किन्तु पाठशालाएँ जगह जगह गाँवो मे खोली जा रही है।

बौद्धा की परिक्रमा करके वहा के साढे ४ बजे घर लौट आए। उस दिन डा० रेगमी के यहा चाय पीनी थी, लेकिन भूल गए।

२६ जनवरी को सिंह दरबार गए। चन्द्रशमशेर ने कई करोड लगाकर इस विशाल महल को बनवाया था। पहले यहाँ जनसाधारण की पहुँच कहा हो सकती थी? अब सचिवालय है, जिसके दफ्तर उसके कमरो मे हैं। सचिवालय से कुछ सूचनाएँ लेना चाहता था। पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी अब भी वही नरशमशेर थे, जो अपनी क्रूरता के लिए राणा शासन मे कुख्यात थे। इसी से मालूम हो रहा था, कि शासन मे कितना कम परिवर्तन हुआ है। सलाहकारो मे जेनरल कैसर शमशेर सबसे अधिक प्रभावशाली का दक्ष और मेरे पूर्व परिचित भी थे। उनसे मिलने के लिए गया तो वहा इतनी भीड थी, कि आशा नही थी, बातचीत हो सकेगी। देर होते देख मैं वहाँ से लौट पडा। किसी आदमी ने सूचना दी। उन्होने आदमी दौडाया और इसके बाद स्वय दौडे दौडे आए। मुझसे दो चार साल बडे ही होगे। मुझे अफसोस हुआ। खडे खडे बातचीत की और ३१ तारीख को दस बजे उनके घर पर आने का वचन दिया। इसपेक्टर-साहब तो नही आए, किन्तु डिप्टी इसपेक्टर जेनरल जनरल आफिस मे मिले। बिना यहा से अनुमा पत्र (राहदानी) लिए विमान का टिकट नही मिलेगा, इसीलिए हम वहा जाने को मजबूर थे।

सिंह दरबार का इससे अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। कितने ही बडे बडे हाल देख, गैलरी दखने गए। विशाल हाल है, जिसमे तरह-तरह के चित्र लगे हुए हैं—शिकार के चित्रो की बहुतायत है। सभी आधुनिक ढग के हैं। इसी शाला मे राणा तानाशाह अपने अग्रेज अतिथियो और प्रभुओ का स्वागत किया करते थे। नेपाल पत्थरो का देश है, लेकिन इस

विशाल महल के बनाने मे ईंटो का ज्यादा इस्तेमाल किया गया। वास्तु कला की दृष्टि से यह यूरोपीय इमारतो की अन्धी नकल है, जिसमे नेपाली यता का पूरी तौर से बायकाट किया गया है। वहाँ से रेडियो स्टेशन गए। रेडियो की मशीन नेपाली काग्रेस ने अपने सघर्ष के दिनो मे कही से प्राप्त की, वही काम कर रही थी।

बाहर निकलकर हम जगबहादुर के घर को देखने चले। यह मुहल्ला थापाथली कहा जाता है। पुराने महल का ढूढ निकालने मे काफी देर हुई। अब वह सूना है, और गिरने की तैयारी कर रहा है। इसी के हाते मे नर णार्थी अवध की बेगम और नाना की रानी की हवेलिया थी, जो अब गिर चुकी है। वहा से बाहर निकलने पर एक और पुराना महल मिला, उतना पुराना नही जितना जगबहादुर का। हम उसके बारे मे जानना चाहते थे उसी समय एक प्रौढ पुरुष निकले। वही उस समय इस महल मे रहते थे। नाम मसूरी शमशेर मालूम हुआ। देवशमशेर बडे ही भले प्रधान मत्री थे, लेकिन भलमनसाहत के कारण ही उन्हे जल्दी पद छोडकर नेपाल से भागना पडा, और उनका स्थान उनके चलते पुर्जे अनुज चन्द्रशमशेर ने लिया देवशमशेर ने मसूरी मे अपने लिए महल बनवाया था। वही पैदा होने के कारण पुत्र का नाम मसूरीशमशेर रखा गया। कान्वेट और यूरोपियन स्कूल के पढे हुए थे। वह साहित्य और सस्कृति का अग्रेजी मे ही जानते थे। न उन्हे नेपाली साहित्य से कोई मतलब था न हिन्दी साहित्य से। हाँ, यह सुनकर उन्हे कौतूहल हुआ, कि मैं भी मसूरी मे रहता हूँ। लेखक जान कर उन्होने पूछा—आप तो राणाओ के खिलाफ लिखेगे। मैंने कहा—हाँ किन्तु देवशमशेर के खिलाफ नही।

वहाँ से टूडी खेल, धरहरा होते कल की भूल चूक का माफ कराने के लिए डा० दिल्लीरमण रेगमी के घर पर पहुँचा। सौभाग्य से वह मिल गये। देर तक उनसे नेपाली की राजनीति पर बात होती रही। उन्होंने अपनी लिखी पुस्तकें भी दी। लौटते वक्त सडक पर शरणपुर की यात्रा निकल रही थी। सभी जगह जनता तमाशे की चर्चा होती है, नेपाल के नागरिक उनमे विशेष रुचि रखते हैं यह जरूर है।

२७ जनवरी को धूप-छाँह रही। १० बजे तक हम अपने स्थान ही पर

थे। अधिकतर भोजन बाहर ही करना पडता था, लेकिन सवेरे का जलपान यमिजी के यहा होता था। स्वयम्भू के पीछे स्वामी ईश्वानन्दजी का आश्रम सरस्वती अखाडा था। ईश्वानन्दजी शिक्षित, सुसस्कृत और जनसेवी पुरुष है। स्वयम्भू पवत के पीछे की ओर ही यह सरस्वती अखाडा पुराने समय मे चला आया था। यही भोजन हुआ, देर तक बातचीत होती रही। यहा से वह पहाडी अश दिखाई पडता था, जहाँ होकर भारत से नेपाल मोटर-सडक आनेवाली है। दूर तक खेत ही खेत थे। वस्तुत नेपाल-उपत्यका कृषि के लिए बहुत ही उपयुक्त भूमि है। वर्षा बहुत होती है इसलिए सिंचाई के लिए पानी की जलनिधियाँ पहाडो मे बनानी मुश्किल नहीं है। लोग हमेशा से मेहनती रहे हैं लेकिन उस मेहनत का परिश्रम उनको नही मिलता रहा। नेपाली शिल्पी अपने काम मे बडे दक्ष थे। उन्होने उस ख्याति को गँवाया नही है, जो कि किसी समय चीन तक पहुँची हुई थी। एक बडे राहु से नेपाल मुक्त हुआ, लेकिन अभी उसे कहा जाना है, इसका पता भी नही है। बतला रहे थे, यहा से पाच दिन मे चितौन पहुच सकते है। नेपाल का पुराना रास्ता इधर ही से भिखनाठोरी होकर जाता था। भिखनाठोरी के पास अब भी रमपुरवा मे दो अशोक स्तम्भ मौजूद है, जो शायद उसी की साक्षी दे रहे हैं। वहा से लौटते वक्त आनन्दकुटी विद्यापीठ मे फिर गये। ३० ३५ लडको ने स्वागत किया यही चायपान हुआ।

शाम का ५ बजे माहिला गुरु की अध्यक्षता मे 'नेपाली शिक्षा परिषद्" की सभा मे मैंने शिक्षा पर भाषण दिया। मेरे भाषा-सम्बन्धी विचारो के लिए गलतफहमी होने की गुजाइश न रहे, इसलिए भाषा-नीति के बारे मे मैंने विशेष तौर से कहते हुए बतलाया, कि सारे नेपाल मे नेपाली (गोरखाली) भाषा का वही स्थान है और रहेगा, जो कि भारत मे हिन्दी का। पर नेपाल बहुभाषिक देश है। यहाँ के लोगो को यदि जल्दी से जल्दी साक्षर और शिक्षित करना है, तो प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम उनकी भाषाओ को रखना होगा। नेवार भाषा का अपना पुराना लिखित साहित्य है। उसमे बच्चो के लिए पाठावली तैयार करना मुश्किल नही है। पर, गुरुग, मगर आदि उन भाषाओ को भी नागरी लिपि मे शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए, जो अभी तक लिखी नही गई है। कुछ लोगो का ख्याल था कि मैं

नेपाली भाषा का पक्ष कमजोर करूँगा, लेकिन मैंने कमजोर करने की बात तो दूर, इसे और सबल करते हुए कहा, कि जिस राष्ट्र में बहुत सी भाषाएं हैं, वहाँ एक सम्मिलित भाषा की अत्यन्त आवश्यकता है, और सौभाग्य से नेपाल में वह भाषा पहले ही से मौजूद है। इसलिए उसे हम छोड़ना नहीं है। नेपाल अपना विश्वविद्यालय कायम करे, जिसमें उच्च शिक्षा का माध्यम नेपाली हो। माहिला गुरु ने भी अन्त में अपने भाषण में मेरे विचारों से सहमति प्रकट की। "नया नेपाल" ने भाषा के सम्बन्ध में कुछ गलत सलत बातें लिख डाली थीं, जिसके कारण उस दिन मुझे अपने विचारों को और स्पष्ट करने की जरूरत पड़ी।

२८ जनवरी का मध्याह्न-भोजन श्री गणेशमानजी के यहाँ हुआ। स्वतन्त्रता आन्दोलन में राणाशाही के खिलाफ गणेशमानजी ने बड़ी हिम्मत के साथ लोहा लिया, उन्हें कष्ट भी बहुत झेलना पड़ा था। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल में वह एक मन्त्री थे। मुझे उन लोगों की बात सच्ची नहीं मालूम हुई जो उन्हें मस्तिष्कहीन ताता बतलाना चाहते थे। काफ़ी और समझदार आदमी थे। कह रहे थे—'राणा नेहरू त्रिभुवन के तिकड़म में पड़कर कांग्रेस मन्त्रिमण्डल अपने काम में सफल नहीं हुआ। नेहरू और उनके प्रतिनिधि चन्द्रेश्वरसिंह यहाँ किसी भी प्रगतिशील कदम उठाने का विरोध करते थे।" राणा नजरबन्दी से निकलते ही विराज को बाहर की हवा लगी और वह गुलछर्रे उड़ाने लगे। राणा साल में ८८ हजार रुपये के लिए गये थे। प्रथम अन्तरिम सरकार ने उसे छः लाख कर दिया। मातृका मन्त्रिमण्डल ने दस लाख दिया। अब नेहरूशाही सलाहकारों की कृपा से बीस लाख से ऊपर सालाना उन्हें मिल रहा है। शाहनशमशेर ८० लाख से ऊपर की सोने-चाँदी की सम्पत्ति नेपाल से बाहर ले जा रहे थे। हमने उसे रोका। नेहरू ने दबाव डाला, और हमें छोड़ देना पड़ा। सरकार के पास से बहुत [illegible] था जिसे राणाशाही ने भी बैठे ही रखा था और [illegible] दान के [illegible] लिए लाग तैयार थे—विराज ने अपने कृपापात्रों को दे [illegible] लाख पर बचा को बात यहीं और पीछे इस तरह मुक्त हो दे दिया। [illegible] में [illegible] स्वयं [illegible] सिगार और दूसरी चीजों का [illegible] ते [illegible] के भीतर [illegible] बाजार में देने के लिए तैयार हैं, यहाँ बना [illegible]

सकती है ? सचमुच नेपाल के शासन की भीतरी स्थिति की जो बातें उस दिन मालूम हुइ, उससे नेपाल के किसी हितैषी को खेद हुए बिना नही रह सकता।

गणेशमान का परिवार नेपाल राज्य के बडे बडे पदो पर रहा, सामन्त शाही जीवन मे उनका बचपन बीता। नेपाल मे शराब पीना आम चीज है। ब्राह्मणा म भी कितने ही उसे पीते है। देवी और शक्ति के उपासक होने से उनको इसका बहाना भी मिल जाता है। पुरान जमाने की शराब की सुराहिया और छाटे छाटे चषक उन्होने दिखाय। मेरे साथियो मे उसके आनन्द लेनेवाले भी कुछ थे। चादी साने की सुराहियो मे सुन्दर हडल और पतली लम्बी टाटी लगी थी। चषक साधारण लोगो के कासे के और उच्च वग के चादी सान के होते थे। बहुत ऊपर से पतली धार प्याले म छोडी जाती, जिसके कारण उसमे फेन उछल आता। इसी फेनिल मदिरा को लोग पीते हैं।

२६ जनवरी को दोपहर बाद मैं अपने पुराने सहायक धममान साहु के घर गया। यहा और ल्हासा मे धममान साहु के घर म जब जब मैं गया, घर की तरह वहा स्वागत हुआ। साहु अब नही थे। उनके योग्य मझले पुत्र ज्ञानमान साहु भी जवानी मे ही चल बसे। बडे पुत्र त्रिरत्नमान और छाटे पुत्र पूणमान आजकल ल्हासा म थ। उनकी दूसरी पीढी के कुछ तरुण घर मे थे। उनकी बहुएँ तो मुझे अच्छी तरह जानती थीं, क्योकि नपाल मे कभी-कभी महीनो मैं उनका अतिथि रहा, और खिलाने पिलाने का भार उन्ही के ऊपर था। ज्ञानमान साहु की बहू ने बडी खिन्न होकर शिकायत की, आप हमेशा हमारे यहा उतरते थे, अब की बार क्यो नही आये। मैंने अपना दोष स्वीकार किया। लेकिन, मैं जानता था त्रिरत्नमान दाना भाई यहाँ नही है, इसलिए नही आया। पहले मिठाई के साथ तिब्बती चाय और स्वादिष्ट थुथुक (चीनी सूप) आया। उसी से पेट भर गया। यदि मालूम होता, कि मोमो भी खानी पडेगी, ता उन्ह कम लिया होता। मामो को २ बजे पर टाल दिया। सबमे ऊपरी मजिल पर छाटी-सी छत को दिखलाया गया, जहाँ धममान साहु बैठकर ध्यान-पूजा किया करते थे। यह छठी मजिल से ऊपर है, और आसपास के घरो की छतें नीची मालूम हाती थी।

यहाँ से सड़क शहर का दूर दूर का नजारा देखने मे आता।

धममान साहु ने अपने परिश्रम से अपने को तिब्बत के नेपाली व्यापारियो मे सवश्रेष्ठ बना दिया। उदारता तथा दान-पुण्य मे तो उनका कोई मुकाबिला नही कर सकता था। तिब्बत के बड़े बड़े लामा या अफसर यहीं उनके घर मे ठहरा करते थे। उनकी उदारता और दानशीलता ने ही आगे उनकी कोठी को आज छठे नम्बर पर ही नही रहने दिया। मूल पूजी से लाख रुपये उन्होंने बिहारो की मरम्मत और दूसरे धार्मिक कामो मे लगा दिये। कुछ कर्मचारियो ने भी धोखा दिया, जिससे कोठी को सँभालना मुश्किल हो गया। परिवार म आधे दजन से अधिक लड़के है, जिनमे से चार काम करने लायक हैं। प्रत्येकमान तिब्बत म ही रहते हैं, एक मेट्रिक पास भी है। बहू ने बडे दु ख से कहा। 'अब बँटवारा करने जा रहे हैं, आप समझाइये।' उनके घर मे मेरी बात चलती थी, इसी विश्वास पर उन्होंने यह कहा। लेकिन, सयुक्त परिवार मे यह दिन आता ही है। अभी हमारे व्यवसायियो ने यह नही समझा है, कि चूल्हे का बँटवारा करना चाहिए, व्यवसाय और पूजी का नही। वस्तुत जिसमे किसी के दिल मे सन्देह न पैदा हो उस तरह व्यवसाय चलाने का गुर भी नहीं मालूम है, जिसके कारण झगडे पैदा होने लगते है। कितनी ही जगह बँटवारे का कारण स्त्रियो का कलह ही होता है, लेकिन यहा स्त्री बँटवारे के विरुद्ध थीं। बड़ो के विलास और आलस्य ने भी कारबार को धक्का लगाया।

मैंने यहा की भाषाओ को देख करके अपने नेवार मित्रो के सामने भी कहा—नेवार भाषा भी उसी किरात भाषा की शाखा है, जिसकी शाखाए गुरु ग मगर, सुनवार, तमग, याखा लिम्बू, राई ही नही, बल्कि नेपाल से बाहर पश्चिम म चम्बा कुल्लू की लाहुली, कुल्लू की मलाणी, कनौर, गढवाल की मारछा, कुमाऊँ के राजकिरात और पूव मे सिक्किम व लप्चा और आग आसाम के नागा होते दूर तक कम्बोज तक फले लोगो की भाषा है। यह बात एक शिक्षित भद्रपुरुष को पसन्द न आई। किरात शब्द वस्तुत सस्कृत म बहुत पिछडे लोगो के लिए इस्तेमाल होता है जो पूर्वी नेपाल म रहते हैं। पर कोई जाति सैकडो वर्षों से यदि पिछडी चली आई है, तो भविष्य म भी वह ऐसी ही रहेगी यह मानना गलत है। एक देश की रहन

वाली सभी जातियों को आज के युग में एक से सांस्कृतिक और आर्थिक स्तल पर आना अनिवार्य है। मैंने कहा, किरात शब्द को छोड़िये, आजकल के नृतत्ववेत्ता जिसे मान्-ख्मेर जाति कहते है, उसी की यह शाखा है, जिसमें कम्बोज और थाई (स्यामी) जैसी जातियाँ भी हैं। इसका यह मतलब नहीं कि जो लोग आज किरात भाषा बोलते हैं, वह सबके सब मूलतः किरात थे। कितनी ही बार दूसरी जगहों से आई जातियाँ नये स्थान में बहुसंख्यकों में रह कर उन्हीं की भाषा अपना लेती हैं। इसलिए यहाँ के नेवार ब्राह्मणों क्षत्रियों के हजारों परिवार मधेस से आये, इसे मानने में किसी को आपत्ति नहीं है और ऐतिहासिक काल में आज से तीन ही चार सौ वर्ष पहले इसे बहुत से लोग आए, इसका प्रमाण मौजूद है। आज सभी नेवार लोगों की आँखों पर जो थोड़ी-बहुत मंगोलायित छाप है, वह उसी रक्त-सम्मिश्रण के कारण है।

३१ जनवरी नेपाल प्रवास का अन्तिम दिन था। उस दिन हम जनरल कैसर शमशेर से १० बजे उनके महल में मिलने गए। पहले भी मैं इस महल में आ चुका था और जनरल ने बड़े स्नेह और सम्मान के साथ अपने पुस्तकालय को दिखलाया था। वह राजनीति और सैनिक विद्या में विशेष रुचि रखते हैं। इन विषयों पर सैकड़ों अंग्रेजी पुस्तकों का इस पुस्तकालय में बहुत अच्छा संग्रह है। दूसरी रुचि उनकी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह की है। उनके पास सैकड़ों तालपोथियाँ हैं। यद्यपि उनका महल आधुनिक ढंग पर ईंट और सीमेंट का बना है, जिसमें कम-से-कम लकड़ी लगाई गई है, तो भी आग लगने के डर से इन अनुपम प्राचीन पुस्तकों को अग्निरक्षित स्टील की आलमारियों में रखा है। जनरल कैसर राजा त्रिभुवन के बहनोई हैं। पहली पत्नी का देहान्त हो चुका है, जिससे उनका एक पुत्र है। दूसरी रानी तरुणी थीं, जिनके दो बच्चे और एक बच्ची थी। उन्होंने अपने परिवार से भेंट कराया। मैंने रानी और बच्चों का फोटो लेना चाहा, तो उन्होंने खुशी से लेने दिया। यद्यपि कैसर [illegible] राणा के पुत्र [illegible], और उसी में बड़े हुए। अपने पिता के महाराज [illegible] समय में [illegible] के स्वामी बने, [illegible] को [illegible] से अपरिचित नहीं रह सकता था। [illegible] हुआ।

लाया तो पिण्डदान से महरूम होना पड़ता। चिंतित थे, लेकिन जानते थे, कि आजकल के जमाने में पर उग आए पंछी की तरह सयाने बेटे को उड़ने से नहीं रोका जा सकता।

भोजनोपरान्त देवपाटन की ओर जयवागेश्वरी में गए, जहां नेपाल (गोरखाली) साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। यहीं पास में वह बाग है, जिसमें धिराज रणबहादुर आकर अक्सर रहा करते थे। रणबहादुर ने एक तिरहुती विवाहिता ब्राह्मण तरुणी कान्तिमती पर मुग्ध होकर उस पर सर्वस्व निछावर किया। उसे पटरानी ही नहीं बनाया, बल्कि उसी की सन्तान आज के धिराज हैं। यह प्रतिलोम विवाह था, जिसके कारण सन्तान को हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार ब्राह्मण क्षत्री से निचले वर्ग में जाना चाहिए था, लेकिन 'समरथ' का कौन क्या कर सकता था। वैसे कौन सा राजवंश दूध का धुला है? आजकल मौजूद भारत के महाराजाओं में एक के पिता सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ थे, उन्होंने इस काम के लिए एक स्वस्थ मुसलमान तरुण को अपने यहाँ रखा। जिस सीसोदिया वंश से धिराज वंश अपना गोत्र जोड़ता है, उसमें स्वयं पहले एक अन्य जातीय विधवा पटरानी हुई थी। पुराने गोत्राचार से कोई फायदा नहीं। जहाँ तक आज का सम्बन्ध है, इन पुराने सम्बन्धों के कारण किसी का हुक्का पानी बन्द नहीं किया जा सकता। चाहे कलियुग कहिए या आधुनिक युग अब तो सारा भारत एक वर्ण होने जा रहा है—सबकी रोटी-बेटी एक होनी शुरू हो गई है। शायद एक शताब्दी के बाद यह भेद सिसोदिया के बेहूदापन का सबूत मात्र रह जाएगा।

सम्मेलन खुली जगह में हो रहा था, जो मैदान तो नहीं, बल्कि एक स्वाभाविक सूखा तालाब जैसा मालूम होता था। नर नारी काफी संख्या में वहाँ मौजूद थे। निबन्ध, कविता-पाठ, कथा-कहानी-पाठ संगीत और नृत्य सभी प्रोग्राम में थे। नेपाल में कुछ सालों में [illegible] धानायतन [illegible]। [illegible] यहाँ [illegible] आगे [illegible] और हाल में [illegible] भी स्त्रियाँ काफी आगे बढ़ी थीं। [illegible] में एक पुरी थी, इसलिए यह अपना अधिकार [illegible] श्री बालकृष्ण शर्मा और दूसरे विद्वान आदरणीय [illegible]

सुनाएँ। लेकिन, महापण्डितानीजी की हिम्मत नहीं हुई।

सम्मेलन से हम अन्तिम बार पशुपति के दर्शन को गए। हमारे दर्शन का मतलब है ऐतिहासिक वस्तुओं का श्रद्धा भक्ति से अवलोकन, उनका फोटो और उनके बारे में कुछ नोट लेना। पशुपति मन्दिर का, सामने से फोटो फाटक के भीतर घुसकर ही लिया जा सकता है, और यह मना था। ऐसी जगह पर कैसे काम लेना चाहिए, इसका मुझे तजर्बा था, इसलिए वहाँ के रक्षक के नहीं करने से पहले ही मैंने रोलेफ्लैक्स को क्लिक कर दिया, फिर भलेमानुस की तरह मैंने अजान होने का बहाना करके छुट्टी ले ली। नेपाल उपत्यका की, और विशेषकर देवपाटन की खण्डित मूर्तियाँ में यद्यपि दसवीं शताब्दी के बाद की ज्यादा हैं, पर कुछ उनमें गुप्तकाल और उसके तुरन्त बाद की भी है। बागमती के घाट पर प्रायः पुरुष प्रमाण बुद्ध की एक खण्डित प्रतिमा बहुत पुरानी है। जनकलालजी ने बतलाया, कि परले पार एक लेख सहित पुरानी मूर्ति खेत में पड़ी है। हम पुल से पार हो नदी के किनारे किनारे उधर गए। किनारे से ऊपर खेत में चलते समय बड़ी बदबू आने लगी। इधर-उधर देख रहे थे कहाँ से गंध आ रही है। देखा, जिस खेत की मेड़ से होकर हम चल रहे हैं, उसमें ही कृषक दम्पती बालटी में भरे पाखाने को हाथ से बड़े इत्मीनान से थोड़ी-थोड़ी जगह पर रख रहे हैं। किसान को ऐसा ही होना चाहिए। मैंने जापानी किसानों को ऐसा ही देखा। यदि ऐसे किसान हमारे भारत के गाँवों में होते, तो गाँव इतने गन्दे न होते, कि भीतर घुसते वक्त नाक पर रूमाल रखनी पड़ती। मूर्ति के पास गए। वह त्रिविक्रम की तथा लिच्छवि शासनकाल की (छठी सातवीं शताब्दी) की थी। इसका उल्लेख किसी विद्वान् ने नहीं किया था। नेपाल में ऐसी अनुल्लिखित बहुत सी मूर्तियाँ और ऐतिहासिक चीजें हो सकती हैं। नेपाल उपत्यका के बाहर सप्तगण्डकी और करनाली की उपत्यका भी सांस्कृतिक केन्द्र रही है, वहाँ का अनुसन्धान तो एक तरह अभी हुआ ही नहीं है। एक बार श्री जनकलाल शर्मा कुछ दिनों के लिए वहाँ जाकर कुछ बातें और अभिलेख जमा करके लाए थे। जनकलाल शर्मा जन्म जात इतिहास और पुरातत्व के अन्वेषक हैं। "व्याकरणतीर्थ" होने से संस्कृत पर उनका अधिकार है और साहित्य रत्न" होने से हिन्दी के साहित्य पर भी। उन्होंने पुरानी लिपियों का स्वयं

परिश्रमपूर्वक सीखा है। पुरानी चीजो के लिए उनके हृदय मे तीव्र जिज्ञासा है। उसी का यह परिणाम था कि हम दूर खेता म पडी इस त्रिविक्रम की मूर्ति का देखन गए। यदि उन्हे अवसर मिला, तो नेपाली के पुरातत्व के ये कनिघम हो सकेंगे।

उस दिन रात्रि-भोजन श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ हुआ। पहले दिन निरामिष था और आज सामिष।

८

मसूरी मे

१ फरवरी को हमने यमि परिवार मे बिदाई ली। मैंने उन्हे लड़का घमरत्न के तौर पर देखा था। अब वह आयु और ज्ञान दोनो मे प्रौढ थे। उनकी पत्नी हम दोनो के आतिथ्य म और भी लगी रहती थी। घर का सारा काम उन्हे करना पडता था। कई बच्चो को सँभालना था। लेकिन वह साधारण चूल्हा चक्कीवाली महिला नही थी। जब उनके पति ने जेल को अपना घर बना लिया और कोई सहारा नही रह गया, तो वह अपनी शिक्षा को बढाकर अध्यापिका बन गई। जब मौका आया, तो वह स्वतन्त्रता की लडाई मे भी कदने स बाज नही आई। इसमे सन्देह नही, उनकी वीरता पुरुषो की वीरता से कही बढ चढकर थी, क्योकि नेपाल मे क्रूर सामन्त वादो पुरुषो का शासन था।

साढे आठ बजे चलकर ९ बजे हवाई अड्डे पर पहुँच गए। दो चार बरतन चिउरा और कुछ नेपाल की सौगात हमारे साथ थी। कस्टम के लायक कोई चीज नही थी। चार हफ्ता रहने से उपत्यका के शिक्षितो ने नाम सुन लिया था। जनकलालजी, मानदासजी, यमिजी और दूसरे बहुत स मित्र अड्डे पर बिदाई देने आए। नेपाल से पटना, सेमरा वीरगज और पाखरा तीन जगहो को विमान जाया करते थे। विमान चलानेवाली कम्पनी भारतीय थी। अभी विमान चालन का काम भारत सरकार ने अपने हाथ मे नही लिया था इसलिए प्रबन्ध म गडबडी भी थी। पहले समरावाला विमान आया। उसके उड जाने पर पटनावाला आध घटा लेट रहकर

आया इसी मे श्री खड्गमानसिंह उतर । राणाशाही के खिलाफ आन्दोलन म भाग लेनवाला म वह एक प्रमुख व्यक्ति थे । आजकल सरकार के सलाहकारो मे थे । हम कुछ ही मिनट तक बातचीत कर सके । फिर श्री बालचन्द्र शर्मा कवि केदारनाथ व्यथित, श्री धमरत्न यमि, मानदासजी, श्री कल्यानाथ अधिकारी और उनके परिवार से नमस्ते की ।

नेपाल से नये और पुराने परिचित सहृदय पुरुपा और महिलाओ की मधुर स्मति लेकर ११ बजकर ३५ मिनट पर हम पटना के लिए उडे । आसमान साफ था । उपत्यका अपन मोहक रूप मे नीचे पडी हुई थी । गिरि परकोटे को लाघकर बिहार की ओर बढे । बादल नही था लेकिन धुध बहुत थी । तराई के जगलो को पारकर उस भूमि म पहुचे जहा कभी लिच्छवियो का प्रतापी गण था । वैभवशाली गण के उच्छिन्न होने पर मगध की परतन्त्रता स्वीकार करने की जगह लिच्छवियो न पहाड म शरण लेना पसन्द किया । इस वक्त हम आधा घटे म उनकी पुण्य नगरी के ऊपर पहुँच गए । लेकिन, उन्हे अपने परिवार और कुछ स्थावर जगम सम्पत्ति लेकर नेपाल पहुचन म महीना लग होग । वहा पहले उन्होन अपना शासन गणव्यवस्था के अनुसार ही स्थापित किया होगा । पीछे वही लिच्छवि राजवश हो गया जो कि नेपाल के प्रथम ऐतिहासिक शासक थे, और जिनके पुरातात्विक अवशेष उपत्यका म मौजूद है । प्राचीन लिच्छवि भूमि पहले गण्डक के पार भी कुछ रही होगी, क्योकि यह सदानीरा (गण्डक) मुक्त बहा करती उसकी धारें बदला करती थी । भरसक मराठा थाना के ऊपर से होते हुए हम गगा की विशाल बालुका की ओर बढे, और उसे पार हो सवा १२ बजे पटना की धरती पर उतरे । श्री योगन्द्र तिवारी, वीरेन्द्र बाबू, अद्भुतजी आदि वहाँ मौजूद थे । सामान लेकर योगेन्द्रजी के बगले पर छज्जू बाग म पहुचे । उनके ज्येष्ठ भाई और मेरे अभिन्न मित्र प० गोरखनाथ त्रिवेदी छपरा से आकर इन्तजार कर रहे थे । उनकी पत्नी यहीं बीमार पडी थी ।

पटना—२ फरवरी को मित्रो से मिलने निकले । पुरान साथी भाई चन्द्रमासिंह रास्ते मे मिल गए । चन्द्रमासिंह के दखने ही तरुणा के भव्य इतिहास नजर के सामने आ जाते हैं । लाहौर षड्यन्त्र मे मुखबिर बनकर क्रातिकारियो को फाँसी दिलाने वाले देशद्रोही को बेतिया में मारकर उसके

पाप का बदला चन्द्रमा भाई ने ही लिया था। उस समय क्रांतिकारी अपने काम के लिए पैसा जमा करने के वास्ते डाके डालते थे, लेकिन ज्यादातर सरकारी खजाने पर ही। चन्द्रमा भाई ने रेल के खजाने पर हाथ साफ किया। चाहते थे स्टेशन मास्टर हट जाए लेकिन उसने पकड़ना चाहा, इस पर गोली दागनी पड़ी। संयोग ही समझिए जो फांसी न मिलकर उन्हें आजन्म कालापानी की सजा मिली। बहुत वर्षों तक जेल में रहकर उन्हें छुट्टी मिली। वह विचारा मे और आगे बढ़े। उन्हें मालूम हुआ कि कम्युनिज्म (साम्यवाद छोड़ कोई दूसरा रास्ता नहीं। वह कम्युनिस्ट बन तब से और बराबर मजूरों की सेवा में लगे हुए हैं। ४०-४२ के ढाई वर्ष के जेल जीवन में हम एक साथ रहे। उस समय चन्द्रमा भाई से कितना मजाक होता था, कितनी आत्मीयता स्थापित हुई थी? आज भी उनके प्रति वही स्नेह और सम्मान मेरे हृदय में था। वह पटना में नहीं रहा करते थे। यह संयोग था जो मुलाकात हो गई। पार्टी के दूसरे साथियों से भी भेंट की। फिर अपने जिले के श्री गोरख पाण्डे का गूंगा स्कूल को देखने गये। वकील बनकर उन्होंने वकालत नहीं की, कुछ दिनों तक अंग्रेजी समाचार पत्र में काम किया, फिर उनका ध्यान गया असहाय गूंगे बहरे बालकों की ओर। अपने ही उनके बारे में अध्ययन किया और अपने ही एक किराए के मकान में पटना में आकर स्कूल खोल दिया। बेसरो-सामानी थी, लेकिन लगन उनके पास थी। उनकी पत्नी भी सहायक हुईं। अब यह देखकर बड़ी प्रसन्नता थी कि उन्होंने अपना पक्का घर बना लिया है। सरकार भी स्कूल मे सहायता देती है। १९४२ में अभी वह तरुणाई की सीमा से पार नहीं हुए थे, और अब उनकी तीसरी पीढ़ी सामने आ गई है, दादा दादी का स्थान लेने वाले आ मौजूद हुए हैं। उन्होंने स्कूल दिखलाया।

वहां से लौट कर यागन्द्रजी के यहां भोजन किया। छपरा के राजनीतिक जीवन के मित्र ब्रह्मचारी मंगलदेव (वनितापुरी) ने अपने सांस्कृतिक विद्यापीठ को देखने का आग्रह किया। हम उनके साथ गंगा के किनारे टकारी की कोठी में गए। ३० से ऊपर विद्यार्थी थे। उस समय संस्कृत बोलने का नियम था और छः सात महीने में विद्यार्थी उसमें अच्छी प्रगति कर लेते थे। वह संस्कृत के प्रचार तक ही अपने को सीमित नहीं रखना

चाते थे, बल्कि चाहते थे, कि सात आठ साल पढकर विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा दे दे। मैंने कहा इसमे आप युरोपियन स्कूलो की कुछ अच्छी बातें ले लें। वहा अग्रेजी का माध्यम रखते हैं, जिसका हमारी भाषा से कोई सम्बन्ध नही है। सस्कृत हिन्दी का जीवन स्रोत है। आप इसको जारी रखें। पीछे न जाने क्या विद्यापीठ की इस विशेषता को छोड दिया गया।

उस दिन शाम को चाय श्री मोहनलाल बिश्नोई के यहा पी। उन्होने आग्रह पूर्वक "नेपाल" को प्रकाशित करने के लिए माँगा। हमने उसके कुछ भाग को उसी समय दे भी दिया। यह २ फरवरी १९५३ की बात है, आज १९५६ का अन्त है, तीन वर्ष हो गए "नेपाल" उनके पास पडा है। ३०४ पृष्ठ छापकर न आगे बढने का नाम लेते है न पीछे। लेखक क्या करे? इतनी मेहनत करके नए आँकडो के साथ जिस पुस्तक को तयार करके दिया वह खटाई मे पडी हुई है। उन्हे टेक्स्ट बुक और दूसरी छपाइया से फुरसत नही है। कोफ्त होती है ख्याल आता है कब ऐसी स्थिति से छुटकारा मिलेगा।

३ फरवरी को सम्मेलन भवन म शिवपूजन बाबू से मिलने गये। कमला को कै आने लगी। गाडी अभी पूरी तरह से ठहरी नही थी, मैंने जल्दी बाहर जाकर उन्हे मुह निकालने का मौका देना चाहा। गाडी चल नही रही थी पर झोक उसके साथ था। गिर गया, दाहिने घुटने मे दो जगह खूब खून निकलने लगा। बन्दर की खाज और डायबटीज वाले के घाव दोनो ही खतरनाक होते हैं। खैर, शिवपूजन बाबू के कमरे म गया। उनसे थोडी देर बातचीत हुई। डायबटीज उन्हें भी है। वह तो कभी चर्बीधारी नही हुए। डायबटीज मुझे भी थी, लेकिन मैं उसे चिन्ता की बात नही समझता था यद्यपि आज घाव के कारण न वह चिन्ता की चीज हो गई थी। मैंने उनसे कहा, कि इन्सुलिन लीजिए और बिना परहेज के सब चीजें खाइय। आप शकर के भक्त हैं, लेकिन क्या पता है फिर दुनिया म आने का मौका मिले या न मिले, इसलिए मीठे मीठे रसगुल्ला और बुन्नी के लड्डुओ से क्यो अपने को वचित करें।

डेरे पर आकर पेनिसिलिन ले ली। अब तो यही ख्याल हुआ कि सीधे मसूरी चले, क्योकि इन्सुलिन, पेनिसिलिन, सिबाजोल पौडर तथा आइन्टमेन्ट की अब एकान्त आराधना करनी थी। रास्ते म बनारस, लखनऊ

तथा इलाहाबाद मे भी आने के लिए चिट्ठिया लिख दी थी लेकिन वे सब प्रोग्राम छोडने पडे। पर पटना के प्रोग्राम को तो छोडा नही जा सकता। उस दिन शाम के सवा ४ बजे बी० एन० कालेज के विद्यार्थियो के सामने भाषण देना पडा। अगले दिन (४ फवरी) श्री शकुन्तलाजी मगध महिला कालेज म लडकियो के सामने भाषण देने के लिए ले गइ। पैर मोडना मुश्किल था, कार पर जाने पर भी कुछ दूर चलना पडा। चाय साथी चन्द्रशेखर सिंह और उनकी पत्नी शकुन्तलाजी के यहा थी। चन्द्रशेखर पार्टी के मेम्बर होने से हमारे साथ घनिष्ठता रखते थे। युद्ध के दिनो म नजरबन्द होकर हम एक साथ रहे थे। शकुन्तलाजी हमारे छपरा के पुराने सहकर्मी और मित्र नारायण बाबू की पुत्री थी, जिन्हे मैं बचपन से ही जानता था। आज नारायण बाबू की पत्नी भी यहा उपस्थित थी, और चन्द्रशेखर की माँ भी। पटना से छुट्टी ली। सवेरे ५ बजे की गाडी पकडनी थी। योगेन्द्र बाबू ने हमे स्टेशन पहुँचाया। पजाब मेल मे जिस दर्जे का टिकट था, उसमें जगह नही थी, इसलिए निचले दर्जे मे बैठे। अधेरा ही था, जब कि ट्रेन चली। पटना और आरा के जिलो के भीतर से दौडती वह ८ बजे मुगलसराय पहुँची। १० बजे देहरादून एक्सप्रेस आया। पजाब मेल से चलते, तो आधी रात को लुकसर मे पहुँचकर गाडी बदलनी पडती और अब पैर म चोट लेकर जा रहा था, इसलिए गाडी को यही बदलना पसन्द किया। दोपहर बनारस पहुँचे। 'आज' मे खबर छपी देखी, कि राहुल जी २ बजे आ रहे हैं। और हम बनारस से आगे बढे। ट्रेन अयोध्या फैजाबाद के रास्ते चक्कर काट कर चली। साथ बैठे सज्जन रात म यात्रियो के खून और लूटने की बात कर रहे थे। कमला घबराई। मैंने कहा— 'दसियो हजार यात्रियो म एक दो की ऐसी नौबत आती है। हम क्यो वैसे अभागो मे नाम लिखाए ?" फैजाबाद म कन्या विद्यालयो की कोई अफसर महिला अपने बच्चे के साथ चढी। उनके पतिदेव गाडी पर चढा कर जब विदाई लेने लगे और ट्रेन चलने को हुई तो पत्नी ने पतिदेव की चरण धूलि माथे पर लगाई। मैंने कमला से कहा,' देखा।" वह कितनी ही बातो मे प्राचीन पथिनी हैं लेकिन उन्हे भी यह पसन्द नही आया।

लखनऊ पहुँचते अँधेरा हो गया था। जगह मिल चुकी थी, इसलिए

भीड होन पर भी हमे कोई पर्वाह नही थी। ६ फरवरी को हरद्वार मे सवेरा हुआ। आगे इजनो की गडबडी के कारण ट्रेन लेट होकर साढे ६ बजे देहरादून पहुँची। मेहताजी सहायता के लिए स्टेशन पर मौजूद थे। शुक्लजी के यहा ठहरने का ख्याल था लेकिन पैर की चोट लेकर अब एक दिन भी और रुकना पसन्द नही आया, और १२ रुपय मे टक्सी पर बाजार से कुछ चीजें खरीद हम सीधे मसूरी पहुँचे। चढाई मे मोटर की सवारी करने पर कमला का अवश्य कै होती थी, लेकिन आज नही हुई। शायद जुकाम के कारण घ्राणशक्ति का बेकार होना कारण था।

मसूरी—किताबघर से रिक्शा लेकर चले। एक मोड पार करने पर बर्फ मिलन लगी। आज दो हफ्ता पहले—१६-१७ जनवरी को—बर्फ पडी थी, जिसके अवशेष अब भी कई जगहो पर मिले, जो बतला रहे थे कि यहाँ फुट डेढ फुट बर्फ पडी होगी। घर पर पहुँचे भूतनाथ स्वागत के लिए तैयार थे। यद्यपि मोटे नही हुए थे, पर एक महीने की गैरहाजिरी मे काफी ऊचे लम्बे दिखलाई दे रहे थे।

कमला पिछले साल कलिम्पोग हो आई थी, अब फिर जाने के लिए उत्सुक थी। मैंने आग्रह देखकर कहा अच्छा जाओ।

अब घाव की अच्छी तरह देखभाल करनी थी बाएँ घुटने मे कोई बात नही थी, लेकिन दाहिना घुटना मुड नही रहा था। इन्सुलिन और पेनिसिलिन के इजेक्शन रोज चलने लगे। कमला इजेक्शन लगाने मे निपुण हो गई थी। लेकिन, उनके जाने पर इजेक्शन की भी समस्या थी। इसी समय उनकी मझली बहिन के बीमार होने की चिट्ठी आई। उनका जाना निश्चित था। खुशहाल भी अब काम छोडना चाहता था, यह दूसरी समस्या थी। पर, अब अपने घर मे थे, इसलिए काम किसी न किसी तरह चल ही जाता।

१५ रविवार को कमला कलिम्पोग के लिए रवाना हुई। अकेले इतनी लम्बी यात्रा नही की थी, और ट्रेन मे खून और डकैती की बात सुनकर डरती भी थी, लेकिन महिलाओ को पीहर बहुत प्रिय होता है। देहरादून मे मेहताजी ने कलकत्ता वाले मेल मे बैठा दिया, और वहाँ से आने जाने म महादेव भाई तथा सँगरजी सहायता करने के लिए तयार थे। लेकिन, जब

तक कलिम्पाग पहुचकर उन्होंने चिट्ठी नही लिखी, तब तक चिन्ता बनी रही।

१७ को ममगाईजी ने अपने लडके की बात बतलाई। वह काग्रेस के लिए कई बार जेल गये थे। म्युनिसिपैलिटी के मामूली कर्मचारी थे। बडी कठिनाई से अपने इकलौते बेटे को उन्होंने यहाँ के युरोपियन स्कूल और पीछे देहरादून डी० ए० वी० कालेज म पढाया। लडका तेज स्वस्थ था और सेना में जाना चाहता था। परीक्षा म उसका २४वा नम्बर आया, उसे प्रवेश मिलने का हक था, लेकिन २४ का ३४ बना दिया गया, और उसके पास सूचना भी नही दी। दब्बू होता, तो बात उतने ही मे खतम हो जाती, लेकिन लडका दिल्ली पहुँचा। आफिस वाले पकडे गए। 'गलती हो गई" कहकर उसे स्थान दिया गया। अब भरती कराने मे हजार रुपये से ऊपर खर्च की जरूरत थी। इस तरह के संकट उपस्थित कर क्या हमारी वतमान व्यवस्था लोगो को जबदस्ती बेईमान बनाने के लिए मजबूर नही कर रही है।

उसी दिन महादेव भाई के तार से मालूम हुआ कि दोपहर के ३ बजे कमला कलिम्पोग के लिए रवाना हो गई।

२० तारीख का 'पुरानी और नई पीढी" पर एक लेख लिखा। मैं पुरानी पीढी को बहुत बातो में अयोग्य समझता हूँ, कि समस्या का हल निकालना नई पीढी के ही बस की बात है। पुरानी पीढी शरीर से ही निबल और बूढी नही है, बल्कि मानसिक तौर से भी वह अक्षम ही है। पहले से गद्दी जमा लेने के कारण फैसला पुरानी पीढी के हाथ मे होता है। वह नई पीढी को किसी तरह का सुभीता देना नही चाहती है, न उसकी योग्यता का स्वीकार करती है। पुरानी पीढी यह नहीं समझती कि भाग्य का फैसला करना उनके हाथ मे नही है—नई पीढी के ऊपर उनका फैसला लागू नहीं होगा बल्कि नई पीढी का फसला पुरानी पीढी पर लगेगा। हाँ, अधिक सचित ज्ञान पुराना के लिए कुछ सुभीता प्रदान करता है। उनके अध्ययन और तजर्बे की गहराई नई पीढी का सहल सहायता पहुचा सकती है। तो भी फामीला क पास बहुत सीमित अधिकार होना चाहिए। नई पीढी को भी हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि हम भी पुरानी पीढी बन जाना है तब हम भी वही गल्ती न करें।

२३ फवरी को अब घाव सूखता मालूम हुआ, जिससे कुछ सत
हुआ। १३ मार्च को कमला भी कलिम्पाग से लौट आई। चिन्ता अं
उत्सुकता दूर हुई। अब तक घाव भी बहुत कुछ अच्छा हो गया था। फव
के अन्त मे मसूरी नगरपालिका के चुनाव की धूम थी। कई सालो तक बे
का हटाकर सरकार ने अपने हाथ मे सारा काम ले रखा था। चुनाव
होटल के मालिक कप्तान कृपाराम अध्यक्ष पद के लिए खडे हुए थे। व
मसूरी काग्रेस के प्रधान थे, इसलिए और साथ ही सबसे बडे होटल
मालिक होने से उनकी पहुच भी ऊपर तक थी, काग्रेस का टिकट उन्ही
मिला, हालाकि उनसे भी पुराने काग्रेस कार्यकर्ता वकील कुकरेती साह
मौजूद थे। उनके मुकाबिले मे समाजवादी श्री रामकृष्ण वर्मा वकी
यदि कुकरेतीजी खडे होते, तो निश्चय ही उनको हराना मुश्किल हो जाता
खडे हुए।

३ मार्च से साथी स्तालिन बेहोश थे। उनका सारा जीवन एक महा
काम के लिए अर्पित था। प्रथम महायुद्ध मे लेनिन के दाहिने हाथ होक
उन्होने काम सम्भाला, और दूसरे मे विजय प्राप्त करने का बोझ उन
ऊपर था। उन्होने अपने जीवन के एक एक क्षण का मोल चुका लिया था
५ मार्च की रात के ६ बजकर ५० मिनट पर मास्को मे उनका देहान्त
गया। "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु "—७३ वर्ष की आयु पाकर वह वि
हुए। उनका यश शरीर ही नही काम भी सदा अमर रहेगा। मार्क्स
जिस साम्यवाद का दर्शन दिया था और उसे पृथ्वी पर लाने का रास्
बतलाया था, उसे पृथ्वी पर लाने मे लेनिन सफल हुए। साम्यवादी क्रा
के लिए साधन जुटाना और उनको सफलतापूर्वक इस्तेमाल करना लेनि
का महान् काम था। लेकिन, साम्यवादी शक्ति को आर्थिक तौर से मजब
उसे फासिस्तवाद के घातक सकट से पार कराने का महान् काम स्तालि
का था। मैं उनके समय दो वर्ष रूस मे रह चुका था, वहा की प्रगति
मैंने आँखो के सामने देखा था। मुझे वहा की एक एक बात प्रेरणादाय
मालूम होती है। पर स्तालिन की व्यक्ति पूजा खटकती थी। लेकिन उ
ज्यादा दिन तक चलाया नही जा सकता था,] क्योंकि व्यक्तिपूजा साम्यवा
के विरुद्ध थी। कितने ही बडे इस एक दोष से स्तालिन के महान काम

नगण्य नही कहा जा सकता। इसी समय ख्याल आया कि स्तालिन पर कुछ लिखू। पहले लेख लिखा। उससे संतोष नही हुआ—खास करके यह ख्याल करके हिंदी मे स्तालिन की कोई अच्छी जीवनी नही है। "स्तालिन" का लिख डालने पर सोचा, लेनिन के बिना पूरी तौर से रूस साम्यवाद को समझा नही जा सकता। लेनिन" भी लिखा। फिर महान द्रष्टा मार्क्स कैसे छोडे जा सकते थे। "मार्क्स" भी लिखा। एसिया के ६० करोड आदमियो को साम्यवाद के रास्ते पर आरूढ करने का जिसने महान काम किया, और जिसके पथ प्रदर्शन मे चीन आज इस तरह आगे बढ रहा है, उस माओ त्से तुग की जीवनी को कैसे छोडा जा सकता था? मैंने इस साल ये चारो जीवनियाँ लिख डाली। अगले दो सालो मे 'स्तालिन", "लेनिन" छपकर निकल गई इस साल 'मार्क्स" भी प्रकाशित हो गया, और "माओ' अगले साल जरूर निकल आएगा।

मुमूर्ष पूजीवाद और उसके समर्थक आततायी अमरिकन थलीशाह आशा लगाए बैठे थे कि स्तालिन ने सभी सूत्रो को अपने हाथ मे रखा है, उनके मरते ही रूस का सारा शीराजा बिखर जाएगा। लेकिन, उन्हे उसमे पूरी तौर से निराश होना पडा।

११ मार्च को श्री शिवकुमार ढिंढा अपनी पत्नी मालतीजी के साथ आए। मालतीजी की कितनी ही कहानियाँ पत्र पत्रिकाओ मे देखी थी, पर यह नही मालूम था, कि वह बनारस के श्रद्धेय प० रामनारायण मिश्र की नतिनी हैं। नाना ने दोनो के बारे मे पत्र लिखकर मुझे परिचित कराया था। इस सुसस्कृत दम्पति से अनेक बार मिलने का मौका मिला। ढिंढाजी अपने काम मे बडे दक्ष और निरालस थे। वह स्वय भी उर्दू के कवि थे। निर्वाचन के बाद नगरपालिका मे जो दलबन्दी और सघर्ष पैदा हुआ उसका कुफल उन्हें भी भोगना पडा। कितने ही महीनो तक अध्यक्ष ने उन्हें निलम्बित कर दिया। फिर बहाली हुई। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब उन्हें गढवा (कच्छ) के नये नगर के सम्भालने का काम मिला है। आजकल की व्यवस्था मे योग्यता की कदर बहुत कम होती है।

१५ मार्च को यहाँ के तार टेलीफोन के अफसर गोस्वामी आए। अच्छी मे बुद्धि है। लेकिन जब मस्त हो जाए, तो बुद्धि पूरी तौर से अपना काम नही

कर सकती। हस्तरेखा और जोतिम पर उनका विश्वास है, उनके बारे मे वे अपने को सवज्ञ समझते हैं यह बुरी बात नही है। पर, वे यह नही देखना चाहते, कि कोई क्यो इन महान विद्याओ" को मानने से इन्कार करता है। इसी तरह ईश्वर को भी वे लाठी के हाथ से मनवाना चाहते है। उन्हे कविता का भी खब्त है। ऐसे कवियो को कोई कैसे समझा सकता है, कि तुकबन्दी कविता नही है। आप उर्दू मे भी कविता करते है और हिन्दी मे भी और कितने ही छन्दो पर अधिकार रखते है। मेरे पास उन्होने लम्बी लम्बी कविताएँ लिखकर कई बार भेजते हुए सीधी गाली छोडकर पूरी तौर से आक्षेप किये। मैंने एक का भी जवाब नही दिया। उन्हे इसे अपनी विजय समझ लेनी चाहिए थी, लेकिन उससे उन्हे सन्तोष नही हुआ, और तुकबन्दिया म बराबर पत्र भेजते रहे। खैरियत यही है कि मै उनके यहा से ढाई तीन मील दूर रहता हूँ, नही तो हर दूसरे-तीसरे आ धमकते।

आजकल चाहे कैसे ही भीषण जगल म एकान्त मे आप चले जाएँ, लेकिन यदि रेडियो हो, तो दुनिया की गतिविधि को समझने म दिक्कत नही होती। "हन क्लिफ" म आते ही हमने रेडियो ले लिया था। वह अच्छी तरह काम करता रहा। १७ मार्च को एकाएक बिगड गया। अभी रेडियो वाली दूकाने आई नही थी। मैंने स्वय उसे ठीक करने का विचार किया। आजकल क जमाने मे बिजली पानी के मामूली तौर से बिगड जाने पर यदि कोई उसे सुधार नही सकता, तो मैं समझता हू वह आधुनिक काल का नागरिक नही है। इसी तरह रेडियो के बारे मे भी मैं विचार रखता हूँ। लेनिनग्राद मे रेडियो एक दो बार बिगडा था, उसे ठीक करते अपने पडोसी मेजर को मैंने देखा था। इसलिए हिम्मत हुई। खोला। बल्ब खराब नहीं मालूम होते थे फिर कहा दोष है? जॉन को भी बुला लिया था, लेकिन आखिर म मेरे ही दिमाग ने बतलाया, कि भीतर डायल घुमाने वाला तार टूट गया है। तार खास तरह का लगता है। लेकिन, मैंने सोचा, कोई भी मजबूत धागा होना चाहिए। एक ऐसा धागा लेकर उसमे लगा दिया, और रेडियो काम करने लगा। हाँ, उसकी सूई अको पर ठीक तरह से नही लगती, उसके लिए और भी परिश्रम की जरूरत थी। हम अन्दाज से काम लेने लगे। उस

दिन का मरम्मत किया हमारा रेडियो आज १६ दिसम्बर १९५६ को भी काम कर रहा है।

भूतनाथ बड़े हो मनमानी करना चाहते थे। अलसेसियन जैसे बड़े कुत्ते को पीट-पाटकर ठीक करना भी सम्भव नहीं है। मैं कई कहानियाँ इनके बारे में सुन चुका था। डाटने पर मेरे ऊपर भी उसने चपट्टा मारा था, और कमला के ऊपर भी दो बार। मैं सोचने लगा, इससे पिण्ड छुड़ाना चाहिए। लेकिन, कमला मानने के लिए तैयार नहीं थी।

यद्यपि घुटने का घाव अच्छा हो गया था, लेकिन जब तक पपड़ी सही सलामत उखड़ न आए, तब तक उसका क्या भरोसा? साते वक्त किसी समय असावधानी से कुछ हरी पपड़ी उखड़ आई। फिर चिन्ता होने लगी, लेकिन मैंने सावधान रहने का निश्चय कर लिया था। बीच-बीच में कुछ उदासी मन मे उठ खड़ी होती थी, जिसका कुछ कारण कमला की जिद् भी होती थी। उनसे बराबर शिकायत रहती थी, कि वे बुद्धि से क्या काम नहीं लेती? मैं चाहता था, उनकी पढ़ाई अविच्छिन्न रूप से चलती रहे। जब उन्हें सारे समय मोजा-स्वेटर बुनते और रेडियो सुनते देखता, तो बोलना ही पड़ता। ६० वर्ष की अवस्था में घुसने पर जान पड़ता है, जीवन का एक नया मोड़ आता है, और आदमी समझने लगता है, कि अब हमारा समय बीत चुका। मृत्यु किसी समय आ जाए, इसकी मुझे पर्वाह नहीं था। मैं समझता था इतने सालों में जो करणीय था, वह कर डाला। अब न मेरी जरूरत दुनिया को है, न मुझे उसकी। कभी खयाल आता 'क्या ही अच्छा होना, यदि यही सात मृत्यु आ जाती और ६१वें साल के भीतर। अल्ला बल्ला गैर सल्ला। न ऊधो का लेना न माधो का देना।"

३१ मार्च को पता लगा, कमला साहित्यरत्न की परीक्षा में पास हो गई एक बड़ी मंजिल पूरी हो गई।

६ अप्रैल को चिट्ठी में शान्ति भिक्षु ने लिखा, मैं गृहस्थ हो गया। स्वच्छन्द जीवन से बन्धन में आना मैं किसी का पसन्द नहीं करता। गृहस्थ बनने पर आदमी की काम करने की शक्ति आधी रह जाती है। शान्ति भिक्षु ने अब तक का सारा समय विद्या में लगाया था। लिखना-पढ़ना दोनों की उनमें प्रतिभा है बौद्ध साहित्य और दर्शन का गम्भीर अध्ययन

किया है, और उसी के लिए उन्होंने तिब्बती और चीनी पढी।

९ अप्रैल मेरे ६०वें वर्ष की पूर्ति थी। पिछले साल कमला ने उसे पहली बार मनाया था। अब की बार उसी दिन सबसे पहले अमृत का बधाई का तार मिला। पिता गोवर्धन पांडे शायद ४०वें वर्ष को भी नहीं देख सके। वही अवस्था पितामह जानकी पांडे की भी हुई। मैं उनसे ड्योढ़ा जी चुका इसलिए और का लोभ करना उचित नहीं। ११ को प्रयाग 'परिमल" ने भी तार से बधाई दी—'जीवहु लाख बरीस।' बधाइयां बुढ़ापे को याद दिला रही थी। मुझे भी अन्तरावलोकन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। सावधान होने लगा कि बुढ़ापे की प्रवृत्तियाँ तो मेरे भीतर नहीं आ रही है?

मेहर बाबा—अब की अप्रैल मे एक महीने के लिए हमारे ऊपर की कोठी "हनहिल" मे भारत के एक महान् सिद्ध अपनी शिष्य मण्डली के साथ आकर ठहरे। मेहर बाबा का नाम जब तब मैंने सुना था। लेकिन सिद्धो-महात्माओं के ऊपर न मेरी आस्था रह गई थी और न उनकी ओर आकर्षण था, इसलिए मेरी कोई जिज्ञासा भी नहीं थी। लेकिन जब वे रोज टहलने के लिए हमारे फाटक के सामने से गुजरते, तो उधर नजर न जाए, यह कैसे हो सकता था? मैं अच्छी तरह जानता था, कि मेहर बाबा, अरविन्द और रमण महर्षी से किसी तरह भी कम नहीं है। यदि वे दोनो उनसे बाजी मार ले गए, तो उसका कारण यही था, कि वे हिन्दू थे और हमारे देश मे हिन्दू ही अधिक बसते हैं। भक्ति मे भी यह संकीर्ण साम्प्रदायिकता है। नन्दू मेहर बाबा के पास काम करता था। वह बतलाता था—'हन हिल" कोठी की तरफ किसी का जाने की आज्ञा नहीं है। अपनी हरेक चीज को रहस्यमय बनाना भारतीय साधुओं की टेकनीक है। मेहर बाबा बाहर आते थे सड़क पर भी चलते थे। लोगो से मिलने मे उन्हें उतना एतराज नहीं था। हां, बारह वर्ष से उन्होंने बोलना छोड़ दिया था। शिष्यमण्डली मे उच्च या मध्यम वर्ग के बीस बाईस स्त्री पुरुष थे। अधिकांश पारसी थे, कुछ हिन्दू, अमेरिकन और युरोपियन भी थे। बिना विज्ञापन के ही मसूरी मे ख्याति हो गई थी। जब-तब लोग दर्शन करने के लिए पहुँच भी जाते, लेकिन उन्हें निराश होना पड़ता। कुछ निराश हुए मुझसे

शिकायत करते थे। मैं उन्हें कह देता, शाम सवेरे वह टहलने निकलते हैं, उस समय दर्शन कर लीजिये। "फिलडेर" की दूसरी सहोदराएँ मेहर बाबा की पडोसी थी। वे फाटक की सामने से रोज उन्हे जाते देखती थी। उन्होंने यह भी देखा था, कि मेहर बाबा की भक्तिनो मे अमेरिकन और युरोपियन महिलाएँ भी हैं। क्यो कोई ईसाई किसी हिन्दुस्तानी सिद्ध के पीछे पीछे फिरे, यह उनके लिए आश्चर्य ही नही अप्रसन्नता की भी बात थी। रसोईदारिन एक एग्लो इडियन भक्तिन थी। उनकी आलोचना सुनकर मैंने कहा—सतो और सिद्धो की आलोचना नही करनी चाहिए। वे यह भी कहती थी, कि क्यो स्त्रियां ही उन्हे घेरे रहती हैं। जब बाहर घूमने निकलते थे, तो मैं भी देखता, छत्रधारिणी और दूसरी अनुचराएँ स्त्रियाँ ही होतीं। उनके अपने निवास स्थान मे पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था। इस पर भी नुक्ताचीनी होती थी। उन्हे मालूम नही था, कि हमारे देश के परम सिद्ध अरविन्द एक युग से लोगो को साल मे एक ही दो बार दर्शन देते थे। हमेशा बन्द रहने के कारण डायबेटिज हो जाना स्वाभाविक था। उनके यहाँ चौबीस घटे की ड्यूटी करने का सौभाग्य एक महिला को ही मिला था। सिद्धो मे स्त्री पुरुष का भेद नही रह जाता। ब्रह्मलीन लोग परम अद्वैतवादी होते हैं। यदि मेहर बाबा के पास की महिलाओं के साथ पुरुषो का सम्पर्क कम रखने दिया जाता था, तो इसके कारण ढूढने की जरूरत नहीं था। मैं मेहर बाबा का पक्ष ले रहा था और दूसरी बहनें उनकी नुक्ताचीनी करने पर तुली हुई थी। कह रही थी। मौन और एकान्तवास के इतने प्रेमी हैं तो बगले मे टेलीफोन क्यो लगवा रखा है क्यो रेडियो सुनते हैं और क्यो अखबारो को पढ़ते हैं?

मेहर बाबा के साथ एक ईरानी भी थे। उनसे फारसी मे कितनी ही बार बातें होतीं। जब मैंने जिज्ञासा नहीं प्रकट की और न दर्शन की ही इच्छा ही दिखाई, तो उनके भक्तों ने इंग्लैण्ड और अमेरिका मे छपी दर्जन के करीब मेहर बाबा-सम्बन्धी पुस्तकों का ढेर मेरी मेज पर लगा दिया। उनसे मालूम हुआ, कि देश और विदेश में मेहर बाबा के कितने भक्त हैं। एक पुस्तक को मैंने ध्यान से पढ़ा, जिसमें भारतवर्ष में धर्म-स्थानों के यात्रों का विवरण दिया गया था, कुछ ये पारसी भी थे। मेहर बाबा ने उन स्थलों में

बतलाया था। यदि इन पागलो के आस पास के रहने वाले लोगो से पूछा जाता, तो वे भी कसम खाकर यही बात कहते। पागल एव नामल होते हैं। यदि वे अहिंसक हो, तो लोगो की आस्था उनके ऊपर और भी बढ जाती है। उनमे कोई-कोई प्रतिभा के भी धनी होते है, जिसकी झलक कभी-कभी बोलचाल म मिल जाती है। कुछ घम के उन्मादी भी होते है। मेहर बाबा ने इस सूची को तैयार करके एक बडा काम किया था, लेकिन विवरण अपूर्ण था।

कमला अब अन्तर्वत्नी थी। एक और बडा जिम्मेवारी हमारे ऊपर आन जा रही थी। मैं नही चाहता था, वह और हाट करने जाएँ। एक बार वह गिर चुकी थी, समझाने पर मानने के लिए तैयार नही थी। मई के प्रथम सप्ताह मे सीजन का प्रभाव देखा जाने लगा। हमारे पडोसी बगले का मेहर बाबा खाली करके जाने लगे थे। उन्होंने हमारे फाटक के पास आकर विशेष तौर स दशन देन के लिए बुलाया था मैंने भी उससे लाभ उठाया। हमारे घर म अब मेहमान आने लगे थे। १७ मई को सत्या गुप्ता आईं। कौरवी लोकगीतो और लोक कहानियो को जमा करने की बात कहते हुए मुझे यह आशा नही थी, कि वह इसम लग जाएँगी। बडी प्रसन्नता हुई जब उन्होने १३०० गीतो और दो सौ से ऊपर इकट्ठी की हुई कहानियो को दिखलाया। उनम कितनी ही कला की दृष्टि से भी उत्कृष्ट थी। हाँ उच्चारण को ठीक से लिखने की ओर जितना ध्यान देना चाहिए था उतना उन्होने नही दिया था। उनका उत्साह भी बढा था। स्त्रियो के ही पास यह निधि अधिकतर रहता है और उनका सग्रह जितना आसानी से शिक्षित स्त्रियो कर सकती हैं, उतना पुरुष नही। काम को और आगे बढाने के लिए मैंने उन्ह सलाह देते कहा—तुम पी एच० डी० के लिए इसी पर तैयारी करो। पीछे वह इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे डी० फिल० म भरती भी हो गईं। १८ मई को मेरे बिहार के एक परिचित जमीदार किसी हेप्नाटिस्ट का पल्ला पकडकर यहा पहुँचे। उनके सिद्ध गुरु असाध्य बीमारियो को अपनी दिव्य शक्ति से दूर कर दिया करते थे। मैंने उन्ह बतलाया हमारे पडोस मे भी एक दिव्य पुरुष आये हुए हैं, उनका भी दशन कीजिये।

१९ मई को जामिया के अग्रेजी के प्रोफेसर मेरे मित्र चौहान आए।

उन्होंने बतलाया, पिछले साल जिस इतिहास-अध्यापक को मैंने 'वोल्गा से गंगा' (उर्दू) दी थी, उसमें मुसलमान लड़की से हिन्दू के ब्याह करने की बात देखकर उन्होंने उसे फाड़ डाला। आजकल के युग में तरुण और शिक्षित ऐसे ख्याल अपने दिमाग में रख सकते हैं, यह आश्चर्य की बात थी।

२२ मई को वीरेन्द्र का पटना से भेजा लीचियों का पार्सल आया। लीची और आम के फलों का मौसिम आ गया। मई के अन्त तक मसूरी अब जम गई। शाम के वक्त माल रोड पर भीड़ होने लगी। व्यवसायी लोग अब भी सन्तुष्ट नहीं थे। कह रहे थे, लोग तो हैं, लेकिन पैसा नहीं खर्च कर सकते।

श्री नृदेव विद्यालंकार—बलदेवजी के बड़े भाई—से कानपुर में पीछे भी भेंट हुई, लेकिन मुझे उनका १९१७ के आसपास का ही चेहरा याद आता है, जब मैं महोबा आर्यसमाज में ठहरा था, और वह गुरुकुल से अभी अभी स्नातक होकर आये थे। दोनों भाई एक ही जगह पहाड़ पर नहीं जाते, इसलिए अबकी बार बलदेवजी नहीं आये।

२७ मई को वैशाख पूर्णिमा थी। दफ्तरों में छुट्टी देखकर अनुमान हुआ, कि शायद भारत सरकार ने बुद्ध जयन्ती को राष्ट्रीय छुट्टियों में ले लिया है।

'प्रमाणवार्तिकभाष्य' छप चुका था, अब उसकी भूमिका लिखनी थी। डा० अल्तेकर ने तिब्बत से लाये बौद्ध संस्कृत ग्रंथ 'भिक्षुप्रकीर्णक' का सम्पादन करने के लिए लिखा था। मैंने स्वीकृति दे दी।

श्री कन्हैयालाल सहल पिलानी से यहाँ आये। वह अपने साथ राजस्थानी लोक-गीत के गायक पिलानी के एक अध्यापक तथा चार गीतों के गायक को लाये। मालूम हुआ कि वहाँ पर लोक-गीतों के संग्रह का काम हो रहा है। स्वामी ने कुछ गीतों के नमूने सुनाये जो बड़े ही सुन्दर थे। मालूम हुआ राजस्थान में भी 'निहालदे' गाई जाती है और इसकी भी कहानी है कि सारी वर्षा गाते हैं। यह जान कर और प्रसन्नता हुई कि यहाँ भी निहालदे का उतना ही ऊँचा स्थान है, जैसा कि कौरवी में देखा जाता है। कौरवी के उस्ताद ने 'निहालदे और सुल्तान' का उतना ज्यादा लिखा विस्तार पारम्परागत से यहाँ आये गीत की विशेषता यहाँ कुछ कम है।

लोक गीता के सम्बन्ध म राजस्थान बहुत समृद्ध है। कारण यही है, कि सामन्तवाद वहाँ रियासतो के विलयन के समय तक बहुत कुछ अक्षुण्ण चला आया। लोक गीतो के पेशेवर गायक वहाँ मौजूद थे, जिनका पोषण और सवधन राजस्थानी राजा और ठाकुर करते आये थे। अब वह हाथ उठ गया है, इसलिए लोक गीतो की समृद्ध परम्परा के नष्ट होने का डर है। यद्यपि लोक गीतो के सग्रह की ओर अब ध्यान गया है, लेकिन उतनी निधि को जमा करके सरक्षित करने के लिए जितने धन और परिश्रम की आवश्यकता है वह सरकार के इधर ध्यान देने से ही हो सकता है।

डा० राम हमारे मुहल्ले के है। मैं १९५० म यहा आकर रहने लगा था, और उन्होंने १९४६ म ही बगला खरीद लिया। उनकी पत्नी करलीया हैं। ३१ मई को उनके पास गया। बेचारे चिररोगी है। गर्मियो के तीन चार मास यही बिताते है। फरुखाबाद घर है और प्रेक्टिस भी अच्छी है। पास म लाला कुन्दनलाल की बीवी को भी देखने गया। बुढिया के दोनो परो के घाव वर्षों चलते रहे। साथ म डायबेटीज भी थी, और सूई लेना छोडकर सेठानी दूसरी दवाइया करती रही। घाव बन्द हो गया। फिर पिंडलियो मे आग लग गई। दर्द के मारे बुढिया कराहती। पैर तो बिल्कुल ही सूख कर काँटा हो गये थे, अब चारपाई पकडे थी। कह रही थी, अब तो भगवान बुला ले।

१ जून को 'लेनिन' लिखना शुरू किया। आज सत्येन्द्रजी आये। दोपहर को वैद्य रामरक्ष पाठक उपाध्याय, आचार्य यादवजी त्रीकमजी के साथ आये। चिकित्सा चूडामणि यादवजी का नाम उनके शिष्यो से मैं बिहार म सुन चुका था। आधुनिक काल मे आयुर्वेद के ग्रथो के उद्धार और हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति के प्रसार के लिए जितना काम यादवजी ने किया उतना किसी ने नही किया। प्राचीन परपरा के समर्थक और अनुगामी होते हुए भी वह आधुनिक प्रवृत्तियो के अन्धे विरोधी नही थे। वस्तुत आयुर्वेद की बहुत सी मौलिक देन हैं, जिन्हे हम छोडना नही है और जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है। आधुनिक चीन का रुख इसम अच्छा है। वह वैद्यो को पुरानी परिपाटी म शिक्षा देकर फिर आधुनिक पद्धति के समन्वय का भी प्रबन्ध करता है। औषधियो के सम्बन्ध म अनुसन्धान करने म वैद्य और

डाक्टरों के सहयोग से आधुनिक ढंग से औषधियों का परीक्षण मूल्यांकन होता है। रोगों के निदान में भी डाक्टरों का वैद्यों की विधि से परिचित होने की प्रेरणा दी जाती थी। हमारे चार हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास में वैद्यों ने अपने परीक्षण द्वारा बहुत से तत्त्व और औषधियां प्राप्त की हैं, जिनमें से कुछ के गुणों को डाक्टरों ने भी स्वीकार किया है। एक बार तो हमारी सारी औषधियों का विश्लेषण होना चाहिए।

४ जून को घुमक्कड़ शिव शर्मा के पिता वैद्य श्री देवराज शर्मा आए। लड़के के पीछे बावले थे। कह रहे थे, उसकी माँ बहुत रोती है, शिव कभी पटियाला आता भी है तो घर नहीं आता। मैंने कहा—आप उससे जितना अधिक चिपकना चाहेंगे, उतना ही वह दूर भागता रहेगा। ऐसा न करने पर वह अपने आप ठीक रास्ते पर आ जायेगा। सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि आप उसकी शादी का प्रयत्न न करें। आजकल के युग में शादी के बारे में लड़के मां बाप के वचन देने का खयाल नहीं करा करते। पीछे मैंने भी शिव शर्मा से कहा बन्धन में मत पड़ो, लेकिन पिता माता को शत्रु समझना बहुत बुरा है।

सत्या गुप्ता के पिता श्री वेदमित्र जी बहुत वर्षों से एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। अभी वह प्रौढ़ नहीं हो पाये थे, कि उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। गायत्री और सत्या दो पुत्रियां थी। खानदान पुराना आर्य समाजी था। उन्होंने धार्मिक स्वाध्याय और सत्संग में अपना समय बिताना शुरू किया, लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाई। गायत्री डाक्टर हो गई और सत्या एम० ए०। गायत्री ने एक विवाहित डाक्टर से अपनी मर्जी से ब्याह किया। पिता को यह नहीं पसन्द हुआ। पुत्री को जिन्दगी भर के लिए दुःख भोगना पड़ा। वह चाहते थे, सत्या का ब्याह हो जाय, पर सत्या तैयार नहीं थी। गर्मियों में वह चार पांच महीनों के लिए मसूरी आ जाते थे। तीतरों (सहारनपुर) में अपना घर था, लेकिन वहां गये वर्षों हो गये। जाड़े हरद्वार या ऋषिकेश में बिता देते। इधर उनको हृदय का रोग हो गया था। उस दिन मैं उन्हें देखने गया। पुत्रियों की चिन्ता उनके लिए बुरी है। अपनों की हार्दिक सान्त्वना ही उसे हटाने में सहायक होती है। वेदमित्र जी आर्य समाजी हैं। आर्यसमाज में ऐसे सन्त नहीं हैं, जो उन्हें आध्यात्मिक सान्त्व

दे सकें, इसलिए जिस किसी सत के पीछे फिरते रहते है। मुझसे भी इसके बारे मे पूछा। मैंने कहा—"अनीश्वरवादी नास्तिक का नुस्खा अब इस उमर म आपके लिए कारगर नही होगा। मनुष्य के मन की अलग अलग भूमिकायें है, इस भूमिका मे पहुँचने के लिए आपको फिर से स्वाध्याय और मनन करना होगा। और आपकी उमर ५५ साल हो गई। वजन घटाने की कोशिश कीजिए।" निरामिषाहारियो के लिए यह और भी मुश्किल है, क्योकि उनके प्रिय भोजनो मे चीनी और घी की बहुतायत होती है जो वजन के बढाने म परम सहायक होते है। वेदमित्रजी बहुत वर्षो से कम्पनियो म लगे अपने रुपये के लाभ पर ही गुजारा करते है और वह उनके लिए काफी है।

इलाहाबाद के प्रो० महेन्द्रनारायण सक्सेना प्राय हर साल मसूरी आकर यहाँ गर्मियो की छुट्टिया बिताते हैं। प्रयाग से ही उनसे परिचय था। ७ जून को देर तक बात होती रही। सगीत की तरफ उनकी स्वाभाविक रुचि थी। एम० एस-सी० प्रथम वर्ष पास किया था, लेकिन उधर जाना नहीं था, इसलिए एम० ए० पास किया। फिर उन्होने अपना सारा ध्यान सगीत की ओर लगाया। कितने ही दिनो तक इलाहाबाद मे एक सगीत विद्यालय मे अध्यापक रहे। अब युनिवर्सिटी मे है। ऐसा व्यक्ति प्राच्य और पाश्चात्य सगीत के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त था, और साथ ही वह हमारे लोक-गीतो का भी गम्भीर अध्ययन कर सकता था। उन्होंने बतलाया, मैंने अपने डी० फिल० के लिए 'सत कवि और सगीत' को लिया है। यह महत्वपूर्ण विषय था। विद्यापति से लेकर हमारे सत कवि ही गीतो के पद नही बनाते थे, बल्कि यह परम्परा आठवी सदी के पूर्वार्ध के आदि सिद्ध सरह तक जाती हैं। वस्तुत हमारा बहुत-सा सगीत जिन पदो के रूप मे सुरक्षित है, वह सिद्धो और सन्तो के ही है। उन्होंने अपने हरेक पद के साथ रागो का उल्लेख किया है। नोटेशन (स्वर-लिपि) उस समय नहीं थी। इन पदो के द्वारा उन रागो का आकार निश्चित करना एक महत्वपूर्ण बात है। वस्तुत शिष्ट सगीत और लोक सगीत के ऐतिहासिक अनुसन्धान का काम हमारे यहाँ नही के बराबर हुआ। मैंने उन्हे यह भी कहा, कि अन्तर्राष्ट्रीय स्वर लिपि क प्रचार की ओर भी ध्यान देना चाहिए, क्योकि अन्त-

राष्ट्रीय संगीत समाज में इसी के द्वारा हम आसानी से अपनी चीजों को पहुँचा सकते हैं।

उसी दिन शाम को स्वामी गंगेश्वरानन्द जी आये। नेत्रविहीन हैं। नेत्रविहीन सभी प्रतिभाशाली हों, यह आवश्यक नहीं, लेकिन जो प्रतिभाशाली होते हैं, वह असाधारण होते हैं। प० सुखलालजी भी इसके उदाहरण हैं। स्वामी गंगेश्वरानन्द जी ने संस्कृत शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया है। मेरा परिचय उनसे यद्यपि पीछे हुआ, पर नाम मैं पहले ही सुन चुका था। उन्होंने १९२२ में गया कांग्रेस में मेरा भाषण सुना था, और उसी समय से परिचित थे। संस्कृत की गम्भीर विद्वत्ता के साथ साथ उनमें कूपमंडूकता और संकीर्ण साम्प्रदायिकता नहीं है। संस्कृत विद्या के प्रसार का भी उनका ध्यान है, इसका प्रमाण बनारस का उदासी संस्कृत विद्यालय है। अहमदाबाद में चार-पाँच लाख लगवाकर उन्होंने वेदमंदिर बनवाया। मैंने उनसे कहा, संस्कृत के बहुत से ग्रंथ अप्रकाशित हैं, कितने ही प्रकाशित होकर अब दुर्लभ हो गये हैं। इन्हें चिरस्थायी हाथ के कागज पर निकालना चाहिए। दस बीस ग्रंथों तक तो आशा नहीं रखनी चाहिए, कि यह प्रकाशन स्वावलम्बी हो जायेगा, पर आगे स्वावलम्बी होने की भी संभावना है। साथ ही वेदान्त के मूल ग्रंथों का हिन्दी में ऐसा अनुवाद होना चाहिए जिसमें मूल का आनन्द आये टीका न मालूम हो। स्वामी सत्यस्वरूपजी उनके शिष्यों में हैं, जिनसे साल में एक दो बार मुलाकात हो जाया करती थी। अब भी मैं इन बातों की ओर उनका ध्यान दिलाता रहता हूँ।

राकेश जी कृत "कामायनी" का संस्कृत अनुवाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में छपने के लिए गया था। मुझे आशा थी कि अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में हिन्दी के प्रभाव को मनवानेवाले इस ग्रंथ का प्रकाशन अब हो जायगा, पर वहाँ से लौट आया। फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आशा हुई। महीनों पाण्डुलिपि वहाँ रही। अब चिट्ठी आई, कि आचार्य ने उसे प्रकाशित करने की स्वीकृति नहीं दी। जानता क्या हूँ — साहित्य से विशेष रुचि नहीं है। फिर आदमी को सहज ही ख्याल हो सकता है, कि हिन्दी की संस्था का संस्कृत के ग्रंथ के प्रकाशित करने से क्या मतलब? पर यह कम समझ सकते हैं कि हिन्दी के प्रचार का साधन है

अनुवाद अहिन्दी भाषाओं के धुरंधर साहित्यिकों के पास पहुँच कर अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। हमारे कितने ही महान् ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवादों ने एक विस्तृत क्षेत्र में उनकी महिमा पहुँचाई है, यह हम देखते ही हैं।

१० जून को हर्मिटेज' सरकार की ओर से नीलाम हुआ। यह 'हर्मिटेज' बंगले का काटेज या कुटीर था। 'हर्मिटेज' को बिड़ला ने केवर लाखों रुपया लगा उसे बिड़ला निवास बना दिया। उस समय काटेज एक मुसलमान सज्जन की सम्पत्ति थी जो २५-३० हजार से नीचे उतरने के लिए तयार नहीं थे। विभाजन के समय वह पाकिस्तान भाग गये। बंगले का सारा फर्नीचर और सामान लोग उठा ले गये, छत दीवार और दरवाजे रह गये। दरवाजों को भी लोग निकालने लगे थे। चौकीदार नहीं तो कौन उनकी रक्षा करे? नीलाम में बोली बोलने के लिए कितने ही लोग आये थे। श्री माहिनी जुत्शी भी पाँच हजार तक जाने के लिए तयार थीं। डा० राम के आदमी ने साढ़े सात हजार तक बोली बोली। बिड़ला की ओर से जब आठ हजार दिया गया तो फिर किसी की हिम्मत नहीं हुई। उस दिन तो बात तै नहीं हुई पीछे नीलाम के अफसर ने कह दिया कि दस हजार से कम में हम बेचने का अख्तियार नहीं है। अगले नीलाम में दस हजार में मकान बिक गया। उस समय अब भी मकानों की कीमत थी। पिछले दो वर्षों में वह और गिरी। बिड़ला निवास से लगा होने के कारण वह दस हजार रुपये में बिक सकता। जुत्शी जी हमारे पड़ोस में रहने के ख्याल से ही उसे ले रहे थे।

एक दिन बादल रहकर १४ फरवरी की रात से ही वर्षा होने लगी। सबेरे भी कुछ रही, फिर दिन-भर खुला रहा। हवा और वर्षा मसूरी के तापमान पर जल्दी प्रभाव डालते हैं। उस दिन तापमान इतना उठ गया कि एक दो घड़ी के लिए गरम कपड़ा और कंटोप पहनना पड़ा। अब बादल और वर्षा की संभावना थी। यद्यपि यह नियम नहीं है, कि १५ जून से वर्षा आरम्भ ही हो जाय। सर्वेवाले अपने तजर्बे से २६ जून को वर्षारम्भ मानते हैं।

१६ जून को लेनिन' समाप्त हो गया। जब-तब वर्षा हो जाने से सैलानियों को घर याद आने लगे। वह धड़ाधड़ मसूरी छोड़ने लगे।

'स्तालिन', 'लेनिन' और 'मार्क्स' की जीवनियों को समाप्त करने के बाद २२ जून से चौथी पुस्तक 'माओ' में मैंने हाथ लगाया। उसी दिन उन्नाव के एक मुसल्मान वकील साहब आए। अंग्रेजों के शासनकाल में देश में फूट पैदा करने के लिए जो मुसल्मानों को शह देते रहे, उन्हें यह समझना मुश्किल है कि नये युग में पुराने खिलाफत के खयाल को सहायता नहीं दी जा सकती। उनके लिए केवल वही रास्ता है, जिसे अकबर ने चार शताब्दियों पहले दिखलाया था। अंग्रेजों के चले जाने के बाद और पुरानी मनोवृत्ति के कारण देश के विभक्त हो जाने पर शिक्षित मुसलमानों को किंकर्तव्यविमूढ़ता सी आ गई है। उनमें से कितने ही निराश होकर पाकिस्तान भाग गए। पर, सब क्या अधिकांश भी वहां भागकर नहीं जा सकते। जिनके भाईबन्द पाकिस्तान चले गए हैं, वह वहां की कठिनाइयों को जानकर अब समझने लगे हैं कि हमारे लिए पाकिस्तान नहीं, हिन्दुस्तान ही अच्छा था। यह अवस्था उन्हें सह्य नहीं होती कि उन्हें 'कोई नहीं' समझा जाए। वकील साहब यह सब दिक्कतें बतला रहे थे। मैंने कहा इस्लाम को खतरे में कहना गलत नारा है। हमारे देश में सभी धर्म स्वतंत्रतापूर्वक रह सकते हैं, हमारी पुरानी परम्परा भी इसके अनुकूल है। पर, खिलाफत की मनोवृत्ति को हटाना पड़ेगा, और मुसलमानों को अपनी विशेषता उतनी ही माननी होगी, जितनी ईसाई, बौद्ध, जैन या हिन्दू मानते हैं।

आजकल योग्यता नहीं बल्कि जाति और सम्बन्ध की नौकरियां में पूछ है। पं० गयाप्रसाद शुक्ल के सुपुत्र श्री विश्वनाथ शुक्ल ने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। देहरादून डी० ए० वी० कालेज में पढ़े और वहीं उनका घर है। यहां अध्यापकी मिलती तो घर में रहने के कारण बहुत से सुभीते थे। लेकिन, डी० ए० वी० कालेज में कायस्थों का प्रभुत्व है। कायस्थ तीसरे दर्जे का एम० ए० भी विभागाध्यक्ष हो सकता है। अध्यापकों की जरूरत थी। विज्ञापन दिया जाए और कोई योग्यतम साबित हो, तो अपने आदमी का रास्ता रुक जाएगा। सबसे अच्छा तरीका यह समझा गया कि उस समय यह कहकर बात टरका दी जाए कि अभी आदमी की जरूरत नहीं है। योग्य व्यक्ति अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, वह किसी घाट लग जाएंगे और फिर अपने आदमी को चुपके से

बैठा दिया जाएगा। विश्वनाथजी अपने विषय के बहुत योग्य थे, इसलिए उन्हें बरेली कालेज मे काम मिल गया और एक ही दो वर्ष बाद वह अहमदाबाद मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर चले गए। उनके पिता प्रा० गया-प्रसाद शुक्ल, देहरादून मे अपना मकान बना, यही रहते है। घर छोडकर अहमदाबाद जाना विश्वनाथ को रुचिकर थोडे ही हो सकता था ? देहरादून के डी० ए० वी० कालेज की शिकायत क्या की जाए, सभी जगह यही बात है। सम्बन्ध या खुशामद काम करती है। खुशामद मे जो योग्य साबित हो वह योग्यतमो को भी धक्का दे आगे बढ जाता है। हमारे प्रान्त के एक टुट-पुंजिया अर्थशास्त्री है जो मन्त्री के कृपापात्र होने के कारण यूनिवर्सिटी के विभागाध्यक्ष बन गए। ऐसे आदमियो को सम्माननीय गद्दियो पर बैठता देखकर सचमुच दिल जबदस्त बगावत करने लगता है। एक दूसरे तरुण को जानता हूं। आई० ए० एस० मे वह हरेक विषय मे सबसे अधिक नम्बर पाने वाले तीन-चार उम्मीदवारो मे था। उसे पास होना चाहिए था। लेकिन नेहरूशाही ने पर्सनल्टी (व्यक्तित्व) सबसे आवश्यक चीज मानी है जिसके लिए शायद ३०० मार्क है। पर्सनल्टी की परीक्षा कुर्सी पर बैठे लोग जबानी करते है, और उनका ही फैसला आखिरी है। कोई भी आदमी देखकर उस तरुण को कह सकता है कि व्यक्तित्व मे वह तरुण किसी से कम नहीं है, लेकिन उनका व्यक्तित्व मे १० नम्बर दिया गया। अन्धेर नगरी चौपट राजा, न्याय की पूछ कहाँ हो सकती है ? विशेषकर जबकि नेहरूजी इस संदिग्ध व्यक्तित्व परीक्षा के भारी समर्थक है। उसी तरुण ने एक विषय पर पी एच० डी० की थीसिस लिखी। बहुत अच्छी थी यह इसी से सिद्ध है कि एक प्रकाशक ने इस ग्रन्थ को अंग्रेजी मे प्रकाशित किया। एक यूनिवर्सिटी मे भाटू विभागाध्यक्ष बन गए। तरुण ने दूसरा निबन्ध लिखकर दो साल हुए उनके पास दिया। खुशामदी दरबारी को इतनी फुरसत कहाँ ? अभी उनका शायद वाइस चांसलर बनने की आशा है। इसलिए उन देवताओ को रिझाना आवश्यक है, जिनकी कृपादृष्टि से वह इस गद्दी पर पहुँच सकते हैं। दो वर्ष से उन्हें फुरसत नही हुई कि थीसिस को परीक्षको के पास भेजें। एक तरफ एक तरुण के जीवन का सवाल है और दूसरी तरफ इस आदमी का यह कमीनापन। "धिक् व्यापक तम।"

२४ जून का साथी यज्ञदत्त शर्मा अपनी पत्नी सरलाजी के साथ आए। नौ दस वर्ष के भीतर इतना परिवर्तन हो सकता है, यह मुझे विश्वास नहीं था। दस साल पहले उन्हें दिल्ली में देखा था। साथी यज्ञदत्त एक कालेज में प्रोफेसर थे। कम्युनिज्म ने लाखों की तरह उन्हें फकीर बनाया। अपनी योग्यता और कर्मठता को उन्होंने गरीबों के उद्धार में लगाया। वह दिल्ली के कम्युनिस्ट नेता हैं। उनकी पत्नी सरला गुप्ता अपने विद्यार्थी जीवन से ही विद्यार्थियों फिर स्त्रियों और कमकरों के संगठन में काम करने लगी थीं। अब दोनों पति पत्नी हैं। यज्ञदत्तजी पहले छरहरे जवान थे, अब कुछ मोटापा आ गया है और काले बालों में कितने ही सफेद भी दीख रहे थे।

गर्भ परिपक्व हो रहा था। कमला को मेटर्निटी अस्पताल में ले जाने की जरूरत थी। मिशनरियों का सेंट मेरी अस्पताल मसूरी के अच्छे अस्पतालों में है जो हमारे से नजदीक भी है। लेडी डॉक्टर ने परीक्षा की। बतलाया, खून का दबाव कुछ कम है। विटामिन 'बी' का इन्जेक्शन देने और कल्सियम खाने के लिए कहा।

उस दिन डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० विश्वेश्वरप्रसाद और प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी से बातचीत हुई। अगले दिन पं० नरदेव शास्त्री आए। शास्त्रीजी चार मील दूर लण्ढौर में हर साल मसूरी में ठहरते हैं, सीजन में जरूर दर्शन देते हैं।

३० जून को जामिया मिलिया के अध्यापक डा० सलामतुल्ला अपनी पुत्री सईदा के साथ आए। तीन घंटे तक भाषा और दूसरी बातों के सम्बन्ध में बात होती रही। मेरे हिन्दी प्रेम को कितने ही लोग उर्दू द्वेष समझना चाहते हैं। सुनी सुनाई बातों से लोगों को विश्वास भी हो जाता है। मैं उर्दू को हिन्दी समझकर उसी की तरह उसके साथ प्रेम रखता हूँ और चाहता हूँ कि उर्दू की अनमोल निधियाँ नागरी में मुद्रित होकर व्यापक रूप से दी जाएँ। मैं उर्दू लिपि के त्याग करने की भी बात नहीं करता। डा० सलामतुल्ला साहित्य प्रेमी तथा उदार विचार रखते थे, इसलिए हम एक दूसरे के भावों को समझ सकते थे।

१ जुलाई को अमृतसर से भैया की चिट्ठी आई कि भाभीजी की छोटी जुड़हिन का २६ को देहान्त हो गया। परिपूर्ण गर्भा को बड़े सावधान

रहने की आवश्यकता होती है। बेचारी गिर पडी। गर्भस्राव के साथ भीषण रक्तस्राव होने लगा। अस्पताल ले गए। चौदह घटे के भीतर मर गई। पिछली साल अपनी बहन के साथ वह मसूरी आई थी। उमर ही क्या थी, किन्तु मृत्यु उमर पूछकर थोडे ही आती है? नन्हा बच्चा और एक लडकी छोड गई।

मसूरी मे रहते तीन वर्ष हो गए। यहा के सब तरह के जीवन को देखते हुए मन मे खयाल आया कि इसकी झाकी दूसरो को भी देनी चाहिए, इसलिए मैंने कहानिया लिखने का निश्चय किया। पहली कहानी 'महाप्रभु' थी जिसे १२ जुलाई को लिखा। मेरी कहानिया प्राय एक फार्म (१६ पृष्ठ) की होती है। अधिकतर मैं एक बैठक मे एक कहानी समाप्त करता हूँ। 'महाप्रभु' आधुनिक काल के एक धर्म के दूकानदार शिरोमणि की कथा है। मसूरी-सम्बन्धी कहानियो को पहले मैं 'मधुपुरी' नाम से रखना चाहता था। इसी बीच 'मधुपुरी' के नाम से किसी का काव्य निकल आया, इसलिए मुझे पुस्तक का नाम 'बहुरगी मधुपुरी' रखना पडा। २१ कहानियो मे यद्यपि एक व्यक्ति के जीवन की छाप अधिक हो सकती है, पर उसके बनाने मे अनेक व्यक्तियों की जीवनियो को लिया गया है।

१६ को बाजार गए। कुरहडी मे पता लगा, एक वृक्ष पर एक महात्मा तपस्या कर रहे हैं। बाजार से यह पेड नजदीक ही था। सचमुच ही बज के वृक्ष पर गेरुआ कपडा दिखलाई दे रहा था। मचान-सा बाँधकर मुह ढाँके कोई साधु वहाँ बैठा था। मसूरी तपोभूमि नही विलासभूमि है। तपस्या करने के लिए वहाँ का सबसे बडा बाजार ही क्या अनुकूल साबित हुआ? कुछ लोग समझने लगे कि यह निरा भोदू है, जो इस जगह आकर अपने पाखण्ड से लोगो को प्रभावित करना चाहता है। लेकिन, पडबाबा—इसी नाम से उन्हें पुकारा जाने लगा—भोदू कहने वालो को भोदू समझते थे। बरसात का दिन था, जिसके कारण सर्दी भी बढ गई थी। उस समय चौबीसो घटे पेड के ऊपर रहना जन मन को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए काफी था। वह मील-सौ-मील दूर भी तपस्या करने जा सकते थे, पर यदि कहीं रीछ से भेंट हो जाती, जो मसूरी के आस पास के जगलो मे रहते हैं, तो बेचारे की तपस्या भग हुए बिना नही रहती, और फिर भक्त और भक्तिनें

उनके पास कैसे पहुँच सकते थे ? पेडबाबा १५ जुलाई को एकाएक यहाँ बड़ दिखाई पड़े। अभी तीन ही दिन हुए, कि लोगों के दिलों में भक्ति अंकुरित हुई और दर्शकों की भीड़ होने लगी। लोग कह रहे थे, महात्मा न कुछ खाते हैं न पीते हैं, और हर वक्त ध्यान में लीन रहते हैं। पीने के लिए उनके भीगे कपड़ों से काफी पानी मिल सकता था, और खाना देखने के लिए कौन वहाँ चौबीस घंटा पहरा देता था ? पेडबाबा अकेले नहीं आए होंगे। उनके सिद्ध साधक मसूरी में अपना प्रापेगंडा कर रहे होंगे, यह निश्चित ही था। हफ्ता बीतते बीतते पेडबाबा बहुत-से टिलमिल्यवीना को अपनी ओर खींचने में सफल हुए। आर्यसमाजी और दूसरे नुक्ताचीनी करते रहे लेकिन भक्ति की बाढ़ में उनकी आवाज डूब गई। पूरे महीना भर तपस्या कर लेने पर मसूरी में अब किसी को इस महान् तपस्वी के खिलाफ बोलने की हिम्मत नहीं रह गई। वह वहाँ से उतरे। एक अच्छे मकान में ले जाकर ठहराए गए। अब उन्होंने कहा कि भागवत की कथा होनी चाहिए, और एक बड़ा यज्ञ भी। भक्तों ने हजार रुपये जमा कर दिए। भागवत की कथा होने लगी। पेडबाबा एक पैर पर खड़े होकर उसे सुनाने लगे। कथा के बाद विदाई हुई। पेडबाबा का जलूस निकला, और मसूरी दिग्विजय करके उनके शिष्य-शिष्या के हृदय में भक्ति की गंगा बहाकर वह यहाँ से विदा हुए। जिनमें हिं आधुनिक ढंग के शिक्षित ग्रेजुएट और वकीलों का भी उनके कारण नास्तिकता के दल्दल से उद्धार हुआ। यह २०वीं सदी का उत्तरार्ध है, क्या भारत में यह सिद्ध हो पाया ?

२३ जुलाई को जोरहाट (आसाम) के राजहौली गाँव के निवासी घुमक्कड़ मेघनाथ भट्टाचार्य आए। भारत के बहुत से भागों में घूम चुके थे, काश्मीर ही नहीं पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा पर भी पहुँचे। उनके दुर्गम पहाड़ी यात्राओं को सुनकर विश्वास हो गया कि यह आदमी प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ होने लायक है। निश्चिन्त होने भी शारीरिक परिश्रम में उनका कोई दुराव नहीं था, यह शोक में सुगंधी थी।

२६ जुलाई को पता लगा, कोरिया में युद्ध विराम-संधि हो गई। अमेरिका ने दक्षिणी कोरिया से मसूद ने होकर उत्तरी कोरिया को, छुटकारा देना चाहा। पर उसके पिट्ठू सिग्मन री की [illegible]

दुर्गति हुई कि एक समय जान पडा उसे भी चाग काइ शेक की तरह समुद्र म ढकेल दिया जाएगा। फिर अमेरिका खुद युद्ध म कूदा। जब उसकी सेनाये पुरानी सीमा से उत्तर की ओर बढने लगी तो भारत ने कहा कि ऐसा नही करना चाहिए, नही ता चीन चुप नही रहेगा। चीन अपनी सीमा के ऊपर अमेरिका का कैसे देख सकता था ? चीनी स्वयसेवक मैदान म आये और अमेरिका का भागना पडा। उसन उसे कई दशा का सम्मिलित युद्ध बनाया था, लेकिन युद्ध म मारे जा रहे थे अमेरिकन तरुण। यह डालर का व्यय नही था, बल्कि आदमी के प्राणा की आहुति थी। अमरिकन थैलीशाह नेता समझते थे, कि हमारा काम डालर बरसाना हागा, और प्राणा की कुर्बानी दूसरे देंगे। अमेरिकन जनता ने देखा उलटा विरोध हुआ, और अन्त म अमेरिका का विराम सधि करनी पडी।

बन्दूक और रिवाल्वर का लाइसेन्स मेरे नाम था। मेरे अनुपस्थित रहन पर कमला को उनकी जरूरत पड सकती थी, इसलिए लाइसेन्स म उन्हे भी साझीदार बनाने के लिए मैंने जिला मजिस्ट्रेट को लिखा। उन्हाने २६ जुलाई को दोनो के लाइसन्स भेज दिय। साथ ही बन्दरा से साग सब्जी की रक्षा के लिए टापीवाली बन्दूक देना भी मजूर किया।

अब की कुछ देर से भैया और भाभी मसूरी आ गये। पिछले साल से भाभीजी का मानसिक राग का सामना करना पड रहा था। छाटी बहिन के मरने के कारण उनकी स्थिति और भी बुरी थी। जान पडा दो साल पहले की भाभी फिर नही लौटेगी। यहा रहने पिछले साला की तरह फिर हमारा एक प्राणी दो घर का जीवन था। हर सप्ताह कम से कम एक दिन मुझे उनके यहाँ जाना पडता। ४ अगस्त का मैं लण्ढौर तक गया। किशन सिंह बहुत दुर्बल हो गये थे चलना फिरना भी मुश्किल था। हृदयशूल की बीमारी थी, जीवन से निराश थे। लण्ढौर मे कुछ दूकानवाले भाग चुके थे लेकिन दो-तीन सुनारो की दूकानें बढ गई थी। पुरुषोत्तमजी की दूकान महीनो से बन्द पडी थी। मसूरी म कुछ का दिवाला निकलना और उनकी जगह कुछ का फिर भाग्य परीक्षा के लिए आ जाना अब मामूली बात थी।

६ अगस्त को कम्पनी बाग म वनभोज हुआ। मगल और ठाकुरानीजी के साथ हम यहाँ से कम्पनी बाग गये। कुल्हडी से भैया और

लिए यह सङ्कट की बात थी, क्योकि वह अपने इन्ही अस्त्रो के भरोसे से दुनिया मे गाल बजा रहा था। यह यदि अमेरिका के लिए बुरी खबर थी, तो ईरान मे उसे खुशखबरी भी मिली। प्रगतिशील शक्तिया को साथ लेकर मुसद्दिक ने वहा के सडे सामन्तवाद पर जबकर प्रहार किया। दुनिया की सभी प्रतिगामी सडे गले हितो को जीवित रखने का ठेका अमेरिका ने ले रखा है। वह ईरान म कैसे बर्दाश्त कर सकता था। जब ईरान का शाह राजधानी छोड कर भाग गया, तब तो अमेरिकन थैलीशाहो के घरा म कुहराम मच गया। मुसद्दिक दल ने अपनी स्थिति से जल्दी फायदा उठाने की कोशिश नही की। लेनिन क्रान्ति के एक एक मिनट का बहुमूल्य समझते थे, और उन्ही जैसे दूरदर्शी पुरुष का यह काम था, कि रूस मे मार्क्सवाद की विजय हुई। बूढे मुसद्दिक मिनटो और सेकण्डो के मूल्य को क्या समझते? जनता के मनोभाव ऐसी स्थिति मे एक एक क्षण म बदलते रहते है। वह अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही हो सकती। बदले भाव से प्रतिगामिया ने लाभ उठाया और शाह फिर आकर ईरानी जनता की छाती पर कादो दलने के लिए मौजूद हुआ।

जब मैं मसूरी के एंग्लो इडियन परिवारो को देखता हूँ, तो मुझे वह समय याद आता है, जब कि भारत से यूनानियो का प्रभुत्व उठ रहा था। लाखो की तादाद मे यूनानी यहाँ मौजूद थे। जन्मभूमि से पीढियो से उनका सम्बन्ध नही था, और अपने जाति भाइयो के शासन के कारण ही वे यूनानी होने का गर्व करते थे। प्रभुत्व हटने से पहले ही भारतीय संस्कृति मे वे प्रभावित हुए। उनके मिनान्दर जैसे राजा तक बौद्ध हो गये। इस प्रकार व सास्कृतिक तौर से भारत के दूसरे लोगो से उतना भेद नही रखते थे, जितना कि ये एंग्लो इडियन। अंग्रेजो ने इस वर्ग को जन्म दिया। अपनी सन्तान होने से शिक्षा और आर्थिक तौर से उनकी सहायता की लेकिन हमेशा उन्हे घृणा की दृष्टि से देखते हुए अपने समाज मे अपमानित किया। अपमान सहते हुए भी एंग्लो इडियन यह देखकर खुश थे, कि हम काले आदमियो पर वैसे ही धौंस जमा सकते हैं जैसे अंग्रेज और नौकरी तथा वेतन म भी हम विशेष सुविधाएँ मिलती हैं। अंग्रेजो के शासन के ये जबर्दस्त समर्थक थे। इन्हे क्या पता था कि अंग्रेजो को एक दिन भागना पडेगा,

उषा और बाबा को लेकर आये। १२ बजे वहा पहुँचते ही मूसलाधार वर्षा होने लगी, इसलिए खुले बाग मे नही, बल्कि उसके एक मकान मे शरण लेनी पडी। तरह-तरह के पकवान बनकर आये थे। हमारा भोज चलता रहा। वर्षा ३ बजे खत्म हुई। फिर हम वहा से घर लौटे।

वृद्ध सर सीताराम गर्मियो मे बराबर मसूरी आते है। ७० से कम उमर नही है, लेकिन अब भी सडको पर टहलते मिलते। आखें जरूर ज्यादा कमजोर थी। अग्रेजो के कृपा पात्र होते भी वह देश के प्रति उदासीन नहीं थे। अध्ययन का उन्हे व्यसन है। १५ अगस्त को टौनहाल की मीटिंग से लौटते वक्त उनसे देश की परिस्थिति पर बातचीत होने लगी। सभी जगह भ्रष्टाचार, सभी जगह बेकारी, यह चिन्ता का बात थी। वह रहे थे, इसका क्या हाल है ? मैंने कहा—कम्युनिस्टो के लिए यह कोई समस्या नही है उन्हे मौका दिया जाये, तो चुटकी बजाते बजाते वे उन समस्याओ को हल कर सकते हैं। चीन मे ऐसा ही हुआ। पुरानी पीढी ऐसी बातो को समझ नही सकती थी। लेकिन, पुराने नेताओ के घर मे नये ढग की नई पीढी आ गई है, जो तस्वीर के दूसरे रुख को देखने के लिए मजबूर करती है। सर सीताराम के पुत्र मार्क्सवादी है जिन्होने उनके मन से कम से कम कम्युनिस्टो के प्रति द्वेष को हटा दिया है।

अगस्त मे 'जौनसार देहरादून' के लिखने मे भी मैंने हाथ लगा दिया। मन करने लगा कि दार्जिलिंग से उठाये हिमालय सम्बन्धी ग्रथो को जम्मू कश्मीर की सीमा तक पहुँचा देना चाहिए।

शहर से दूर रहने का अब एक बुरा फल यह देखने मे आया, कि यहाँ से अस्पताल दूर है। कमला को न जाने किस वक्त आवश्यकता पडे। मैदा जी ने कहा, उन्हे हमारे पास रख दें। वह १६ अगस्त को यहाँ चली गई। अभाव के समय ही आदमी को आदमी का मूल्य मालूम होता है। यहाँ रहने अपने पाली पत्नर को छोड और किसी चीज की फिकर करने की मुझे जरूरत नहीं था।

साविक्त रूस के पास परमाणु-बम है उसने उसका विस्फोट किया है इसकी सूचना अमेरिका ने दुनिया को दी। अगस्त के तीसरे सप्ताह मे वहाँ हाइड्रोजन बम फूटा इसकी भी सूचना अमरिका ने ही दी। अमरिका के

लिए यह सकट की बात थी, क्योकि वह अपने इन्ही अस्त्रा के भरोसे से दुनिया म गाल बजा रहा था। यह यदि अमेरिका के लिए बुरी खबर थी, ता ईरान मे उसे खुशखबरी भी मिली। प्रगतिशाल शक्तिया का साथ लेकर मुसद्दिक ने वहाँ के सडे सामन्तवाद पर भयकर प्रहार किया। दुनिया की सभी प्रतिगामी सडे गले हिता का जीवित रखने का ठेका अमेरिका ने ले रखा है। वह ईरान म कैसे बर्दाश्त कर सकता था। जब ईरान का शाह राजधानी छोड कर भाग गया, तब ता अमेरिकन थैलीशाहा के घरो म कुहराम मच गया। मुसद्दिक दल न अपनी स्थिति से जल्दी फायदा उठाने की कोशिश नही की। लेनिन क्राति के एक एक मिनट को बहुमूल्य समझते थे, और उन्ही जैसे दूरदर्शी पुरुष का यह काम था, कि रूस मे मार्क्सवाद की विजय हुई। बूढे मुसद्दिक मिनटो और सेकडो के मूल्य को क्या समझते? जनता के मनोभाव ऐसी स्थिति म एक एक क्षण म बदलते रहते हैं। वह अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही हो सकती। बदले भाव से प्रतिगामिया ने लाभ उठाया और शाह फिर आकर ईरानी जनता की छाती पर कोदो दलने के लिए मौजूद हुआ।

जब मैं मसूरी के एग्लो इडियन परिवारो को देखता हूँ तो मुझे वह समय याद आता है जब कि भारत से यूनानियो का प्रभुत्व उठ रहा था। लाखो की तादाद मे यूनानी यहाँ मौजूद थे। जन्मभूमि से पीढिया से उनका सम्बन्ध नही था, और अपने जाति भाइया के शासन के कारण ही वे यूनानी होने का गर्व करते थे। प्रभुत्व हटने से पहले ही भारतीय सस्कृति से वे प्रभावित हुए। उनके मिनान्दर जैसे राजा तक बौद्ध हो गये। इस प्रकार वे सास्कृतिक तौर से भारत के दूसरे लोगो से उतना भेद नही रखते थे, जितना कि ये एग्लो इडियन। अग्रेजो ने इस वर्ग को जन्म दिया। अपनी सन्तान होने से शिक्षा और आर्थिक तौर से उनकी सहायता की लेकिन हमेशा उन्हे घृणा की दृष्टि से देखते हुए अपने समाज मे अपमानित किया। अपमान सहन हुए भी एग्लो इडियन यह देखकर खुश थे, कि हम काले आदमियो पर वैसे ही धौंस जमा सकते है जैसे अग्रेज और नौकरी तथा वेतन म भी हम विशेष सुविधाएँ मिली हैं। अग्रेजो के शासन के ये जबर्दस्त समर्थक थे। इन्हे क्या पता था कि अग्रेजो को एक दिन भागना पडेगा,

फिर हमारे अलग थलग जीवन का इस देश म स्थान नहा रहगा। अंग्रेजो के जाते ही एग्लो इडियना म भगदड मच गई। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि अंग्रेजी उपनिवेशो ने उनके लिए दरवाजा खोल दिया। पर शत यह रखी कि रग रूप म वह अंग्रेजो जैसे हो। एग्लो इडियना म सावले स लेकर यूरोपियनो की तरह गोर भभूके रग के नर नारी मिलते हैं। लेकिन इन रगा मे सीमा-रेखा एक के परिवार मे भी मिलनी मुश्किल है। जिन्ह ज्यादा गोरा रग मिला था, वह अपनी जायदाद बेच बाँचकर उप निवेशो मे चले गये। जिनका रग खपनवाला नही था, उनम से भी रिश्वत देकर कुछ आस्ट्रेलिया और दूसरे देशा मे चले गये। इस गडबडी का दब कर जब वहा विरोध प्रकट किया गया, तो कितन ही रिश्वत म रुपया बर बाद कर तथा अपनी जायदाद को बेच करके भी यही रह जाने क लिए मजबूर हुए।

लेकिन उनकी आर्थिक समस्याओ के अतिरिक्त सास्कृतिक समस्या भी कम नही है। अभी तक अंग्रेजी उनकी मातभाषा थी, जिसकी अंग्रेजी राज म सबम अधिक कदर थी और हमारे अन्धे शासको के कारण अब भी वह अक्षुण्ण है। एग्लो इडियनो के अपन विशेष स्कूल हैं, जिनम कम्ब्रिज की परीक्षाएँ होती हैं जिन पर खच भी बहुत आता है। उसका बहुत बडा भाग सरकार बर्दाश्त करती है, जिसे अब एक वग विशेष के साथ पक्षपात होने के कारण बर्दाश्त नही किया जा सकता। एग्लो इडियनो के फ्रैंक एथनी जैसे नेता यह समझान म भी असमर्थ हैं कि अंग्रेजो के जाने पर अंग्रेजी की प्रभुता नही रह सकती। अंग्रेजी कुछ भारतीयो की मातृभाषा रहे, वह अपना धर्म भी ईसाई रखें, इसमे कोई हर्ज नहीं है। हमारे देश की विविधता बहुरगिता शोभा की चीज है पर, भारतीय भाषा और सस्कृति की काट करके यह होना असम्भव है। दो हजार वर्ष पहले यूनानियो ने भी अपने भाषा और वर्ण की अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न जरूर किया होगा, परन्तु काल और देश की सम्मिलित शक्ति का वे कैसे मुकाबिला कर सकते। सौ पचास वर्ष बाद अर्थात् आज मे चार पाँच पीढी बाद आनेवाली एग्लो इडियन सन्तान इस प्रकार के विलगाव का कभी पसन्द नही करेंगे। क्या एग्लो इडियना की भी वही हालत होगी जो पुराने भारतीय ग्रीको

की ? इतिहास म क्या वे बालू के पदचिन्ह की तरह मिट जाएगे ? नदिया अपन अस्तित्व को मिटा कर समुद्र म अभिन्न हो जाती ह इसे कोई रोक नही सकता। पर, इतिहास के विद्यार्थी होने के कारण मुझे ख्याल होता है, एग्लो इडियनो की ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित करना चाहिए। मैंने यहा के ह्यूमों और विल्सन जैसे पुराने परिवारो के साथ सम्पर्क स्थापित करके कुछ सामग्री जमा करने की भी कोशिश की है। और भी करना चाहता था, लेकिन समय की शिकायत ठहरी। ८० वर्ष से ऊपर की बुढिया से कुछ बातो का पता लगाना चाहता था। म आज कल करता रहा, और बुढिया चल बसी। इसी तरह एक और ८० वर्ष से अधिक उमर के बूढे का पता लगा। उसके पास मे भी जाने म असमर्थ रहा। मेरे पडोसी प्रूमग का एग्लो इडियन परिवार मूलत मसूरी का नही है और वही बात लैडली की भी है। बूढे लैडली से भी कितनी ही बाते मालूम हो सकती थी। वह २०वी सदी के प्रथम दशक ही म यहा आ गये थे, और कम से कम पचास वर्ष का मसूरी का इतिहास उन्हे मालूम था। लेकिन, उनसे भी मैं सामग्री जमा नही कर पाया। लैडली और उनके पुत्र जान शक्ल-सूरत म अग्रेजो से कोई भेद नही रखते। जान को जब सघर्ष करते देखता हूँ, तो सोचता हूँ, इनके लिए आस्ट्रेलिया म जा बसना मुश्किल नही है।

बूढे लैडली से बात करने म बडा आनन्द आता था। वह बडे रोचक ढग से पुराने जगत की बाते बतलाते थे। कमठ तो इतने थे, कि ७० वर्ष म ऊपर के हो जाने पर भी समझते थे, उनका शरीर अब भी पहले ही जैसा है। अपनी फुलवारी म लगे रहते, टहलने का भी उन्हें शौक था। कभी कभी ८ ६ बजे रात को मैं उन्हे टहल के लौटते देखा था। पूछने पर कहते— "कमल्स बैक की तरफ से घूम कर आ रहा हूँ।" जाडा अधिक बढने पर यहाँ बूढो को तकलीफ हो जाती है। मद मुल्को म क्या होता है इसके बारे मे वही के बूढे जानें। लैडली को जान और बारबारा जाडा म गर्मी बढने पर देहरादून भेज दिया करते थे। १९५२ म कहने पर बूढे लैडली ने कहा— क्रिसमस करके जाऊँगे। इस महान् पर्व को अपने परिवार म बिताने की किसकी इच्छा नही होगी ? लेकिन उन्होने गलती की। न्यूमोनिया मार गया और दो-तीन दिन बहार रह कर चल बसे। मैं भी शव के साथ कब्रिस्तान तक

की समेट्री म गया, जहाँ उनकी पत्नी अनन्त निद्राविलीन थी। वहीं पेटी म बाद बूढे लेडली का भी सुला दिया गया। पादरी ने कुछ धार्मिक वचन कहे। जाने वाला म मिसेज कोमरी भी थी। उनके पति आई० सी० एस० अफसर थे। जा पैसा उन्हे यहा मिल रहा था, वह इग्लैड मे भी मिलता। उनके बच्चे भी इग्लैड मे थे लेकिन वह इग्लैंड जाने के लिए तैयार नही थी। पीछे आक्पण हुआ, यहाँ का लटा पटा वेच कर वह इग्लैड गइ। यहाँ का जीवन कितना ही खर्चीला होने पर इग्लैंड की अपेक्षा बहुत सस्ता है। ३० ४० रुपया और खाने पर अच्छा बैरा था, जो खाना बनाता था, और फूल बाग का भी देख लेता था। अभी भी कितने ही इगलिशभाषी परिवार यहाँ मौजूद हैं इसलिए मिलने जुलने, बातचीत करने का भी सुभीता था। इग्लैड गई वहाँ के खर्चे का देखकर आखें खुली। कोई नौकर नहीं रख सकती थी, पैसा पूरा नही पडता। उमर भी अपने हाथ से काम करने की नही थी। वह तरुण ब्याहता हाकर भारत मे आई, तबस हमेशा नौकर उनका काम करता था। सबस बड कर उनके लिए इग्लैंड मे कठिनाई यह थी, कि चीज बहुत महँगी थी। सात आठ महीने बाद वह फिर मसूरी लौट आइ। अपने फर्नीचर का मिट्टी के मोल बेचने का उन्हे अफसोस था, ता भी अब वह नौकर रखकर अपने वद्धापन को इग्लैड की अपेक्षा यहाँ अच्छी तरह काट सकती थी, इसका उन्हे सताष था। उस दिन मिसेज कोमरी ने कहा, मेरी मा की भी यही कब्र है। वर्षों से वह यहाँ नही आई थी। पहले चौकीदार रजिस्टर देखकर बतला सकता था, लेकिन अब उसका भी कोइ अच्छा प्रबन्ध नही था। हम दानो ने ढूढने की कोशिश की और अन्त म वह कब्र मिल गई। वर्षों स किसी ने सुध नही ली थी। कहने लगी—"इसकी मैं मरम्मत करवाऊँगी।" वह मरम्मत करवा सकती हैं, क्योंकि उनके माँ या बाप यहाँ सा रहे हैं। पर उनके बाद कौन इस कब्र की देखभाल करेगा? क्या इससे मुर्दा जलाने की प्रथा अच्छी नही है?

१५ अगस्त की लिखी लाला की चिट्ठी ३ सितम्बर को मिली। वर्षों बाद यह चिट्ठी मिली थी। तब मे जीवन का प्रवाह किस तरफ मुड गया। ईगर अच्छी तरह पढ रहा है, यह सुनकर प्रसन्नता हुई। पर, मेरा जीवन तो अब कमला और आने वाली उसकी सतानो से बँध गया था। ५ सितम्बर

को ईगर का जन्मदिन था, इसलिए ४ को मैंने बधाई का तार भेज दिया। कमला को इस पत्र के आने की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। बराबर उन्हें शंका बनी रहती है। मैंने कहा—' मेरी आवश्यकता यहाँ है। ईगर एसे देश मे पैदा हुआ है जहा उसकी पढाई लिखाई म कोइ दिक्कत नही हो सकती। समय बीतता जाएगा। अपनी विद्या समाप्त करके वह अपने योग्य काम पा लेगा। अब वह १५ साल का भी हो गया है। मैं यह कभी नही कर सकता, अपने दोनो बच्चो (जया उसी सितम्बर म २० तारीख को पैदा हुई, और जेता ३१ जनवरी १९५५ को) को छोडना मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है।''

जया—१९ को भया के फोन से मालूम हुआ कि अभी कोई बात नही है लेकिन अगले दिन २० को अस्पताल टेलीफोन किया तो पता लगा, आज २ बज कर २५ मिनट पर जया का जन्म हो गया। जया जब गर्भ म थी तभी मैंने कह दिया था, कि लडकी होगी और उसका नाम जया रखा जाएगा। कमला इसे मानने के लिए तैयार नही थी। जेता के बारे मे भी मैंने इसी तरह दृढतापूर्वक भविष्यवाणी की। वस्तुत इस भविष्यवाणी का इससे अधिक कोई मूल्य नही था कि मेरे लिए पुत्री भी उतनी ही अधिक प्यारी थी, जितना पुत्र। शाम को सेंट मेरी अस्पताल मे गए। मालूम हुआ, कि पूर्वाह्न म ही पीडा होने लगी थी, अपराह्न म पीडा बढ चली। रात को नीद लाने के लिए मार्फिया का इजेक्शन दे दिया गया। आज सवेरे पीडा अधिक बढने लगी। मध्याह्न तक वह चरम सीमा म पहुँची। जया का वजन आठ पौड से अधिक था इसलिए प्रसव म कुछ आपरेशन करना पडा। मैंने देखा बच्ची का सिर और चेहरा गोल बाल काले हैं। शिशु कुछ महीनो तक अपने चेहरे को इतनी तेजी से बदलता रहता है, कि उसके बारे म कुछ नही कहा जा सकता। कमला पुत्र के लिए लालायित थी। पर, जया के ससार मे आने पर उन्हे कम सतोष नही हुआ। मुझे तो इसका विशेष आनन्द हुआ। कमला बहुत कमजोर थी, बोलने मे कठिनाई हो रही थी। अभी दस-बारह दिन उन्हे यही रहना था। उस दिन जया की आँखें बन्द थी। २२ को भी वह उन्हे अच्छी तरह नही खोल रही। पाचवे दिन से वह आख खोलने लगी। प्राय सभी माताओ को बच्चे की आख खोलने पर यह ख्याल

होने लगता है कि वह देख रहा है। पर वस्तुतः दो महीने तक आंखें खुली रहने पर भी बच्चा देखता नहीं। नेत्र और प्रकाश बाह्य लक्ष्य ये दोनों साधन मौजूद होने पर भी जब तक नेत्र का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ ठीक से स्थापित नहीं हो जाता तब तक बच्चा नहीं देखता।

२३ सितम्बर को अस्पताल से घर लौटने पर केदारनाथ के पण्डा आए मिले। कहने लगे, 'गढवाल' में केदारनाथ के पण्डों के बारे में जो आपने लिखा है, उस पर हम लोगों को आपत्ति है। मैंने उस स्थल को देखा। वहां विशालमणि के आक्षेप का जिक्र जरूर था, लेकिन मैंने साफ लिखा था, कि वह कथन ठीक नहीं है। प्राचीनकाल से इतने प्रतिष्ठित केदारनाथधाम के तीर्थपुरोहित ब्राह्मण छोड़ दूसरे नहीं हो सकते। और क्या चाहिए था? किसी के मत का खण्डन करने के लिए भी उद्धृत न किया जाए यह अयुक्त बात थी। तो भी मैं नहीं चाहता था, कि किसी को दुःख पहुँचे। इसलिए मैंने कहा, प्रकाशक यदि उस अंश को निकालने के लिए तैयार हों, तो मैं बदलने के लिए प्रस्तुत हूं। पण्डाजी ने यह भी कहा, कि इसके लिए जो खर्चा लगेगा, हम देंगे। वह प्रकाशक के पास इलाहाबाद गये भी। मैंने परिवर्तन के लिए चिट्ठी भी लिख दी लेकिन वह उत्साह बहुत दिनों नहीं रहा और बात यों ही रह गई। २७ सितम्बर को केदारनाथ के दो और पण्डा आये। उनसे भी मैंने वही बातें बतलाईं।

२ अक्तूबर को कमला को अस्पताल से लाने के लिए पौने ९ बजे हम वहां पहुँचे। अस्पताल का प्रबन्ध बहुत ही सुन्दर था। लेडी डाक्टर और नर्स सभी दक्षता के साथ सहृदयता भी रखती थीं। खर्च के २१२ रुपये बहुत नहीं थे। जया अब आंख खोल सकती थी। जन्म के समय यद्यपि जया का वजन ८ पौंड ४ औंस था, लेकिन फिर वह ८ औंस कम हो गया। फिर बढ़ने लगा। अभी भैयाजी का यहां रहने का आग्रह था इसलिए वहां ले गए, और ४ अक्तूबर को ही वह घर आ सकी। पत्नी और माता की स्थिति में बहुत अन्तर होता है यह धीरे धीरे मुझे मालूम हुआ। जब पति पत्नी केवल दो रहते हैं तो अक्सर मतभेद क्षणिक कड़वाहट का रूप लेता है, पर सन्तान इस कड़ुवाहट को पहले तो उठने नहीं देती और उठने पर जल्दी ही दूर कर देती है। सन्तान दाम्पत्य सम्बन्ध का जबर्दस्त सीमेंट है।

मिस पूमग ने जया के लिए पहले ही से कपडे और खिलौने तैयार कर रख थे। कलजे की बीमारी क कारण वह अपने हाल से भी बाहर नही निकल सकती थी, लेकिन जया की सौगात का उन्होन बडे प्रेम से भेजा। जया चौबीस घट साथ रहने वाली थी। किसा बच्चे का आरम्भ से और इतना अधिक देखन का मुझे मौका नही मिला था, इसलिए उसकी हर चीज का मै ध्यान स देखता था। राती बडे जोर से थी। कमला बतला रही थी कि अस्पताल म भी वह सारे घर का गुजा देती थी। अँगुलियाँ लम्बी और पतली पतली थी। मिस पूसग न कहा, कलाकारिणी होगी। अनामिका और मध्यमा का आकार बिल्कुल समान था। शिशु को कष्ट हा रहा है इसे जानन के बहुत ही कम साधन है। रोने ता तकलीफ है, लेकिन इसे पहचानना मुश्किल है। हँसन पर सुख का भान जरूर होता है।

माँ का दूध पर्याप्त न होने पर पौडर दूध का इस्तमाल करना आवश्यक हो जाता। पर्याप्त होन पर भी बोतल से दूध पिलाने मे फायदा है, क्योकि उसके द्वारा शिशु क भाजन पर नियत्रण किया जा सकता है। यदि पट मे गडबडी है ता दूध म पानी ज्यादा मिला दें, यह माँ के दूध क साथ नही हो सकता। हो सकता है, पौडर के दूध म कुछ विटामिना की कमी है, पर उसे ऊपर से दूध म मिला कर पूरा किया जा सकता है। १३ अक्तूबर को भैयाजी ने अमृतसर मे जया क लिए झूला मगवा दिया, और उसे बराण्डे और कमरे म टाँगने का इन्तजाम भी कर दिया, लेकिन झूले पर हमेशा नजर रखन की जरूरत थी। एक बार रस्सी कटी, झूला नीचे आ पडा। गद्दी बहुत थी, इसलिए चाट नही आई। दो-दो महीने तक मनुष्य के बच्चे की आँखो का काम न देना बतलाता है कि वह कितना असहाय पैदा हाता है। हिरन का बच्चा पैदा होते ही दौड सकता है, भैंस गाय का भी अपने पैरा पर खडा हो सकता है। निष्पक्ष कुक्कुट शावक भी स्वय अण्डा ताडकर बाहर आ अपन पैरा पर खडे हो सकते है। मनुष्य का शिशु माता पिता क ऊपर निर्भर रहता, हाथ-पैरा पर भी काबू नही रखता, और न आँख पर ही।

१४ अक्तूबर को जया के जन्म के उपलक्ष म हिंदु मिश्रा का एक छोटा सा भोज हुआ। २० अक्तूबर का जया एक महीने की हो गई। उस वक्त २१ ३/८ इच और वजन १० पौंड था। नत्र छाड बाकी सारी इन्द्रियाँ काम

कर रही थी, विशेषकर स्पर्श-इन्द्रिय अधिक तीक्ष्ण थी। शायद मस्तिष्क उतना सक्रिय नहीं था। ललाट पर बहुत-से रोमों को देखकर कमला सोचने लगी, कि इन्हें रगटकर निकालना चाहिए, नहीं तो जिन्दगी भर ऐसे ही रह जाएँगे। सातवें-आठवें महीने का मानव शिशु वानर की तरह अपने सारे शरीर पर बाल रखता है। प्रकृति अपने ही आप उन्हें खतम कर देती है। इस पर कमला का विश्वास नहीं था। पडोसिन चौकीदारिन ने भी बतलाया, कि मैं तो राख से मलकर अपने बच्चों के रोमों को निकाल देती हूँ। पाँच बच्चों की माँ को काफी तजर्बा होना ही था। खैर, कमला इतनी जबर्दस्त रोम निकालने के पक्ष में नहीं हुई और वह अपने आप निकल भी गये। दूसरे महीने को समाप्त करते समय जया लम्बाई में आध इंच बढ़ा और वजन जैसा का तैसा रहा। तीसरे महीने की समाप्ति पर अब वह २५ इंच की थी। पैदा होते सारी चर्बी चेहरे पर एकत्रित हो जाती है, फिर वह वहाँ से कम होकर सारे शरीर में बढ़ने लगती है। दूसरे महीने की समाप्ति पर अब वह हँसने और मुनमुनाने भी लगी, चीजों को गौर से देखने लगी। अभी उसका सारा ध्यान दूध की ओर रहता। आहार मनुष्य की पहली आवश्यकता है इसलिए शिशु का उसके साथ विशेष पक्षपात हो यह स्वाभाविक है। जया बहुत समय लेती तो भी कमला ने आगरा युनिवर्सिटी के बी० ए० का फार्म भरवा दिया। जो भी समय मिलता, उसमें पढ़ती रहीं।

१९५३ के छोटे सीजन (अक्तूबर) में नगरपालिका की ओर से विराट उत्सव का प्रबन्ध हुआ। वायसराय यद्यपि गर्मियों का बिताने के लिए शिमला जाते थे, लेकिन उनके घोड़े देहरादून आया करते थे। वायसराय के रथ को गणराज्य बनने पर खतम नहीं किया गया, बल्कि उसे फिर से शुरू कर लिया गया। नहरुशाही में रथ का घटाना प्रताप और सम्मान का घटाना है। चाहे वह रुपया लगाना या मुँह के आहार और आँखों के आँसुओं में बदलना हो। राष्ट्रपति के प्रथम श्रेणी के ६० घोड़े मुन्शीट के लिए आए थे। इससे अच्छा प्रचार किया जा सकता था, किन्तु घोड़ों को महीने में एक बार वहाँ से रोगे गए थे हाथीवाली बस्ती में जहाँ बहुत कम गाड़ियाँ आतीं। कई-एक बार इन ४० घोड़ों को इन्दौर तक घुमा लिया जाए, तो हम लोग यहाँ उन्हीं दौड़ देखने के लिए सारी मसूरी टूट पड़ती। सुना गया कि

छोड वाट का तमाशा देख रहे थे। माहिनीजी शिकायत कर रही थी—प्रचार मे बहुत गदगी थी, कम से-कम वर्माजी से हम ऐसी आशा नही रखते थे। लेकिन, किसी भी नई चीज मे आदमी प्रकृनिस्थ काफी अभ्यास क बाद होता है। अगले दिन (२६ अक्तूबर) को चुनाव का परिणाम निकला। वर्माजी अध्यक्ष चुन लिए गये, यह ता वोट के दिन ही मालम हो गया था। कप्तान कृपाराम कई हजार के मत्थे पडे। डा०प्रकाश तो हारने लुटने क लिए ही खडे किये गए थे। अगले दिन सभी चुनावा क परिणाम निकल आए। शीलाजी भी नगरमाता बनी वर्माजी के सहायक वकील जगनाथ शर्मा भी आ गए, जो पालिका के उपाध्यक्ष बनने वाले थे। जनता सभा क छ उम्मीदवार चुने गए, काग्रेस के चार और स्वतन्त्र दा। काग्रेस सरकार न अपने हाथ मे तीन मेम्बरा के नामजद करने का भी अधिकार रखा था। वह निश्चय ही वैसे आदमी लिए जाते जो काग्रेस के थे। इस प्रकार सात काग्रेस के और जनता के छ मेम्बर थे। भाग्य का फैसला दा स्वतन्त्र उम्मीद वारो के हाथ म था, जिन्हे जनता वाले अपनी ओर करने म समर्थ थ। लोगो ने बडी बडी आशाएँ बाधी किन्तु यह ता राजा भोज का सिंहासन था, या काजल की काठरी है। कैसा हू सयाना आदमी जाए, वहा से बचकर निकलना मुश्किल है। पहले की तरह पालिका म अनाप शनाप खर्च किया गया, उनके काल के पूरा होने पर यह आशा नही की जा सकती थी, कि काग्रेस विरोधी दल के कर्णधार फिर जनता के विश्वासपात्र हाग।

अब के पोलो मदान मे १० अक्तूबर का पोलो भी खेला गया, और घुडदौड भी हुई।

११ अक्तूबर को पता लगा, कि ब्रिटिश गायना के भारी बहुमत वाली जगन सरकार को कम्युनिस्ट कहकर चर्चिल न ताड दिया। चर्चिल और इगलैण्ड की सरकार अब अमेरिका के धर्मपुत्र थे। अमरिका दुनिया मे कहीं भी प्रगतिशील सरकार को सहन नही कर सकता। फिर वह जगन को अमरिका की भूमि मे क्यो ऐसा करने देता? तीना गायना म भारतीय कुलियो ने जाकर देश को सरसब्ज किया, उन्ही की सन्ताने भारी सख्या म वहाँ बसती हैं, इसलिए जगन सरकार का तोडा जाना भारतीयो के लिए विशेष बात थी। जहाँ शान्ति के रास्ते कम्युनिस्ट या प्रगतिशील शक्ति अधिकार

रूढ़ हो, वहा थैलीशाह जनतन्त्र के खिलाफ जाने की दुहाई देते है। और जहाँ तीन चौथाई लोग वोट देकर अपने मन के मुताबिक सरकार सगठित कराएँ, वहाँ कम्युनिज्म का लाँछन लगा उन्हे हटाया जाता। पूजीवाद दानव निष्ठुर और निर्लज्ज है, वह किसी तरह भी अपना मतलब बनाना चाहता है।

१४ अक्तूबर को जया के जन्मोपलक्ष्य मे भैया और भाभीजी ने अपने यहा चाय पार्टी दी। पिता माता को जाना ही था। डा० सत्यकेतु, शीलाजी और पति-सहित श्री मोहिनी जुत्सी भी आई।

आजमगढ से श्री ज्योतिस्वरूपसिंह ने "कर्मयोगी" नाम से एक साप्ताहिक निकालने का निश्चय किया और मुझसे भी लेख चाहे। मैं चाहता था, अपने जिले से जिले की आवाज को प्रकट करने वाला कोई अखबार निकले। मैंने स्वीकार कर लिया और अपने बचपन के सस्मरणो के सम्बन्ध मे तीन दर्जन के करीब छोटे-छोटे लेख लिखे। मेरे १९१५ मे घनिष्ठ मित्र तथा अपने जन्म के जिले के निवासी स्वामी सत्यानन्द (पहले बलदेव चौबे) अब ससार मे नही रहे। एक एक करके मित्रो का इस तरह चला जाना खटकता है। उनके प्रति श्रद्धा दिखलाने से मेरी लेखनी कैसे रुक सकती थी? मैंने उनके ऊपर "नया समाज" मे एक लेख लिखा।

२७ अक्तूबर को भाभीजी और भैया अमृतसर चले गए। हर साल की तरह अब वे भी कुछ सप्ताहो के लिए उनका अभाव खटकने लगा।

हिमालय सम्बन्धी पुस्तको के बारे मे मैं यह समझकर निश्चिन्त था कि वे ला जर्नल प्रेस से निकल जाएँगे। "गढवाल" निकल चुका था, और "कुमाऊँ" को भी माना पर पच कर लिया गया था। लेकिन जैसा कि बतलाया, अब दर साहब वहा से हटा दिए गए थे, और सेठो के अपने ढग के लोग वहा भर दिये गए थे, जो सिर्फ यही जानते थे, कि हरेक आदमी लक्ष्मी-पात्र के सामने नाक रगडने के लिए बना है। मैंने दर साहब के अग्रिम न देने की असमर्थता प्रकट करने पर पटना के प्रकाशक को 'नेपाल' दे दिया था। ला जर्नल की नौकरशाही ने उसको बहाना बनाकर लिखा आपने इस ग्रन्थमाला की एक पुस्तक को दूसरी जगह देकर हमारी करार की खिलाफवर्जी की इसलिए हम 'कुमाऊँ' को छापने के लिए तैयार नही हैं। इधर उधर सब जगह पत्र खड-खडाया गया, लेकिन उसका कोई परि-

णाम नहीं हुआ। पच किये हुए ग्रन्थ को लौटा दिया गया। मैंने भी आये हुए अग्रिम के हजार रुपये भेज दिए। मैं उन्हें रख सकता था, लेकिन कौन झगड़ा मोल लेवे? बड़े सेठ के साथ व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने का यह पहला तजर्बा था। अभी तक दूसरों से सुनकर ही मैं कहता था— 'थैलीशाही तेरा बेड़ा गर्क हो।" और खुद थैलीशाही की करामात देखी। और ऐसी करामात, जिससे हिमालय सम्बन्धी सभी पुस्तकों का प्रकाशन खटाई में पड़ गया। यदि इस प्रेस को "गढ़वाल" न दिया होता, तो जल्दी उसका प्रबन्ध होता, शायद वहां से और पुस्तकें भी निकल जातीं।

३ नवम्बर को हमारा पड़ोसी लाइनमैन कल्याणसिंह सपरिवार मसूरी से बदल कर देहरादून भेज दिया गया। दो लड़के, तीन लड़कियां और दो प्राणी खुद सात जनों का परिवार और उन्हें मिल रहा था महँगाई भत्ता मिला करके ५६ रुपया मासिक। वर्षों से बेचारा हमारे फाटक के बाहर वाली कोठरी में रहता। अपने आसपास की जमीन के पत्थरों को चुन कर वहाँ उसने थोड़े से खेत बना लिये थे, जिसमें अपने खाने भर से अधिक साग-सब्जी उगा लेता था। इस मोहल्ले में जंगल अधिक हैं, इसलिए बकरियाँ और गाय रखे हुए थे, अब हरेक चीज को उसे मिट्टी के मोल बेचना था। १८-१८ रुपये में तीन बकरियाँ बची, जिनका इससे दूना तो अवश्य मिलता, आसर गैया को सिर्फ १५ रुपये में दे डाला। सभी जानते थे गरजू है। कितनी क्रूरता थी, उस परिवार के साथ। यहाँ उसे लकड़ी खरीदनी नहीं थी साग सब्जी खरीदनी नहीं थी। देहरादून शहर में रहने उसे अब हरेक चीज को खरीदना पड़ेगा। यहाँ गाय-बकरी से भी कुछ आमदनी हो जाती थी, वह भी होल्ल गया। महीनों तक वह सूनी कुटिया मेरा दिल दुखाने के लिए मौजूद थी।

१० नवम्बर को एक हृदयद्रावक खबर सुनी। प्रतिभाशाली तरुण इंजीनियर वासुदेव पाण्डे २६ वर्ष की उमर में जीप की दुर्घटना में चल बसा। पिता गणेश पाण्डे ही ने उससे बहुत आशाएँ नहीं बाँधी थी बल्कि मैं भी बहुत आशा रखता था। मिर्जापुर की तरफ नहर के काम में नियुक्त हो उसने मुझे काम करने की अड़चनें लिखी थीं। आजकल नौकरशाही में योग्यता की कहाँ पूछ है? यहाँ तो खुशामद से सब कुछ होता है। परन्तु,

मुझे विश्वास था, वासुदेव अपनी योग्यता का सिक्का मनवा कर रहेगा। इंजीनियरिंग विद्या के सम्बन्ध मे हिन्दी म बहुत कुछ करने की उसकी इच्छा थी। सभी उमगे लेकर एक तरुण जीवन का अन्त हो गया।

अध्यक्ष के चुनाव म कृपाराम हार गये। पुरुष हार को कैसे खुशी खुशी मान लेते। पता लगा श्री रामकृष्ण वर्मा ने अपने किसी मुवक्किल का रुपया अदालत से बरामद करके अपने पास कुछ समय रखा। इसी मुवक्किल को फोड़ा गया, मुकदमा दायर हुआ और तड़ाक फड़ाक फैसला होकर वर्माजी मुअत्तल कर दिये गए। शहर मे इसके विरुद्ध हड़ताल की गई।

१३ नवम्बर को लेनिनग्राद से चिट्ठी और फोटो आया। उसे देखकर कमला बहुत उद्विग्न हुई। बहुत रोई। मैंने अपने भावो को प्रकट करते हुए कहा— 'मैं कह चुका हूँ कि जया को और तुम को मेरी आवश्यकता है। मैं रूस जाने की इच्छा नही रखता। लेकिन, उनकी इच्छा थी मैं पत्र-व्यवहार करना भी त्याग दू। क्या इससे आत्महत्या आसान नही है। जो पिता ईगर का प्रत्याख्यान कर सकता है उस पर क्या विश्वास किया जा सकता है? जिस समय कमला से सम्बन्ध स्थापित हुआ, उस समय क्या आशा थी कि रूस से फिर सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा? अब यदि यह हुआ, तो ईगर के साथ नाता तोडना मानवता के खिलाफ है। यदि कमला यही चाहती है, तो भी कोई भयकर कदम उठाने स पहले दोनो मा बेटी का प्रबन्ध तो कर डालना ही होगा।

इसी सम्बन्ध मे १४ नवम्बर को मैंने अपनी डायरी म लिखा—कल से मैं अपनी नजर मे गिर गया सारे जीवन के लिए। कमला का समझना बिल्कुल ठीक है। मैंने उसकी असहाय अवस्था का फायदा उठाया। हा परोपकार, दया दिखाने और क्या क्या बहाना करके। वह क्या मुझ पर विश्वास करने लगी?

हमारे मोहल्ले मे मसूरी का एक सबसे बड़ा होटल चालविल है। जिसम सौ से ऊपर परिवारो के रहने का स्थान है। तरुण कालिदास उसी होटल मे धावी का काम बाप के समय स करते रहे है। बडा भाई ग्रेजुएट होकर पाँच साल पहले मर गया। कालिदास पिछले साल बी० ए० म फेल हो गए, इस साल फिर तैयारी कर रहे थे। उनके पिता रुहेलखण्ड के ब्राह्मण थे

जिनका प्रेम धोबिन तरुणी से हो गया। धोबिन को वह ब्राह्मण नहीं बना सके, तो स्वयं धोबी बन गये। अपने कार्य मे दक्ष थे। कितने ही दिनो टकारी के राजा के मुख्य धोबी रह कर मसूरी मे बाहर भी घूमते रहे। पीछे होटल मे काम करने लगे। कालिदास जन्म से ही मसूरी से परिचित है। सीधे सादे किन्तु सबके गाढे समय मे काम आनेवाले आदमी। ऐसे आदमी के मित्र भी होते है और शत्रु भी। वह १९४७ के हिन्दू मुस्लिम तूफान के बारे मे बतला रहे थे १९४६ मे लीगियो का यहा बहुत जोर था। लण्ढौर मे उन्होने कहा था—हम सडक पर गाय काटेगे। बनियो को कहा हिम्मत थी? उनमे से कुछ भाग गये। १५ अगस्त १९४७ से पहले ही पश्चिमी पजाब के, विशेषकर लाहौर के हजारों हिन्दू भाग कर चले आए। नीचे नगरो म मकान मिलना मुश्किल था और यहाँ मकान खाली पडे हुए थे। वह भी मुस्लिम लीग के खिलाफ अपने भावो को दिखाने के लिए तैयार थे। उनके कारण मुसलमान दब गये। फोन और रेडियो पर उनका बराबर कान लगा रहना था। सोचते थे, लाहौर के भारत मे रहने की खबर आयेगी और हम अपने घरो मे लौट चलेगे। लाहौर पाकिस्तान मे गया। उसके बाद खबर आई, पश्चिमी पजाब मे हिन्दुओ का कत्ल आम हो रहा है। यहाँ के मुसलमानो को वह कैसे क्षमा करते? यहा भी १७ १८ मौत के घाट उतारे गये। राजपुर मे सौ डेढ सौ और देहरादून म उससे भी अधिक मुसलमानो की जान गई। एक ड्राइवर ने कातवाली के सामने बस को खडडे मे गिरा दिया जिससे ज्यादा आदमी मरे। खच्चरखाने मे चार पाँच मरे। सबसे दयनीय मृत्यु यहा के एक्जेक्यूटिव अफसर किदवाई की थी। उनका सारा परिवार राष्ट्रवादी था। उनको विश्वास था, कि मेरे जैसे लीगियो के दुश्मन के ऊपर कौन हाथ उठायेगा? लेकिन, उस वक्त तो कितनो के ऊपर पागलपन सवार था। किदवाई रास्ते चलते मार दिये गए। अवसर प्राप्त आई० सी० एस० वृद्ध हामिद अली उस तूफान म भी सडक पर टहलने से बाज नही आये। मसूरीवालों को डर हुआ, कि उन पर भी कोई हाथ छोड देगा। वह अपने साथ रक्षक के तौर पर किसी को रखने के लिए भी तैयार नही थे, इसलिए उनसे ५० गज पीछे आदमी लगा दिये गए। बूढा मारे तूफान म बेखौफ घूमता रहा। मुसलमानो न प्राणो से ही

हाथ नही घाया बल्कि घनी मुसल्माना का सवस्व लूट गया। लाखो का माल मुमल्माना के खिलाफ जहाद बोलनवाले नेताओ के घरा मे चला गया। अभी भी तीन आन्मिया का नाम लाग लेते हैं जो उसस पहले बिल्कुल मामूली हैसियत रखते थे लेकिन तूफान के बाद लखपति बन गये। मुसल्माना का नवाब रामपुर के बगला और दूसरी सुरक्षित जगहा मे रख दिया गया। पीछे वे सशस्त्र सैनिका की देख रेख म बसा पर बठा कर नीचे भेजे गये। उस समय सभी बडी बडी कोठिया म बलती मुसलमान चौकीदार थे, सडक बनाने का काम भी बल्ती मजदूर करत थे। सभी सकट म फँस गये, और फिर मसूरी का खाली करके चले गए।

नवम्बर मे "बहुरगी मधुपुरी' की कहानिया लिखत रहे। नरेन्द्रयश के ऊपर एक उपन्यास लिखने का विचार कितने ही महीनो से दिमाग म चक्कर काट रहा था, जिसका आरम्भ २१ नवम्बर से किया। "राजस्थानी रनिवास" को नेशनल हेरल्ड म छपने का भी अब प्रब ध हो गया।

३१ दिसम्बर का साल खतम हाने लगा। लेखा जोखा करने पर मालूम हुआ, कि इस साल ३००० पष्ठ से अधिक पुस्तकें लिखी। साल बुरा नही था। हाँ, आर्थिक चिन्ता रही जहा तक भविष्य का सम्बन्ध था।

९

वृद्ध लेडली

१९५४ के नव वर्ष के दिन वृद्ध लेडली बेहोश पड़े थे। पिछले पांच छ दिन से उनकी तबीयत अस्वस्थ थी। १ जनवरी को लकवा मार गया। उनका ७८ वां वर्ष चल रहा था, पके फल तो थे ही, जरा सी हवा के झोंके की जरूरत थी। जाड़ा अधिक होने पर देहरादून चले गए होते तो शायद अभी और कुछ दिन जी पाते। लकवे के बाद फिर उनको होश नहीं हुआ। ६ जनवरी को देहान्त हो गया और ७ को उनकी शव यात्रा हुई।

३१ जनवरी को बर्फ पड़ी। कल रात को भी और १ तारीख को तो सारे दिन बर्फ पड़ती रही। भूमि पर ही नहीं बल्कि वृक्षों पर भी हिमखण्ड दिखाई पड़ते थे। हिमालय का एक एक अंगुल बर्फ से ढँक गया था। दिन भर आग जला कर घर के भीतर बैठे रहे। अगले दिन से आसमान साफ हो गया, धूप निकलने लगी और बर्फ खुली जगहों में गलने लगी। ३ जनवरी की शाम को महादेव भाई आये। साल में इतना अंतर तो नहीं हो सकता, लेकिन बाल ज्यादा पके दिखाई पड़ रहे थे। शरीर का बढ़ा वजन बतला रहा था कि अब प्रौढ़ अवस्था में पैर काफी दूर तक पहुँच गया है।

यद्यपि हिमालय सम्बन्धी लिखी हुई पुस्तकें अभी प्रकाशित होने को बाकी थीं, किन्तु हमने जम्मू कश्मीर की सीमा तक के हिमालय को लिखने का निश्चय कर लिया था, इसलिए अब अंतिम पुस्तक "हिमाचल प्रदेश" (जालंधर-खण्ड) के लिखने में हाथ लगा दिया। इस साल कम्युनिस्ट दृष्टि से जनसाधारण की भाषा में एक एक फार्म के साढ़े तीन दर्जन पम्फ्लेटों के

लिखने का निश्चय किया था। ६ ७ जनवरी का पहला पम्फलेट "कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं" लिख भी डाला। ७ तारीख से ही "हिमाचल प्रदेश" में भी हाथ लगाया। जाड़ा मे खुला आसमान और धूप अच्छी लगती है। हिमवर्षा भी बुरी नही लगती लेकिन यदि कई दिना तक बादल घिरे और बूंदा बादी रहे, ता अच्छा नही लगता। यहा का क्या ? हुआ बादल चले, सर्दी बढ जाए। धूप निकल आय, ता अमन-चैन की वशी बजे। महादेव भाई सर्दी के फेर मे पडे। दा दिन के लिए हरिश्चन्द्रजी अपनी पत्नी और पुत्र के साथ आकर ठिठुरते रहे। बेचार की इस सर्दी को बर्दाश्त करने के लिए वह क्या तयार होते ?

१७ जनवरी को फिर जलवर्षा और हिमवर्षा का दौर शुरू हुआ। उस दिन दापहर बाद बर्फ गिरने लगी, लेकिन जमीन ढँकने नही पाई। सर्दी तेज हो गई। अगले दिन मध्याह्न से हिमवृष्टि हाने लगी, और सारी जमीन ढक गई। १६ जनवरी का बीच बीच मे बर्फ या बजरी पडती रही, हवा भी तेज थी। ३ बजे बराण्डे मे तापमान ३२ डिग्री, अर्थात् हिमबिन्दु से एक डिग्री नीचे।

हिम देखने के लिए कितने ही लोग नीचे से आए। हमारे दोनो कमरो में आग जली रहती। जया ने दुनिया मे पहला जाडा देखा। डर लग रहा था, सर्दी प्रतिकूल न साबित हो, लेकिन लडके काफी बर्दाश्त कर लेते है। कमला की बहिन गगा और भाई हरिमगल साथ के दूसरे कमरे म आग के सामने बैठे रहते। आग तापते सर्दी दूर करना दिन म बुरा नही होता यदि बात करते और बीच-बीच म गरम पय पीते रहे। गरम-गरम मासयूप बहुत प्रिय लगता है, पर शहर से दूर रहने का एक फल यह भी मिल रहा था, कि माँस अपनी इच्छा से सुलभ नही था।

अमृतसर—भैया भाभी के यहा जाडा मे जाने की पहले सलाह हो चुकी थी। सर्दी से बचने का यह अच्छा उपाय था। चाय पीकर हम २२ जनवरी के ९ बजे घर से निकले। रास्ते म बर्फ खूब पडी हुई थी पेडो पर भी लदी थी जो अब पिघल कर गिर रही थी। जान पडता था हम चीनी के माटे दाना के ऊपर चल रहे हैं। टाल के पास आध फुट से अधिक मोटी बर्फ थी। रिवरा के आगे तक अधिकाश सडक बर्फ से ढँकी मिली। किताब

घर के अड्डे पर कोई टैक्सी नहीं थी। किंक्रेग में दो सीटें मिलीं। ११ बजे चले। ३५०० फुट तक जहां तहां सड़क पर बर्फ मिली। बतला रहे थे, कल राजपुर में भी बजरी गिरी थी, यदि दो घंटे और तापमान उसी तरह चला जाता, तो देहरादून में भी हिमवृष्टि हो जाती।

१२ बजे शुक्लजी के यहां पहुँचे। भोजन तैयार था। जया और उसकी माता वहां शुक्लाइनजी से बातचीत करने लगीं और मैं डेढ़ घंटे के लिए मिश्रजी के साथ सत्संग करने चला गया। अबकी दिन दिन में ही अमृतसर चलने का निश्चय किया। साढ़े ३ बजे हमें अमृतसर की ट्रेन मिली। पहले दर्जे में सीट रिज़र्व थी। नीचे की सीटें मिल गई थीं। हरद्वार पहुँचते पहुँचते सूर्यास्त हो गया। लुक्सर में पहुँच कर भोजन किया। मध्य रात्रि को भी देख रहे थे, वृष्टि जारी है, और सर्दी तो मसूरी से पीछा कर रही थी।

ठीक ७ बजे गाड़ी अमृतसर स्टेशन पर पहुँची। भैयाजी मौजूद थे। तांगे पर बैठ कर ८ बजे हम उनके घर पर पहुंचे। उस दिन शाम को ३ बजे टहलने के लिए कम्पनी बाग गये। जितनी ही दूर तक रिक्शे पर चले। अमृतसर की गलियां भी बनारस जैसी ही हैं, और भीड़ भी बहुत रहती है। मसूरी की सर्दी अप्रिय लग रही थी, और यहां की बड़ी सुहावनी। जया का कहना था—"चार महीने जाड़ो के यहीं बिताओ।' पर जाड़ा बिताना ही तो जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। लिखे पढ़े बिना दिन कैसे कटता, और उसकी सुविधा मसूरी में ही थी। वहाँ पुस्तकें थीं और वहाँ मिलने जुलने वाले भी बहुत कम आते थे।

२८ जनवरी को ३ बजे रिक्शे पर छावनी गये। फिर वहाँ से कम्पनी बाग। कम्पनी बाग का अर्थ ही है कि इसकी स्थापना १८५७ से पहले हुई थी। चमन में अब थकावट मालूम होती थी। अमृतसर शहर का कुछ भाग जल गया है। यहाँ हिन्दू मुसल्मानों का डटकर संघर्ष हुआ था। मुसल्मानों की संख्या कम थी, इसलिए उनको ज्यादा जन-धन की हानि उठानी पड़ी। अन्त में सब लोग पाकिस्तान चले जाना पड़ा। वही बात उल्टी दिशा में लाहौर में हुई। जहाँ मुसल्मानों की बड़ी-बड़ी दुकानें थीं, वहाँ अब शरणार्थियों की छोटी छोटी दुकानें खड़ी थीं। बड़े मकान [illegible] कर साफ हो गए थे। हिन्दुओं ने [illegible] उजाड़कर [illegible] मुसल्मान [illegible]

कि तु उस वक्त किसकी अक्ल ठिकाने थी ? इतवार का दूकाने ब द रहती हैं, लेकिन शरणार्थियों की दूकानें उस दिन भी खुली थीं दूसरी दूकानों से यहा चीजें सस्ती मिलती थीं। इसलिए गाहक अधिक आवें, यह स्वाभाविक था।

३ फरवरी तक हमारी एक ही तरह की दिनचर्या थी। छत पर एक जगह सबसे पहले धूप आती। वही दरी-तकिया लग जाता जिस पर कमला, जया, मैं, भाभीजी डट जाते। भाई साहब बीच बीच मे कोई और भी काम कर आते, लेकिन हम वही तब तक बैठे रहते, जब तक कि दोपहर की धूप वहाँ से हट नही जाती। गम्भीर नाश्ता और चाय के बाद १० बजे मालटा-मुसम्बियो का दौर आरम्भ होता। एक पूरी टोकरी सामने रख दी जाती और हम तब तक काट काट कर चूसते रहते जब तक टोकरी साफ नही हो जाती। भाभी साहिबा परोसने मे बडी जबदस्त हैं। मजाल नही कि कोई मेहमान गले तक पेट भरे और अजीर्ण लिए बिना वहा से हट जाए। भाई साहब ने मकान को अपने मन से बनवाया था और आम भारतीय मकानो की तरह यहा भी पाखाने का स्वच्छ प्रब ध नहीं था। वह स्वच्छ प्रब ध तब तक नही हो सकता, जब तक फ्लश का इ तिजाम न हो। हम कुछ दिन और रहते, लेकिन कमला ने बी० ए० का फाम भरा था, और यहा पढना नही हो रहा था। उधर "बहुरगी मधुपुरी" के प्रूफ भी आने लगे थे। कमला के प्रकाशन की यह तीसरी और अन्तिम पुस्तक थी।

२८ जनवरी को ४ बजे अब पुराने मित्रो से मिलने के लिए निकले। देशभगत परिवार मे बाबा केसरसिंह मिले। यह उन वीरो मे थे, जि होने अमेरिका के सुखी जीवन को लात मार कर विश्व युद्ध के समय देश के मुक्ति-यज्ञ मे अपने सवस्व की आहुती दी थी। अग्रेज सबको फाँसी पर लटकाने के लिए तैयार नही थे, इसीलिये बाबा केसरसिंह और उनके कितने ही साथियो को आजन्म कालापानी की सजा हुई। ७९ बष के हो गए थे। पूरा छ फुट का शरीर, लेकिन अभी भी कमर नही झुकी थी। चल भी लेते। उनसे मिलकर दोनो को बड़ी प्रसन्नता हुई। क्या पता, यह अन्तिम मुलाकात है। उनसे मालूम हुआ कि तीन चार वष पहले बाबा करमसिंह धून का देहा त हो गया। वह भी अमेरिका से देश की स्वतन्त्रता के लिए आए थे।

हडकप मच जाती है, तो वहाँ कौन नये कारखाने खोलेगा। पहले अमृतसर उभय पजाब और कश्मीर तक के कपडे और कितनी ही और चीजो का मुख्य बाजार था, अब नहीं रह गया है। इसका बुरा प्रभाव अमृतसर के बाजार के ऊपर पडा है।

मसूरी—अमृतसर में बारह दिन रह कर ४ फरवरी को रात की गाडी मे हम मसूरी के लिए रवाना हुए। जया की बाँह मे चेचक का टीका लग वाया था। पहली बार का लगाया उभडा नही, फिर दूसरी बार लगवाया। अब वह फूल आया था, बुखार भी था। बेचारी का मुह मुरझा गया था। बच्चो का हँसता चेहरा ही अच्छा लगता है। बुखार और चेचक की अवस्था मे मसूरी ले जाने की सलाह तो नही मिल रही थी, लेकिन मजबूरी थी। ५ फरवरी का सवेरा सहारनपुर म हुआ। रात भर वर्षा हुई, और वह मसूरी तक ऐसी ही थी। नदियो की धारा बढ गई थी खेतो मे पानी भरा हुआ था। ६ बजे गाडी लक्सर पहुँची। गाडी ने छकडे का रूप ले लिया था, और सवा बजे ही देहरादून पहुँची। बहुत से मध्य हिमालय के पहाड भी हिमालय-श्रेणी बन गए थे। मसूरी का देहरादून की तरफ वाला भाग बहुत कम बर्फ से ढँका देखा जाता था, लेकिन आज वह भी ढँका था। नीचे रात की जो वृष्टि हुई थी, वह यहा हिमवृष्टि के रूप मे परिणत हो गई थी।

डेढ बजे शुक्लजी के घर पर पहुच गए। अब की इलाहाबाद मे कुम्भ लगा था। भारत के सभी देव महादेव कुम्भ का मेला देखने और अपना दर्शन करान वहा पहुँचे थे। प्रबन्ध करने वाली पुलिस देवताओ के दरबार मे उपस्थित हो गई, और उधर आदमियो का ऐसा रेला आया कि हजारो आदमी कुचलकर मर गए। इसकी खबर मिलने पर भी देवताओ की दावतें चलती रही। कैसा क्रूर परिहास? कुम्भ मले म शुक्लाइनजी भी गई हुई थी। कहा—'जिन्दगी का क्या ठिकाना। अब तो यह कुम्भ बारह वर्ष बाद ही आएगा।'' शुक्लजी क्यो रोककर पाप के भागी होते? तार पर तार खटखटा रह थे, पर प्रयाग से कोई जवाब नही मिल रहा था। तार खट खटाने वाले वह अकेले ही थोडे थे? हजारो तारो को ठीक जगह पर पहुँचाना तारघर वालो के बस की बात नही थी। प्रयाग की हृदयद्रावक खबरे अखबारो म निकल रही थी, जिसे पढकर चिन्ता और बढ गई थी। आज

रूस मे कितने ही समय रह कर साम्यवाद की शिक्षा प्राप्त कर, वर्षो देश के जेल म रहे। तरुणो का कितना मनोरजन करते थे? बाबा सोहनसिंह भाखना—अमेरिका मे भारतीय गदर पार्टी के सस्थापक—अब भी जीवित थे। कमर उनकी पहले ही टेढी हो गई थी, अब चलना फिरना भी उनके लिए मुश्किल था, और अधिकतर अपने गाव मे रहते थे। ३१ जनवरी का उनके गाव जाने का निश्चय था, किन्तु कुछ बुखार आ गया, इसलिए यात्रा स्थगित करनी पडी। बाबा बिसाखासिह अब भी थे, किन्तु बहुत दुबल। वह तो वर्षों से टी० बी० के मरीज थे। देवली केम्प वाले और भी साथियो से मुलाकात होती, लेकिन आजकल पेप्सू मे पुर्नानिर्वाचन हो रहा था, सारे साथी उसी मे लगे हुए थे।

३१ जनवरी को लोक लिखारी सभा की ओर से रिपब्लिक हाल मे मुझे भाषण देना पडा। साहित्य, भाषा और कला पर बोला। पजाबी भाषा और पजाबी सूबे की बात भी आई। सिर्फ लिखारी ही नहीं, नगर के दूसरे भी शिक्षित सम्भ्रान्त वर्ग के लोग मौजूद थे। अमृतसर मे इसी तरह भाषण से लोगो को मेरे आने का पता लगा था। मैंने यह भी कहा कि चडीगढ म पजाब की राजधानी बसाने जैसी बेवकूफी नहीं हो सकती। उसके भाग्य म उजाड बदा है। मृत प्रसव इसी को कहते है। अमृतसर यदि सीमान्त के पास था तो जलन्धर राजधानी के लिए सबसे अनुकूल नगर था। ऐतिहासिक तौर से भी वह पजाब का सबसे पुराना नगर है, और केन्द्र मे भी है। कुछ ही मील पर कपूरथला से एक होकर वहाँ न जमीन की दिक्कत थी, और न सरकारी आफिसो या लोगो के रहने के लिए मकानो की। एक धनी पुरुष ने कहा, यही सोचकर जमीन लेकर भी मैंने वहाँ मकान नहीं बनाया। पजाब के अध्यवसायी व्यापारी भली प्रकार जानते हैं, कि उनके फलने फूलने का स्थान कौन-सा हो सकता है? अगर वह अपने शहर को छोडना है, तो वह इसके लिए दिल्ली को ज्यादा पसन्द करेंगे। अमृतसर की जन-सख्या पहले से बढी है किन्तु पर उतनी नहीं बढी। कोई भी स्थायी सम्पत्ति का उतना साधन यहाँ कायम करना लोग पसन्द नहीं करते थे। जब उन्होंने पिंडी की भविष्यवाणी सुनकर हजारो की तादाद म लोग शहर छोडकर भाग जाते है पाकिस्तानी [illegible] म सम्बन्ध के डर से खराब होने से

हडकप मच जाती है, तो वहा कौन नये कारखाने खोलेगा। पहले अमृतसर उभय पजाब और कश्मीर तक के कपडे और कितनी ही और चीजो का मुख्य बाजार था, अब नही रह गया है। इसका बुरा प्रभाव अमृतसर के बाजार के ऊपर पडा है।

मसूरी—अमृतसर मे बारह दिन रह कर ४ फरवरी को रात की गाडी से हम मसूरी के लिए रवाना हुए। जया की बाह मे चेचक का टीका लग आया था। पहली बार का लगाया उभडा नही, फिर दूसरी बार लगवाया। अब वह फूल आया था, बुखार भी था। बेचारी का मुह मुरझा गया था। बच्चा का हँसता चेहरा ही अच्छा लगता है। बुखार और चेचक की अवस्था म मसूरी ले जाने की सलाह तो नही मिल रही थी, लेकिन मजबूरी थी। ५ फरवरी का सवेरा सहारनपुर मे हुआ। रात भर वर्षा हुई और वह मसूरी तक ऐसी ही थी। नदियो की धारा बढ गई थी, खेतो मे पानी भरा हुआ था। ९ बजे गाडी लुक्सर पहुँची। गाडी ने छकडे का रूप ले लिया था, और सवा बजे ही देहरादून पहुँची। बहुत से मध्य हिमालय के पहाड भी हिमालय श्रेणी बन गए थे। मसूरी का देहरादून की तरफ वाला भाग बहुत कम बर्फ से ढँका देखा जाता था, लेकिन आज वह भी ढँका था। नीचे रात का जो वृष्टि हुई थी, वह यहा हिमवृष्टि के रूप म परिणत हो गई थी।

डेढ बजे शुक्लजी के घर पर पहुच गए। अब की इलाहाबाद म कुम्भ लगा था। भारत के सभी देव-महादेव कुम्भ का मेला देखने और अपना दर्शन कराने वहा पहुँचे थे। प्रबन्ध करने वाली पुलिस देवताओ के दरबार मे उपस्थित हो गई, और उधर आदमियो का ऐसा रेला आया कि हजारो आदमी कुचलकर मर गए। इसकी खबर मिलने पर भी देवताओ की दावतें चलती रही। कैसा क्रूर परिहास? कुम्भ मेले मे शुक्लाइनजी भी गई हुई थी। कहा—'जिन्दगी का क्या ठिकाना। अब तो यह कुम्भ बारह वर्ष बाद ही आएगा।" शुक्लजी क्या रोककर पाप के भागी होते? तार पर तार खटखटा रहे थे, पर प्रयाग से कोई जवाब नही मिल रहा था। तार खट खटाने वाले वह अकेले ही थोडे थे? हजारो तारो को ठीक जगह पर पहुँचाना तारघर वालो के बस की बात नही थी। प्रयाग की हृदयद्रावक खबरें अखबारो मे निकल रही थी, जिसे पढकर चिन्ता और बढ गई थी। आज

तार आया, लेकिन उसमे सकुशल वहाँ पहुँचने की बात थी।

उस दिन घूमते घामते कल्याणसिंह की कोठरी मे भी पहुँचे। बेचारे की अवस्था बडी दयनीय थी। सात आदमी, शहर का जीवन और रुपये दिन के दो भी नही।

६ फरवरी को श्री हरिनारायण मिश्र के यहा कितने ही विद्यार्थियो और अध्यापको की गोष्ठी रही। भोजनोपरान्त कन्या गुरुकुल मे भाषण दिया। धीरे धीरे इस सस्था ने बडा रूप धारण कर लिया है। सौ एकड के करीब जमीन है, दो लाख से अधिक की इमारत है। बहुत समय पहले समाज के लिए आवश्यक इस सस्था का निर्माण हुआ था। पर, स्त्री शिक्षा के बढते हुए वेग से जितना लाभ उठाना चाहिए था, उतना इसने नही उठाया। यद्यपि शिक्षा की आधुनिक आवश्यकताओ की पूर्ति यहाँ की गई है, लेकिन आधे मन से ही। यही कारण है, जो कन्या गुरुकुल उतना उन्नति नही कर सका। डा० सत्यकेतु की पुत्री उषा इस वक्त यहा पढ रही थी। पढाई का लाभ उन्हे साफ दिखाई पडा। भाषा मे उसने बडी तरक्की की, और पढने मे भी। वजन काफी बढ गया था। लेकिन, माँ बाप को ख्याल आया, कि आधुनिक तरुणी को जैसा होना चाहिए, वैसी वह नही हो सकेगी, इसलिए कुछ समय बाद उसे हटा लिया, यद्यपि वहाँ खर्च भी कम पड रहा था।

७ को सवेरे शुक्लानीजी आईं। लोग बडे खुश हुए। डर होने लगा था कि वह देहरादून की जगह वैकुण्ठ पहुँच गई होगी। हमने पौने ११ बजे मोटर पकडी और साढे १२ बजे मसूरी अपने घर पर पहुँच गए। ४ तारीख की बर्फ अब भी रास्ते पर पडी थी लेकिन २१ जनवरी जितनी नही थी।

जया को टीके के कारण ज्वर था। बच्चो का कष्ट कई गुना असह्य होता है। घर पर आकर सबसे अधिक आराम बाथरूम का था। इतना आधुनिकपन तो अब हमारे मे आ ही गया था, कि बाथरूम कमरे की बगल मे हो, और पलंग पास हो। डायबटीज ने इसे आवश्यक भी बना दिया। ६ को जया का बुखार जब बिल्कुल छूट गया, और वह हँसने लगी, तो बडी प्रसन्नता हुई। पानी मे मिलाकर गाय का दूध भी पिलाया जा रहा था। वह उसे हजम भी करने लगी। उसकी सभी इन्द्रियाँ अब काम कर रही थीं,

और तकिये के सहारे कुछ बैठ भी सकती थी। उठक बैठक का तो ताता लगा देती थी।

२ मार्च को जाडे की समाप्ति का पता लगने लगा, जब नगे वक्षो पर पत्तियो को कुडमलित देखा। इसमे हमारी नासपाती सदा पहले रहा करती है। ५ मार्च का उसमे लाल लाल पत्तिया दीखने लगी। ८ मार्च को जया चलने लगी। 'हिमाचल प्रदेश'' को डिक्टेट करके टाइप कराते बहुत दूर तक हम लिख चुके थे। हिमालय के किसी भाग के परिचय ग्रथ को हम पूरा नही समझ सकते, जब तक कि उसकी यात्रा भी उसमे सम्मिलित न हो जाए। इसीलिए अबके हिमाचल प्रदेश की यात्रा करनी थी। साथ मे किसी के रखने की आवश्यकता थी। मैंने धूपनाथजी और जनकलालजी दोनो के पास को पत्र लिखा, दोनो इसके लिए तैयार थे।

शुक्लजी की पुत्री मुक्ता (कमल) का ११ मार्च को ब्याह था। १० को मैं भी वहाँ पहुँचा। उसी दिन शाम को बरात आई। इकलौती लडकी का ब्याह मा बाप ने पूरे उत्साह के साथ करना चाहा, यद्यपि लडके वाले इसे उतना पसन्द नही करते थे। विद्वान् के घर मे विवाह हो तो सबसे अधिक पण्डितो का आना स्वाभाविक था। वर कृष्णकान्त मिश्र पढने मे हमेशा प्रथम आते रहे, और यदि तिकडम न लगाया गया होता, तो वह आई० ए० एस० मे आ गए होते। वह एक डिग्री कालेज मे अध्यापक थे। आशा है, ऐसे प्रतिभाशाली तरुण का रास्ता सदा रुका नही रह सकता। श्री किशोरी-दास वाजपेयी बरातियो की ओर से थे। कन्या के दादा दादी भी ब्याह मे शामिल हुए थे। उन्होने अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रियो तक को देख लिया। दादी की माँ ने तो एक और भी पीढी देखी थी। ब्याह दिन मे हुआ। यद्यपि पोशाक मे प्राचीनता रखने की कोशिश की गई थी, लेकिन वर मे कोई सकोच नही था, और कन्या भी उतनी छुई मुई सी नही हुई थी। विवाह कराने वाले पण्डितजी ने "शमणस्य" जब कहा, तो हँसी आ गई। पुरोहित के लिए सस्कृत का ज्ञान की आवश्यकता नहीं। ब्याह के सम्बन्ध मे आए थे, तब भी दो व्याख्यान देने ही पडे। कमला भी हमारे साथ ब्याह मे शामिल हुई थी। उन्हे उत्तर प्रदेश का प्रथम ब्याह देखने का मौका मिला।

१३ मार्च को हम टैक्सी करके दोपहर तक मसूरी पहुँच गए। लेडली के

घर तक पहुँचने मे कुछ घबराहट मालूम हुई। दोपहर और रात को भी कुछ नही खाया। रात को बुखार मालूम हुआ। इस वक्त गौतमजी की लम्बी-लम्बी तुकबन्दिया मे फटकारे आ रही थी, जिनम बौद्ध धम, साम्यवाद को गालिया रहती थी। ऐसे आदमी से कुछ कहा भी तो नही जा सकता। कुछ भी अरवस्थता होने पर चारपाई पर पडकर पूरा विश्राम करना यही मेरा नियम है। बुखार या पेट की गडबडी होने पर मैं खाना भी छोड देता ह, लेकिन इसका यह मतलब नही कि पढना भी छोड दू, या आवश्यक प्रूफ आने पर उसे रख छोड़ू। अब की चारपाई पर पडे पडे मैंने प्रेमचन्द के 'गोदान" को पढना शुरू किया। वर्षों पहले उसे पढा था, जिसका मन पर सस्कार भी अब नही था। समाप्त करने पर डायरी म लिखा— 'अद्भुत लेखनी है। कितने गुण है? भाषा ही को ले लें, तो देखा कितना कमाल किया। जनता के मुह से निकलने वाले शब्दो को धडल्ले से प्रयोग करते हैं। अनावश्यक क्लिष्ट शब्दो को हटाकर देहाती शब्दो का भी प्रयोग किया है। हो सकता है, उनमे कुछ ऐसे भी हो, जो हिन्दी के पश्चिमी क्षेत्रो म नही बोले जाते। पर उसके लिए क्या चित्रण की एक उत्कृष्ट सामग्री का छोटा अधूरा चित्र अकित किया जाए? या अनावश्यक तथा अप्रयुक्त तत्सम या उर्दू के शब्दों का लिया जाए? किसान के दुखमय जीवन का इतना स्पष्ट विस्तृत और गम्भीर चित्रण किसने किया है?" भारत मे तो कोई ऐसा नही हुआ? कोई अनावश्यक पात्र नही है—मालती और मेहता भी नही। इतने नाम उपन्यास म आ जाएँ, उन्ह अन्त से पहले विस्मृत या मृत न बनाया जाए यह कोई उचित माग नही है। "गोदान' के पात्रो म सबका अपना अपना अलग अलग व्यक्तित्व है।"

१७ मार्च से बैठकर काम करना शुरू किया। १६ को कल्याणसिंह आए। 'कमलसिंह' के नाम से अधिकतर उनकी ही जीवनी को लेकर जो मैंने कहानी लिखी थी, वे "साप्ताहिक हिन्दुस्तान' म छप चुकी थी। देहरादून मे किसी ने पढा और भाँप लिया। उसने कल्याणसिंह को भी सुनाया। कल्याणसिंह कह रहे थे—' आपने सब बातें ठीक जान ली ही कुछ बातें मैंने उसमे कल्पना से लिखी थी लेकिन उनकी स्थिति म आदमी के लिए वे बिल्कुल सम्भव थी इसलिए ठीक बैठ गई। अब नई नगर-

पालिका आ गई थी। मैंने उसके प्रभावशाली व्यक्तियो से सिफारिश की, और कल्याणसिंह से मसूरी म बदल देने के लिए दर्खास्त लिखवाई।

हमारे यहा करीब-करीब सभी त्योहार दो दिन होते ह। त्योहार दो दिन तक रहे, लोग दो दिन उत्सव मनाएँ, यह बुरा नही है। लेकिन, तिथि का निश्चित होना जरूर बुरा है। इस मोहल्ले के लोग १९ को ही होली मना रहे थे, अर्थात् १८ का ही उन्होने होली जला दी। हमने अपने यहाँ २० को होली मनाई। पकवान बने। कमला ने पडोसिनो म भी कुछ बाँटा। जया आज छ मास की हो गई थी। कुछ बातो की नकल करने लगी थी। यद्यपि मोटी नही थी, पर दुबली भी नहीं कह सकते थे।

२१ माच को पूर्वी पाकिस्तान के साधारण निर्वाचन की खबर आई। जिस मुस्लिम लीग को अजेय समझा जाता था, वह पाकिस्तान के अधिक जनता वाले सबसे बडे साढे तीन सौ मे से दस भी स्थान नही पा सकी। मुख्य मन्त्री और दूसरे मन्त्री सभी चुनाव मे पराजित हुए। धम की दोहाई देकर उन्होने लोगो की भाषा बगला को दबाना चाहा विरोध प्रकट करने पर गोलियाँ चलवाईं। सेना और सभी बडी बडी नौकरियो म पजाबियो को शासन करने के लिए वहाँ भेज दिया गया। सात वर्षों से वहाँ की जनता मे जो दुर्भाव जमा होता रहा, उसका ही यह परिणाम था।

२३ माच को "आर्यान पेशवा" के चार गण हमारे यहाँ भी आए। राजा महेन्द्र प्रताप आर्यान पेशवा के नाम को अधिक पसन्द करते है। इसमें यौगिक अथ म धर्म के पैगम्बर होने की गध आती है, और [illegible] भारत के एक शक्तिशाली वश की। आज राजा महेन्द्र प्रताप [illegible] बुढापे के असर म पूरी तौर से आ गए हैं, और उनकी बातो [illegible] मुश्किल है, लेकिन देश की आजादी के लिए जो कुर्बानी [illegible] थी, उसको भुलाया नही जा सकता। प्रथम विश्वयुद्ध म [illegible] बाहर निकले, तो भारत के स्वतन्त्र होने पर [illegible]। [illegible] ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करते रहे, [illegible] साम्राज्यवादियो के वह उसी तरह विरोधी हैं। [illegible] बहुत बढ पुचकाड हैं। अनेक बार उन्होने [illegible] नहीं। एक पुरुष के सामने [illegible]

भाविक है। पशवा १० मई का दिल्ली "पकडने" जा रहे थे। मुसोलिनी ने रोम पकडा था, शायद वही ख्याल आयान पेशवा के दिमाग मे भी घूम रहा था। वह गए भी, लेकिन उनके साथ हजार की भी पलटन तो नही थी। वह अपने हिन्दी अग्रेजी, उर्दू पत्रो मे खूब खरी-खरी बातें लिखते है जो कानून का उल्लघन करती है। पर, सरकार उस पर चुप साधे हुए रहती है, इसका भी उन्हे दु ख है। जेल भेजती, तो शायद कुछ काम आगे बढता।

कमला के भाई हरि और बहिन गगा को यहा इसलिए बुलाया गया था कि उन्हे पढने का सुभीता होगा। गगा का नाम स्कूल मे लिखवा दिया, वह पढने भी जाया करती। हरि का नाम भी रमादेवी हाईस्कूल म लिखने के लिए प्रिसिपल मलहोत्रा को चिट्ठी लिख दी। यह स्कूल अपने परीक्षा परिणामो की दृष्टि स मसूरी का सबसे अच्छा स्कूल है। हरि को यहाँ का जीवन पसन्द नही था। घर मे अवश्य उसकी दो बहनें और मगल नेपाली भाषा बोलनेवाले थे, लेकिन, बाहर वह कलिम्पोग का वातावरण नही पाता था। स्कूल म जाने पर अपरिचित और दूसरी भाषावाले लडके के सीधेपन से दूसरे लडके लाभ उठा सकते हैं, किन्तु यह कोई ऐसी बात नही थी कुछ दिनो मे सब ठीक हो जाता। हरि अपने मनोभावो को किसी से कहता भी नही था। हम समझते थे, वह पढने जा रहा है।

अपनी बी० ए० परीक्षा के लिए २८ मार्च को कमला जया हरि के साथ देहरादून गई। प्रवेश पत्र यही भूल गई थी, इसलिए कमला को रवाना कर हरि लौट आया और दूसरी बस से गया। जया की किलकारी बिना हमारा कमरा सूना सूना मालूम होता था। साथ ही यह भी ख्याल आता था कि मार्च के अन्त मे जब देहरादून म गर्मी आ गई है न जाने उसके ऊपर कैसी गुजरती होगी? ३० को कमला की चिट्ठी भी आई। उसमे गर्मी और मक्खियो दोनो की शिकायत थी। १ अप्रल को १० बजे कमला लौट कर आयी तब चिन्ता दूर हुई। जया को मच्छरो ने काट खाया था। परीक्षा के बारे मे निराश नहीं थी हा, इसका अफसोस जरूर था कि एफ० ए० मे सभी विषयो को लेकर दिया होता, तो इस साल भी सभी विषयो मे परीक्षा देता और पास होने पर पूरा डिग्री मिलती।

"विस्मृत यात्री" पिछले ही साल पूरा हो गया था। दिल्ली के

"साप्ताहिक हिन्दुस्तान" ने उसे धारावाहिक रूप से अपने यहा प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। 'हिन्दुस्तान" की ग्राहक संख्या को देखते हुए हम पसन्द था कि वह पुस्तकाकार छपने से पहले यदि किसी पत्र म निकल जाए तो अच्छा है। लेकिन, ऐसे ग्रन्थो के साथ जिस तरह की मनमानी की जाती है वह लेखक को पसन्द नही आ सकती।

२ अप्रल को बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की ओर से डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी का पत्र आया कि परिषद ने "मध्य एसिया का इतिहास प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है। कितने ही वर्षों स यह बडी साध और मेहनत से लिखा हुआ ग्रथ अधर म लटका हुआ था। प्रकाशक बहुत चुस्त मिले, लेकिन प्रेम के भूता ने उसे ऐसा दबोचा कि १९५७ म भी दूसरे खड के निकलने म सन्देह है।

हिमाचल की यात्रा के लिए धूपनाथजी और जनकलालजी दोनो तैयार थे। ४ अप्रैल को धूपनाथजी आ गए और उससे अगले दिन जनकलालजी भी। जनकलालजी जवान और पहाडी थे, साथ ही वैद्यक भी जानते थे इसलिए उन्ही को साथ ले जाना अच्छा जान पडा।

१० अप्रैल को हमने यहा से हिमाचल यात्रा के लिए प्रस्थान करन का निश्चय किया था। तब तक 'हिमाचल प्रदेश" की आवृत्ति करके उसे ठीक लगान म लगे रहे। ७ तारीख का लण्ढौर गए, और बडी लालसा से कि किशनसिंह से मुलाकात होगी। देखा, उनकी दूकान पर ताला लगा हुआ था। माथा ठनका। वह अब तक दिल्ली मे गर्मी बर्दाश्त करन के लिए नही रह सकते थे। फिर रामसिंह की बुढिया मा मिली। उसन बतलाया कि १ अप्रैल ही किशनसिंह दिल्ली मे चल बसे। कनौर मे पैदा हुए, पहाडो का चक्कर काटते रहे, फिर मसूरी म बस गए। वह कितन सरल और मधुर थे। मसूरी मे उनका अभाव अब हमेशा हम खटकेगा। बीवी को दो बच्चो को पालना है, बडा बहुत कम अक्ल रखता है और छोटा अबोध है। किशनसिंह का ख्याल करके इष्टमित्र कभी-कभी सहानुभूति प्रकट करेंगे, लेकिन सारी विपदा तो बेचारी इस स्त्री को ही भोगना है। वह भारत के करोडो आदमियो म एक थे, उनके अभाव का कौन याद करेगा ? पर, मैंने तो किशनसिंह को नजदीक से देखा था। मैं कैसे उनको अपने जीवन भर भुला सकता हूँ ?

१०

हिमाचल प्रदेश में

नाहन—१० अप्रैल को जनकलालजी और मैं साथ साथ डेढ़ बजे देहरादून के लिए रवाना हुए। उसी दिन रास्ते के लिए केमरे के कुछ फिल्म और दूसरी चीजें खरीदी, और अगले दिन के लिए साढे ७ रुपये मे नाहन तक के बस के टिकट भी खरीद लिए। ठण्डी जगह रहनेवाले आदमी के लिए गर्मी बदाश्त करना बहुत है। ११ को दोपहर को बस निकलनेवाली थी। गर्मी के मारे माथा भिन्ना रहा था। हिमाचल सरकार ने जो अपनी बस सर्विसें जारी की हैं, उनमे से एक हरद्वार तक आती है। लौटते हुए उसी ने हमे लिया। उसे जमुना के किनारे जाकर छोडना था, लेकिन चूहडपुर बाजार मे भी सवारी लेना था। चूहडपुर अब बहुत बढ गया था, जिसमे शरणार्थियो का भी काफी हाथ था। सहसपुर के करीब के जल विभाजक से दून उपत्यका गगा और जमुना के दो क्षेत्रो म बँट गई है। सहसपुर चूहडपुर से काफी इधर ही पडता है। चूहडपुर से लौटकर बस जमुना के किनारे गई। ठीक दुपहरिया का समय और अप्रैल का मध्य वक्ष जमुना के तट से दूर थे। घाट पर गर्मी का क्या पूछना? भलेमानुसो से इतना भी नही हुआ था कि ऐसे समय नाव को पहले ही किनारे पर लगवाते। उसी धूप मे मुसाफिरो को घटे भर से ऊपर पडा रहना पडा। मेरे कपडे लत्ते म कोई विशेषता नही थी, पर उसी बससे आए ठाकुर बडाशा ने जनकलालजी से मेरे बारे म पूछा। मेरे लेख नजरो के सामने से गुजरे थे, इसलिए नाम

जानते थे। वह नाहन मे को आपरेटिव इन्सपेक्टर थे। उन्होंने अपने यहाँ रहने का निमत्रण दिया।

जमुना की धार यहाँ बडी तेज थी, पर चौडी नही थी। नाव को आर-पार खीचने के लिए रस्सा बँधा हुआ था जिसमे प्रवाह नाव को बहा न ले जाय। पार हुए, रास्ते मे कुछ पानी मे चलना पडा। मोजा पायजामा वालो के लिए दिक्कत थी। जनकलालजी के लिए और भी मुश्किल थी क्योकि उनके पैरो मे जवाहरशाही पायजामा था, जिसे पिंडली से ऊपर उठाना मुश्किल था। ठाकुरसाहब ने ५ मील पर अवस्थित गुरु गोविन्द साहब के रहने से पवित्र पावटा साहब के डाकबगले मे थोडा विश्राम करने के लिए कहा। तब तक बस की भी सवारियां लेनी थी। ठाकुर साहब साथ नही जा रहे थे, किन्तु उन्होंने अपने एक आदमी को कर दिया। पावटा साहब मे शरणार्थी, विशेषकर सिक्ख अधिक आ गए है इसलिए दूकानो ने उसे कस्ब का रूप दे दिया है। देहरादून से नाहन ५८ मील है। बसें जमुना के दोनो तटो तक पहुँचती हैं। पावटा साहब से कुछ जाने पर फिर चढाई आई, जो पाच मील से अधिक नही थी। जाकर ठाकुर साहब के मकान मे ठहरे। थोडी देर मे श्री युगलकिशोर सेवल भी सहायता के लिए आ गए। शाम को बाजार मे टहलने गए। नाहन राजा की राजधानी और इस छोर का अच्छा नगर है। यहा भी बाजार में शरणार्थियो की दूकानें काफी दीख रही थी। रात को मुझे तो भोजन नही करना था, लेकिन जब ४ आने में जनकलालजी को मास भात मिला, तो मुझे सतयुग याद आने लगा। मच्छरो मक्खियो का इस मकान मे पूरा इन्तजाम था। खिडकियो दरवाजो मे बारीक जालिया लगी हुई थी। गर्मी की भी शिकायत नही थी।

१२ अप्रैल को सवेरे नगर परिदर्शन के लिए निकले। जगन्नाथ मन्दिर यहाँ का सबसे पुराना मन्दिर है। यही के बाबा बनवारीदास ने (राजा को यहाँ राजधानी बनाने का उपदेश) सवा ३०० वर्ष पहले दिया था। यह राजमान्य मन्दिर था। महन्तजी सस्कृत के पण्डित है। बनवारीदास इनसे दस पीढी पहले हुए। पुराने कागज पत्रो मे नेपाली राजा गीर्वाण युद्धविक्रम शाह का एक दानपत्र मिला। राजा जगतप्रकाश के दिये हुए भी कुछ दानपत्र थे। कितने ही पुराने कागज-पत्र अदालत मे पेश थे, नही तो और भी कुछ

मिलते। पता लगा, तरुण मृता राजकुमारी के नाम पर महिला पुस्तकालय स्थापित है, जिसमे काफी पुस्तकें है। नगरपालिका और जिला स्कूल इंस्पेक्टर ने भी सहायता देने मे बहुत सौजन्य प्रकाशित किया। राजमहल के दरवाजे पर बन्दूक लिए सिपाही पहरा दे रहा था, लेकिन राजा अब अधिकतर देहरादून मे रहते है। चाभी भी उन्ही के पास थी, इसलिए राजकीय सग्रह को नही देख सके। राजपुरोहित से भी सहायता लेनी चाही। वह ११ बजे अभी पूजा मे थे, और कहने पर ४ बजे बात करने के लिए बुलाया। आज का मध्याह्न भोजन मैंने भी कल के परिचित भोजनालय मे किया। बेचारा बाबू लोगो को चटाई मे बैठाने मे सकोच कर रहा था। मैंने कह दिया, हम तुम्हारे स्वादिष्ट भोजन को खाने आए है, चटाई से कोई मतलब नही। श्री युगलकिशोर सेवल सवेर से हम लोगो के साथ साथ रहे, जिससे परिचय पाने मे आसानी हुई।

एक पक्के ताल्लाब (जोहड) की मिट्टी निकाली दिखाई पडी। बहुत दिनो से इसकी देखभाल नही हुई थी, इसलिए मिट्टी भर गई थी। अब पानी से भर कर यह तालाब नगर की शोभा बढाएगा। नगरपालिका की आमदनी डेढ लाख है, जिसमे एक लाख से ऊपर चुगी होती है। इससे नगर के व्यापार प्रधान होने का पता लगता है। भोजनालय का धीवर शिकायत कर रहा था, अब पहले जैसे लोग नही आते, किसी तरह रोटी चल जाती है। मैंने कहा—आजकल के जमाने मे इसे भी गनीमत समझना चाहिए।

ठाकुर बडोत्रा दोपहर से पहले ही आ गए। वह यह पसन्द नही करते थे कि हम उनके यहा ठहरें और भोजन भोजनालय मे करें। मैंने कहा—हम शहर मे घूम कर काम करना है, यदि खाने का निबन्ध रहेगा तो बीच मे समय देना पडेगा। नाहन से २५ मील पर ददाहु एक तहसील का मुख्य स्थान है। हमने उसे देखने का निश्चय कर लिया था। यहाँ से वहाँ तक बस जाती थी, इसलिए जाने मे कोई दिक्कत नही थी। ३ बजे मोटर चली। सडक पहाड की रीढ पर और कभी उतराई पर चली जा रही थी। कुछ मील तक शिमला की सडक पर ही गए। सूर्यास्त हो रहा था, जब हम ददाहु पहुचे। आजकल कोई मेला था, जिसमे लोग लौट रहे थे, लेकिन अब भी

नाटक देखने के लिए दो हजार के करीब लोग मौजूद थे। कुश्ती भी हुई। पहाड़ में इतना अच्छा शौर है। ददाहु में हाई स्कूल भी है। बडोला जी ने एक आदमी दिया था, जिसके कारण हम ठहरने की दिक्कत नहीं हुई।

रेणकाजी—परशुराम की माता रेणका यहाँ से मील डेढ मील पर हैं और वहाँ का तालाब अत्यन्त दर्शनीय सरोवर है। ५ बजे झुटपुटे ही में हम चल पड़े। गिरी नदी रास्ते में पड़ी। आरपार करने के लिए पुल नहीं। लोहे के तार पर खटोला था जिस पर आदमी बैठ जाता और रस्सी के सहारे इस पार से उस पार कर दिया जाता। इतने सवेरे खटोलेवाला आदमी नहीं था और खटोला भी उस पार बँधा हुआ था। एक आदमी ने पार होकर उसे खोल दिया। झूला इधर खींचकर हम लोग बारी बारी से पार हुए। रेणका एक मील से कम ही था। पहले परशुराम ताल मिला जो छोटा और जल से भी अच्छा नहीं था। इसी के किनारे बाईं ओर लाल टिन का गिर्जे की तरह की छतवाला परशुराम का मन्दिर है। हमने इसे लौटकर देखा। मन्दिर भी नया और मूरत भी नई। आगे बढे। बड़े तालाब के पहले ही कुछ पुराने मन्दिर मिले, और सरोवर के पास मन्दिर और पक्का घाट भी था। तालाब तीन मील के घेरे में है। आसपास घेरने वाले पहाड़ नीचे से ऊपर तक हरियाली से ढँके हैं, जिससे रमणीयता और बढ जाती है। विश्वास किया जाता है कि पिता की आज्ञा पर परशुराम ने अपनी माँ रेणका को यहीं मार दिया था और यही वह इस तालाब के रूप में प्रकट हुई। ऋग्वेद के ऋषि यामदग्न्य के बारे में ऐसी कोई परम्परा वैदिक काल में नहीं मिलती। पर, उससे क्या? कथा पीछे गढी गई और उसके साथ सरोवर को चिपका दिया गया। यहाँ हर साल बहुत बडा मेला लगता है। सकड़ों दुकानें लग जाती हैं, और पहाड़ के नर नारी भर जाते हैं। सरोवर के छोर पर पानी में उगने वाले वनस्पति उसकी शोभा को बिगाड़ रहे थे, और उसके कारण मुक्त स्नान करने में भी बाधा थी। यह सैलानियों का तीर्थ बन सकता है, लेकिन, उनके लिए यहाँ ठहरने और खाने पीने का अच्छा इंतजाम होना चाहिए। सरोवर के किनारे लगी वनस्पति को साफ करके कितनी ही नावें रखी जानी चाहिए। यह सब तभी हो सकता है जब कि हमारे प्रति नर नारी की मासिक आय सौ रुपया हो

और साथ हो कोई निरक्षर न हो। पुरानी मूर्ति या दूसरी कोई चीज नही मिली लेकिन नवी दसवी शताब्दी तक की चीजें जरूर मिलनी चाहिए, यदि पूरी तौर से खोज की जाए।

बस दग्शाहु से ८ बजे खुलन वाली थी, इसलिए हमे जल्दी पडी थी। हम पौने ८ बजे ही पहुँच गये। चाय वाले ने चाय और अण्डा दिया। ददाहु अच्छा बाजार है और चाय की दूकानें भी हैं, इसलिए यात्री के लिए कोई तकलीफ नही हो सकती। हाई स्कूल, अस्पताल, तहसील होने से भी यह महत्वपूर्ण स्थान है। बस चली। एक चौडी किन्तु कम पानी वाली नदी को बिना पुल के पार किया। फिर चढाई शुरू हुई। शिमला वाली सडक पर पहुचे। फिर हाल ही म जल कर खाक हुई टरपटीन की फैक्ट्री के पास से होते तीन घटे म नाहन पहुँच गए। आज नाहन मे बाकी काम करके कल यहा से शिमला जाना था।

१४ सबेरे ही सेवलजी और दूसरे नये बने मित्रो के साथ घूमन निकले। महिमा लाइब्रेरी के वृद्ध पुस्तकालयाध्यक्ष बालकृष्ण शमा सत ने असा धारण सौजन्य दिखलाया, और बिना चाय मिठाई के वहा से हटने की इजा जत नही दी। पुस्तकालय मे मेरी दो दजन के करीब पुस्तकें थी। इसी स महिमा पुस्तकालय की विशेषता मालूम हुई। इन पक्तियो के लिखन के समय तक नाहन मे डिग्री कालेज भी खुल गया, इसलिए पुस्तकालय की और वृद्धि होगी, ऐसी आशा करनी चाहिए। दोपहर का भोजन वडोत्राजी के यहा किया। उनकी वजह से नाहन मे किसी तरह का कष्ट नही होने पाया।

शिमला—१६ रुपये मे शिमला की बस के दो टिकट लिए। पौने बजे दोपहर को हमने प्रस्थान किया। साढे सात मील तक तो वही रास्ता था, जिससे हम रेणुका गए थे। फिर चढाई चढते बस ६००० फुट तक पहुँची। २६ मील जाने पर सराहाँ मिला। अंग्रेजी मे लिखन म यह और विसाहर रिया सत का सराहन एक हो जाता है और शायद मूल शब्द एक ही रहा हो। यहाँ तहसील, थाना, डाकबँगला और एक दजन से ऊपर दूकान भी हैं। हिमालय बस सविस का बाबू भी रहना है, जो मुसाफिरो और सामान के लिए टिकट देता है। बस थोडी देर ठहरी। किसी किसी ने चाय पी। आगे

ववागवार मिला। धार का मतलब पवतश्रेणी है। यहाँ आलू का सरकारी फाम था। नैणाटिक्करी मे भी दो एक दूकाने थी। सारे रास्ते मे चील और बान (ओक) के वक्ष ही ज्यादा दिखाई पडे। कुम्हारहिट्टी म कालका से शिमला जाने वाली सडक मिल गई। सालन अच्छा खासा शहर है। यहा चाय पीकर चले कडाघाट मे अधेरा हो गया। ८८ मील की यात्रा साढे सात घटे म पूरी हुई। रात को किसी परिचित का घर ढूढना पसन्द नही आया। रायल होटल नजदीक ही था। ६ रुपया दिन पर एक कमरा लेकर ठहर गए। फोन किया, तो मालूम हुआ, कि मन्त्री गौरीप्रसादजी मडी गय हुए हैं, परसो लौटेग। दूसरे मन्त्री पद्मदेवजी घर पर नही थे। उस रात को सो गये। सर्दी मसूरी से अधिक नही थी।

१५ को सवेरे चाय पीकर मौंट प्लेजेंट म कोआपरेटिव के डिप्टी रजिस्ट्रार पण्डित विद्यासागर शर्मा के यहा पहुच गए। मोटर के अडडे से उनका स्थान काफी दूर था। हिमाचल विधान सभा का भवन रास्ते म पडा। विद्यासागरजी अपने बडे भाई को अस्पताल म देखन गये थे लेकिन बडे भाई (हिमाचल विधान सभा के अध्यक्ष) प० जयवन्त के पुत्र शिवकुमारजी वकील घर पर ही थे। शिक्षित सस्कृत परिवार है हर तरह से सहायता देने के लिए तैयार मिले। प० विद्यासागरजी ने कितनी ही सूचनाएँ और आकडे दिए। वे इतनी थी, कि और न भी मिलें, तो भी काम चल सकता था।

१५ अप्रेल हिमाचल प्रदेश के निर्माण का दिवस था, जिसे बडे उत्साह के साथ मनाया जाने वाला था। हम अस्पताल म प० जयवन्तजी से भी मिले। पहले चम्बा स्कूल के अध्यापक और वहाँ के सग्रहालय के वर्षो अध्यक्ष रहे। हृदय की बीमारी से अस्पताल मे पडे थे। डाक्टरो ने पूर्ण विश्राम लेने की सख्त आज्ञा दे रखी थी, इसलिए उनकी तरफ स कुछ न कहने पर भी हम काफी समय लेना नही चाहते थे। शिवकुमारजी ने आग्रह किया, कि होटल से हमारे घर चलें। सूचनाओ को जमा करने के लिए यहाँ रहने मे सुभीता था, इसलिए लटा पटा लेकर ३ बजे होटल से मौंट प्लेजेंट म चले आए। जिस वक्त हम एक रस्तोराँ म दोपहर का भोजन कर रहे थे, उसी समय मसूरी मे मिले मगोल भिक्षु मगल मिल गए। बतला रहे थे, सारे जाडो लखनऊ म रहे।

साढे ४ बजे बाद महोत्सव देखने गए। सचिवालय के बाहर थोड़ी-सी समतल जगह थी। यहीं लोग जमा हुए थे। लोक-गीत और लोक-नृत्य के परिदर्शन का प्रबन्ध था। लेकिन लोक गीतों के नाम पर जब मिरासी और मिरासिनें उसे पक्के संगीत और गजल का रूप देने लगी, तो जमहाई आ उठी। लोक कला की वहाँ कोई चीज नहीं थी, वाद्य भी आधुनिक थे। उसमें जो कोई अच्छी चीज थी वह थी चम्बा के चुराही नर-नारियों का लोक नृत्य, जिन्हें इस साल दिल्ली मे गणराज्य महोत्सव के समय भारत का प्रथम पारितोषिक मिला था। स्त्री पुरुषों की वेष भूषा भी स्वाभाविक थी और वाद्य भी। गीत भी मोहक थे। ७ ८ बजे तक हिमाचल धाम सचिवालय के प्रागण मे उत्सव देखते रहे। अभी दस लाख का हिमाचल अधूरा बना है। कांगडा जिले को इससे अलग करके पंजाब मे रखना अनुचित है। उसके मिलने पर इसकी संख्या दूनी हो जाएगी, और वह भी दूनी हो जाए यदि गढवाल कुमाऊँ को इसमे शामिल कर दिया जाए। फिर नई योजनाएँ यहां धडल्ले से चल सकेंगी।

१६ अप्रैल को चाय पीकर ९ बजे बाद निकले। छोटा शिमला तक गए। अभी सैलानी नहीं आए है। आसपास की सारी भूमि हिमाचल के महासू जिले मे है और आठ वर्गमील का शिमला शहर पंजाब मे रखा गया है। शिमला के नीचे का कुछ पहाडी भाग पेप्सू का है। अजब गोरखधंधा, आज गुड फ्राइडे था बहुत से आफिस बन्द थे, इसलिए सिर्फ नगर परिदर्शन का ही काम हो सका।

१७ अप्रैल को आकाश खुला था। चाय के बाद सवेरे निकल गए। कभी कबाडियो के यहाँ अच्छी-अच्छी पुस्तकें मिल जाती थी, लेकिन अब मसूरी की तरह यहा भी अग्रेजो के चले जाने का प्रभाव दिखाई पडता है। दो एक काम की पुस्तकें मिली, और शिमला तथा चम्बा जिले का स्कूलों मे पढाये जानेवाला हिन्दी भूगोल भी मिल गया। प० विद्यासागरजी बडी तत्परता से पुस्तक-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर रहे थे। प० जयवन्तजी ने बीमार रहते भी बहुत-सी बातें बतलाई और कई पत्र जिलों के हाकिमो को लिख दिए। उनसे भी मालूम हुआ कि चम्बा के जिला मजिस्ट्रेट मेरे परिचित नेगी ठाकुरसेन हैं।

शिवकुमार और उनके भाई रामकुमार दोना नई पीढी के उत्साही शिक्षित तरुण ह। उनसे पता लगा कि हिमाचल के लोग पजावी व्यवसायियो और ठेकेदारो से कितने तग है।

उसी दिन रात का ८ बजे मत्री गौरीप्रसादजी से मिलने गए। उन्होने अपने विभाग की सामग्री देने मे सहायता का वचन दिया और पूरा भी किया। मैंने हिमाचल के मत्रियो के पास "गढवाल" की एक एक प्रति भेजी थी, ताकि हिमाचल के बारे म कैसी पुस्तक लिखने जा रहा हू इसका पता लगे। गौरीप्रसादजी ने प्राप्ति की सूचना दी लेकिन मुख्य मत्री और शिक्षा मत्री का उसकी फुरसत ही नही मिली। इसीलिए उनसे मिलना भी मैंने बेकार समझा।

हम १८ अप्रैल को सवेरे की बस पकडनेवाले थे। पता लगा बस साढे ६ बजे यही चल पडती है और हमे ही साढे ६ बज गए थे। शिवकुमारजी और रामकुमारजी ने बहुत कहा, लेकिन हमे भरोसा नही था। वस्तुत हम अड्डे पर जाने की जरूरत नही थी, मौट प्लेजेट से एक ही डेढ फर्लांग पर १०३ नम्बर की सुरग पर उसे पकडना था। बसवाले का टेलीफोन भी चला गया था, इसलिए ७ बजे हमे वहाँ बस मिल गई। हमारा अगला लक्ष्य बिलासपुर था, जो यहा से ५३ मील पर अवस्थित था।

बिलासपुर—रास्ता बहुत सकरा था। बहुत कुशल ड्राइवर ही इस पर मोटर चला सकता था। लेकिन बडी सडक बनाने के लिए रुपया की बडी राशि की आवश्यकता होगी। ३५ मील पर घाट मिला। शिव मन्दिर देख कर बस के रुकते ही हम उधर दौडे। मन्दिर के आकार स प्राचीनता टपक रही थी। पुराने बेलबूटे वाले पत्थर थे, पर कोई खडित मूर्ति नहीं मिली। खडित मूर्तियो को नदियो म बहाने का रिवाज सारे भारत मे है। खडित हो जाने पर उसके दर्शन मे भी पाप लग जाता है, इसलिए लोग जल्दी स जल्दी उन्हें विलोप करना चाहते हैं, जिसके साथ कितनी ही इतिहास की सामग्री सदा के लिए लुप्त हो जाती है।

घाटी मे दो-तीन दूकानें थीं। रोटी दाल भी मिल रही थी। हमने भोजन किया। बिलासपुर १८ मील और रह गया था। आगे वह पहाड ढालुआँ होने लगा जिसमे विस्तृत खेत सब जगह फैले हुए थे। हम शिमला

के साढे ६ हजार फुट से बिलासपुर की एक हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँच रहे थे। १२ बज कर २० मिनट पर जब अडडे पर उतरे, तो गर्मी परेशान कर रही थी। ठहरने का स्थान पूछने पर बाजार में एक होटल बतलाया गया। जिसका न फर्श ठीक था न दरवाजा। मूज की चारपाई जरूर थी। हम दोनो को यहा घूमकर अपना काम करना था। ऐसे अरक्षित स्थान पर सामान रखकर कैसे जाते ? लेकिन, भोजन के बारे मे कोई शिकायत नही हो सकती थी। पास की सतलुज मे मछलिया भरी हुई थी, और कस्बा इतना काफी बडा था कि जहा खानेवाले मिल जाते थे, इसलिए होटल ने मछली बना रखी थी। जनकलालजी तो भात के प्रेमी ही ठहरे, और मास मछली न होने पर मैं भी भातप्रेमी बन जाता हू। गर्मी के मारे दिमाग परेशान था, ठडे पानी की माग थी। चीजें स्वादिष्ट थी। अच्छी तरह भोजन किया। फिर उसी धूप मे छत्ता लगाए निकले। अडडे के पास एक शिखरदार मन्दिर मिला जिसमे बहुत पुरानी कोई चीज नही थी। पास मे साधु की कुटिया देखकर अपना पुराना जीवन याद आने लगा। बूढे बाबा अपनी आयु का नही बतला सकते थे, लेकिन ७० से ऊपर के तो जरूर रहे होगे। सारे भारत मे घूमे हुए थे। सामने धुनी थी, गाजा कवड की चिलम तथा एक दो भक्त भी मौजूद थे। कुछ देर बैठे परिचय बढाया। हमारे होटल से यह जगह अधिक सुरक्षित थी यद्यपि यहा भी ताला कुडी वाली कोठरी नही थी पर बाबा बराबर रहते थे।

हम और भी कुछ पुराने मन्दिरो को देख लेना चाहते थे, इसलिए नीचे की सडक पकडे शहर से बाहर चले गए। सडक के किनारे ही मन्दिरोवाला एक स्वच्छ जलकुड मिला। नीचे सतलुज के किनारे कई और पुराने मन्दिर मिले। मन्दिरो से मालूम होता था कि ये पुराने हैं लेकिन प्राचीन खडित मूर्तियां या तो जान बूझ कर सतलुज मे डाल दिया गया था, इसलिए वे कहां से मिलतीं ? सतलुज यहाँ काफी चौडी है। भाखडा के बाँध के पूरा हो जाने पर यह समुद्र का रूप ले लेगी, और दोनो तरफ कई मील तक अपार जलराशि दिखाई पडेगी। उस वक्त ये सारे मन्दिर पानी के भीतर चले जाएँगे। लौटने वक्त हम ऊपर की सडक से पुराने बाजार की ओर गए। रगनाथ मन्दिर का नाम सुनकर तुरन्त ख्याल आया, यह दक्षिण के रंगनाथ

के नाम पर आचारी वैष्णव का बनाया कोई नया मन्दिर होगा, पर यह विष्णु नही शिव का और यहाँ का बहुत पुराना मन्दिर है। इसे वतमान राजवश के पहले के किसी राजा ऐलदेव न बनवाया था। यह ११वी १२वी शताब्दी से इधर का नही हो सकता। अधिकाश मूर्तियाँ यहा की भी सतलुज लाभ कर चुकी है, लेकिन कुछेक अब भी मौजूद है, जा अपने समय और उनत कला को बतला रही थी।

पूछने पर लोगा ने यह भी बतलाया था, कि महाराजा साहब आनन्दचन्द आजकल यहा नही ह। ता भी पुराने और नये महल को दखना था, इसलिए मैदान पार कर हम वहा पहुँचे। नये महल पर हथियारबन्द सिपाही मौजूद थे। उन्हाने भी नही होन की बात कही। हम देखने की उत्सुकता से महल के फाटक के भीतर चले गए। आदमी ने बतलाया राजासाहब है। नाम भेजते ही वह चले आए, और स्वागत करते हुए कहने लगे—मै आपके आन की प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने मसूरी से चलने से पहले ही बहुत जगहा पर चिट्ठिया भेज दी थी। राजा आनन्दचन्द असाधारण तौर से सुपठित और सुसस्कृत प्रौढ पुरुष ह। अजमेर के राजकुमार कालेज म पढत समय वह हमेशा अपन क्लास म अव्वल हाते रह। राज्य की बागडोर सम्भालने पर उन्हान प्रजा की भलाई के लिए बहुत सी चीजें की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। पर, सात-आठ सौ वष पुराने वश के स्वार्थ को अपनी स्वेच्छा से कैसे छोडन के लिए तयार हो जात ? पटेल के डडे न विलयन पर हस्ताक्षर करन के लिए मजबूर किया, लेकिन तब भी उनकी जिद रही, कि उसे हिमाचल प्रदेश म न मिलाया जाए। लियाकत मे उनके पासग भी नही, राजा सरकार के कृपापात्र होकर मौज कर रह हैं। यदि आनन्दचन्द जरा सा दरबारी मनोवृत्ति को स्वीकार करते तो वह भी अगली पक्ति मे आ जाते। लेकिन उनको अपनी योग्यता का अभिमान है।

हम कुटिया म नही राजमहल मे रात बिताने के लिए मजबूर हाना पडा। राजा साहब न इस महल को अपनी रुचि से बनवाया था। बनाने म स्वच्छता और आराम का पूरा ख्याल किया गया था। कला म भी उतनी दूर तक ध्यान दिया गया था, जितनी दूर तक कि वह बहुत मँहगी नहीं पडती। कमरे बडे-बडे और हवादार थे। सगमरमर का भी खुलकर इस्त

माल किया गया था। सारा महल भाखडा सागर के गर्भ में चला जाएगा। लेकिन राजा साहब का महल का पैसा जरूर मिलेगा। पहले हम स्नान करने की इच्छा हुई जब देखा कि विलासपूर्ण स्नानागार में गरम ठंडे पानी का भी इन्तजाम है। स्नान के बाद फिर घंटा राजा साहब से बात होती रही। उन्होंने अपने राज्य-सम्बन्धी बहुत सी सामग्री और दूसरी सूचनाएँ दीं।

१६ अप्रैल को सवेरे चाय पी, फिर राजा साहब की किताबों की आलमारियों को देखते रहे। २२ आलमारियों को देखने से मालूम हुआ कि यह पुरुष कितना विद्याव्यसनी है। आजकल के जमाने में शोभा के लिए भी पुस्तकें जमा कर ली जाती हैं, खासकर आधुनिक सेठों के यहां तो अपनी शिक्षा और संस्कृति का रोब दिखलाने के लिए ऐसा किया जाना लाजिमी समझा जाता है। आज भी कितने ही समय तक राजा साहब से बातचीत होती रही। हिन्दी की तरफ उनकी कोई रुचि नहीं थी क्योंकि बचपन से ही अंग्रेजी की घुट्टी मिली थी तीव्र बुद्धि रखते भी भविष्य को वह दूर तक समझ नहीं सकते थे। तब भी उनकी पोशाक और रहन-सहन से मालूम होता था, कि वह अंग्रेजियत के रोब में नहीं आए।

११ बजे बिलासपुर के डिप्टी कमिश्नर श्री महावीरसिंहजी के यहां गए। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ आँकड़ा के जमा करने में मेरी मदद की और एक अफसर को बुलाकर सब विभागों से आवश्यक चीजों को दिलवाने के लिए कहा। दोपहर की धूप में एक आफिस से दूसरे आफिस में जाना प्रिय नहीं मालूम हुआ पर "अर्थी दोष न पश्यति"। डिप्टी कमिश्नर साहब कह रहे थे, अलग राज्य होने से सभी विभाग अलग अलग कायम है। उनकी फाइलों पर दस्तखत करने में ही मेरा तो बहुत-सा समय लग जाता।

२ बजे भोजन किया। राजा साहब के कृपापात्र शास्त्रीजी ने मण्डी के लिए दो टिकट भी ला दिये। ३ बजे से कुछ पहले ही राजा साहब से विदाई लेते उनकी सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट की और आशा की कि आप अपने ज्ञान को हिन्दी द्वारा लोगों के सामने रखेंगे। राजसी कार में अड्डे पर पहुँचे। ३ बजे हमारी मोटर चल पड़ी। बिलासपुर के आस पास काफी समतल जमीन है। रंगनाथजी का मन्दिर शहर के सबसे ऊँचे स्थानों में है, पर वह

भी शिखर तक भखडा सागर म डूब जाएगा। भखडा बाध के बनाने मे जितनी मुस्तैदी देखी जा रही है उसका शताश भी बिलासपुर नगर के बारे मे खयाल नही। डिप्टी कमिश्नर कह रह थे, यदि हमे बिजली और रापवे पहले से मिल जाए, ता हम समय से पहले यहा की सभी चीजो का उस स्थान पर पहुँचा सकते है जहा भावी बिलासपुर बसन वाला है। पर, ऊपर के लाग बडी बडी चीजो का खयाल करते हैं। दिल्ली के महादव की यह बात उनके सामन हर समय रहती है— 'छाटी छोटी बाता पर क्या खयाल करते हो ?''

बस पहाड के ऊपर की ओर बढन लगी। गर्मी से मुह सूख रहा था। इसी वक्त खरीदी हुई नारगी याद आई। मालूम हुआ, जनकलालजी ने थोले के साथ उसे कुटिया म ही छाड दिया। अगर वह नारगी बाबा के काम आई हो, तो हमारे लिए बडी प्रसन्नता की बात थी। हम बिलासपुर के १६ हजार आदमी क उजडे आशियानो का खयाल करते चारा ओर देख रहे थे। बस कई पहाडी खाहियो का पार करती रेहरा के पुल पर पहुँची। यहाँ चट्टाना न सतलुज की धार को सकरी कर दिया है, उसी पर लाह का पुल है जो बस के लिए नही बनाया गया था। यह कुछ सालो बाद भखडा सागर मे डूब जाएगा। उस समय पुल और ऊपर बनाया जाएगा। कुछ आगे बढन पर दूकाने मिली, साथ ही काई पुराना किला भी, जो अब ध्वस्त हा रहा था। कुछ आग बस का बहुत चढाई-उतराई नही पार करनी पडी और ७ बजे के करीब हम पुरानी सुकेत रियासत की राजधानी सुन्दर नगर म पहुच गए। रियासती लागो की गाढी कमाई राजाआ के शौक म लगती थी इसलिए महल भी थे, बगले भी जिन्ह यदि किसी दूसरे काम म नही लगाया जाएगा, ता कुछ दिना बाद गिर जाएँगे। बाजार काफी बडा है, जिसके भीतर से चलकर एक जगह बस का पानी म से चलना पडा और सवा ८ बज रात का हम मण्डी क माटर अड्डे पर पहुँच गए। मण्डी म कई बार आ चुका था, लेकिन विभाजन के बाद शरणार्थियो का जा रेला आया, उसम उसन बाजार का दूसरा ही रूप द दिया है। कृष्णा होटल मे जाकर ठहरे।

मण्डी—तरुण श्री सुन्दरलालजी मे पहले ही पत्र द्वारा परिचय था। वह मिले। २० अप्रैल को सवेर पहले डिप्टी-कमिश्नर श्री अन्नानीजी क

चलते चलते लाहुल के ठाकुर निमलचन्द अपनी पत्नी के साथ चलत मिले। मैंने १६३३ मे उन्हे देखा था, यद्यपि १६३७ मे भी लाहुल गया था, पर उस वक्त शायद मुलाकात नही थी। परिचय हुआ और उन्होने अपने यहा ठहरने का आग्रह किया। कुल्लू म भी अब एक अफसर की सहायता मिलने का निश्चय हो जाने पर यात्रा सुफल होने की सम्भावना बढ गई। २६ मील पर ओट आया। यही कुल्लू और मण्डी की सीमा मिलती थी। कुल्लू के हरेक यात्री को ओट के मीठे बठूरे भूल नही सकते। यहा कुछ दूकाने हैं। दोनो ओर की लारियो को यहा रुकना पडता है, क्योकि सडक कम चौडी होने से लारिया एक समय एक ही दिशा मे चल सकती है। ओट से जरा सा आगे शिमला से अनी होकर आने वाली सडक मिल गई। यहा से ११-१२ मील पर बजार है, जहा मोटर जाती है। मैं गलत समझता था मण्डी से मोटर की सडक बजार होकर जाएगी, और वहा डा० भगवानसिंह से मिलने का मौका मिल जाएगा।

१५ २० मिनट ठहरने के बाद हमारी बस चली। बजौरा ६ मील पर मिला। यहाँ विश्वेश्वर का ऐतिहासिक प्राचीन मन्दिर है लेकिन उसका देखना मैंने अगले दिन के लिए छोड रखा। कुल्लू के ढालपुर, सुलतानपुर अखाडा आदि कई मुहल्ले है, जो एक-दूसरे से हटकर बसे हैं। ढालपुर पहले पडता है। यही स्कूल, अस्पताल, कचहरिया और डाकबगले हैं। ठाकुर निमलचन्द का स्थान भी यही था। कुल्लू उपत्यका हिमालय की बहुत सुन्दर उपत्यकाओ मे है। हिमालय के बहुत भीतर होने के कारण चार हजार फुट ऊची इस जगह पर भी बर्फ पडती है। यह ब्यास की उपत्यका सिर्फ प्राकृतिक सौन्दर्य ही के लिए अपनी विशेषता नही रखती, बल्कि अब तो यह सेबो के बाग के रूप म परिणत हो गई है। पहले सारे हिमालय का अध्ययन नही किया था, और लाहुल के बारे मे इतना ही जानते थे कि वहाँ ऊपर के लोग तिब्बती बोलते हैं और नीचे के लोग पहाडी भाषा। और अब मालूम था कि तिब्बतियो और आर्य भाषा बोलने वाले लोगो से भी पहले यहाँ किरात लोग रहते थे, जिनकी भाषा के अवशेष अब भी जहाँ-तहाँ मिलते हैं। चन्द्रा और भागा लाहुल म जहाँ मिलकर चन्द्रभागा बन जाती है उससे काफी नीचे तक लाहुली लोग किरात भाषा बोलते हैं। ठाकुर निमलचन्द भाट-

भाषी थे, लेकिन वहाँ कुछ किरातभाषी लाहुली भी मिल गए, जिनसे कुछ भाषा के नमूने लिये। कुल्लू के सबसे बडे अफसर असिस्टेंट कमिश्नर से मिले। उनसे अपनी पुस्तक और आकडा के बारे में बातचीत की। उन्होंने भी सहायता दी। टूरिस्ट ब्यूरो के इन्चार्ज ने और भी मदद की और बहुत से आकडे तथा छपी सामग्री उसी दिन मिल गई। कुछ के कल मिलने का वचन मिला। टहलते हुए नदी (गौरी) पार सुलतानपुर गए। कुल्लू राजा के महल यही थे। शताब्दियों तक हिमालय का यह राजवंश स्वतंत्रतापूर्वक यहाँ का शासक रहा। सिक्खो से लड पडा इसलिए उन्होंने राज्य को खतम कर दिया। अंग्रेजो ने जब सिक्खो के राज्य को अपने हाथ मे लिया, तो उन्हें क्या पडी थी कि राजा को फिर उसकी गद्दी पर बैठाते। उन्होंने उसे एक जागीर दे दी। लेकिन कुलूत लोग अपने राजा को राजा ही मानते रहे। अंग्रेज उन्हें राय भगवनसिंह भले ही कहे, लेकिन लोग उन्हें राजा भगवन सिंह कहते, और उनके कुंवर को टीका (युवराज) कह करके पुकारते हैं। टीका साहब का ब्याह नेपाल के जेनरल केसर शमशेर के अनुज कृष्ण शमशेर की लडकी से हुआ। राजा साहब ने अपने वंश के सम्बन्ध मे उर्दू में लिखी एक ऐतिहासिक पुस्तक दिखलाई। वहाँ से कुल्लू के तीसरे और सबसे बडे बाजार मे अखाडा बाजार गए। पहले यह इतना जमा हुआ नही था अब तो वहाँ बहुत दूकानें हो गई थी।

मनाली—२२ अप्रैल को मौसम अच्छा था। हम ७ बजे चाय पीकर टैक्सी—बस से रवाना हुए। १२ मील पर कटराई मिली जहाँ से ब्यास पार करके हम कभी नगर में रोयरिक निवास मे गए थे। अब वह खाली पडा था, नही तो उसके साथ नगर के प्राचीन स्थान को भी देख लेते। पहले कटराई में दोनो तरफ की मोटरें एक दूसरे को पार करती थी, अब कोई वैसा नियम नही है। ड्राइवर अपने ही समय देखकर चल देते है। १२ मील और आगे जा ११ बजे मनाली पहुचे। वही बस १२ बजे लौटने वाली थी। डेढ मील आगे वसिष्ठ कुंड का गरम पानी का चश्मा था, और उसकी प्राचीनता के बारे में लोगो ने बहुत बातें बतलाई थी। ड्राइवर ने कहा, आप वहाँ से होकर आ सकते हैं। हम वहाँ से चल पडे। जगह डेढ मील रही होगी, और आध घंटे से कम ही में हम वहाँ पहुंच गए। कुछ दूर तक तो

लाहुल जाने वाली समतल सटक पर गए, फिर दाहिनी आर चढकर खेतो म होत वसिष्ठ कुण्ड पर पहुँचे। अच्छा खासा गाव है, और ७००० फुट से ऊपर होन के कारण वफानी जगह म है। यहा पास मे देवदार के जगल भी ह। जो गेहू के हरे हरे खेत लहलहा रहे थे जिनमे जगह जगह स्थलकुमुदिनी फूली हुई थी। कुण्ड का जल वहुत गरम नही है। उसी की वगल म वसिष्ठ की भद्दी पत्थर की मूर्ति है। उससे कुछ हटकर राम का अच्छा शिखरदार मन्दिर है। यहा के लोग स्त्री-पुरुष दोनो अधिक गोरे थे। खशो का शुद्ध नमूना इनम मिलता था। पोशाक यहा वही ऊनी डोरू था, जो चम्बा स टोमा (चुम्बी) उपत्यका तक देखा जाता है। सिर पर रूमाल वाधना भी पहाडी स्त्रिया की अपनी विशेषता है। दूकान म मिश्री और गरी मिल गई। हम लोग खाते हुए वहा से लौट पडे। मनाली म मोटर अड्डे पर पहुचने पर अब भी समय था, और हम मास भात खाकर साढे १२ बजे गाडी से लौट। मनाली कुल्लू का सबसे रमणीय स्थान है, और यहा चारो ओर सेवो क बाग तथा पहाडो म देवदार के वन है। कटराई मे पहुँचन पर एक वार तो खयाल आया नगर चल चले। फिर खयाल छोड देना पडा।

भखाडा बाजार मे ही गाडी से उतर गए। अकस्मात् पुण्यसागर मिल गए। इधर वह स्पिती मे स्कूल मे अध्यापक थे। जाडो म वहा से चले आए थे। अब फिर अपने काम पर जाना चाहते थे। अभी जोत पर बफ बहुत थी, रास्ता खुला नही था इसलिए स्पिती के आदमियो के आन की प्रतीक्षा कर रह थे। कुल्लू अपन जनान शालो के लिए प्रसिद्ध है। शुद्ध पशमीने का साल ५० रुपये से कम म नही मिलता। हमन सौगात के लिए २४ रुपय का एक ऊनी शाल ले लिया। आज ही हम बिजौरा हो आना था। ड्राइवर न बैठा लिया, लेकिन ढालपुर पहुँचकर पुजा टूट जाने का बहाना करके उतार दिया। प्राइवेट वसा म मुसाफिरो की गत बन जाती है। हिमाचल प्रदेश सरकार न अपन यहा सरकारी वसें चला दी हैं और कुल्लू पजाव सरकार का है इसलिए यहाँ प्राइवेट वसा का राज्य है। पहाडी लोग पजावियो से क्यों न नाराज हो, जब वह देखते हैं, कि सारे अर्थागम के साधनो का वह अपने हथियाए हुए है। सडको की वडी वडी ठेकदारियाँ पजावी करत है बडे बडे अफसर पजावी है, दुकाने और व्यवसाय भी उन्ही के हाथ

मोटरें भी वही चलाते हैं। फिर तो पहाडी केवल कुलीगिरी के लिए बनाये गए हैं।

दो घंटे का समय बरबाद हुआ। फिर एक दूसरी बस बिजौरा के लिए मिल गई। हम साढ़े ३ बजे चलकर सवा ४ बजे वहा पहुच गए। सडक से विश्वेश्वर का मन्दिर दिखाई पडता है। मुस्लिम-काल मे उसकी मूर्तियों को तोडा गया, लेकिन गांव वालो और पुरातत्व विभाग को भी धन्यवाद देना चाहिए कि काफी मूर्तियाँ अब भी वहा मौजूद हैं। पास मे हाट गाँव है, वस्तुत मन्दिर भी उसी से सम्बन्ध रखता है। कुमाऊँ-गढवाल के उदाहरण से मैं जानता था कि पहाड मे हाट का मतलब राजधानी है। मालूम हुआ, पहले यहा कोई राजा रहता था, उसी ने मन्दिर को बनवाया था। सिक्खो ने मन्दिर को नष्ट किया, यह आम धारणा है। पर, उस पर विश्वास नही किया जा सकता, क्योकि सिक्ख तो अभी अकाली नही बने थे, और उनकी धर्मशालाओ मे मूर्तियो के लिए भी स्थान था। फिर सास्कृतिक तौर से सिक्ख और हिन्दू एक हैं इसलिए वह मूर्ति पर कैसे हाथ डाल सकते। मन्दिर के तीन तरफ अलग अलग गणेश, विष्णु और दुर्गा की मूर्तियाँ हैं। कई लकुलीश लिंग बतला रहे थे कि यहा पाशुपतो का किसी समय जोर था। मन्दिर के बाहर भी कुछ मूर्तिया रखी हुई थी। उससे हटकर ब्यास की ओर खेतो मे भी कितनी ही खण्डित मूर्तिया पडी थी। हिमाचल प्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानो के विशेष विवरण 'हिमाचल प्रदेश" मे मिलेंगे, इस लिए यहा उनके बारे मे बहुत लिखने की जरूरत नही है।

जाने के लिए तो बिजौरा चले गए, लेकिन अब लौटने की समस्या थी। मण्डी से बसें खास समय पर ही आती थी, और पता नही उनमे कोई जगह मिले या नही। क्या जाने रात यही बितानी पडे, लेकिन साढ़े ५ बजे की बस मे जगह मिल गई। उसी मे पगी इलाके के सियार गुम्बा सिद्ध लामा अपने परिवार और शिष्यो के सहित मिले। मुझे तिब्बती मे बोलते हुए देखकर लामा के पुत्र ने स्वय पूछ दिया, आप राहुलजी तो नही हैं? हम अगले ही गाव तक साथ चलने वाले थे इसलिए जल्दी जल्दी मे कुछ बातें हुईं। यह सालसर तीर्थ करके आ रहे थे। सिद्ध अम्दो के रहने वाले थे और घूमते घामते पगी के भोटियाभाषी इलाके मे आ गए। सिद्ध होने से

महामुद्रा का रहना आवश्यक है फिर पुन और बहू भी आ उपस्थित हुए। सारा परिवार सुसस्कृत था। यही अफसोस रहा कि हम देर तक साथ न रह सके। उन्होने पगी आने का निमत्रण दिया। चम्बा हम जाना भी था, लेकिन पगी जाने की सम्भावना नही थी।

मण्डी—२३ अप्रैल को पुण्यसागर और ठाकुर मगलचन्दजी मोटर के अड्डे तक पहुँचाने आए। जनता म जगह पाने के लिए दो आदमी अखाडा बाजार ही से बैठ करके आए थे। अब की हमे पीछे की सीट मिली थी जिसके कारण बाहर देखने का सुभीता नही था। ६ वजे ओट पहुँचे। डा० भगवानसिंह को मेरे आने का पता था। मुझसे मिलने ही वह कुल्लू जा रहे थे। मैं लिख चुका था, मै बजार आऊँगा। लेकिन जब बजार को दूर स ही सलाम करके निकल जाना चाहता था। यह सयोग ही था, जो इसी समय डाक्टर साहब भी आ गए। उनसे भी ज्यादा मुझे बजार न जाने का अफसोस था। उनकी लडकी प्रेमलता बेचारी वहाँ बडी आशा लगाए बैठी थी। डा० भगवानसिंह ने बजार से आगे शिमले के रास्ते पर अनी मे घर और खेत बना लिया है। वह नौकरी से इसी साल दिसम्बर म अवसर प्राप्त करने वाले थे। कहने लगे अनी म रहना हमारे लिए मुश्किल है, क्योकि लडके-लडकी की पढाई का भी खयाल रखना है, जिसका सुभीता कुल्लू मे ज्यादा है। वहाँ रहते वह प्रेक्टिस भी करते, और साथ ही बौद्ध धर्म के प्रति अनुराग रहने के कारण कुल्लू मे एक बौद्ध विहार की स्थापना के लिए भी कुछ काम कर सकते थे। कुछ ही मिनट बातचीत कर सके, इसका अफसोस रहा, लेकिन मिल जाने से बहुत सन्तोष हुआ।

सवा ६ बजे बस चली। वह ब्यास के साथ साथ चल रही थी। यहाँ एक जगह ब्यास को विशाल पहाड क काटने म लाखो वर्ष लग होगे। यहाँ नदी सकरी हो गई थी और सडक को भी मुश्किल से बनाया गया था। एक जगह स्लेटी पत्थरो की खान थी, जहाँ से उन्हे निकालकर लारियो पर लादकर ले जाया जाता था। मण्डी स जाते ही हम कह गए थे कि दोपहर की बस से आएँगे। ११ बजे जब अड्डे पर पहुँचे, तो श्री हुताशन शास्त्री, सुन्दरलाल और दूसरे मित्र वहाँ मिले। पिछली बार उन्होने होटल से घर ले जाने क लिए बहुत कहा था, लेकिन हमने लौटते समय क लिए कहकर

छुट्टी ले ली थी। अब मास्टर जयवधन के मकान पर गए। यही खाना खाने का भी आग्रह था, जिसे हमने नहीं माना, क्योंकि उसके बनने में देर होती, और इस समय हम होटल में बने बनाये खाने को खाकर अपने काम में लग सकते थे। अन्तानी साहब के पास सारी सामग्री तैयार मिली। नमक वाले इजीनियर ने भी सहायता की। डाक में कमला की दो चिट्ठियाँ मिलीं। जया के दस्त नहीं बन्द हो रहे हैं, वह दुबली हो गई है, यह पढ़कर तुरन्त लौट जाने का मन हो रहा था किन्तु चम्बा तक तो जाना जरूरी था। कमला ने बी० ए० के प्रश्न-पत्र अच्छे किए हैं, यह भी चिट्ठी से मालूम हुआ।

कांगड़ा—२४ को सवेरे भोजन हुताशन शर्मा शास्त्री की ससुराल में था। नाम शायद शास्त्रीजी ने अपने हाथ से रखा था। हुताशन क्या अग्नि भी नाम आजकल सुनाई नहीं पड़ता। उन्होंने जल्दी जल्दी में मण्डी का भोजन तैयार कराया था। साढ़े ७ बजे ही हमें अड्डे पर पहुँचना था, इसलिए इत्मीनान से कोई काम नहीं हो सकता था। अड्डे पर मित्र लोग पहुँचाने आए। ड्राइवर से परिचय कराया। वह २८ वर्ष का सुन्दर तरुण तबला बजाने में अद्वितीय है। रियासत रहती, तो इसे मोटर का चक्का नहीं पकड़ना पड़ता। बारीक अँगुलियाँ जो कला में अपनी प्रवीणता दिखलातीं, वह चक्का चलाने में लगी थीं। तरुण का सुन्दर चेहरा बहुत सौम्य था। हमारे साथ खनिज-इजीनियर साहब भी चल रहे थे, नमक की खानें रास्ते में थीं। पिछले साल डेढ़ लाख का नमक निकला था। यहाँ खान के नमक के अतिरिक्त काला नमक भी मिलता है। नमक का तो पहाड़ खड़ा है। अभी उसमें थोड़ा ही काम हो रहा है।

१२ बजे हम बैजनाथ में उतर गए। स्थान हजार फुट से कुछ ही अधिक ऊँचा होगा, फिर दोपहर की गर्मी क्या न परेशान करती? बैजनाथ किसी समय किरग्राम के नाम से एक अच्छा-खासा व्यापारिक नगर था। बीच में वह उजड़-सा गया था। मोटरों ने फिर उसे आबाद कर दिया है। कितनी ही दूकानें हैं। एक भोजनालय में सामान रखकर खाना खाया, फिर वहाँ का ऐतिहासिक मन्दिर देखने गए। शिखरदार मन्दिर पहाड़ में कम होते हैं, और यह हिमालय के प्राचीन तथा अति सुन्दर मन्दिरों में है। मन्दिर के जगमोहन में ११वीं शताब्दी के दो शिलालेख लगे हुए हैं, जिनसे पता लगता है कि

यहा वैद्यनाथ शकर का मन्दिर था। कितनी ही खण्डित मूर्तिया हैं। कितने ही सालो तक भ्रष्ट होने के बाद मन्दिर सूना पडा रहा। फिर एक साधु ने यहा डेरा जमाया। फिर से पूजा शुरू की, और भूकम्प के कारण ध्वस्त होते मन्दिर की मरम्मत भी कराई। मूर्तिया म एक तीथकर की भी मूर्ति थी, जिससे जान पडा कि यहा जैन भी थे। एक बूटधारी सूय और सदिग्ध बुद्ध मूर्ति भी देखी। यहा सवधम समागम था। किरग्राम के लोप हाने के साथ नाम भी नष्ट हो गया, और लोग शकर के नाम पर ही इस स्थान का वद्यनाथ कहने लगे। नीचे बिनू नदी बह रही थी। उस दोपहर की तपती धूप मे भी स्थान रमणीय मालूम हाता था। सुबह-शाम और बरसात म ता यह स्थली सौन्दय की खान मालूम हाती होगी।

दो बजे हम मला (मलानी शहर) के लिए बस पर रवाना हुए। नाम शहर लेकिन दूकाने तीन चार ही थी। हमे पठियार म हिमालय का सबसे पुराना शिलालेख देखने जाना था। सामान को दूकानदार के पास रख दिया और जनकलालजी के साथ चल पडे। यह उपत्यका बहुत चौडी है कही कही तो देश का भ्रम हो जाता है। पठियार बहुत बडा गाव है। सात सौ घर और कई टोले है। सौ राठी, चार सौ घिथ चौधरी, बीस ब्राह्मण, सौ हरिजन परिवार रहत हैं। लोगो ने पठियार की सडक तो पकडा दी, लेकिन ईसापूव दूसरी शताब्दी का ब्राह्मी शिलालेख कहा है इसका किसी को पता नही था। हम ढाई मील तक उसी कच्ची सडक पर चले गए। कुछ दूकानें मिली। लागा ने बतलाया यहाँ से आधा मील पर खेतो म वह चट्टान है। भूलत भटकते खेतो और घरो को पार करते उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ कभी राठी बाकुल की पुष्करिणी थी। पुष्करिणी का अब नाम निशान नही है। इस भूमि मे जगह-जगह शिलाएँ जमीन से ऊपर निकली मिलती है, उन्ही म से एक पर ब्राह्मी आर खरोष्ठी म लिखा था—"वाकुलस पुकरिणि"। अभिलेख का रट्ठी शब्द अब भी यहा के सा राठी परिवारा के नाम से जुडा हुआ है। उस समय राष्ट्रिक कोई सरकारी पद था। सामन्त वाकुल ने यहाँ अच्छी विशाल पुष्करिणी बनाई हागी।

वहाँ से लौटे और साढे ५ बजे मलाँ मे पहुँच गए। मोटरें कागडा को जा रही थी, लेकिन जान पडने लगा, हम जगह नही मिलेगी। निराश हो

चुके थे उसी वक्त एक बस आई, जिसने हम चढाकर ७ बजे पुराने कागडा म पहुँचा दिया। अडडे के पास ही एक रुपये म एक होटल म कमरा ल लिया। पुराना कागडा पहले नगरकोट या भवान के नाम से मशहूर था। यहा की भवानी भारत की प्रतापी देवियो म थी। महमूद गजनवी यहाँ से लूटकर अपार सम्पत्ति ले गया था। १६०४ के भूकम्प ने कागडा म ऐसी ध्वसलीला दिखलाई कि इट के ऊपर ईट नही रह गई। वज्रेश्वरी भवानी का मदिर धराशायी हो गया था। लेकिन भक्तो ने मन्दिर को फिर से तैयार कर दिया। हमारे लिए प्राचीन मदिर और टूटी फूटी मूर्तियाँ अधिक महत्व रखती थी, लेकिन उनका कही पता नही था। अभी कुछ समय था, इसलिए हम जाकर मदिर देख आए। शहर श्रीहीन सा मालूम हाता था। बाजार काफी लम्बा चौडा है। लौटकर अपनी कोठरी म आए। नागदेवता ने दर्शन दिया। जनकलालजी डरने लग। मैने कहा, नागदेवता दर्शन ही क लिए थे, अब वह अपना काम कर चुके, इसलिए डरन की जरूरत नही। ता भी दरवाजे पर जहा वह लोप हुए थे, उससे हटकर हमने अपनी चारपाइयाँ रखी और रात को बेखटके सोये।

पुराना कागडा यद्यपि कभी महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा, लकिन जिस किले के नाम से कागडा मशहूर है, वह यहा से एक मील हटकर दुगम पहाड पर बना है। आज यद्यपि बीच मे आबादी नही है, लकिन राजा ससारचद के समय (१७८० ई०) नगर भवान से किले तक फला हुआ था। हम ऊपरी सडक का पकडकर किले की आर चले। रास्ते म आमो के बाग मिल, हाँ, नफीस किसिम क आम ये नही हागे। किले के दरवाज की चाभी लेकर चौकीदार आया। हम फाटक के भीतर घुसे। भूकम्प ने इस किले की भी बडी दुर्गति बनाई थी, ता भी बची खुची चीजा को सुरक्षित रखने की पुरातत्व विभाग न कोशिश की है। यह अच्छा हुआ, जा भूकम्प से पहल ही पुरातत्व विभाग न इसक सम्बन्ध म काफी फाटो और लिखित सामग्री प्रकाशित कर दी थी। मुस्लिम काल के पहल की यहाँ थोडी ही चीजें है। किले स बाहर स्नानागार है जा शायद मुगल-काल की देन है। यहाँ मुगल राज्यपाल और उसकी बेगमा क स्नान करन के लिए गरमाबा (हमाम) बनाया गया था। किले म मस्जिद भी है, और एक जन तीर्थकर

वह यहाँ अपनी जीविका कमा सकेंगे। यदि ऐसा नही हुआ, तो घर आदमी को कैसे बाँध सकता है ?

हम ऐसे समय वज्रेश्वरी के मन्दिर मे गए, जब सूर्य डूब चुका था। आज वहा जाकर फोटो लिए। आज ही ज्वालामुखी चलने का निश्चय हुआ।

ज्वालामुखी—भोजन करके साढे ११ बजे मोटर से चल दिए। ज्वाला मुखी यहाँ से २४ मील है। ज्वालामुखी रोड के पास तक सडक अच्छी थी। फिर पहाडी कच्ची सडक मिली। १ बजे हम ज्वालामुखी पहुँच गए। अप्रल के अन्तिम दिनो का मध्याह्न था उसके साथ ज्वालामुखी नाम भी मिल गया। वहा की धूप असह्य मालूम होती थी। सामान हम अपने साथ नही ले गए थे, क्योकि लौटकर कागडा चला जाना था। अड्डे से माई के स्थान की ओर चले। टेढी-मेढी गली और उसके दोनो तरफ दूकाने पडी। अन्तिम सिरे पर चढावे की दूकानें ज्यादा थी। जान पडता है, यहाँ भूकम्प ने अपना जोर नही दिखाया। आखिर आपरूप देवी जो यहा मौजूद थी। फाटक के भीतर गए। फिर ज्वालामाई के मन्दिर मे घुसे। पुजारी ने बतलाया सोने का छत्र महाराज रणजीतसिंह ने चढाया और उनकी बेटी ने चादी का द्वार बनवाया। भीतर दीवार मे तीन और कुण्ड मे दो टेम जल रही थी। इतनी क्षीण थी कि फूक देने पर बुझ जाती, फिर गैस की गन्ध निकलती। मन्दिर के भीतर इतनी धूपबत्तिया जलाई जाती है कि उसमे प्राकृतिक गैस की गन्ध छिप जाती है। इससे कही विशाल ज्वालाएँ निकलती बाकू मे मैंने देखी थी। यद्यपि वहा की बडी ज्वालामाई की जोत पहली बार १९३५ मे मेरे वहा पहुँचने से दस-बारह वर्ष पहले ही बुझा दी गई थी। पर, इसमे शक नही, कि वह जोत इससे कही बडी रही होगी। मैंने अपनी रूस की दूसरी यात्रा मे रेल से कई प्रचण्ड ज्वालाएँ निकलते देखी थी, जिनके सामने इन ज्वालाओ की कोई गिनती नही हो सकती थी। खैर अब बाकू की ज्वालामाई निर्वाण प्राप्त कर चुकी हैं। हमारे लिए तो यही ज्वालामाई रह गई है। किसी समय ज्वालामुखी सन्यासी अखाडा का बहुत बडा केन्द्र था। यह भारत के जबर्दस्त व्यापारी थे। देश मे ही नही, बल्कि नेपाल, मध्य

एसिया, तिब्बत और चीन तक व्यापार करते थे। अब उनकी इमारतें ध्वस्त, त्यक्त और उदास थी।

लौटकर अड्डे पर पहुँचे। कुछ ही मिनट पहले अगर आये होते तो काँगड़ा की मोटर हम तैयार मिलती। पास में एक अच्छी धर्मशाला बनी हुई थी। वही दो घटे से ऊपर निराशा के साथ प्रतीक्षा करनी पडी। फिर एक बस ज्वालामुखी रोड स्टेशन तक पहुँचाने के लिए तैयार हुई। वहाँ जाने पर दूसरी बस पठानकोट से धर्मशाला जाने वाली मिली। काँगड़ा में अड्डे के पास ही हमारा सामान था, इसलिए उसे लेकर हम उसी दिन सवा ७ बजे धर्मशाला पहुँच गये। यह शिमला और मसूरी जैसा ठण्डा है, बल्कि यहाँ उनसे भी ज्यादा बर्फ पडती है। मसूरी और शिमला की तरफ जहाँ एक ही हिमाल श्रेणी है वहाँ इधर तीन-तीन श्रेणियाँ है, जिनमे सबसे दक्षिण वाली धर्मशाला के पास पडती है। हम उस दिन जाकर हिन्दू होटल मे ठहर गए।

धर्मशाला—२६ अप्रैल का दिन धर्मशाला के लिए था। काँगड़ा जिला के सरकारी दफ्तर यही हैं। यद्यपि काँगड़ा जिला पजाब मे है, लेकिन है वस्तुत हिमाचल प्रदेश का ही अग। कुल्लू के लिए यह एक ही जिला जनसख्या मे सारे हिमाचल प्रदेश के बराबर है। उस दिन चाय पीकर जनकलालजी के साथ बाहर निकले। समझा डिप्टी कमिश्नर से मिलना आफिस से बेहतर बगले पर होगा। ८ बजे पहुँचे। कार्ड भिजवाया। साहब बहादुर ने हुकुम दिया, दस बजे आओ। कार्ड के पहले भी हम चिट्ठी लिख चुके थे, जिसमे आने का उद्देश्य भी बतलाया था। हमने कहा, चलो इन दो घटो मे धर्मशाला के ऊपरी छोर तक देख आएँ। साढे ६ आना देकर हम ऊपर वाली बस पर बैठ गए जो मक्लौडगज तक जाती थी। यही धर्मशाला की फौजी छावनी है, जिसमे गोरखा सेना रखी जाती है। सब जगहो मे अग्रेजो ने गोरो और गोरखो के लिए छावनियाँ बनाई थी। वहाँ से हम मील भर पर अवस्थित भाकसूकुण्ड गए। यह धर्मशाला का तीर्थ है, और वस्तुत भाकसूनाथ के दर्शनार्थियो के लिए ही किसी ने धर्मशाला बनवा दी थी जिसके नाम पर इस नगरी का यह नाम पड गया। भाकसूनाथ के महन्त रामदयाल गिरि वैद्यभूषण है। शिक्षित होने से दुनिया जहान की खबर रखते है। यह कहना

देखा। क्षमा माँगी और सेवक बन गया। बाबा उमदगिरि ने जाते ही यहाँ समाधि ले ली। उनके और उनके उत्तराधिकारी महन्ता की समाधिया यहाँ बनी हुई हैं। मन्दिर म कोई जागीर-वागीर नही है। कोई ताज्जुब नही, यदि गिरियो का अखाडा यहाँ अग्रेजो के आने से पहले रहा हो। महन्तजी ने चाय पिलाए बिना वहा से जाने नही दिया।

बस के अड्डे पर आने से पहले वह चली गई थी। उतराई थी, इसलिए पैदल ही चल पड़े। डिप्टी कमिश्नर के बँगले पर पहुचे तो मालूम हुआ के० एल० कपूर साहब देहात घूमने चले गए। हम अफसोस करने की कोई जरूरत नही थी। आखिर हम उनके पीछे बहुत हैरान भी नही हुए थे। साहेब आई० सी० एस० है और किसी मत्री के रिश्तेदार भी—करेला और नीम पर चढा। कचहरी मे जाकर मुकद्दमा करना चाहिए लेकिन कितनी ही बार टेलीफोन खटक जाता है—साहब बँगले पर ही इजलास करेंगे। बँगला शहर के एक छोर पर है, और कचहरी दूसरे छोर पर। ऐसे आदमी से यही आशा हो सकती थी।

हम नीचे धर्मशाला म गए, जहा बहुत से सरकारी आफिस है। सोचा पब्लिसिटी आफिसर (सूचना-अधिकारी) से कुछ काम चलेगा, इसलिए श्री मगतराम खन्ना के पास पहुँचे। उन्होने कुछ सूचनाएँ दी, और बाकी के भेज देने का जिम्मा लिया। ईसा पूर्व दूसरी तीसरी शताब्दी के एक शिलालेख को हम पठियार मे देख आए थे। दूसरा शिलालेख खजिया मे था। अब हम उधर चले। श्री खन्नाजी ने रास्ता बतलाने के लिए दो फर्लांग तक अपने आदमी को भेज दिया। हमारा रास्ता अधिकतर उतराई का था, चढाई नाम की थी, और जाना था पगडडी से। सडक से जाने पर बहुत चक्कर लगाना पडता। गोरखो का एक गाव मिला, जहाँ पेन्शनर नेपाली बस गए थे। फिर एक-दो और गावडो मे होते धर्मशाला से खजियार जाने वाली मोटर सडक पकडी। एक आदमी ने नीचे उतरती पगडण्डी को दिखला दिया और बतलाया कि नजदीक ही खेत म वे चट्टाने है। बहुत भटकना नही पडा। हम खेतो के बीच से उभरी उस चट्टान के पास पहुँच गए जिस पर अभिलेख है। यहा कृष्णयश ने आराम (भिक्षु विहार) बनवाया था। वस्तुत चट्टान दाडी म है, लेकिन मशहूर है खजियार के नाम से क्योकि वह बडी बस्ती

है। किसी समय यहाँ भिक्षुओ का आवास था। पठियार मे पुष्करिणी थी, और लेख से पता नही लगता कि उसके साथ कोई विहार था या कोई और धार्मिक आश्रम। पर यहाँ तो आराम साफ लिखा हुआ था। यद्यपि इसका अर्थ उद्यान भी होता है, लेकिन उस काल मे बौद्ध विहारो का आमतौर से आराम कहा जाता था तभी इतने महत्वपूर्ण लेख के लिखवाने की जरूरत थी। हम दोनो वहाँ से लौटकर फिर उसी जगह सडक पर पहुँचे, और उसके साथ ऊपर की ओर बढते सूर्यास्त के बाद धर्मशाला पहुँच गए। जनकलालजी का एक नेपाली साहित्यकार का पता मालूम था, इसलिए वह उसी रात उनसे मिलने श्यामनगर मे चले गए। वह वहाँ से सवा १० बजे रात को लौटे। इसी बीच 'तालिब' साहब किसी से सुनकर अपने एक मित्र के साथ आ गए थे जिनसे देर तक बातचीत होती रही। और भी कितने ही सज्जन आए। मालूम हुआ, हमारे आज के कथानायक को ब्रिज से फुरसत नही रहती और एक मन्त्री साहब की लडकी इनके बेटे से ब्याही जाने वाली है। 'सैंया भये कोतवाल, अब डर काहे का।"

डलहौसी—तडके पठानकोट जाने वाली बस ५ बजे मिलती थी। ५६ मील का रास्ता था। हमने जाकर उसी को पकडा। रास्ते मे नूरपुर मिला। यहा के राजा ने बादशाह नूरुद्दीन जहाँगीर के प्रति भक्ति दिखाने के लिए इसे धमरी से बदलकर नूरपुर कर दिया था। तो भी धमरी (धर्मगिरि) बहुत दिनो तक लोगो के मुह से छूटा नही। १८वी सदी के अग्रेज यात्रियो ने भी इसी नाम को स्मरण किया है। कहते है पहले राजधानी पठानकोट मे थी। मैदान मे होने से वह शत्रुओ से उतनी सुरक्षित नही थी, इसलिए उसे यहाँ लाया गया, और एक चट्टान पर किला बनाकर वही राजधानी बस गई। धर्मगिरि का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से हो, यह कोई निश्चय नही है लेकिन, हो भी सकता है क्योकि दूसरे लोग अपने देवताओ के नाम पर नगरो का रखना ज्यादा पसन्द करते जबकि बौद्ध धर्म के दास होना चाहते है। पठानकोट से पठानो या अफगानो का अर्थ नही समझना चाहिए। मुस्लिम इतिहासकारो ने भी इसका नाम पठन बतलाया है, जो प्रतिष्ठान का अपभ्रंश है। कोट तो किले के कारण उसके साथ जोड दिया गया। यह सबसे उत्तर का प्रतिष्ठानपुर था। दूसरा प्रयाग के सामने गगा पार झूसी

भी प्रतिष्ठान था, और तीसरा महाराष्ट्र म औरगावाद से दक्षिण गोदा वरी के किनारे आज भी पैठन के नाम स मशहूर है, जो आध्र राजाओ की राजधानी रहा। आय-असुर या दिवोदास शम्बर क युद्ध के समय इस नैसर्गिक पहाडी किले पर जरूर शम्बर के सौ दुर्गों म से यह एक रहा होगा। विशेषकर यही स पहाडो म घुसने का रास्ता होने स इस स्थान का महत्व ज्यादा था। हमने चाहा, फोटो ल लें, लेकिन सभी ड्राइवर एक तरह क नही होते। एक मिनट के लिए भी फुरसत नही थी सीधे जाकर अड्डे पर जरा देर के लिए ठहरे, सवा ८ बजे पठानकोट पहुच गए।

विभाजन के बाद पठानकोट बहुत बढ गया है। पहले इसका महत्व चम्बा और कागडा मडी जानेवाली सडको के कारण था। अब यह पाकिस्तान की सीमा क नजदीक होन से भारी सैनिक छावनी है और पश्चिमी पाकिस्तान से आए लोग भर गए है। कश्मीर जाने का रास्ता भी यही से जाता है इसलिए व्यापारिक सुभीता ज्यादा है इसे कहने की आवश्यकता नही। अप्रल के अन्त म पहाड से बिल्कुल नीचे मैदान मे बसी इस बस्ती की गर्मी का क्या पूछना ? पर हम आध घण्टे से ज्यादा ठहरने की जरूरत नही पडी और कुछ नाश्ता करके हम पौने ६ बजे डलहौसी की बस से चल पडे। मैदान पार कर पहाड में घुसे, फिर चक्कर काटते, ऊपर से ऊपर चढते ४५ मील जाकर बनी खेत म पहुँचे। अच्छा खासा बाजार है। यहाँ से एक रास्ता चम्बा को जाता है, और दूसरा पाच मील पर डल्हौजी को। हम उसी गाडी से डलहौजी चले गए। एक झाकी करनी थी। मुझे हिमालय की पुरियो मे डलहौसी सबसे अधिक सुन्दर मालूम हुई। इसका कोई कोना हरियाली से खाली नही। विशालकाय देवदार जगह जगह खडे थे। दोपहर का समय था, लेकिन गर्मी का कही भी पता नही था। डलहौसी को यह लाभ है कि यहाँ फौजी छावनी है। सीमान्त के पास होने क कारण यह आबाद रहगी इसकी भी पूरी आशा है। आजकल जर्नेल साहब आने वाले थ, इसलिए सनिको न तोरण बदनवार लगा रखे थे। अड्डे पर जाकर हमने सामान एक भोजनालय क पास रखा और सोचा बस के लौटन म तीनघटे की देर है। तब तक डल्हौसी को देख लें। १ बजे हम पहुँच थे। 'शत विहाय भोक्तव्य"—पहले पेट पूजा की, फिर चल नगरी को दखने।

चौरस्त पर पहुँचे। अग्रेजो ने लदन के अपने प्रिय चौरस्ते का नाम इसे देकर चेरिंग क्रास बना दिया था। कुछ नीचे उतरकर मुख्य बाजार म पहुचे। दरोदीवार से हसरत बरस रही थी। ३० अप्रैल गर्मी का दिन था। विभाजन से पहले होता तो अब तक यहा हजारो सैलानी आ गए होते। आधी दूकानो म ताला बन्द था। लोगो ने बतलाया, १९४७ स इनका ताला कभी नही खुला। एक प्रौढ पुरुष कह रहे थे—"यहाँ हिन्दू थे, मुसलमान थे। सब आते थे। डलहौसी गुलजार थी। अब तो बाजार की बहुत सी दूकानें सालो से बन्द हैं।" हमने भी देखा, छतो की स्लेटे टूट गई थी कोई ठीक करने वाला नही था, बरसात का पानी घर के भीतर जाता होगा। मसूरी की दुरवस्था पर ही हम झँखते थे, लेकिन वहाँ बाजार म तो हमने ऐसी हालत नही देखी। कभी यहा धर्म के नाम पर सिरफुटौवल होता थी, मस्जिद के सामने बाजा नही बजना चाहिए। आज जाय, अनाय, सनाय सभी मन्दिर सूने पडे अपने भाग्य के लिए रो रहे थे।

कितनी ही दूर और चक्कर लगाकर फिर हम मुख्य पर्वत की परिक्रमा मे निकले। जमादार झाडू लिए सडक साफ कर रहा था। इसे आदतवश ही कहना चाहिए, क्योकि सडको पर तो अब आदमी कम ही चलते थे। वह रहा था—"क्या पूछते हैं? डलहौसी की शोभा तो साहब लोगो के साथ चली गई।" साहब लोगो के जाने के लिए अफसोस करनेवाले लोग बिलासपुरियो म काफी मिलेंगे। एक और आदमी मिला। वह कुछ आशावान् था। कह रहा था—अगले महीने (मई) के अन्त मे बहुत लोग आएँगे। बहुत क्या खाक आएँगे? परिक्रमा करते घूमे, फिर अड्डे पर पहुँच गए। ४ बजे के करीब बस मिल गई। लौटते वक्त मालूम हुआ, भारत के महासेनापति राजेन्द्रसिहजी आ रहे है, उन्ही की स्वागत की तैयारियाँ हो रही है। बनीखेत मे आकर चम्बा की मोटर पकडी। अभी बसें मिरम्मी चीज थी, चाहे वह सरकारी बसें ही क्या न हो। समय की कोई पाबन्दी नही। ड्राइवर बहुत कुशल था। वस्तुत यहाँ से चम्बावाली सडक मोटर के लिए उपयुक्त नही थी। बहुत सकरी और उतराई भी तेज थी। सबसे अमल बात यह थी कि ड्राइवर के दो मित्र उसकी बगल म बैठ गए और निद्वन्द्व बात करने लगे। यह आराहिया के प्राण के साथ खेल करना था। फिर

क्लीनर ने मोबिल आइल का खुला डब्बा हम लोगो के बीच मे लाकर रख दिया। कपडे खराब हो उसकी बला स। सवारियो के अतिरिक्त नौ मन साग-सब्जी के बक्स भी भर थे। रास्ते म जब चम्बा १४ मील रह गया, तो एकतरफा होने के कारण गाडियो को रुकना पडा। मुझे मोबिल आइल और ड्राइवर से बात करना बहुत बुरा लगा। मैंने शिकायत की किताब मांगी। ड्राइवर ने कहा—"हमार पास नही है। खून का घूट पीना पडा, लेकिन आगे वह बहुत नरम पड गया। अपन आदमी को डॉटकर मोबिल आइल का डब्बा वहा स हटवा दिया। ऐसे बुरे रास्ते से चढकर साढे ८ बज रात चम्बा पहुँचाने म जिस कौशल का उसने परिचय दिया उससे सारा गुस्सा हट गया। चम्बा म नेगी ठाकुरसेन डिप्टी कमिश्नर थे। १९४८ का उनसे काफी परिचय था। पीछे भी चिट्ठी पत्री होती रहती थी। लेकिन, डिप्टी-कमिश्नर का बगला अर्थात् पुरान अंग्रेज सर्वेसर्वा का महल न जाने कहाँ होता, और रात म जाकर तक्लीफ देना पडता इसलिए हम वहाँ नहीं गए, और प० जयवन्तराम का मकान पूछते उनके घर पर पहुँचे। घर पर उनके भाजे श्रीनिवासजी मौजूद थ। उन्होन एक साफ-सुथरे कमरे म ले जाकर ठहराया। मकान बहुत अच्छा था लेकिन भारतीयो के स्वभाव क अनुसार पाखाने का पूरी तौर स गन्दा रखना, और दूर भी होना जरूरी था। डाय-बेटीज के मरीज का पेशाबखाने का दूर होना शामत की बात है।

चम्बा—२८ अप्रेल का सवेरा आया। आसमान साफ देखकर बडी प्रसन्नता हुई। फोटो लेने के लिए और लोगो से मिलने के वास्ते भी अच्छे मौसम की आवश्यकता होती है। डाकखाने म कमला की तीन चिट्ठियाँ मिली। मैं रास्ते स आधा दजन चिट्ठियाँ लिख चुका था, लेकिन उन्हे सिर्फ एक मिली। यह जानकर चिन्ता दूर हुई, कि जया अब अच्छी तरह है। पहले हम डिप्टी-कमिश्नर नेगी ठाकुरसेन स मिलने गए। उन्होन कहा—'हमारे यहाँ आइए।" यद्यपि चम्बा क बारे म अधिक सहायता उन्हीसे लेनी थी, जिसम यहाँ आन पर सुभीता होता, लेकिन हमने यह कहकर क्षमा प्रार्थना की कि अभी तो यही रहन दें, भरमौर स लौटकर आपके यहाँ ठह-रंगे। जिले के भिन्न भिन्न विषयो सम्बन्धी आँकडो को जमा करने का जिम्मा उन्होंने ले लिया। नेगी ठाकुरसेन दूसरी ही तरह क अफसर है, ज

आजकल के नौकरशाहों में दुर्लभ हैं। वह चाहते हैं, जनता की हालत बेहतर हो। जहाँ सारी मशीन बिगड़ी हुई है, वहाँ एक आदमी क्या कर सकता है? लेकिन, पुरुषार्थी हाथ पैर ढीले करके बैठा तो नही रह सकता। उन्होंने कनौर के दुर्गम पहाड़ी इलाके मे जन्म लिया। कृषि में बी० एस-सी० किया और ये दोनों गुण जन सेवा के लिए बहुत उपयोगी हैं। ब्याह नहीं किया, कि उससे हमारे काम में बाधा होगी। लड़ाई के दिनों में नौसेना में कुछ साल रहे, इसलिए फौजी अफसरों का अनुशासन भी है। पहाड़ में पैदा होने का यह मतलब नही, कि हरेक आदमी पक्षियों की तरह उड़ते हिमालय के दुर्गम पथों को पार करेगा। चम्बा से भरमौर होकर सीधे लाहुल जाने की एक जोत की कठिनाई के बारे में मैं पढ़ चुका था। नेगी साहब ने कहा, कृषि कालेज मे पढ़ते समय मैं इस रास्ते गया था।

चम्बा बहुत पुराना नगर है। समुद्रतल से ४००० फुट से नीचे ही है, लेकिन मैदान से बहुत दूर तथा अक्षांश में भी अधिक उत्तर होने से यह मसूरी और शिमला के पहाड़ों की ऊँचाई के स्थानों जैसा सर्द है और यहाँ हर साल बर्फ पड़ जाया करती है। यहां पुराने मन्दिरों की एक पाँती है, जिसमें लक्ष्मीनारायण, लालपा, हरिराय चम्पेश्वरी के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। न जाने कितनी बार मूर्तिभंजक यहां आए, नगर को लूटा और मूर्तियाँ तोड़ी। पुरानी खण्डित मूर्तियां अधिकतर रावी लाभ कर चुकी हैं। तो भी कुछ देखने में आई। मन्दिर शिखरदार अपने पुराने युग के कौशल के प्रतीक हैं। १२ बजे तक घूमते, फोटो लेते, लोगों से बात करते नगरी में घूमे। नगर से बाहर एक टकरी पर चामुंडा का मेला था। देखा, स्त्रियाँ झुंड की झुंड जा रही है। यह स्त्रियों का ही मेला है। चम्बा की स्त्रियां अधिक सुन्दर और अपने पशवाज (पेशवाज) में बड़ी खिलती थीं। यह पशवाज मुगल संस्कृति का प्रतीक है। पुराने समय में यहाँ भी दाड़ू (ऊनी चादर) पहनी जाती थी। फिर रानियों ने मुगलानियों की तरह पशवाज पहनकर दूसरों को रास्ता दिखलाया। राजस्थान में भी भद्र महिलाएँ घाघरा-लुगड़ी नहीं पशवाज पहना करती थीं। लौटकर भोजन किया। फिर निकले। डाकखाने के सामने बहुत बड़ा मैदान है। डाकखाने के पास भी एक पुराना मन्दिर है और डाकखाने से करीब करीब सटा ही प० जयवन्तजी का निवास।

चम्पेश्वरी का मन्दिर देखने गए। राजकन्या चम्पा के नाम पर नगर का नाम चम्पेश्वरी पडा। चम्पा किसी सिद्ध के सत्सग म जाया करती थी। राजा को अपनी पुत्री पर सन्देह हो गया और उसका अत्यहित कर बैठा। पीछे सच्ची बात मालूम हुई, तो उसने पुत्री के नाम पर बसाई इस नगरी मे अपनी राजधानी कायम की।

चम्बा भारत के उन स्थानो म है, जहाँ सबसे अधिक पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई है, और जिसके राजवश से पुराना भारत मे कोई राजवश नही। यहाँ का शासन अधिकतर अग्रेजो न किया, हाँ, राजा का दीवान होकर। उन्होने जगलात का अच्छा प्रबन्ध किया। मोटर की तो नही, लेकिन दूसरी सडके बनवाइ, डाकबगल तयार किए स्कूल और अस्पताल खोले। इन्ही म यहाँ का भूरीसिंह म्युजियम भी है, जिसमे बहुत-सी मूर्तिया और उनसे भी महत्वपूर्ण ताम्रपत्र सुरक्षित हैं। पुस्तके भी काफी जमा की गई थी, लेकिन उनम से बहुत सी उड गई है। मुझे बतलाया गया कि पिछले साल ही एक प्रभावशाली नेता वहाँ पहुँच और पुरातात्विक महत्व की एक पुस्तक देखन के लिए ले गए, आज तक वह लौट रही है।

२६ अप्रल को फिर म्युजियम मे गए। वहाँ चित्रो और कितने ही अभिलेखो के फोटो लिय। कुछ दुलभ पुस्तको से भी फोटो उतारे। शाम के वक्त फिर म्यूजियम म गए। वस्तुत यहाँ इतना चीज देखन और पढने की थी, जिनके लिए दो हफ्त भी पर्याप्त नही होते। शिक्षित तरुण मण्डली को हमने अपने आने का पता नही दिया था। लेकिन, हिमाचल म उर्दू की अपेक्षा हिन्दी ज्यादा प्रचलित रही है, इसलिए शायद ही ऐसा कोई शिक्षित तरुण हो जिसने मेरी एकाध पुस्तक न पढी हो। उस दिन रात के १२ बजे तक हमारे यहा तरुण आते रहे।

भरमौर—कम से कम चम्बा की पुरानी राजधानी भरमौर को देख लेना हमने अत्यावश्यक समझा। वैसे जब तक चन्द्रभागा के तीर के पगी-लाहुल इलाके को आदमी न देख ले, तब तक यहाँ की प्राकृतिक सुषमा का अन्दाजा नही लगा सकता। पर वह हफ्तो का काम था, जिसके लिए हम तैयार नही थे। नेगी साहब ने दो घोडो का प्रबन्ध कर दिया, और वह शाम को ही मोटर के अन्तिम अड्डे राख के लिए रवाना हो गए थे। किसी ने

कहा अँधेरा रहते मोटर जाती है, इसलिए हम साढे ५ बजे ही अड्डे पर पहुँच गए। बस सवा ६ बजे रवाना हुई। रास्ते के बारे मे क्या पूछना ? कामचलाऊ सडक थी, जिस पर भी मोटरो को रामभरोसे चलाया जाता। शहर से कोई पाच मील गए होगे। गाडी साधारण गति से जा रही थी। मैं ड्राइवर के पास बैठा था। देखा गाडी दाहिनी ओर जा रही है। ड्राइवर बतेरी कोशिश कर रहा था। लेकिन, इस बात के कहने के लिए मैं जितना समय लूगा, उतना समय नही लगा। क्या एसा हो रहा है अभी यह सोचने के लिए दिमाग तैयार ही हो रहा था कि बस करवट बैठ गई। ड्राइवर चक्के मे फँसा था लोग एक दूसरे के ऊपर थे। ड्राइवर का तो होश ही ठिकाने नही था। मैंने कहा—"निकलो भी तो।" बाए वाली खिड़कियाँ आसमान देख रही थी। कुछ उससे बाहर आए। लोगो को भी पकड पकड-कर निकला। आज क्या किसी के बचने की उम्मीद हो सकती थी ? पहाड मे सडक छोडकर बस गिरे और एक भी आदमी क्षत शरीर न हो ? मैं अपने को अक्षत शरीर समझता था, लेकिन पीछे देखा पैर मे एक जगह कुछ छिल गया है, जिससे जरा सा खून भी निकला है। सब लोग अपने अपने देवताओ को मनाने लगे। जब सब उतर आए, तो हमने समझा यहाँ इन्तजार करने की जरूरत नही है क्योकि चम्बा से जल्दी किसी के आने की उम्मीद नही है और हमारे लिए ६ साढे ६ मील आगे रास्ते मे घोडे इन्तजार कर रहे है।

श्री विद्याधर एम० एल० ए० भी हमारे सहयात्री थे। वह भी साथ चलने के लिए तैयार हो गए। भगवान् को धन्यवाद देते थक नही रहे थे। सचमुच प्राण बाल बाल बचे थे। उस समय ही रामनाम सत् हो जाता, तो मेरी कितनी ही पुस्तके लिखने को रह जाती। जीवन और मरण की चिन्ता मे मरे जाना मेरे लिए घृणा की बात थी। मैं किस भगवान् को धन्यवाद देता, जब जानता हूँ कि वह कभी न था और न है। विद्याधरजी के साथ बात करते हम रास्ते पहुचते पता नही लगा। वहाँ साईस घोड लिए हुए तैयार थे। सोचा, यहाँ से कुछ नाश्ता-पानी करके चलें। जरा सुस्ताते हो दूसरी बस मे पुलिस और मोटर सर्विस का एक अफसर आ पहुँचा। स्थर लाला बबमूच द बिना भोजन कराए जाने देने के लिए तैयार नही थे। हमने

एक दूसरे ग्रीवर स भोजन बनाने के लिए कह दिया था, उसे मना करना पडा। पुलिस न वस-दुघटना के लिए लोगो के बयान लिए। मैने बतलाया—कसे पहिये की बात न मानकर दाहिनी ओर चले और ड्राइवर सब करके हार गया। वस्तुत ड्राइवर का कसूर नही था। इन पहाडो म स्टियरिंग और ब्रेक का दुरुस्त रहना हर बस के लिए अनिवाय हाना चाहिए, लेकिन इसकी तरफ ध्यान नही दिया जाता। इस साल (१९५६ ई० मे) इसी तरह एक बस हिमाचल प्रदेश म गिरी, जिसके सभी आदमी मर गए। हमारी बस यदि दस ही कदम ऊपर जाकर बाएँ जाती, तो शायद हममे से एक भी घटना को बतलाने के लिए नही रह जाता। एम० एल० ए० साहब ने भी अपना वक्तव्य लिखा। वह मकान बनवा रहे थे, जिसकी छत के लिए अच्छे किसिम की स्लेटे इधर ही मिलने वाली थी, उसी का इन्तजाम करने क लिए जा रहे थे। मकान बनना बदा था, इसीलिए विद्याधरजी बच गए, किसी भगवान् ने उन्हे नही बचाया।

लाला बक्खूचन्द राख के बडे दूकानदार है। अब हम कहते है कि बनिये खून चूसने वाले ह, लेकिन सनातन स वह न अपने को एसा समझते थे और न दूसरे। शास्त्र कहता था "लक्ष्मी वसति व्यापारे।" इनमे खून-चूस मक्खीचूस भी थे, और सरल श्रद्धालु दयालु लाग भी। लाला बक्खूचन्द ऐसे ही सरल-श्रद्धालु पुरुष थे। हम ही नही, उन्होने और भी कितनो को चाय पानी या भोजन से तृप्त किया हागा। हम भोजन करके घोडे पर चढे। कुछ मील जाने पर रावी के बाएँ किनारे से दाहिने किनारे जाना पडा। यहाँ के सोफियाना (हलके फुलके) झूलो को देखकर प्रसन्नता होती थी—इतने कम खच म पुल के बन जाने पर कही पर भी उसका बनना आसान है। मोटे लोहे के तार थे, उसके नीचे पट्टियाँ लटक रही थी। लेकिन, बीच मे पहुँचने पर जब 'वाले र चिनगिया" होने लगता अर्थात् पैर दाहिने बाएँ नाचने के लिए तैयार होत तो इस पर विश्वास करना मुश्किल हाता कि हम उछलकर रावी मे पहुँच नही जाएँगे। ऐसे समय "जो भी हो" कहकर आगे चलना ही अच्छा होता है। आगे की बस्ती मे श्री विद्याधरजो लाला के यहाँ बात कर रहे थे। वहाँ थोडी देर ठहरना पडा। हम फिर रवाना हुए। राख से १६ मील चलकर दुरगडो म पहुँचे। डाकबगला यहाँ पर था,

इसलिए खटमल पिस्सू स बचने की उम्मीद थी, नही तो यहाँ न कोई दूकान थी, न और आराम। सरकारी घोडे थ, दाना पास म था, और घास चौकीदार न मुहैया कर दी। साईसा ने खाना भी बनाया। जनकलालजी को उपवास करने की जरूरत नही पडी।

भरमौर—भरमौर अब ११ मील रह गया। पहले दिन हम अधिकतर पैदल ही आए इसलिए आत्मविश्वास बढ गया था। १ मई को साढे ५ बजे हम घोडे वाला का जल्दी आने के लिए कहकर आगे बढे। रास्त म एक अच्छी दूकान और टिकान देखकर खयाल आन लगा, कल यही आ गए होते तो अच्छा था। और आग हम रावी को पार कर उसके दाहिने तट पर आना पडा। रावी अब छूट रही थी। वेदा की यह परुष्णी बहुत दूर ऊपर से आ रही थी, और भरमौर की नदी यहाँ से नीचे ही रावी म आ मिली थी। भरमौर की नदी छोडकर यहाँ पहाड को पार करने का यही मतलब था कि नदी ने पत्थरा से ऐसे काटा था कि जहा रास्ता नही बनाया जा सकता। लेकिन आज के डाइनामाइट के जमाने मे पहाड बेचारे क्या कर सकते हैं ? सवाल है रुपया का। हिमाचल सरकार ने भरमौर तक मोटर-रास्ता बनाने की सब नाप-जोख कर ली है। पुल पार करते ही चढाई आई। अनेक कचियो को पार करती दो मील की सख्त चढाई है। हम ठहर गए। देखा घोडे भी आ रहे है। सोचा चढाई भर तो उनका इस्तेमाल कर लेना चाहिए। घोडे आए, फिर हम उन पर चढकर चले। चढाई पार कर लेने पर गेहर का एक छोटा सा गाँव मिला। मटमले पानी के कुण्ड से हम कोई लाभ नही उठा सकत थे। उसके एक ओर लडको का स्कूल था, और दूसरी तरफ एक शरणार्थी भाई ने छोटी सी दूकान खोल रखी थी। हमने यही कुछ चाय पानी किया। मालूम नही था कि भरमौर म चीजा के मिलने की बडी दिक्कत है नही तो यही से कुछ साथ ले चल होते। घोडे पर चढकर रवाना हुए। डेढ मील रह जाने पर भरमौर गाँव दिखलाई पडा। भरमौर को बरमौर भी कहते हैं, पर वस्तुत ब्रह्मपुर का बिगडा हुआ रूप है। इस भूभाग का वह राजधानी रहा। राजधानी बनने क बाद आज से हजार ग्यारह सौ वष पहले इस राज्य का नाम चम्बा पडा। पहले क्या नाम था ? शायद ब्रह्मपुर ही कहा जाता होगा। इसक पूर्वी पडोसी कुल्लू

का नाम कुलूत तो प्राचीन काल से मशहूर है। आजकल भरमौर म नापी हो रही थी। शायद बाकायदा नापी पहली बार की जा रही थी। रास्ते म एक दो गाँव मिले घरो के दरवाजे अधिकतर बन्द थे। बरमौर के लाग गद्दी कहे जाते हैं और इलाका गदियान। गद्दी किसी एक जात का नाम नही है। इनम ब्राह्मण अ ब्राह्मण सभी शामिल है। भेड-बकरिया पालना जीविका का एक प्रधान साधन है। भरमौर के खेत उन्ह अपने काम भर के लिए अनाज और जरूरत से ज्यादा आलू दे देते है। ७ ८ हजार फुट की ऊँचाई पर यहाँ के गाँव हैं। जाडा म यहा चारा आर कई फुट मोटी बफ पड जाती है। उस समय लाग यहाँ रहना पसन्द नही करते। पशुआ के लिए चारे की तकलीफ हाती है और प्राणिया का काम नही रहता। इसीलिए पशु प्राणी भारी सख्या म नीचे जात हैं। गरीब स्त्रियाँ भटियात (निम्न रावी-उपत्यका) क गृहस्था के घरा म चावल कूटती, मेहनत मजूरी करती हैं। पुरुष भी कुछ काम करते है। अधिक पशु वाले उन्ह जगला म ले जाकर चराते हैं।

मई महीना आने पर, भरमौर उपत्यका का अधिकाश बफ से मुक्त हा जाता है। उस वक्त गद्दी परिवार अपने गावो की तरफ लौटते हैं। स्त्रियाँ पीठ पर सामान लाद पुरुष भी मन डेढ मन का भार उठाए अपनी गाय या किसी दूसरे पशु को हाकते ऊपर चलत हैं। हमे वह रास्त म मिल रह थ, लेकिन यह सबसे पहले का काफिला था। गद्दी बहुत सद जगह मे रहते है, इसलिए स्त्री पुरुषो का सारा कपडा ऊनी हाता है। उनकी कमर मे ४० ५० हाथ की काली रस्सी लिपटी रहती है। नजदीक से देखन पर उसकी कला का पता लगता है। मालूम होता है नरम काले ऊन को जमा दिया गया है जो देखन म मखमल जैसा मालूम होता है। गद्दी बच्चा भी चोगा पहनत ही रस्सी बिना नही रह सकता। एक गद्दी मित्र ने बतलाया, शिवजी महाराज ने वरदान दिया कि जब तक कमर म यह रस्सी बँधी रहगी, तब तक तुम्हारी भेडें काबू म रहगी। मैंने भी कहा—' हजार हजार भेडा का एक चरवाहा कसे सँभाल सकता है ?'' उसन कहा— 'हा इसीलिए हम लोग रस्सी कमर म बाध करके रखत है नही ता हजार भेडे हजार आर चली जाएँ और हम कही के न रह।'' गद्दी अपने जाडो की कमाई को बरतन

भांडे या किसी और रूप में बदल लेते हैं। बीते युगों में उनके लिए काम का सुभीता अधिक रहा होगा पर जब भटियात में खुद भुक्खड़ कमकर मौजूद हैं। लोग अपने घरों में लौटे नहीं थे, इसीलिए बहुतों में ताले लगे हुए थे। रास्ते में हमने वन विभाग की तत्परता भी देखी। एक जगह चार चार पाँच पाँच हाथ वाले देवदार के हजारों अमालों का जंगल था। जैसे मनुष्यों और पशुओं के बच्चे प्यारे लगते हैं वैसे ही ये अमाले भी लग रहे थे।

साढ़े ११ बजे हम गघेरन (गदियान) की राजधानी में पहुंच गए। यहां डाकबँगला, अस्पताल, डाकघर, मिडल स्कूल पुलिस चौकी, नायब तहसीलदारी है। तहसीलदारी पुरानी कोठी में है। आफिस इतने हैं, लेकिन खाने पीने की चीजों की लोगों को बड़ी तकलीफ है। मुमकिन है हम पहले आए थे। मई के अन्त तक, जब सभी घरों में लोग आ जाएँगे, तो हालत बेहतर होगी। नागा बाबा ने यहाँ अपनी सेवाओं से अच्छा नाम कमाया है। लेकिन वह पिछले प्रयाग के कुम्भ में गए, तो अभी तक नहीं लौटे थे। हमारे पास सामान तो बस इतना ही था कि ओढ़ने के लिए एक दो कम्बल थे। मौसिम का कोई ठिकाना नहीं था, इसलिए पहले मन्दिरों के दर्शन और फोटो लेने का काम खतम कर लेना चाहते थे। भरमौर जैसे भारत में बहुत कम स्थान हैं जहां कि इतनी पुरानी धातु की मूर्तियां सुरक्षित हों। इससे यही पता लगता है कि रास्ते की कठिनाइयों को जानकर मूर्तिभंजक यहाँ कभी नहीं पहुँचे। बीच में हरिहर का शिखरदार विशाल मन्दिर है, जो वस्तुतः शिव जी का मन्दिर है। उसके सामने नरसिंह का मन्दिर उससे कुछ छोटा है। दोनों के बीच में शंकरजी की ओर मुंह किये पीतल का (करीब करीब पहाड़ी सांड के कद के बराबर का) सांड खड़ा है जिसके ऊपर गुप्ताक्षर में लेख है। अभिलेख से मालूम होता है इसे मेरुवर्मा ने बनवाया था—

"ओं। प्रासादमरुसदृशं हिमवन्तमूर्ध्नि कृत्वा स्वयं प्रवरकर्म्मशुभरनेक तच्चन्द्रशालरचित नवनाभ नाम प्राग्ग्रीवकर्वविविधमण्डपनैकचित्रं ।
तस्याग्रतो वृषभपीनकपोलकाय सश्लिष्टवक्षःककुदोन्नतदेवयानं,
श्रीमेरुवर्म्मचतुरादधिकीर्तिरेषा मातापितुः सततमात्मफलानुवृद्ध ॥"

मेरुवर्मा सातवीं शताब्दी में मौजूद थे। लक्षणादेवी के मन्दिर में देवी की लेखयुक्त पीतल की मूर्ति है गणेश की पीतल की मूर्ति भी बड़ी भावपूर्ण

है। पाशुपत लकुलीशो का किसी समय यहाँ गढ था, यह उनके शिवलिंग बतला रहे थे। तहसीलदार साहब ने हमारे भोजन का प्रबन्ध किया, जो इस जगह की बेसरो सामानी को देखकर तकलीफ देना ही था। अगर हम ऐसा जानते, तो चम्बा या रास्ते से अपने साथ कुछ सामान ले आते। भरमौर गाँव बहुत बडा नही है। सभी गद्दी लोग है, जिनमे ब्राह्मण, क्षत्री और लोहार तीनो शामिल हैं। ब्राह्मण भारद्वाज गोत्रवाले है। जान पडता है सगोत्र व्याह इनके यहाँ पहले से चला आया है। शुद्ध खश चेहरा मोहरा दिखलाई पडता है। खशो का स्वच्छन्द जीवन भी यहाँ देखने मे आता है। क्या न हो, जबकि अब भी यह लोग मेषपाल होने के कारण अर्ध घुमन्तू जीवन व्यतीत करते है। गद्दी अपने भेडो को लेकर बुकयालो (१२०० फुट से ऊपर वाले पर्वतपृष्ठो) को ढूढते जम्मू से कुमाऊँ तक का चक्कर लगाते है और आज से नही, बल्कि सैकडो वर्ष से। गर्मी-बरसात के दिनो मे जब उनके घर आबाद होते है, तब भी घर के आधे लोग भेडो के साथ रहते हैं। भेडो के ऊन को बेचना उनकी जीविका का प्रधान साधन रहा है। जब से बकरिया का दाम बढ गया है, तब से उन्होने उनकी ओर ज्यादा ध्यान दिया। डर लगता है, कही बकरिया भेडो को खा न जाए। लाखो भेडो को पालने वाले यह गद्दी उनकी नस्ल सुधारने मे बडे साधक हो सकते है। उनकी तरफ यदि ध्यान नही दिया गया, तो आर्थिक लाभ और सघर्ष उन्हे मेषपाल से अजपाल बना देगा।

भरमौर उपत्यका इस वक्त अपने सौन्दर्य को पूरा प्रकट नही कर रही थी क्योकि अभी हिमकाल का अन्त था और वसत नही आया था। जाडो के पहले के बोये गेहूँ के खेत मुरझा रहे थे। लोग त्राहि त्राहि कर रहे थे। इस समय कुछ बरस जाना चाहिए। सौभाग्य से उसी रात वहा कुछ वर्षा हो गई, जिससे किसानो की जान मे जान आई। हम यहा जो कुछ करना था वह १ मई को खतम हो गया। २ मई को आसमान मे बादल घिरे हुए थे, इसलिए फोटो लेने का कोई काम नही हो सकता था। गाव तो कल ही घूम आए थे और वहा के वृद्धो से कुछ बाते भी जमा कर ली थी। गद्दी लोगो का विश्वास है कि शकर हमारे है, और हमारी तरह वह भी गद्दी है। एक ओर वह हिमाच्छादित शिखर भी दिखलाई पडता है, जिसे मणि-

महेश कहते है और जहा अपनी गदियानी के साथ शकर बराबर रहते हैं। लोग सावन के महीने म वहा मेले के लिए जाते है। यहाँ के शकर बकरे की बलि लेते ह, जबकि मैदानी शकर जबदस्ती घासाहारी बना दिए गए हैं। शकर पावती के बहुत से गीत गद्दी लोगो के पास हैं। सभ्यता और शिक्षा से दूर रहने के कारण मानवतत्वीय अनुसधान के लिए उनके पास बहुत सामग्री है। नाच गाने का उन्ह बहुत शौक है। पुराने युग की तरह कन्या शुल्क बडी कडाई से वसूल किया जाता है। जो अपने भावी ससुर को पैसा नही दे सकते, वह बचपन ही से कई वर्षों के लिए ससुर के चाकर बन जाते है। निश्चित समय पर लडकी से ब्याह कर वह अपने घर जाते है।

पुन चम्बा—२ मई को रविवार का दिन था। अपने कृपालु मजबाना को अनेक धन्यवाद देते हम ५ बजे ही वहाँ से चल पडे। गेहरे म पहुच कर शरणार्थी भाई के यहा साथ लाए भोजन का खाने के लिए ठहर गए। यहाँ तक घोडे पर आए थे, उतराइ म उनकी काई जरूरत नही थी। हम पौन बजे चले और सवा ४ बजे राख पहुँच गए। डर था चम्बा जाने वाली बस चली न जाय और हम रात को वही न रुक जाना पडे। बस हमारे आने के बाद आई। इस भूभाग म पशुपालन जीवन प्रधान दो जातियाँ हैं—गद्दी मेषपाल है, और शिवजी के अनन्य भक्त, और गूजर भैंसपाल, और सभी मुसल्मान है। हाल म गूजर अब कुछ कुछ बसने लगे हैं, नही तो गर्मी बरसात मे ऊपर के पहाडी चरागाहो म वह अपनी भैंसे ले जाते और जाडो म नीचे के जगलो म रहते। गढ़वाल, कुल्लू सभी जगह ये फैले हुए हैं। हिंदू मुस्लिम झगडे म इन्ह भी कुछ नुकसान पहुचा, लेकिन वे पाकिस्तान जाने के लिए तयार नही हुए। इनके पास अच्छी भैंसें होती हैं। बहुत बढ़िया भैंसें शायद रख भी न सकते, क्योकि उन्ह दुगम पहाडो म जाना पडता है।

६ बजे चलकर ७ बजे हम चम्बा पहुच गए। रियासती ठाकुरमन साहब के बँगले पर ठहरे। रात को मेरे बँगले के दरवाजे म गुरखे रहते थे तो पहरेदार ने कहा—इधर से रास्ता बन्द है। ज्यूडिशियल कमिश्नर साहब के लिए लोग सडक पर न आने पावें, यह विचित्र भारत का राज्य है।

अब तक चम्बा के साहित्य प्रेमियो को मेरे आने का पता और ... लग गया था इसलिए यहा उनकी गोष्ठी म थी। ... नाम के बाद ...

घम लाइब्रेरी म बालना पडा। इसकी स्थापना १६३६ ई० म हुई थी। अल्पारम्भ से भी समय पाकर काम बडा हो जाता है, यदि कायकर्ताओ म लगन हो। इसका उदाहरण यह पुस्तकालय था। इसम तीन हजार से ऊपर पुस्तकें हैं। १८वी-१६वी सदी के कुछ हस्तलिखित ग्रथ है जिनम 'तत्व-चिन्तामणि" व "व्युत्पत्तिवाद" से मालूम हाता है कि इस पहाड म भी उच्च शिक्षा का लोगा को शौक रहा। एक घर से छन्दशास्त्र पर एक ताल-पोथी आई। ताल पोथी का मतलब है मुस्लिम काल के पहले की पुस्तक। चम्बा म और भी पोथिया मिल सकती है। सुमनजी कवि है। लोक कविताएँ भी करते है और पुरानी पुस्तको के सग्रह करने का शौक रखते है। आज का चम्बियाली भाषा देखकर भ्रम हो सकता था कि वह अब खश भाषावश से अलग है, पर तु उर्दू अक्षरा म चम्बियाली पुस्तक के आधी शताब्दी पहले छपी हचीसन पादरी की चम्बियाली पुस्तक को देखने से मालूम हुआ कि यहा पहले, का, के लिए, रा, और गा, के लिए ला, इस्तेमाल होता था। जैसा कि चम्बा से नेपाल तक अब भी होता है। पजाबी म का के लिए दा और गा के लिए गा रहता है। वह हिन्दी की सहोदरा है, इसे कहने की आवश्यकता नही। चम्बा के निचले भटियात इलाके म भी दा-गा का प्रयोग है और कागडा म भी।

नेगीजी किसानो मे घुल मिल जाना जानते है। उनको कैसे उठाया जाये, बराबर इस पर ध्यान रखते है। इसीलिए वह खूब जनप्रिय हैं। घूमन घामन मे उन्ह आलस नही है इसलिए मुश्किल रास्तो वाले गावा म पहुँच जाते ह। उनसे मुझे अपन काम मे पूरी सहायता मिली, और श्री-निवासजी तो हर तरह से मदद देने के लिए तैयार ही थे।

अमृतसर—४ मई को ५ बजे ही अड्डे पर पहुँचे। बस ६ बजे रवाना हुई। साढे ८ बजे बनीखेत आया। यहा से पठानकोट की बस पकडनी थी। वैसे दिक्कत होती लेकिन नेगी साहब ने टलीफोन कर दिया था, और उसके मिलने मे दिक्कत नही हुई। बनीखेत से पहले बाथडी का अच्छा खासा बाजार मिला था। बस मे एक दुलहन भी बिदा होकर जा रही थी। बनिये की लडकी थी, ट्राय-पर बहुत सँभालकर बैठना था। लेकिन, बेचारी कै करती करती बेसुध हो गई। बनीखेत से आगे एक जगह हमे थोडी दूर

ठहरना पडा। वहा दोनो ओर से मोटरे आकर रुकती हैं, क्योकि एक समय एक ही ओर का रास्ता खुलता है। पौन बज रहा था, जब हम पठानकोट के स्टेशन पर पहुचे। "मई का आन पहुँचा है महीना। बहा चोटी से एडी तक पसीना।" इसे कहने की आवश्यकता नही। जैसे ही पता लगा कि अमृतसर जानेवाली जनता ट्रेन तैयार है, हम तुरन्त कूद पडे। ट्रेन मे पर रखते रखते गाडी चल पडी। हरेक कम्पार्टमेन्ट म दो दो पखे थे, जिनके कारण जान बची। रेल मे कुछ तो सुधार हुआ है। रास्ते मे गुरदासपुर मिला और बटाला भी। गर्मी मे खाने का मन नही करता था। यदि इच्छा होती थी, तो ठण्डे पानी की। अमृतसर ६७ मील ही था, इसलिए ४ बजे हम वहाँ पहुच गये। रास्ते मे पजाब के गाव दिखाई पडे—वे गाव जहाँ हजार वर्ष से हिन्दू मुसलमान एक साथ रहते आये थे। पहले भी कभी कभी दोनो झगड जाते थे। लेकिन अग्रेजो ने उन्हे एक दूसरे के खून का प्यासा बना दिया। मस्जिदे खडी थी। कितने ही के मीनार टूट रहे थे। पजाब भैसो और गायो की अच्छी नस्ल के लिए प्रसिद्ध है। अब भी वहाँ सबसे अधिक दूध घी खाया जाता है। इस वक्त गर्मी मे सारी हरियाली झुलस गई थी। बडे-बडे वृक्षो को छोडकर हरे पत्ते दिखाई नही पडते थे। तो भी दुपहरिया की धूप मे जहा तहा खेतो म ढोर चर रहे थे। अपना बचपन याद आ रहा था, उस समय ऐसी ही धूप मे नगे पैर मैं रानी की सराय के स्कूल म पढने जाया करता था। आज क्या वैसा कर सकता था ?

अमृतसर स्टेशन पर कुछ बुरकावाली स्त्रियो को देखकर सचमुच आश्चर्य हुआ। पजाब मे अब मुसलमान का देखना सपना हो गया है। वही बात पश्चिमी पजाब मे हिन्दुओ के बारे म भी है। दो रिक्शा पर सामान रखकर हम दोनो पहले पजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी गये, क्योकि कुत्तोंवाली गली मे भैया के घर का पता लगाने म मुश्किल होती। भैया दिल्ली गये हुए थे, लेकिन भाभीजी घर पर ही थी। चिट्ठी मैं पहले ही आने के लिए लिख चुका था। अब सारा समय पखे के नीचे गुजारना था। सूर्यास्त के बाद छत को पानी से धोया गया। थोडी देर कुछ गर्मी रही फिर हवा चली। रात बडी सुहावनी थी। मुझे बाहर जाने की हिम्मत नही थी, लेकिन उस दिन भी जनकलालजी अमृतसर का चक्कर लगा आये।

५ मई को १० बजे कुछ बूदा-बांदी हुई। दिन भर जमीन और आसमान आग उगलते रहे। आज भी हमने कही बाहर जाने का नाम नही लिया। दुपहरी तो सबसे निचली कोठरी म पखे के सहारे बितायी। जनकलालजी शहर देखते फिरे। चाय पीने का भी मन नही करता था। साढे १० बजे भैया भी दिल्ली से आ गए, और उनके साथ भाभीजी की बहन कमला भी। एफ० एस-सी० की परीक्षा पिछले साल दी थी। पास हो गई होती तो डाक्टर बनने का रास्ता खुल जाता। मिलने मिलाने के लिए ही हम यहा आये थे, नही तो ठडी जगह के वासी का इस भटठी म आना कब पसन्द हो सकता था। ६ तारीख को भी किसी तरह बिताया। भैया और भाभीजी से कुछ बात करते रहे, कुछ जनकलालजी से। तहखाने म दिन भर पखा चलता रहा। आज जल्दी करते करते ६ बज कर २८ मिनट पर निकल पाये। मैं रेल की ट्रेन के लिए बहुत चौकस रहता हूँ, और एक घटा पहले चलना पसन्द करता हू। यहा रास्ते म सचमुच इतनी भीड लग गई थी कि रिक्शा का आगे जाना मुश्किल हो गया। रेलवे पुल पर पहुँचे तो पता लगा दोनो कमरे छोड आये। यदि जनकलालजी लेने जाते, तो फिर ट्रेन नही मिल सकती। सोचा इस वक्त उनका कोई विशेष काम भी नही है। भाई साहब अपने साथ लेते आएँगे। हवडा मेल म देहरादून का डब्बा लगा था, उसी के तीसरे दर्जे मे बैठ गये। अम्बाला तक सोने की छूट रही, फिर हरद्वार तक भेडियाधसान। अमृतसर म एक लम्बे तिलकधारी आचारी डब्बे मे चढ़े, और "श्रीमन्नारायण नारायण" का इतना जोर का घोष किया कि सारा स्टेशन गूज उठा। मालूम होता है बूढे होकर साधु हुए थे, इसलिए तौर तरीका मालूम नही था।

७ मई को सवेरे ७ बजे अब भी बूदा बादी हो रही थी। रात का भी कही कही वर्षा हुई थी। हरद्वार पहुचने पर अधेरा हट चुका था। सवा ७ बजे हम देहरादून पहुँच गये। शुक्लजी के घर पर शुक्लाइनजी मलेरिया म पडी हुई थी। कृष्णकान्त और कमल आजकल यही थे। यद्यपि गर्मी यहाँ भी थी, लेकिन जिस भट्ठी से अभी अभी हम निकलकर आये थे, उसस इसकी क्या तुलना? १ बजे हम खलगा देखने गये। यही खलगा जहा नेपाली वीर बलभद्र ने अपनी वीरता द्वारा अपने शत्रु अग्रेजो को चकित कर दिया

था। शुक्लजी क घर स यह स्थान बहुत दूर नही है। प्राय सदा सूखी रहनेवाली रिस्पना क बाएँ किनारे पर कुछ ऊँची-सी जगह है, जिसे टीला नही कहा जा सकता। यही कुछ मोर्चाबन्दी सी करके बलभद्र के नेतृत्व म नेपाली सैनिक तैयार थे। जेनरल गिलेस्पी का प्राण देना पडा, और अग्रेज सेना पीछे हटाई गई। अन्त मे खलगा पर अग्रेज अधिकार कर पाये लेकिन लोह के चने चबाकर। यहा पर उन्हाने एक स्मारक खडा किया, जिसमे गिलेस्पी की विरुदावली थी, और बलभद्र की भी। गिलेस्पीकी विरुदावली का किसी ने गायब कर दिया है।

धोने पर यात्रा के फिल्म अधिकतर अच्छे आये। श्री सत्येन्द्र जी अपने साथ बद्रीपुर ले गय। उनके ८३ ८४ वप के बूढ़े ताऊ अब भी स्वस्थ हैं, और अपने हाथ से बाग म कुछ काम भी कर लेते हैं। दो पक पपीते दिये। बद्रीपुर अपने बासमती क लिए पहले ही से प्रसिद्ध है। देहरादून शहर म कोई बासमती नही हाती। सबसे अच्छा बासमती पदा करनवाले गावो म बद्रीपुर भी है। आजकल ऊख भी यहाँ की प्रधान आजीविका हो गई है। ११ वप बाद हम बद्रीपुर आए थे। कुछ घर बढे मालूम हा रहे थे।

८ मई को पौने १० बजे की बस पकडी। क्किंग म उतर कर १ बजे हम दोना "हन क्लिफ" पहुच गए।

११

सैलानियो का मौसिम

मई का प्रथम सप्ताह आ गया, मसूरी के लिए सैलानिया का मौसम शुरू हा गया था। घर पर डा० वाचस्पति और श्री इन्दुप्रभा भी मौजूद थे। मेरे कनिष्ट भाई श्रीनाथ पाण्डे भी आये हुए थे, और घूपनाथ बाबू को तो मैं छोड़ ही गया था। एक महीने की डाक से पहले भुगतना था। उससे भुगतना मुश्किल नही था, लेकिन आर्थिक कठिनाइया परेशानी पदा कर रही थी। वह ता तभी से शुरू हो गई थी, जब से मैं मसूरी आया था। वैसे जिस तरह समय गुजर रहा था, उससे परेशानी करने की जरूरत नही थी। लेकिन, जब तक बैंक म छ महीने की खर्ची न हो, मन कसे शान्त रह सकता है ? अनिश्चिन्तता सबसे ज्यादा चुभती है। श्रीनाथ १० तारीख का गय। बहुत सकोची हैं। दिल्ली मे वर्षों से रह रहे हैं, काम है वही मिठाई बनाकर बगले बगल पहुचाना। मैंने एक बार २१०० रुपये दिए भी, पर यदि ऐसे व्यवहारकुशल हाते, तो इतने साला से दिल्ली म रहकर अपना कोई स्थायी प्रबन्ध न कर लिय हाते ? अब मैं उनकी मदद करने की स्थिति म भी नही था।

यदि मई के मध्य तक दूकानदारा की, विशेषकर शौकीनी की चीजें बेचनेवाला की, बिक्री अच्छी न हो ता यही समझना हाता है, कि उनके लिए सीजन खराब है। बनारस हौसवाले इसके लिए थर्मामीटर थ। अच्छी से अच्छी साडियाँ और दूसरे कीमती कपडो के वह दूकानदार थे। कह रह थे, चीजें बिक नही रही है। बहुत दिना बाद तडक भडक की वर्दी पहने

रक्शा खीचनेवाला के साथ इन्दौर के पुराने महाराजा महारानी को घूमते देख कितने ही लोग यह सोच कर सतोष कर रहे थे कि अब मसूरी का भाग्य जागेगा, राजा-रानी ने फिर कृपादृष्टि की है।

मसूरी मे भी कभी कभी तेज तूफान आता है, और उसके साथ वर्षा भी। ११ मई को ऐसी आधी आई कि मालूम होता था, छत उड जायगी। टिन की छतो का उड जाना कोई असम्भव बात नही है। वाचस्पति जी बडे कमठ तरुण है। इन्दु यद्यपि बचपन की तरह दुबली-पतली नही है, किन्तु उनका स्वास्थ्य बहुत खराब रहता है। डा० वाचस्पति परमाणु गभ फिजिक्स के पण्डित है। शरीर और दिमाग दोनो ही उनका चलता रहता है। ऐसे आदमी यदि अवसर पाएँ तो वह भारत का मुख उज्ज्वल कर सकते हैं। इस समय (मार्च १९५६ मे) वह कनाडा मे अनुसन्धान करने गये है।

१३ मई को श्री जनकलाल जी गये। उनकी वजह से हमारी हिमाचल-यात्रा बडी अच्छी हुई थी। उनमे जरूरत से ज्यादा भोलापन है, कुछ अव्यावहारिक भी हैं लेकिन स्वभाव बहुत मीठा है। ऐतिहासिक और पुरातात्विक वस्तुओ के ज्ञान के साथ साथ भारी जिज्ञासा भी रखते हैं। पश्चिमी नेपाल म वह इसके सम्बन्ध म अपनी यात्रा कर चुके हैं। वहाँ के बार म बहुत कम अनुसन्धान हुआ है। ऐसे मित्र से बार बार मिलने की इच्छा होती है।

हरि का आए पाँचवा महीना हो रहा था। स्कूल म उसका मन नही लगता था। रोज यहाँ से जाता। हम समझते थे, पढने जा रहा है। लेकिन, वह स्कूल न जाकर और जगह अपना समय बिताकर लौट आता। शिका-यत करता था लडके चिढाते ही हैं, एक मास्टर भी नेपाली दाई कहकर व्यग्य करते कहते हैं, कि तुम तीन वष म भी मैट्रिक पास नही हो सकते। यदि ऐसी बात थी, तो वह स्कूल के लिए भी बुरी बात थी। लेकिन, बात यह नही थी। उसका मन ही यहाँ नहीं लगता था। एक दिन चलते रास्ते प्रिंसिपल मलहोत्रा मिल गए। पूछने पर मालूम हुआ, हरि तो दो महीने से स्कूल नही आया। अंग्रेजी ग्रामर का मैं बराबर पढाता हूँ मैंने उसे नही देखा। २० मई को आखिर कलई खुल गई, जबकि वह प्रिंसि-

जिग शुक्ल। खैर, सगोत्र वधुत्व तो हमारा थाही। उसी दिन मण्डलेश्वर स्वामी सवदानन्दजी भी आए और महात्माओ के साथ आए। उनके साथ साधुओ के भविष्य और सस्कृत के सबधन के बारे मे बातें होती रही। मैंने अपने विचारो का रखते हुए कहा, साधुओ की सख्या कम होगी, यह तो निश्चय है, पर उनका उच्छेद नही हो सकता। सस्कृत का भाग्य भी अब उनके भाग्य से बँधा हुआ है। आजीवन सस्कृत के विद्यार्थी रहनेवाले अब उन्ही म म मिलेगे।

अगले दिन स्वामी सत्यस्वरूपजी आए। "तत्वचिन्तामणि" की नया कहा तक गई, इसकी जिज्ञासा होनी ही थी। इसमे लगे हुए थे, और अब उतन निराश नही मालूम होते थे। उसी दिन बेनीपुरी भी आधी पानी की तरह आए। मसूरी म चार घटा के लिए आए थे, जिसम एक घटा यहाँ भी दिया। यह सुनकर बडी प्रसन्नता हुई कि 'बेनीपुरी ग्रन्थमाला" का स्वागत हुआ है। साहित्यिक यदि अपनी आयु के अन्तिम दिनो म आर्थिक तौर से निश्चिन्त हो, तो हमारे देश के लिए यह एक बडी बात है। बेनीपुरी अब साढेसाती सनीचर के फेर से बाहर आ चुके थे। आगे के सकल्पो के बारे म बतला रहे थे। गाव म महल बनवा लिया है, यह मुझे अच्छा नही लगा, क्योकि गाव म पक्का मकान जरूरत पडने पर एक पैसा भी नही देता। यह निश्चित ही है कि बेनीपुर से जितना स्नेह रामवृक्ष का है, उतना उनके लडके का नही होगा। पोता तो शायद मुश्किल ही से कभी वहाँ झाँकने जाएगा। निजी तौर से प्रयत्न करके कोई गाँवो की सस्कृति और शिक्षा का केन्द्र नही बना सकता। यह तो देश के उद्योगीकरण और कृषि के यन्त्रीकरण पर निभर है, जो भारत के लिए अभी दूर की बात मालूम होती है।

मौसम के समय मध्य वित्त सैलानी मसूरी म काफी इकट्ठा होते हैं, इसलिए सभा सम्मेलन भी हो जाया करता है। जब की श्री मानवेन्द्र राय के अनुयायियो—रडिकल ह्यूमनिस्टो—का ग्राम्य विद्यालय चला, जो यहाँ से नजदीक ही देवदार काठो म था। वहाँ आए कुछ साथी हमारे पास भी आए। सबसे बडा सम्मेलन ५-७ जून को देहरादून म हुआ। कभाव साहित्य सम्मेलन की गाड़ी तो स्वार्थो की टक्कर के कारण दलदल म पड़ी

हुई थी। प्रान्तीय सम्मेलन को जगाए रखना इस वक्त आवश्यक समझा गया था। उद्घाटन-भाषण के लिए मत्री डा० उदयनारायण तिवारी ने हमे लिखा। उधर स्वागतकारिणी ने डा० काटजू से उद्घाटन कराना चाहा। स्वागतकारिणी का स्वागत के लिए पैसा की जरूरत थी, जिसमे डा० काटजू के आने मे सुभीता था। थैलीशाह ऐरे गैरे नत्थू खैरे के लिए अपनी थैली थोडे ही खोल सकता है। मुझे यदि पता लग गया होता, तो उद्घाटन करने के फदे से बच जाता। मुझे उसकी कोई इच्छा नही थी। पर, जान पडा दोनो ही उद्घाटक वहा पहुँचेगे। ऐन मौके पर डा० काटजू नही आए, और मुझे वह काम करना पडा। उनके लिए जो अभिनन्दन-पत्र तयार किया गया था, उस पर चिप्पी लगाकर मुझे दे दिया गया। सरकार की हिन्दी सम्बन्धी बेरुखी की मैं कडी आलोचना करता इसलिए हमारे हिन्दी प्रेमी मित्र चाहते थे कि मै ही उद्घाटन करूँ।

पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बगाल) मे मुस्लिम लीग की घोर पराजय हुई थी। हकने मन्त्रिमण्डल बनाया, लेकिन वहा तो गवर्नर जनरल की ताना शाही थी। जब नीचे से सहायता नही मिली तो ऊपर से हुकुम निकला, और मन्त्रिमण्डल को तोड दिया गया। लेकिन, बगाली मुसलमानो को—जो कि पाकिस्तान मे भी बहुमत रखते हैं—डडे के जोर पर थोडे ही दबाया जा सकता है? अपने थूक को फिर पाकिस्तान सरकार को चाटना पडा, लेकिन काफी बाद, जबकि नवाबजादा मुहम्मद अली को प्रधान मत्री पद से हटाया गया। पाकिस्तान के सविधान मे हक का सहयोग मुस्लिम लीग के लिए नही, बल्कि उनके लिए मँहगा पडा। लेकिन, इसका दोष हक को ही नही दिया जा सकता। उनके प्रतिद्वन्द्वी सुहरावर्दी ने पहले मुस्लिम-लीग से सहयोग करना शुरू किया, जिसमे हक और उनका दल जगल मे भटकता फिरे। बुड्ढे ने भी ऐसा धोबिया पाट मारा कि सुहरावर्दी ने तीन के रहे न तेरह के। इसका फल मुस्लिम लीग, विशेषकर पश्चिमी पाकिस्तान के प्रभुओ को बहुत अच्छा हुआ। हक का दल अपने निर्वाचन मे जिन बातो का वादा कर चुका था उससे मुकर गया। पाकिस्तान के सविधान मे न सयुक्त निर्वाचनको माना गया, और न गणराज्यके साथ इस्लामिक विशेषण को ही हटाया गया। अपने भविष्य को अनिश्चित तथा वहाँ की कठि-

नाइयों को अधिक देखकर भारी संख्या मे पूर्वी बंगाल से हिन्दू भारत चले आ रहे हे। यदि सारे हिन्दू वहा से निकल आएँ, तो फिर पूर्वी पाकिस्तान का बहुमत नही रह जाएगा।

३१ मई को घूमते समय रास्ते म सर सीताराम मिले। हर साल ही उनके दर्शन होते हैं। इस साल पिछले सालो के बहुत कम परिचित चेहरे दिखाई पड रहे थ। उनका अभाव खटकता था। नगरपालिकावाले बतला रहे थे कि इस साल लोग बहुत आए है। पर दूकानदार शिकायत कर रहे थे कि बिक्री नहीं होती।

७ जून को चिनी (कनौर) के हेडमास्टर श्री सेमुवालजी आए। कनौर हिमालय क उन कोनो मे है, जिसके साथ मेरा विशेष स्नेह है। मिडल स्कूल अब हाई स्कूल हो गया है यह सुनकर प्रसन्नता हुई। समुवालजी जैसा कर्मठ और योग्य तरुण वहा गया, यह जानकर भी खुशी हुई, पर वह वहाँ से अपनी बदली करवाना चाहते थे। गढवाल के होने मे पहाड उनके लिए अरुचिकर नही हो सकता था, पर कह रहे थे कि खान पीन की चीजो की बडी दिक्कत रहती है। यदि डाक की व्यवस्था होती, तो कलकत्ता-बम्बई से चीनी का जितना महसूल है उतना ही रामपुर से लगता है, इस प्रकार डाक के द्वारा खाने की भी बहुत सी चीजें मँगाई जा सकती। लेकिन, जान पडता है, उसकी भी अव्यवस्था थी। अबके साल प्रमनाथ और बाला राय दो सिनेमा तारक मसूरी को सौभाग्यशाली बनाने आए। जिधर निकल उधर लोगो की आखें बिछ जाती। मैं एक दिन जा रहा था, किसी ने उनके बारे म बतलाया। साल म एकाध ही बार मैं कभी कोई फिल्म देखता हूँ, इसलिए सिनेमा जगत के नक्षत्रो मे परिचित न होना मेरे लिए स्वाभाविक था।

देहरादून—८ जून को सम्मेलन म सम्मिलित होने के लिए देहरादून गया। देखा, बहुत से सैलानी नीचे भाग जा रहे हैं। कल रात वर्षा आ गई थी। उन्होने समझा, अब अपने यहाँ भी वर्षा हो गई होगी, इसलिए गर्मी का डर नही है। वर्षा यद्यपि घात की थी, और अब के साल असली वर्षा प्राय सारे जून भर नहीं हुई, और ६ जुलाई को ही उसका मौसम

आरम्भ हुआ। पर इस वक्त तो लोगो को भडकाकर इन छोटो ने मसूरी को बरबाद कर दिया।

शुक्लजी के यहा मध्याह्न भोजन के समय पहुँच गए। ५ बजे सम्मेलन के समय वहा गए। अब भी धूप थी, और बाग के वृक्षो की छाया काफी नही थी। तो भी रात की वर्षा से तापमान कुछ नीचे जरूर रहा। सम्मेलन का उद्घाटन भाषण मैंने किया। सभापति हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा थे। उनका भाषण हुआ, टडनजी भी बोले। लोगो की उपस्थिति काफी थी, यद्यपि शहर की जनसख्या के अनुरूप नही थी। ऐसा होने का कारण भी है—शिक्षित मध्यवित्त लोगो मे काफी सख्या शरणार्थियो की है, जो हिन्दी से परिचित नही हैं। उनकी अगली पीढी हिन्दी पढ रही है, लेकिन उसका समाज मे स्थान पाने मे अभी दस पन्द्रह साल की देर होगी। शिक्षित होने पर भी सास्कृतिक तल ऊँचा नही है, इसलिए वह उत्साह से ऐसे समारोहो मे भाग नही ले सकते। उद्घाटन न भी करना होता तो भी मैं यहाँ आता जरूर, क्योकि यहाँ सारे प्रान्त से आए हुए कितने ही साहित्यकारो से मुलाकात होती। डा० उदयनारायण, वाचस्पति पाठक, शान्तिप्रिय द्विवेदी गुरुभक्तसिंह "भक्त" कमलेश, श्री कमलादेवी चौधरी आदि आदि के दर्शन हुए। सम्मेलनवालो ने कला और साहित्य प्रदर्शनी का भी आयोजन किया था। कोशिश की थी कि देहरादून जिले के सभी साहित्यकारो की अधिक से अधिक कृतियाँ उसमे रखी जाएँ। मेरी भी उपलब्ध पुस्तकें वहाँ मौजूद थी। देहरादून के चित्रकार श्री सक्सेना ने चित्रो की प्रदर्शनी का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था।

६ जून को टाउन हाल मे श्री विश्वम्भरनाथ प्रेमी की अध्यक्षता मे कौरवी भाषा सम्मेलन हुआ। हिन्दी की मूल बोली के इस नाम का प्रचार मैंने किया था। कोई आविष्कार करने के खयाल से नही, बल्कि मूल भाषा को कोई एक नाम देना जरूरी था। मैंने भी उसके लिए कई प्रयोग किये। कभी "आदि हिन्दी' कहा, कभी 'मेरठी" और कभी कुछ। अन्त मे उसका सबसे उपयुक्त नाम कौरवी ही मालूम हुआ क्योकि यह भाषा कुरु और कुरु-जांगल (हरियाना) मे बोली जाती है। हमारे सास्कृतिक और साहित्यिक इतिहास मे कुरु का स्थान बहुत ऊँचा है। मैं पिछले पच्चीस वर्षों से बहुत

व्यग्र था कि कौरवी लोक-साहित्य का बडा सग्रह किया जाए। कितने ही सालो तक यह अरण्य रोदन रहा, लेकिन अब तरुण कुरुपुत्र उधर काफी ध्यान दे रहे हैं, यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई।

७ जून को साहित्य गोष्ठी हुई। साहित्य गोष्ठी की तरफ सम्मेलनो मे अधिक ध्यान देने की जरूरत है। वृहत् अधिवेशन द्वारा जनसाधारण के पास तक हिन्दी का सन्देश जरूर पहुँचता है, और यह उपेक्षा की चीज नही है। सम्मेलन द्वारा सरकार को भी बतलाया जा सकता है कि तुम अधिक दिनो तक हिन्दी की उपेक्षा नही कर सकते। लेकिन, हिन्दी साहित्य निर्माता तो साहित्यकार है, वही उसके माथे को ऊँचा कर सकते है। जब किसी सम्मेलन के कारण उन्हे इकट्ठा होने का मौका मिलता है, तो उनके समागम से वह परस्पर बहुत लाभ उठा सकते है। गोष्ठी मे डा० देवराज, शान्तिप्रियजी और कमलेशजी भी बोले। कुछ तरुणो ने अपनी कहानी, कविता और एकाकी सुनाए। मध्याह्न का भोजन काग्रेस नेता श्री लक्ष्मणदव के यहाँ हुआ, जिसमे टडनजी, तिवारीजी और मैं भी शामिल हुए। इसके पहले दिन का मध्याह्न भोजन स्वागतकारिणी ने बडे भव्य रूप मे किया था। देहरादून की महिलाओ ने सारा काम अपने हाथ मे लिया था। जान पडता है, दूसरो की अपेक्षा कुरु पुत्रियाँ ज्यादा दक्ष है। वही देहरादून के बडे भूमिपति सेठ रामकिशोर की पत्नी भी उस लडकी के साथ आई थी, जिसके बारे मे कहा जाता है कि उसने अपने पूर्वजन्म की माता को पहचान लिया था और सेठजी के घर पर जाकर बहुत-सी चीजो को भी बतलाया था। जिस पुत्री का अवतार उसे माना जाने लगा था, उसको मैंने भी १९४३ मे देखा था। हिन्दू युनिवर्सिटी मे शायद एम० ए० मे पढ रही थी। क्या-क्या आशाएँ और उमगें उसकी थी? देहरादून को उसके रूप मे महिलाओ की अच्छी सेविका मिलती, पर बेचारी तरुणाई मे ही मर गई। उसका दुख माता-पिता को होना ही चाहिए था। फिर यदि अवतार की कहानी मिल जाए, तो यह डूबते का तिनके का सहारा क्या न हो? भारतवर्ष मे तथाकथित पुनर्जन्म की कथाएँ अखबारो मे बहुत निकलती रहती हैं। इनमे कितना ही मे तो केवल धोखा धडी होती है, और यदि किसी मे कुछ सत्यता मालूम हुई है, तो यही कहा जा सकता है कि विचारो का दानादारी कभी-कभी बिना

भाषा के भी हो जाता है। बड़ो के विचार छोटी आयु के बच्चो के मन मे चले जाएँ तो कोई आश्चय नही।

७ जून ही को डा० तिवारी श्री वाचस्पति पाठक, श्री देवनारायण द्विवेदी तथा बन्धुद्वय श्री जयगोपाल शिवगोपाल मिश्र भी मसूरी आए। दो दिनो के लिए 'हन क्लिफ' ने अपने लिए अहोभाग्य समझा। हमने भी शिष्टागमन अनध्याय रखा और मसूरी दिखलाने मे समय बिताया। वाचस्पतिजी पाठक बड़े विनोदी जीव है। न जाने कितने चुटकुले उन्हे याद हैं। कलम कमजोर नही है लेकिन दूसरे कामो के कारण अब उन्होने उसे विश्राम दे रखा है। एक कला प्रेमी की बात कह रहे थ। प० श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास कुछ पुराने सुन्दर चित्र थे। जब उन्हे पता लगा, तो वह देखने के लिए आठ अपने साथ ले गए। देखकर बड़े विश्वास के साथ चतुर्वेदीजी के पास लौटाने गए। गिनती तो पूरी थी लेकिन चतुर्वेदीजी ने देखा कि एक बदल लिया गया है। कला प्रेमी ने भूल स्वीकार की और लौटा देने के लिए वहा से जो निकले, तो प्रयाग म भी किसी स्टेशन पर नही बैठे, गगा-पार झूसी म जा गाड़ी पकड़ी।

मित्र समागम का यह आनन्द ८ जून ही तक रहा। ९ जून को सब लोग चले गए। हमारे देहरादून म अनुपस्थित रहने के समय शास्त्री वैद्य वाचस्पति श्री ईश्वरदत्त वर्मा आए थ। पजाब के है, लेकिन उनकी इच्छा सबसे पिछड़े पहाड़ी लोगो की सेवा करने की थी, इसलिए अपनी पत्नी के साथ जौनसार चले गए। वैद्य भी है, और कहानी-लेखक भी। वहाँ दूकान और बाजार से दूर एक गाँव म उनकी नियुक्ति हुई। एक दो-वर्ष तक उनके आदर्शवाद ने सहायता दी। लोगो म घुल मिल गए। लेकिन, सुशिक्षित सुसस्कृत आदमी कितने दिनो तक वनवास सेवन कर सकता है, फिर उन्होने अपनी बदली मदान म करवा ली।

मौसम के समय डा० सत्यकेतु के यहाँ भी सम्बन्धी और मेहमान आते रहते हैं। अबकी वहाँ उनकी कनखल वाली बहन अपने लड़के और लड़की के साथ आइ। वह साठ पीढ़ी की अग्रवालिन मांसाहारी और यहाँ नाई का घर नर मास म आनन्द लेने वाला। उनके आगमन के कारण घर म शान्त बनाना मुश्किल था। बुआ की यह हालत और भाजी उषा हड्डी चिचोड

थी। अगली पीढिया कैसे पुरानी पीढ़ी के आचार-विचार पर पुचारा फेरती है, यह उसका उदाहरण था। ऐसी बहिन के सामने घर मे गोश्त कैसे बनता, लेकिन तरुण कम्युनिस्ट बरेली के श्रीवास्तवजी ठहरे हुए थे, उन्होंने आज विशेष तौर से मासपाक का कौशल दिखलाया था। श्री शान्तिप्रसाद, वेद कुमारी, सत्यकेतु परिवार और हम भी श्रीवास्तवजी के भोज मे शामिल हुए। वेदकुमारी गणित की एम० ए० है, बीकानेर मे लडकियो के स्कूल मे पढाती है। उनको लोक गीतो का भी शौक है। उन्होने पजाबी और राजस्थानी के कुछ लोक-गीत सुनाए। गला अच्छा और गान के ढग मे भी स्वाभाविकता थी।

नवे महीने मे पहुँचकर अब जया ने ताली बजाना भी शुरू कर दिया। "छाम नानी छाम-छाम" कहने पर मजे से ताली बजाती, खाँसने का भी अनुकरण करने लगी। खाते वक्त बहुत दिनो तक उसकी आदत रही कि दाहिने कान पर हाथ रखकर खाए। बिस्कुट कहाँ रहता है, यह भी जानती थी। मनुष्य का बच्चा दुनिया मे आकर किस तरह धीरे धीरे अपने भीतर की शक्तियो का प्रयोग करने लगता है, इसे बच्चो को देखने से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

१३ जून को इतवार का दिन था। आज कई मेहमान आए। आध्र के चित्रकार तरुण कुमारिल स्वामी अपने कई मित्रो के साथ आए। हमारे पडोसी डा० राम भी परिवार सहित उपस्थित हुए। उनका छोटा लडका विज्जू पिछले साल बहुत अस्वस्थ था, अब अच्छा हो गया था। मध्याह्न भोजन के पहले ही भैयाजी और भाभीजी भी आ गए। सुमरामा भाभाजी को हीरा नौकर मिला था, जो उनकी लात मार उसका चुपचाप बर्दाश्त करने के लिए तैयार था, और मशीन की तरह काम करता था। अब कल से उसका सरोकार नहीं था, जो गुमल मालकिन के लिए अच्छा हो था। बडे तडके उठकर रात के १२ बजे तक वह काम मे लगा रहता। बिना काम का अभ्यस्त था, उसे अपने मन से करता, नये काम को बतलाना पडता। उस दिन सुमरामा ने बडी मदद की, नहीं तो एक नौकर के मान की बात नहीं था। मसूरी मे पूरे पहाड पडते हैं, इस दोनों का तो इन सब को मौका मिलता था, लेकिन जब उसके द्वार पर अतिथि हमारे घर मे भी

मेहमान आ जाते, तो हमे मालूम होता कि मसूरी इस वक्त फूली नहीं समा रही है। आज इटावा के जिला कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति ठाकुर साहब भी आए। जमुना के किनारे औरैया के पास कुछ ही पीढ़ी पहले इनका एक राज्य था। सन् ५७ में अंग्रेजो के खिलाफ तलवार उठाई और राज्य छिन गया। इन्हीं के वंश मे जगम्मनपुर आदि के पांच राजा हुए। राजधानी पहले चम्बल और जमुना के संगम पर अवस्थित थी। उनके लड़के यहीं युरोपियन स्कूल में पढ़ते है, इसलिए पत्नी बराबर यहीं रहती है, और जाडा-बरसात में ठाकुर साहब भी आ जाते है।

१५ जून को आगरा से डा० गुप्ता का तार आया, जिससे मालूम हुआ, कमला बी० ए० की परीक्षा में पास हो गई। धीरे-धीरे वह अब अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच रही हैं। इसका अफसोस तो जरूर था कि पूरा विषय नहीं लिया पर अब एम० ए० का रास्ता खुला हुआ था।

मसूरी का यह सीजन परिवारों और सम्बन्धियों के मिलन का भी है। आनेवाले को इसका भी आकर्षण होता है। लेकिन, खर्चीला जीवन तो है ही, इसलिए वही यहां आ सकते है, जिनके पास पैसा है। एक मारवाड़ी ओसवाल सेठ बतला रहे थे कि नई पीढ़ी में शिक्षा तो बढ़ी है, लेकिन वह विलासी होती जा रही है। नई पीढ़ी से इस तरह की शिकायत बेजा है। लेकिन, नई पीढ़ी का अब परलोक के सुख पर भरोसा नहीं है, इसलिए स्वर्ग के प्रलोभनों के ऊपर वह इस जीवन के भोग को कैसे छोड़ सकती है?

१८ जून को कुमाऊँ के श्री चन्द्रशेखर शास्त्री आए। वह बनारस में साइन्स पढ़ाते हैं लेकिन इधर कई सालों से नेपाल और तिब्बत पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिख रहे थे, जिसके बारे में श्री बालकृष्ण शर्मा ने मुझे बतलाया था। नेपाल के राजा अंशुवर्मा की कन्या "भृकुटी" तिब्बत के प्रतापी सम्राट स्रोङ्-चन् गम्बो को ब्याही गई थी। इस ब्याह ने तिब्बत और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध को स्थापित करने में बड़ा काम किया था। "भृकुटि" उनके उपन्यास की नायिका थी। उन्होंने उपन्यास के कई स्थलों को सुनाया। वैसे उपन्यास का या भी कठिन रास्ता है, पर ऐतिहासिक उपन्यास में तो बड़े धैर्य और अनुसन्धान की आवश्यकता है। वर्तमान समाज हमारे सामने है, उसके अंग-प्रत्यंग को हम जानते है, इसलिए आजकल के

सम्बन्ध मे उपन्यास लिखने मे हमे बहुत सुभीते प्राप्त हैं। बीते समाज का उल्लेख हमे बहुत कम मिलता है, उसकी उपयुक्त सामग्री भी दुर्लभ होती हैं। इन सबको कन कन करके जमा करना होता है। बडी सावधानी से कलम उठानी पडती है, कि कही कोई ऐसी बात न लिख जाएँ, जो उस समय के देश-काल पात्र के प्रतिकूल हो।

१९ जून को श्री जगदीशचन्द्र माथुर अपनी पत्नी के साथ आए। माथुरजी हिन्दी के नाटककारों मे अपना विशेष स्थान रखते हैं, साथ ही हिन्दी-साहित्य और लोक कला से उनका असाधारण प्रेम है। बिहार के शिक्षा सचिव रहकर उन्होने लोक-रगमच के लिए बहुत काम किया, और हिन्दी सृजन के लिए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् जैसी एक साधन-सम्पन्न सस्था खडी कर दी। भोजपुरी के जननाटककार भिखारी को हमारे साहित्यकार गवार समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। मैं पहले ही से भिखारी ठाकुर का लोहा मानता था। माथुर साहब से यह सुनकर बडी प्रसन्नता हुई, कि उन्होने भिखारी के सभी नाटकों को जमा कर लिया है, और नाटककार ने अपनी पद्यबद्ध जीवनी भी लिखकर दे दी है। जन्मभूमि खुरजा के नजदीक होने से उनके लिए दिल्ली अनुकूल थी, पर बिहार वाले उन्हे छोडने के लिए तैयार नही थे। पर अन्त मे दिल्ली ने उन्हे खीच ही लिया, और वह वहाँ रेडियो के महासचालक होकर आ गए। रेडियो को भारी लाभ हुआ लेकिन बिहार को भारी घाटा।

२० जून को हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार श्री विष्णु प्रभाकर कुमारिल स्वामी के साथ आए। मैंने विष्णुजी से शिकायत की—आप कुरुपुत्र होकर कौरवी भाषा से अपनी कहानियों मे क्या नही सहायता लेते? उपन्यास और कहानी एम माध्यम हैं, जिनके जरिये हम हिन्दी को मूल भाषा कौरवी से पाठकों का परिचय करा सकते हैं। प्रेमचन्दजी ने सकडो भोजपुरी शब्दों को बडे सुन्दर ढग से अपनी कथाओं मे डाल दिया है। विष्णु प्रभाकरजी जैसे कथाकार अपने क्षेत्र के जीवन को चित्रित करते वक्त बडी आसानी से कौरवी मुहावरों और शब्दों को ला सकते हैं। इससे हिन्दी का अपने मूल-स्रोत से जीवित सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा, जो उसके लिए बहुत कल्याणकारी होगा।

श्रीनगर गढवाल से २१ का डा० उदयनारायण तिवारी की चिट्ठी आई। मसूरी आने पर मालूम होता है, हिमालय ने उनके दिल मे आकर्षण पैदा किया। पत्नी से कहा होगा। उन्होने उलाहना दिया। मैंने भी बतला दिया था कि केदार-बदरी जाना अब बहुत आसान है बहुत दूर तक तो मोटर चली गई है। दोना उसी यात्रा पर निकले थे।

२३ जून को श्री मुकुन्दीलालजी बरिस्टर भी आए। दो घंटे तक पिछली मुलाकात से बीच के समय और दूसरे विषयो पर बातचीत होती रही। यह खुशी की बात थी, कि ऐसे विद्याव्यसनी पुरुष से साल म दो तीन बार मुलाकात हो जाती।

अगल दिन एक अमेरिकन मिशनरी के साथ एक तरुण आए। मिशनरी जौनपुर इलाके मे धर्म प्रचार करत थे। छ साल से भारत म थे। हिन्दी बोल लेते थे। पहले अल्मोडा जिले क जोहार इलाके म रहत थे। तिब्बत की सीमा के पास रहना अमेरिकन मिशनरियो की रहस्यपूर्ण बात नही है। अमेरिका से किसी उदार विचारो के व्यक्ति को भारत म आकर काम करने की कभी इजाजत नही मिल सकती। वहा से ऐसे ही आदमी भेजे जाते है जो अमेरिकन थैलीशाही के समर्थक हो। भारत ने तिब्बती सीमा के ५० मील तक विदेशी मिशनरियो को जाने से रोक दिया। विदेशी मिशनरी प्राय सभी अमेरिकन है इस कहने की जरूरत नही। वह उलाहना दे रहे थे कि जोहार मे हम रहने नही दिया गया।

हमारे रसोई घर म पहले सात-आठ खाना वाला एक ऊँचा चूल्हा बना हुआ था। न जाने बनाने वाले न कसे बनाया, कि धूए की चिमनी रहते हुए भी घर से धूआ नही निकलता था। हमने एक अधिक बार तोडकर धूआ निकलने के रास्ते वाले चूल्हे को बनाया, लेकिन सफल नही हुए। ६० रुपय लगाकर इस साल भी बनवाया, पर धूआं जसा का तैसा रहा।

आर्थिक चिन्ता के दूर होने का एक ही रास्ता था कि आप निश्चित हो। एक प्रकाशक से बातचीत हुई। वह अग्रिम देने के लिए तैयार हुए और कुछ दिया भी। और जान पडा, कि अब बात ठीक हो जाएगी लेकिन अन्त म सब टाय टाय फिस हो गई। और भी प्रकाशको से इसी तरह हुआ। हिन्दी साहित्यकारो की कठिनाइया को मैं भली प्रकार जान सकता था।

मेरी पुस्तकों का अच्छा स्वागत होता है, तब भी जब यह हालत है, तो नये साहित्यकारो के बारे मे क्या कहना ? तीन पुस्तको को अपने यहा से हम प्रकाशित कर चुके थे। छपवाने के साथ ही दो-दो ढाई ढाई हजार एव एक पुस्तक के दने पडे। लेकिन, बिक्री का कोई प्रबन्ध नही कर सके। एक सज्जन का एजेन्ट होने के लिए ८० ९० रुपया हमने दिया। सबसे बुरी बात यह हुई कि डा० सत्यकेतु से भी पचासेक रुपये दिलवा दिये। हमारे विश्वास पर उन्होने दिया था और उक्त सज्जन खा पीकर बैठ गए।

आजकल भारत मे चीन के प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइ आये हुए थे। भारतीय जनता हर जगह दिल खोलकर उनका स्वागत कर रही थी। चीन के सम्बन्ध मे भारतीय सरकार भी अपने सद्भाव को दिखलाने के लिए किसी से पीछे नही रही। वह जहा गए लोगो ने उन्हे सिर आखो पर बैठाया। भारत और चीन का दो हजार वर्ष का सम्बन्ध दोनो देशो के लिए अविस्मरणीय है इसलिए चीन के महामन्त्री का ऐसा स्वागत होना ही चाहिए। २९ जून को वह भारत की यात्रा समाप्त करके बर्मा के लिए रवाना हो गए।

एसिया के वृहत बडे भाग मे सुख और समृद्धि, ज्ञान विज्ञान की किरणें फल रही है। उधर दुनिया का राहु अमेरिका अपनी चालो से बाज आने के लिए तैयार नही। गतामाला मे जरा सी उदार सरकार आ गई, जो अमेरिकन डंडे को बर्दाश्त करने के लिए तयार नही थी। फिर क्या था, डालरो की वर्षा करके सरकार के खिलाफ अपने पिट्ठू भेजे, हथियार दिये। इन सारे कामो को अमरिका निलज्जतापूर्वक करने का गर्व कर रहा था। आखिरकार अमरिकन पिट्ठुओ ने वहाँ सरकार की बागडोर सँभाली। अगले साल यही बात अर्जन्तीना मे अमरिका ने की और सबसे जबर्दस्त प्रतिगामी थैलीशाही-पोषक लोगो को शासन की बागडोर सम्भालने मे मदद की। जितने दिनो तक अमेरिकन थैलीशाही दुनिया मे उत्पात मचाता रहेगा, मानवता का अभिशाप बना रहेगी ?

७ जुलाई को लखनऊ के चित्रकार श्री रामचन्द्र साथी कुमारिलजी के साथ आए। साथी उदीयमान चित्रकार हैं। उस्तादी के नाम पर जिस तरह मैं संगीत को दुर्गति को बर्दाश्त नही कर सकता, वैसे ही नाना वादों के

नाम पर प्रकृति से कोई सम्बन्ध न रखने वाली उससे बिल्कुल उलटी चित्र कला को भी पसन्द नही करता और अपने इन विचारो को प्रकट करने से बाज नही आता। नये पुराने कई ऐसे उस्ताद हमारे देश मे है, और जब से विदेशो मे ऐसो की लम्बी नाक वालो ने सिर पर उठाना शुरू किया तब से हमारे यहा वालो की भी हिम्मत बढ गई। साथी के चित्रो को देखकर यह प्रसन्नता हुई कि उनके पैर ठोस पृथिवी पर है। ठोस पृथिवी पर पैर रखे भी आदमी कल्पना की उडान मे सातवे आसमान पर पहुच सकता है यह हमे अजन्ता की चित्रकला से मालूम है। साथी के कुछ कल्पनामय चित्र इसी तरह के थे।

३ जुलाई को किताब महल की रायल्टी का हिसाब आया। मालूम हुआ पिछले साल १७०० रुपये की आमदनी हुई, अर्थात् उसके बल पर हम मासिक डेढ सौ रुपया भी खर्च नही कर सकते। कभी कभी सोचता था, समय ऐसा भी देखा, जबकि पचास रुपये मे भी मेरा काम चल जाता पर उस समय मै घुमक्कड था निर्द्वन्द्व था, अपनी चादर के अनुसार पैर फैला सकता था। अब तो वह बात नही। जया सामने थी। वह प प ज ज कहने लगी थी। नमस्ते ताता और भू (भूत) भी कह रही थी। दूसरो की मुख-मुद्रा को देखकर वह उसके भावो को भी समझ जाती। आम तौर से रोती नही, हँसती और हँसाती रहती। जया को इस लोक मे लाने की जिम्मेवारी हमारे ऊपर थी यह खयाल कर मन और भी भारी हो जाता। उसे कुछ जुकाम हो गया था। अगले दिन कुछ बुखार भी रहा। भैया ने पेनिसिलिन का इजेक्शन देना चाहा, लेकिन सूई चुभ नही पाई। बेचारी को मुफ्त की तकलीफ हुई।

जरा भी गुस्सा आने पर सुखरामा के ऊपर हाथ छोड देना भाभीजी के लिए मामूली बात थी। वह समझती थी, यह निरा बुद्धू है, इसमे अक्कल छू नही गई है। वह मारना बर्दाश्त करता आया था, इससे भी यही धारणा पक्की हुई थी। ८ तारीख को वह भाग गया। अब आटे दाल का भाव मालूम हुआ। बडे मिजाज की मालकिन के लिए ऐसा नौकर आसानी से नही मिल सकता। भैया भी नही पसन्द करते थे कि उसे निरा पशु माना जाए।

आज की खबरों से मालूम हुआ कि पूर्वी पाकिस्तान की तानाशाही ने वहां की कम्युनिस्ट पार्टी को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। कम्युनिज्म कहाँ कानून की छाया में पला ? इन्दो-चीन में वियतनामियों से फ्रान्स बुरी तरह पिट रहा था। अमेरिका की सहायता कोई काम नहीं आ रही थी।

६ जुलाई को मेरे अनुज श्यामलाल के द्वितीय पुत्र रामविलास की चिट्ठी आई जो ८ को उन्होंने लिखी थी, जिसके कुछ अंश थे—'पिताजी की इस समय वही हालत है जो मरने से कुछ समय पूर्व बाबा की हुई थी। वह केवल नरकंकाल के रूप में वर्तमान है। जिस जमीन और इज्जत को उन्होंने अपने खून से बनाया था, वह उनके सामने जलकर राख हो रही है। ऐसी परिस्थिति में उनका बाबा की तरह पागल हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। घर प्रायः भूमिसात् हो चला है। इस वर्षा में शायद नहीं ही बचेगा। बैलों की तादाद दो है, वह भी स्वस्थ नहीं। वर्तमान हालत में इस साल धान इत्यादि की खेती करना सम्भव नहीं दीखता है। इस प्रकार हो सकता है, उस सारी जमीन से हाथ धोना पड़े। ऐसी हालत में कनैला से नाता पूर्ण तया समाप्त हो जाएगा।" चाहे परिस्थिति में अतिशयोक्ति से काम लिया गया हो, लेकिन वह दुःखद थी, इसमें क्या शक ? पर, उपाय क्या ? हमारी आर्थिक स्थिति किसी प्रकार से सहायता देने लायक नहीं थी। देश की भीषण स्थिति हमारे सामने साकार थी। भारत में ऐसे लाखों घर उजड़ रहे हैं। कल का अच्छा खाता पीता परिवार आज असहाय हो रहा है। ध्वंस चारों ओर होता दीखता है, पर सृजन कहीं नहीं।

अपराह्न में श्रीमती रजनी पणिक्कर अपने पति कप्तान पणिक्कर के साथ आई। पंजाबी नयर लोगों ने अपने को नायर बनाकर मलाबारियों का भ्रम पैदा किया। हिन्दी की कथा लेखिका रजनीजी ने मलाबारी से ब्याह करके अपने को सचमुच मलयाली सिद्ध कर दिया। छ वर्ष पहले जब शिमला में देखा था तब वह पतली छरहरी थीं। अब जरूरत से ज्यादा मोटी हो गई थीं। इधर उन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। मालूम हुआ श्री प्रभाकर माचवे रेडियो छोड़कर अब साहित्य अकादमी में आ गए। उनके लिए यह अधिक उपयुक्त स्थान था। अगले दिन शाम को घूमने गए, तो २२ वर्ष बाद मदाम मोरों का दर्शन हुआ। १९३२ में पेरिस में उनसे

मुलाकात हुई थी। अब दिल्ली म ही रहती ह और वहाँ आल इडिया रेडियो म काम करती हैं। चलते चलते कुछ देर तक बात हुई। ४ जुलाई की रात से ही वर्षा शुरू हो गई थी। ८ वी रात स शुरू हुई, तो अगले दिन दोपहर तक बराबर जारी रही। फिर तो कभी जार की और कभी बूदा बादी रहती। आसमान कभी ही निरभ्र हाता था। वर्षा अब अपनी कसर निकालना चाहती थी। साधारण सैलानी जा चुके थे और उनकी जगह अब पजाब के सलानी ले रह थे।

मसूरी के हितमित्रा मे वद्य शम्भुनाथजी भी है। वह डी० ए० वी० फार्मेसी के सचालक ह। गर्मी बरसात म यहा रहत ह, जाडो मे देहरादून और दिल्ली म अपना काम देखत प्रैक्टिस करत हैं। उनकी दा लडकिया ह। ६ तारीख को मालूम हुआ उन्हाने एक लडका गाद लिया। आजकल के जमान मे लडकियो के रहते काई शिक्षित लडके का गाद ले, यह सोचने की भी बात नही। नाम के लिये? नाम तो अपने परदादा का भी विरले ही जानते है। ११ जुलाई इतवार को श्रीमती सुधा अपन पति श्री प्रतापसिंह के साथ आई। डा० मगलदेव की पुत्री को मैं उसके सभी भाइया और वहनो के साथ बचपन से ही जानता था। बराबर दखता रह, तो आदमी का आश्चय नही हाता, लेकिन दस बारह वप की लडकी को जब बारह वप बाद दखन का मौका मिले, तो आश्चय क्या न हो? मालूम हुआ, उनक एक भाइ डाक्टर है और आजकल आसाम म हैं। डा० मगलदेवजी जब आरमुक्त थे। लडका न काम पकड लिया है, और लडकियाँ विवाहित हाकर अपन पतिकुल म चली गइ।

१४ तारीख का किसी पत्रिका म डा० रामविलास शमा क लेख पर नजर गई। मतभेद हाना काइ बुरी बात नही और उसकी नुक्ताचीनी की जाए, उसका भी मैं स्वागत करता हूँ। उन्होंने मर्यादा तोडकर यह काम किया था, मुझे उकसाया भी था, लकिन मैंन उसका जवाब दना पसन्द नही किया, दूसरा न ही जवाब दिया। अब दखा उन्हान लिखा था—सरकार राहुलजी और डा० रघुवीर का लाखा रुपय दकर परिभाषाएँ बनवा रही है। इस सफेद झूठ का भी काई अन्त है? ऐसा आदमी कस भ्रान्ति का भक्त भी हो सकता है? मुझे एक प्रतिभाशाली आदमी क इस पतन पर बहुत

अफसोस हुआ। परिभाषा के काम को अगर सरकार मन से करवाती, तो मैं उसमें सहयोग देने के लिए तैयार था। संविधान की परिभाषाओं के निर्माण में मैंने वैसा किया भी। पर, जब देखा कि शिक्षा मत्रालय उसमें रोड़ा अटकाना चाहता है, तो मैं उससे अलग हो गया। डा० रघुवीर और हमारी परिभाषा निर्माण-सम्बन्धी नीति में जमीन-आसमान का अन्तर है। उनके साथ मेरे नाम को जोड़ना यही बतलाता है कि शर्माजी बहुत निचले तल पर उतर आए है।

१५ जुलाई को कपड़ा रखने के रेक को पकड़कर जया खड़ी हुई रेक उसके ऊपर गिर गया। चोट लगी, बहुत बुरी तरह से रोने लगी। बच्चा को कितना ही सँभालकर रखा जाए, किन्तु कोई न-कोई ऐसी घटना हो ही जाती है, खासकर जब वह अपने हाथ-पैर को इस्तमाल करने का बहुत आग्रह करने लगते हैं। दस महीने की होकर जया जमीन पर अच्छी तरह हाथ पैर के बल से चलती थी। हर समय चारपाई से नीचे गिरने का डर रहता था। चार दात निकले आए थे। कुछ शब्दों का अनुकरण भी करती थी।

यद्यपि भाषा ममना ने स्वीकार किया है कि हिन्दी की मूल भाषा कौरवी है अर्थात् वह भाषा जो कि गंगा जमुना के बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ के पूरे, बुलन्दशहर के आधे जिले, गंगा के पूर्व बिजनौर जिले और जमुना के पश्चिम पंजाबी मारवाड़ी ब्रज की सीमाओं तक के फले प्रदेश मे बोली जाती है, श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपने एक लेख में इस धारणा को बिल्कुल गलत बतलाया। कौरवी ही हिन्दी की मूल बोली है" इस पर मैंने एक बड़ा लेख "सम्मेलन पत्रिका" के लिए लिख डाला।

इन्दो-चीन में फ्रास अमेरिका की शह पर लड़ रहा था, और चाहता था कि अब भी वहा पुराना उपनिवेश बरकरार रहे। लेकिन, द्वितीय युद्ध के बाद एसिया के लोग यूरोप के जूए को उठाने के लिए तयार नहीं थे। कोरिया में सिगमनरी की चौकड़ी को अमरिका ने शह दिया और अपने लग्गू भग्गुओं से भी मदद पाने की इच्छा की, लेकिन परिणाम यह हुआ कि अमरिकन नौजवानो को ले जाकर भारी सख्या में कटवाना पड़ा। इन्दो-चीन में कोरिया की तरह वह सीधे आना नहीं चाहता था, दूध का जला था। फ्रास वहाँ तक अपने

जवाना के खून से होली खेलता ? अमेरिका जोर दता ही रहा, लेकिन फ्रास ने स्थायी सन्धि कर ली। सारी दुनिया मे उस दिन हर्ष प्रकट किया जा रहा था और अमरिकन थलीशाहो के घर मे मौत की उदासी छाई हुई थी।

कुछ चीनी व्यजना मे मैं और कमला एकसी रुचि रखते है। कलिम्पाग मे कमला के पडोस मे चीनी भाजनालय था, जहा की कितनी ही चीजे वह बचपन मे ही खाकर परिचित है। मुझे मामा से परिचय तिब्बत मे हुआ, और अण्डे वाली सेवैया तथा कीमा मिला ग्य थुक (चीनी सूप) भी बहुत पसन्द आता। मसूरी मे कुल्हडी म "क्वालिटी" का भाजनालय सभी तरह के भोजनो के लिए विशष प्रसिद्धि रखता है। २२ जुलाई का भैया के यहा जाते वक्त हम वहा चले गए। भाभीजी न खाना बनाकर तयार रखा होगा लेकिन क्वालिटी ' न हम अपने भीतर खीच लिया। चीजे महँगी थी। चाउचाउ मुझे पसन्द नही आया, लेकिन ग्य-थुक बहुत स्वादिष्ट लगा। भाभीजी क यहाँ भी कुछ खाना जरूरी था नही तो उनका बनाया पकवान बेकार जाता।

श्री सदानन्द मेहता मेरे सुझाव पर पी एच० डी० के लिए भारतीय भौगोलिक अनुसन्धान कर्ताओ के ऊपर थिसिस लिखने के लिए राजी हुए थे। पहले मैंने चाहा देहरादून डी० ए० वी० कालेज क किसी प्रोफेसर के निरीक्षण म काम करें क्योकि मेहताजी अब वही सर्वे विभाग म काम करत थे। दो-तीन के साथ लिखा पढी हुई, कभी कोई अडचन उठी, कभी काई। २४ जुलाई की शाम को महताजी के आने पर मालूम हुआ, आगरा विश्वविद्यालय ने मुझे सुपर्वाइजर बनाया है।

भतीजे के पत्र से चिन्ता बहुत हुई थी, यद्यपि वैसा करके मैं काइ सहायता नही पहुँचा सकता था। २६ जुलाई को श्यामलाल का पत्र आया। वह घर का राना कभी मेरे सामन नही रोता। घर की जमीदारी मे कुछेक काश्तकार अब भूमिधर बन गए थे। उसक मुआवजे मरे नाम ८२ रुपय आए थ, जिसक लेन क लिए लिखन क वास्त उन्होने काई कागज भेजा था। अब भी ३८-४० एकड खेत उनके पास थ। पुरान जमान की तरह दूसरा क भरोस अब काम नही हो सकता था। बडा लडका एम० ए० करक अब बाहर स्कूल मास्टरी कर रहा था। दूसरा लडका दिल्ली म बलवी म

जुटा हुआ था। घर म दो और लडके रह गए थ, जो डीहा हाई स्कूल म मट्रिक म पढ रहे थ। मेरे बचपन म यहाँ प्राइमरी स्कूल था, और हमारे गाँव क पढने वाले लडके थाडे ही थे जो तीन मील चलकर वहाँ पहुचा करत। श्रीनाथ के दो लडके दिल्ली म उनक साथ थे। अगली पीढी म कोई सेती सँभालने क लिए तैयार नही, क्योकि सभी पढ लिख गए हैं, और खेती अपने भुजबल पर ही होने वाली है।

२७ तारीख को भाई पृथिवीसिहजी आए। सरदार पृथिवीसिह स मेरी बहुत घनिष्ठता रही है यह जीवन यात्रा के दूसरे भाग स मालूम होगा। अब उनके स्वास्थ्य पर आयु का असर दीख रहा था। स्वास्थ्य के लिए ही वह कश्मीर जाते हुए यहाँ आए थ। उनकी जीवनी के दूसरे सस्करण म कुछ और बाते भी मैं जोडना चाहता था क्योकि उसे लिखे दस ग्यारह वप हो गए थे। पाच छ दिन अच्छे कटे और जीवनी के लिए कितनी ही सामग्री भी मिल गई। यह दूसरा सस्करण वाराणसी के ज्ञानमण्डल न प्रकाशित किया। सरदार पृथिवीसिंह का सारा जीवन देश की स्वतन्त्रता के सघर्षो म गुजरा। बीस वप के ही थ, जब अमेरिका के सुखमय जीवन का लात मार-कर क्रान्ति करने भारत आए। उनकी कम आयु को देखकर ही फासी की सजा की जगह आजन्म कालापानी मिला, नही तो उन्ह तरुण करतारसिंह की तरह फासी के तख्ते पर झूलना पडा होता।

भैया (स्वामी हरिशरणानद) का हर सप्ताह दो तीन बार समागम होता रहा। हमारी आर्थिक कठिनाइया का उन्ह किसी तरह पता लगा, और जब यह भी सुना कि मैं शायद देश स बाहर जाने की इच्छा रखता हूँ, तो एक दिन (३ अगस्त) गम्भीर किन्तु सहज भाव स कहा 'बाहर जाने की जरूरत नही है। हमारे पास काफी है।' उनकी सहृदयता और उदारता को मैं स्वीकार करता था और यह भी जानता था कि हमारा सम्पर्क बहुत घनिष्ठ हो गया है। पर मैं तो अपने बल पर ही खडा होना चाहता हूँ इसे छोडकर दूसरा रास्ता पकडना मेरे लिए प्रिय नही।

आजकल पोर्तुगीज और फ्रेंच अधिकार म पडे भारतीय क्षेत्रों की स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था। फ्रेंच भवितव्यता के बारे म कुछ सोच सकते थे। मासभर का पोर्तुगीज तानाशाह अमेरिका और इगलण्ड क

कूद रहा था। लेकिन, फ्रेंच वस्तियों का भी बिना कुर्बानी के ही कराया जा सकता, यह निश्चित था।

ज की कवाडिया के यहा से जो पुस्तक खरीदकर लाए थे, उनम से एक जगह दार्जिलिंग के एक मारवाडी सेठ के दक्ष कारपदाज प० रायण तिवारी के बारे म पढा। पुरानी स्मृति जाग उठी। नगनारायण योग्य थे। कमाकर घर की हालत वहतर बनाना शुरू ही किया था की दाना आखें जाती रही। कुछ अग्रेजी पढे हुए थे। अग्रेजी शासन खिलाफ थे। असहयोग आन्दोलन छिडते ही वह उसम कूद पडे। कर जब तक जीए तब तक राष्ट्रीय आन्दोलन म भाग लेते रहे। हर र जाते रहे। १९२१ मे मैंन एकमा (छपरा) मे काग्रेस का काम या उसी दिन वह मेरे साथी हुए। हम बराबर गाँव-गाँव घूमते थे। जी अपनी बोली (भोजपुरी) म अच्छा व्याख्यान देते और गीत बना- ते थे। शायद "मैला आचल" के लेखक रेणुजी के जिले पूर्णिया म स्वराज्य के प्रचार म घूम थे, क्योकि उनके इस श्रेष्ठ उपन्यास म गह तिवारीजी के नाम से उनके पद की एक पाँती उद्धृत थी। नाम ते ही मन न कहा कि जो आदमी आँखो से मजबूर होने पर भी य की रट लगाए उसके लिए दुख झेलते चल बसा। उसकी स्मृति क बार नई पीढी को दिलानी चाहिए, और मैंन एक लेख लिख दिया। भी जगह की तरह लक्ष्मीपात्र अग्रेजो के समय देश की आजादी की लिक राजभक्ति की पर्वाह किया करते थे। अब तो काग्रेस म आन की बात नही, और अपने पक्ष के ज्यादा मेम्बर बनवाना भी बाएँ त खेल है। मसूरी काग्रेस सभापति और मत्री ऐसे ही थे। पुरान समय ग्रेस की सेवा करने वाले उनसे जलते थ। एक दिन सुना, बहुत स र कराके लोग प्रान्तीय काग्रेस के सभापति के पास आवेदन-पत्र भेज कि उन्हे हटा दिया जाए। कितन भोले हैं ये लाग ? इनकी अक्ल पर आता। नही समझते काग्रेस म गुणात्मक परिवर्तन आ गया है, उसकी उलट हो गई है। इसके बडे-बडे नेता अब भुक्खडो की जमात के नही उनका स्वार्थ उनके साथ सम्बद्ध है। अब तो उच्च वर्ग के धनी मानी हितमित्र हैं, जवानी या शिष्टाचार के नाते ही नही, बल्कि विवाह-

सम्बन्ध भी अब उनके लखपतियो-करोडपतियो से नीचे के साथ नही होते। वह मसूरी के काग्रेसियो के चिल्लपो को क्यो सुनने लगे ?

नेहरू ने नारा दिया "काम, काम, काम' और फिर "आराम हराम है।" निहित स्वार्थवालो और उनके पक्षपातियो के नारे खोखले होते हैं। उनका काम जनता के ध्यान को बँटाना है। दो पैसे भर अक्कलवाला आदमी भी जान सकता है कि भारत मे शिक्षित हो या अशिक्षित गाव के हो या शहर के, सभी 'काम चाहिए, काम चाहिए" चिल्ला रहे है। भोर से उठते है और आधी रात तक उनकी यही रटन रहती है। पढे लिखे लोग दफ्तरो मे घूमते है, अफसरो और सेठो की खुशामद करते है कि हाड चाम इकट्ठा करने के लिए कोई काम मिल जाए। भूखे रहते रहते गाव के गरीब तंग आ जाते हैं, तो घर छोड चार-चार पाच पाच सौ मील दूर काम की खोज मे जाते है। कितने ही खोज करते करते वही मर जाते हैं, कितने ही घबरा खाते फिर अपने घरो की ओर लौटते है। भला इन लोगो के सामने 'आराम हराम है" कहना निरी वचना नही है। उनको आज की व्यवस्था मे काम कैसे दिया जा सकता है ? जब पूजीवाद के शिरोमणि देश अमरिका मे भी लाखो आदमी हर वक्त बेकार रहते है, तो हिन्दुस्तान उस समस्या को हल कैसे कर सकता है ? बेकारी का उच्छेद केवल समाजवादी देशो मे हुआ। चीन मे चुटकी बजाते बजाते यह काम किया गया। ऐसा क्या हुआ? उन देशो मे आदमी के बौद्धिक और शारीरिक श्रम को बहुत मूल्यवान पूजी माना जाता है, उसको बेकार न रखकर काम मे लगाना राष्ट्र अपना कर्तव्य समझता है। इसीलिए बडी बडी योजनाएँ बनाकर लोगो को काम पर भिडा दिया गया। कही जलनिधियाँ बन रही हैं नहरे खुद रही है गाँव गाँव स्कूल स्थापित हो रहे हैं, नये-नये कारखाने बन रहे हैं। इस तरह सबको काम मिल रहा है। भारत मे मुह से चाहे कुछ भी कहे, लेकिन काम से थैलीशाहो को खुश रखना, उनके स्वार्थ पर कम से कम आँच आने देना सरकार का कर्तव्य है। आँखो के सामने भ्रष्टाचार हो रहा है। ६६ प्रतिशत मन्त्री स्वय गले तक उस कीचड मे दबे हुए है। वही दूसरो को भ्रष्टाचार से अलग रहने का उपदेश देते हैं, उसके उन्मूलन के लिए कमेटियाँ और अफसर नियुक्त करते है। अगर सचमुच ही दुनिया मे कोई भगवान होता, तो एक

की जीभ निकाल लेता, उन्हें जलाकर खाक कर देता। अंग्रेज जब वक्त भी लोगों की हालत बुरी थी, उस वक्त भी रिश्वत और भ्रष्टा-ा, लेकिन उतना नही था, जितना आज सात वर्ष बाद दिखाई दे रहा दिन डा० सत्यकेतु से चर्चा चल रही थी। उन्होंने कहा, ५० फीसदी टी के लिए त्राहि त्राहि कर रहे हैं। मैं उनसे सहमत नही था। हो है फसल कटते वक्त त्राहि त्राहि करनेवालो की सख्या आधी हो, पर अधिक दिनो में उनकी सख्या तीन-चौथाई से कम नही। अब इनमे भी शामिल हो गए है जो सात ही आठ वर्ष पहले खुशहाल समझे ।

रकार के कर्णधारो के ढोंग और वचना क्या एक दो है कि उस जाए? हमारे देश के एक बहुत अमेरिकापरस्त साहब ने वन-व आरम्भ किया। अब हर साल बरसात के शुरू में सेठो के अखबारो महोत्सव के बारे मे प्रचार किया जाता है, करोडो वृक्षो के लगाए आकडे दिए जाते हैं लाखो रुपये इसमे बरबाद किए जाते हैं। लेकिन त्सव कैसा सफल हो रहा है, इसका उदाहरण मसूरी मे ही मिला। रो मे छपा कि मसूरी मे १० हजार वृक्ष लगाये गए। मैं समझता हूँ मे बहुत अतिशयोक्ति से काम नही लिया गया, किन्तु क्या वे वृक्ष हैं? अंगुल चौडी ज्यादा से ज्यादा एक हाथ लम्बी एक वनस्पति यहाँ मे होती है। ऐसी बेहया है कि यदि कहीं भूल से भी पड जाए, तो हटने का नाम नही लेती। उसमे फूल भी होते हैं लेकिन सुन्दर बस उसी को सडक के किनारे दो दो हाथ पर लगवा दिया गया। जगहो से यहाँ के वन महोत्सव मनाने वाले ईमानदार कहे जाएँगे, और जगह लगाने भर के लोग जिम्मेवार होते हैं। उनके वहाँ से ते ही हफ्ते भर मे किसी पौधे का नामोनिशान नही रहता। लेकिन ह्या वनस्पति मे से बहुत सी दो साल बाद आज भी आपको दिखाई ।

८ अगस्त को अग्रवालो की विवाह पद्धति पर डा० किरणकुमारी की पुस्तक छपी मिला। मैंने आधी दर्जन महिलाओ का हस्ताक्षर लिए किया था और उन्होंने स्वीकार भी किया था। लेकिन उन किरणजी

ही पूरा करन म सफल हुई। पुस्तक बहुत अच्छी तरह लिखी गई। उन्हान सारे अग्रवाला का नही, बल्कि कदीमी अग्रवाला तक हा अपन का सीमित रखा और उनम भी उन्ही को लिया, जिनकी मातभाषा व्रजभाषा है। इस पुस्तक क द्वारा वृद्धाओ के कण्ठ और स्मृति म ही सुरक्षित सारे विवाह के रीति रिवाज और दा सौ क करीब गीत जमा हो गए। हरेक भाषा क्षेत्र की दो दो तीन तीन जातिया के बार म इसी तरह की विस्तृत अनुसधानपूर्ण पुस्तकें यदि तयार हो जाएँ तो नृतत्वीय तुलनात्मक अध्ययन का काम कितना आगे बढ सकता है? हमारी शिक्षिता तरुणिया का इधर ध्यान नहीं है। जब ध्यान जाएगा तब वृद्धाएँ अपने साथ बहुत सा विधि विधानो और गीतो के लिए मर चुकी रहगी।

१९३७ म रूस जाते समय ईरान की राजधानी तहरान म कुछ समय ठहरा था। उसी समय सरदार रामसिंह से मुलाकात हुई थी। वह किसी सैनिक ठेकेदार क कारपर्दाज थे। क्वेटा से रेल म जाते हमारा परिचय हो गया था। महीने डेढ महीने से ज्यादा हम दोनो एक दूसरे क सम्पर्क म नही रहे होगे पर सम्पर्क ऐसा जरूर था कि हम एक दूसरे को भूल नहीं सकते थे। एक सैनिक अफसर मित्र स उन्हे मेरे बारे म पता लगा। चिट्ठी भी भेज चुके थे। उस दिन १६ अगस्त को एकाएक आ गए। धर पश्चिमी पाकिस्तान म था, लेकिन शरणार्थी होने से पहले ही वह कारबार क सिल सिले म यहा आ, झासी म रहत थ। १७ वर्ष म काली दाढी सफेद हो गई थी। दाढी चोटी स उनको कोई काम नही था, लेकिन बाप दाद सिक्ख होने से दाढी रखत चले आय थे, इसलिए वह उसे ढोने के लिए तयार थ। मैं कभी कभी सोचता हूँ कि पजाब म दाढी चोटियो न कसी बदतमीजी का तूफान खडा कर रखा है? पहले ऋषि मुनि नहीं सभी लोग जन्म स ही अपने बालो की खेती को मृत्यु तक बचाकर ल जात थे। फिर वृद्धो को यह काम सौंपा गया और जवानो न दाढी स छुट्टी ल ली। केश आज से सात आठ सौ वर्ष तक अक्षुण्ण चले आय थ। लम्बे केशो को सजाकर रखना पुरुष भी आवश्यक समझत थे। जयचन्द्र क दरबारी कवि "द्विफालबद्धा चिकुरा" (दो फाँक करके बाँधे केशो) की प्रशसा करत नहीं थकत थ। फिर मनचले तरुण निकले जिन्होन तीन चौथाई सिर के लम्बे केशो स

खाली कर दिया। पूजा के समय बिखरे बालो म गाँठ लगा ली जाती थी, जो सैकडा वप बाद धार्मिक अनुष्ठान बन गया। यदि सारे केश को साफ कर दिया जाता, तो पूजा के समय गाँठ कसे बँधती ? इसलिए बीच म काफी बाल चुटिया के लिए छोड दिय जात। नियम बनाया गया कि चुटिया गौ के खुर के बराबर हो। मालम नही गुजराती गाय के खुर के बराबर या एक दिन की बछिया के बराबर। मद्रास के ब्राह्मणो ने अभी हाल तक इस वचन का पालन की कोशिश की। पीछे से देखने पर किसी किसी की चुटिया तो महिलाओ के केश की तरह मालूम होती। चुटिया से छुट्टी लेने वाले सबसे पहले बगाली रहे। धीरे धीरे यह रोग सारे हिन्दुस्तान म फैल गया। अब नवशिक्षित हिन्दू तरुणो म चुटिया सपना हो गई। केशो का हमारे यहा यह इतिहास है। सिक्खो म केश दाढी को धम का अग माना जाता है, लेकिन नई रोशनी से वचित जवान भी दाढी मुडा लेना मामूली बात समझते। अब तो छुरे से नही कची से बडी चतुराई के साथ दाढी छोटी की जाती है। कितने ही लोग केशो को भी बीच बीच से निकाल लेते हैं। बहुत से शिक्षित नौजवान तो अब उससे बिल्कुल मुक्त हो गये है। इस्लाम म भी दाढी पर बहुत जोर था। तेहरान म मैंने एक ईरानी को हमारे भाइयो को देखकर कहते सुना—

"हमा मदुमा आदम शवन्द ईं रीशिया ताहनोज आदम नमीशवन्द।" (सभी मद आदमी हो गये, ये दाढी वाले अभी भी आदमी नही हुए।) दुनिया म केशो के ऊपर सभी जगह आफत आई है।

अब की १५ अगस्त के समारोह म म शामिल नही हुआ था। गाधी चौक पर समारोह देखने कमला गई थी, और वहा बेहोश होकर खडी खडी गिर पडी। सयोग से पास म परिचित लोग भी थे, उन्होने मदद की। टाउन हाल म सभा हुई, तो वहा काग्रेसियो और गैर काग्रेसियो म झगडा उठ खडा हुआ। काग्रेस वालो म भी जहाँ नेतृत्व के लिए झगडा नही है वहा बनियो के नये नेतृत्व के प्रति घृणा तो है ही, इसलिए वह भी गैर काग्रेसियो के साथ सहानुभूति रखते है। कहते थे डेढ घटा तक सभा म हल्ला गुल्ला रहा बहुत से लोग उठके चले गए। इस दिवस को तो हम राष्ट्रीय पव के तौर पर मनाना चाहिये क्योकि इस दिन दो सौ वप से स्थापित विदेशी स्वेच्छा-

ही पूरा करने म सफल हुई। पुस्तक बहुत अच्छी तरह लिखी गइ। उ
सार अग्रवाला को नही, बल्कि कदीमी अग्रवाला तक ही अपने का सी
रखा और उनम भी उन्ही का लिया, जिनकी मातभाषा व्रजभाषा है।
पुस्तक के द्वारा वृद्धाओ के कण्ठ और स्मृति मे ही सुरक्षित सार विवा
रीति रिवाज और दो सौ के करीब गीत जमा हो गए। हरेक भाषा क्षेत्र
दो दो तीन तीन जातियो के बारे मे इसी तरह की विस्तृत अनुसधान
पुस्तकें यदि तैयार हो जाएँ तो नृतत्वीय तुलनात्मक अध्ययन का व
कितना आगे बढ सकता है? हमारी शिक्षिता तरुणियो का इधर ध्यान न
है। जब ध्यान जाएगा तब वृद्धाएँ अपने साथ बहुत सी विधि विधानो अ
गीतो के लिए मर चुकी रहगी।

१९३७ मे रूस जाते समय ईरान की राजधानी तेहरान म कुछ सम
ठहरा था। उसी समय सरदार राममिह स मुलाकात हुई थी। वह कि
सैनिक ठेकेदार के कारपर्दाज थे। क्वेटा से रेल म जाते हमारा परिचय
गया था। महीने डेढ महीने स ज्यादा हम दोनो एक दूसरे के सम्पर्क म न
रहे होगे, पर सम्पर्क ऐसा जरूर था, कि हम एक दूसरे को भूल नही सक
थ। एक सैनिक अफसर मित्र से उन्हे मेरे बारे म पता लगा। चिट्ठी
भेज चुके थे। उस दिन १६ अगस्त को एकाएक आ गए। घर पश्चिम
पाकिस्तान मे था, लेकिन शरणार्थी होने स पहले ही वह कारबार के सिल
सिले मे यहा आ, यासी म रहते थे। १७ वष म काली दाढी सफेद हो ग
थी। दाढी चोटो स उनको कोई काम नही था, लेकिन बाप दादे सिक्ख
होने से दाढी रखते चले आये थे इसलिए वह उसे ढोने के लिए तयार थ।
मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि पजाब म दाढी चोटियो ने कैसा बदतमीजी
का तूफान खडा कर रखा है? पहले ऋषि मुनि नहा सभी लोग जन्म स ही
अपने बालो की खेती को मृत्यु तक बचाकर ले जाते थे। फिर बुढ्ढो को यह
काम सौपा गया, और जवानो ने दाढी स छुट्टी ले ली। केश आज स सात
आठ सौ वष तक अक्षुण्ण चले आये थ। लम्बे केशो को सजाकर रखना
पुरुष भी आवश्यक समझते थ। जयचन्द्र के दरबारी कवि द्विपालबद्ध
चिकुरा" (दो फाँक करके बाँधे केशो) की प्रशसा करते नही थकते थे।
फिर मनचले तरुण सिख निहनि तीन चोथाई सिर को ... ...

खाली कर दिया। पूजा के समय बिखरे बालो म गाँठ लगा ली जाती थी, जो सैकडा वष बाद धार्मिक अनुष्ठान बन गया। यदि सारे केश को साफ कर दिया जाता, तो पूजा के समय गाँठ कस बँधती ? इसलिए बीच म काफी बाल चुटिया क लिए छोड दिय जात। नियम बनाया गया कि चुटिया गो के खुर के बराबर हो। मालूम नही गुजराती गाय के खुर क बराबर या एक दिन की बछिया क बराबर। मद्रास के ब्राह्मणो न अभी हाल तक इस वचन का पालने की कोशिश की। पीछ मे देखने पर किसी किसी की चुटिया तो महिलाओ क केश की तरह मालूम होती। चुटिया से छुट्टी लेने वाले सबस पहले बगाली रह। धीरे धीरे यह रोग सारे हिन्दुस्तान म फैल गया। अब नवशिक्षित हिन्दू-तरुणो म चुटिया सपना हो गई। केशो का हमारे यहाँ यह इतिहास है। सिक्खा म केश दाढी को धम का अग माना जाता है, लकिन नई रोशनी से वचित जवान भी दाढो मुडा लेना मामूली बात समझते। अब तो छुरे से नही कची स बडी चतुराई के साथ दाढी छाटी की जाती है। कितने ही लोग केशो को भी बीच बीच से निकाल लेते हैं। बहुत स शिक्षित नौजवान तो अब उसस बिल्कुल मुक्त हो गय है। इस्लाम म भी दाढी पर बहुत जोर था। तेहरान म मैंने एक ईरानी को हमारे भाइयो को देखकर कहते सुना—

"हमा मदुमा आदम शवन्द, इ रीशिया ताहनोज आदम नमीशवन्द।"
(सभी मद आदमी हो गय, ये दाढी वाले अभी भी आदमी नही हुए।) दुनिया मे केशो के ऊपर सभी जगह आफत आई है।

अब की १८ अगस्त के समारोह म मैं शामिल नही हुआ था। गाधी चौक पर समारोह देखने कमला गई थी, और वहाँ बेहोश होकर खडी खडी गिर पडी। सयोग से पास म परिचित लोग भी थे, उन्होंने मदद की। टाउन हाल म सभा हुई, तो वहाँ काग्रेसियो और गर काग्रेसियो म झगडा उठ खडा हुआ। काग्रेस वालो म भी जहा नेतत्व के लिए झगडा नही है, वहाँ बनियो क नय नेतत्व के प्रति घृणा तो है ही, इसलिए वह भी गर काग्रेसियो के साथ सहानुभूति रखत हैं। कहते थे, डेढ घटा तक सभा म हल्ला गुल्ला रहा, बहुत स लोग उठके चले गए। इस दिवस को तो हम राष्ट्रीय पव के तौर पर मनाना चाहिय क्योकि इस दिन दो सौ वष से स्थापित विदेशी स्वेच्छा-

चार का अन्त हुआ था। दिल के गुबार को निकालने के लिए और अवसर मिल सकते है। पर, यह समझे कौन ?

मसूरी और देहरादून पर मैं लिखने का खयाल आते यहां के पुराने एंग्लो इंडियन परिवारों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। हमारे पास के बड़े होटल चार्लविल के बारे में किसी ने यों ही कहा, विल्सन नाम के अंग्रेज ने अपने पुत्र चार्लविल के नाम से इसे स्थापित किया था। यह भी बतलाया गया कि यह वही विल्सन था जिसने गंगा में पहले-पहल लकड़ियां बहाई और जो टेहरी रियासत का बड़ा ठेकेदार था, तो मुझे ११ साल पहले देखा हर्सिल का बंगला याद आने लगा। मैं उसके पीछे पड़ा। सूचनाएँ इकट्ठा नहीं मिली। जरा जरा सा जमा करने पर पता लगा कि उसका नाम फ्रेडरिक विल्सन था। १८४० ई० में वह स्थायी तौर से भारत चला आया था और वर्षों शिकार ही उसकी जीविका का साधन रहा। गंगोत्री के आसपास की भूमि को उसने अपना निवासस्थान बनाया। वहीं मुखवा की एक लड़की से ब्याह किया। फिर हर्सिल में वह बंगला बनवाया, जो सौ साल बाद भी अभी सुदृढ़ खड़ा है। उसके दो लड़के थे। चार्ली बड़ा था। विल्सन पीछे जंगल का ठेका लेकर लाखों का स्वामी हो गया। उसके जगह जगह मकान बन गये। उसके पास छ छ, सात सात हाथी रहते, अंग्रेज और देशी कितने ही अफसर थे। पिछली शताब्दी के चतुर्थ पाद के आरम्भ में ही उसका देहान्त हो गया। चार्ली ने जायदाद को खूब बरबाद किया। उसकी ७० साल से ऊपर की बीबी अब भी देहरादून में रहती है। उनसे भी मैंने पूछ ताछ की। विल्सन ने एकान्त शिकारी जीवन का आनन्द लिया, और जब तक पैरों में बल रहा पश्चिमी तथा मध्य हिमालय में घूमता रहा। वह एक आदर्श घुमक्कड़ था, इसलिए शिकारी विल्सन की तरफ मेरा आकृष्ट होना स्वाभाविक था। मैंने उसकी एक छोटी-सी जीवनी लिखी।

दूर से देखने पर पालतू जानवरों का रखना केवल खुशी-खुशी की बात मालूम होती है लेकिन वह वैसी बात नहीं है। कुत्ते चूंकि कमरे में साथ सोते-बैठते हैं। वह बाहर से बीमारियों को ला सकते हैं। उन्हें बराबर धो-धोकर रखने की जरूरत पड़ती है। भून अलसेसियन है इसलिए उसके बाल घने हैं। बालों व जंगल में कितने ही जन्तु पलते हैं। पिस्सुओं से पिण्ड

छुडाना मुश्किल हो जाता था। हफ्ते दो हफ्त मे दवाई से धोन पर भी पिस्सुआ का कुछ नही बिगडता था। डी० डी० टी० सूखे पौडर को भूत डालने नही दता था। इधर न जाने कहा से किलनिया बटोर लाया था। आसपास दूसरे कुत्ते है ही, उनसे या मौसम के वक्त जगह जगह बगलो के बाहर भैंसे और गाय रहती है उनसे लाया होगा। कुछ किल्निया घर मे भी रेंगती, और कुछ खून पीकर गोलमटोल मटर जसी हो काना के पास लटकती, जिन्ह निकालन देना भूत अपनी गोभा की हानि समझता।

लखनऊ के कप्तान शुक्ला मनमौजी जीव है। घूमन का शौक है चौथे-पन म पर रख चुके है, और शरीर हल्का नही है, तो भी समझत है, कि हमे दुगम पवता पर चढना चाहिए। हर साल गर्मियो म यहा आ जाते और हम भी दशन द जाते है। लेकिन अक्सर बरसात के आखिरी महीना मे आत है। इससे पहले हिमालय म कही सैर कर चुके रहने है। २३ अगस्त को आए। अबकी दो-तीन महीने हसिल मरह थे। विल्सन के बगले ने उन्ह भी आकृष्ट किया था। उन्हान भी विल्सन के बारे म जानन की काशिश की थी। बतला रहे थे, लोग कहते है—विल्सन ने पहले मुखवा के एक ब्राह्मण लडकी से ब्याह करना चाहा। वह वहा के लागा मे घुल मिल गया था। लोग उसकी उदारता से बहुत खुश थे। लेकिन, जब लडकी देन का सवाल आया, ता पण्डा लाग बिगड उठे। फिर उसने धरौली की एक क्षत्री की लडकी को ब्याहना चाहा। उसम भी सफल न हाकर मुखवा के ढाली (हरि-जन) की परम सुन्दर लडकी से ब्याह किया और, और माँ-बाप को निहाल कर दिया। पीछे जगल का ठेका लेकर लखपती हुआ। श्री मुकुन्दीलाल बेरिस्टर कई वर्षों तक टेहरी के चीफ-जज रह चुके थे, उनसे भी कितनी ही बातें मालम हुइ। विल्सन न अपने लडको को अच्छी शिक्षा देनी चाही, लेकिन वह बिगड गय। जब तक शिकारी विल्सन जिन्दा रहा, तब तक सब लोग उसका लिहाज करते थे। फिर चार्ली और हेनरी ने अपन स्वेच्छाचार से ऊधम मचाया। कोई खून भी हो गया। राजा न इसकी शिकायत अंग्रेज रेजीडेंट से की। वह इन अधगोरे जवाना को क्या बढावा देने लगा? उन्ह टेहरी से बाहर निकाल दिया गया। कप्तान शुक्ल कह रह थे, विल्सन के बगले को अब सरकार ने ले लिया है।

हमारे हैपीवेली मुहल्ले के सबसे वृद्ध हैं शादीलाल, जिनकी उमर ७० के करीब होगी। दस-बारह वर्ष के थे तभी वह देश से मसूरी चले आए। कई बेटे हैं। बेटों से अलग ही रहते हैं। पुरानी मसूरी, खासकर हैपीवेली की बहुत सी पुरानी बातें उन्हें याद हैं। उन्होंने बतलाया कि चार्लविल का पहला नाम हाग्सन था। हाग्सन चार्ली और बिली दो लड़के थे जिसके नाम पर उसने इस बँगले का नाम रखा, और बेचते वक्त यह शर्त की कि इसका नाम बदला न जाए। हेर्सी परिवार भी मसूरी का सौ वर्ष पुराना एंग्लो इंडियन परिवार है। उस परिवार की पुत्री वृद्धा मिसेस वाइट ने बतलाया कि शिकारी विल्सन या उसके लड़के चार्ली विल्सन से चार्लविल होटल का कोई सम्बन्ध नहीं है। लाला शादीलाल १८९२ ई० में अपने चचा की दूकान में टेकारी कोठी के नीचे काम करते थे। बतला रहे थे टेकारी-कोठी की जगह पहले भसवाड़ा था। सवा सौ वर्ष से पहले आस-पास के गाँववाले गर्मी बरसात में मसूरी के जंगलों को अपने पशुओं की गोचरभूमि के तौर पर इस्तेमाल करते थे। जहाँ-तहाँ भसवाड़े या गायों के झोपड़े होते थे।

हर्सी-परिवार के लोग बार्लोगंज में रहते हैं यह जानकर २४ अगस्त को हम वहाँ पहुँचे। लाइब्रेरी में "हेर्सी" पर एक पुस्तक देख चुके थे, जिससे मालूम हुआ कि अंग्रेज हर्सी टीपू सुल्तान से लड़ने वाले अंग्रेज अफसरों में एक था। उसने टीपू के हरम की किसी बेगम को उड़ाया। उसी परिवार का एक हर्सी टेहरी के राजा से परिचित हो गया, और उस राजा ने कोरी जागीर देकर यहाँ रखा। उसने ही बार्लोगंज में इस बँगले को वाजिदअली शाह की लड़की के रहने के लिए बनवाया। शाहजादी और तरुण हर्सी की आँखें लड़ गईं, और वह उसे निकाल भागने में सफल हुआ। मिसेस वाइट बड़े गर्व से कह रही थी—"मेरी रगों में शाही खून है।" उनका भाई हर्सी अब भी वहीं एक झोपड़ा बनाकर रहता था। अकेला दम था, कुछ जमीन थी, उसी पर गुजारा करता था। मिसेस वाइट के पास बहुत जमीन थी। सौ वर्ष पहले बना बँगला अब गिरने ही वाला था, लेकिन अभी तो बुढ़िया का मरण देखने के लिए तैयार था। बुढ़िया के लड़के-लड़कियों में से कुछ इंग्लैण्ड चले गए, और सबसे छोटा यहीं था, जो लन्दन में तो अपरिचित अजनबी मालूम होता था, इसलिए आस्ट्रेलिया या नये मुल्क में जाने की उसकी

खपत हो सकती थी। लखीमपुर मे हेर्सी-परिवार तालुकदार के रूप म अभी तक रह रहा था। अब जमीदारी उठ जाने से उसकी क्या हालत हुई होगी, नही कहा जा सकता। हेर्सी और विल्सन परिवार के इतिहास पर नजर दौडान पर एक पुराना युग आखा के सामन नाचने लगता है। अग्रेज हिदुस्तान म बनिये के रूप म आए। उस वक्त उन्ह खयाल भी नही था कि हम दिव्य जाति के है। वह हिदुस्तानियो के साथ वैसे ही मिलत जुलत थे, जैसे हिदुस्तानी आपस मे। कोई सिपाही बनकर हिदुस्तान के राजाओ और नवाबो की पलटन मे काम करता, कोई मुसाहिब बनता। काई शिकारी बनकर ही किसी जगह रह जाता। हिदुस्तानी खाना उसके लिए प्रिय होता, पोशाक भी आधी तीतर आधी बटर रहती। लेकिन, जब राज हाथ म आया, तो उन्होने धीरे धीरे अपना रूप पहचाना। पर पूरी तौर से दिव्य पुरुष बनन मे उन्हे शताब्दियो की दर हुई।

भैया न दिल्ली (फैज बाजार) मे अपने मकान की दो मजिले तैयार कर ली थी तीसरी बनने का रह गई थी। कह रह थे उसे अगले साल बनवाएँगे। जितना चाहते थ उतना पैसा कमा लिया था। आर्थिक तौर स निश्चिन्त थे। वह पसा क दास कभी नही हुए यद्यपि पैस के मूल्य को समझत थे। अब दिमाग मे कल्पना उठ रही थी कि आयुर्वेद के अनुसधान और प्रचार के लिए इसी मकान म आयुर्वेदिक सगम स्थापित किया जाए। एक प्रसिद्ध वैद्यराज का भी लिखा पढी करके ठीक कर लिया था। वह वृद्धावस्था मे इस पुण्य क काम म समय दने के लिए तैयार थे। प्रेम भी अमृतसर से वही लाकर चलाना चाहते थे। दा सौ रुपये मासिक पर किसी तजर्बेकार मनेजर की तलाश मे थे। मैंन कहा प्रेस और मनेजर की कोई बात नही लेकिन कृपया सगम के बारे म जल्दी न कीजिय। मेरी समझ म यह 'आ बैल मुझे मार'' की बात हागी। सगम हजार-दा हजार महीन का खच मागेगा। एक बार फँस गय तो फिर निकलना मुश्किल होगा। काई अपन सुनहले स्वप्न का कह रहा हा और दूसरा बिना किसी भूमिका के उस मान के महल पर निष्ठुर प्रहार करन लगे ता कसा लगगा ? मैंन बस ही किया था, लेकिन भैया न बुरा नही माना। पीछे धीरे धीरे वह खयाल अपन आप हट गया।

अगस्त के अन्त मे जया के साल पूरे होने मे तीन ही हफ्ते की देर थी अब वह काफी चेतन हो गई थी। अपनी तस्वीर को पहचानती थी। मुंह खोलना कहने पर मुह खोलती, दाँत दिखलाती। अभी वह पा, वा, माँ तीन ही अक्षर बोल सकती थी। एक वर्ष की होने पर अपने बल पर वह खडी हो सकती थी पर चल नही सकती थी। नमस्ते सलाम टाटा हाथ से करती। भूत के भूकने की भी नकल करती। न दिय खाने को भी आँख बचाकर मुह मे डालना चाहती। नाचती भी थी। उसके जन्मदिन के लिए कमला ने छोटी सी पार्टी की, जिसमे शीलाजी, सत्यकेतुजी, बच्चे, मेहताजी और कुछ और मित्र शामिल हुए।

३ सितम्बर की रात का किसी काम से बाथरूम के बाहर वाले दरवाजे का खोलना पडा। भूत निकल गया। पास ही मे हमारा कठ नासपाती का पेड है। वह वहा जाकर भूकने लगा, फिर चुप हो गया। भीतर चले आए। मालूम तो होता था कि नासपाती पर खर खर हो रही है। बन्दूक लेकर जाने की इच्छा हुई, पर शिकारी बरिस्टर साहब ने कह रखा था, आपकी राइफल की गोली मार नही घायल कर सकती है और जानवर फिर वार कर सकता है। इसलिए बाहर नही गये। सोचा कोई रीछ आया होगा, नासपातियो को खा रहा होगा। बीच मे कभी कभी फलो के गिरने की धम-धमाहट भी उसी बात का समर्थन कर रही थी। सवेरे उठकर देखा, तो नासपाती के ऊपर एक भी फल नहीं है। एक छोटी डाल टूटी हुई है। मन ने लालबुझक्कड होकर कहा, जरूर भालू आया। लेकिन, फिर सोचा, यदि भालू आया था, तो भूत क्या दो एक बार भूककर चुप हो रहा। यह समझने मे देर लगी, और इसमे जान लेडली की राय ने भी सहायता दी कि नासपाती तोडने वाला भालू नही, बल्कि मुहल्ले का ही कोई आदमी था, जिसे भूत पहचानता है। भला, रात मे चोरी करने की क्या जरूरत थी? नासपातियाँ हमारे काम नही आती थी। खट्टी-खट्टी बेस्वाद थी। माँगने पर हम ऐसे ही देकर पिण्ड छुडाते। कही जो उस रात राइफल दागी होती, यह साधारण रागटा खडा हो जाता था।

शिकारी विल्सन के पीछे मैं पडा हुआ था। अब मालूम हुआ, विल्सन का पहला पुत्र चार्ली १८४६ ई० मे पैदा हुआ और १९३२ मे मरा।

शिकारी का स्वय देहान्त १८८६ मे हुआ।

६ सितम्बर को कम्पनी वाग म बन-भोज था। हम लोग इधर से भया और भाभीजी कुल्हडी से और साथ ही आचाय यादवजी त्रीकमजी भी अपनी पत्नी तथा तीन पुत्रियो के साथ आए। हम लोगो को यही भोजन करना था, लेकिन यादवजी भोजन करके आए थे। थोडा सा पकवान भर उन्होने लिया। महिलाएँ सब वल्लभ कुल की शिष्याएँ थी इसलिए वह पकवान भी नही खा सक्ती थी। पिछले साल की तरह इस साल भी बन-भोज म वर्षा न विघ्न करना चाहा, और हम चाय के रेस्तोरा के लिए बनी कोठरी म पडे रहे। आचाय त्रीकमजी एक सफल वैद्य है। चाहते तो धन-कुबेर बन जाते पर वह लक्ष्मी की मर्यादित पूजा करना ही जानते थे। चिकित्सा करन के अतिरिक्त आयुर्वेद के ग्र था का उद्धार करना भी वह अपना कतव्य समझते थे। वर्षा बन्द होने पर हम चाय पीकर ५ बजे घर लौटे।

७ सितम्बर को कमला के एम० ए० (प्रथम) का फाम भरवाने के लिए रमादेवी उच्चतर विद्यालय के प्रिंसिपल मलहोत्राजी के पास गय। मलहोत्रा जी इधर नगरपालिका की राजनीति मे भी भाग लेने लगे थे जिसे मैं पसन्द नही करता था। लेकिन, अपनी-अपनी रुचि है। वह यहाँ के सबसे योग्य प्रिंसिपल है। उनके स्कूल की परीक्षा का परिणाम हमेशा सबसे अच्छा निकलता है। लोगो का भी उनक ऊपर विश्वास है। घनानन्द इटर कालेज से असन्तुष्ट हाकर इस स्कूल की स्थापना की गई थी, जिसे मलहोत्राजी जसा प्रिंसिपल मिल गया। लडको की सख्या बराबर बढती गई, और उसी के अनुसार मकाना की भी। उन्हाने स्कूल की इमारतें दिखलाईं। नई इमारत मे साइन्स की प्रयोगशाला भी बनी है। लडको के शारीरिक व्यायाम के लिए भी एक छाटे स मैदान की आवश्यकता महसूस कर रहे थे जिस उन्हान आखिर म बनवाया। पहाड म समतल भूमि मिलना मुश्किल है, इसलिए स्कूल को विस्तृत करना आसान नही। इसी साल कमला की बहिन गगा भी मेट्रिक की परीक्षा दे रही थी। कन्या स्कूल तीन मील पर पडता था इस-लिए गगा को वहाँ स हटा लिया गया। उसे घर पर ही कमला पढाती थी। मसूरी कन्या विद्यालय की प्रिंसिपल महोदया ने फाम भरने म सहायता की।

दफ्तरशाही दिन पर दिन बढती जा रही है। फाम भरने के लिए क्या दो पृष्ठ काफी नही थे ? पर अब उसमे एक दजन पष्ठ होते है। उत्तर प्रदेश म बोड की परीक्षाओ मे पौने दो लाख परीक्षार्थी बैठते है। कागज का कितना अपव्यय है ? जिस तरफ देखो, उस तरफ दफ्तरशाही का बोलबाला है। कागजो को काला करने के लिए ही बेकार के लाखो आदमी लगा दिये गए है। म त्री लोग या दिल्ली के महादेव लाल फीताशाही पर बरस कर केवल विडम्बना मात्र करते हैं। ६ सितम्बर को भैया और भाभीजी म कुछ खट पट हो गई थी। भाभीजी को तो महिलाओ के विद्रोही दल का नेता बनना चाहिए। वह मर्दों के खिलाफ जहर उगल रही थी। मैं दाशनिक बन गया था। सोचने लगा—१ वृद्ध को तरुणी से ब्याह नही करना चाहिए, २ जिसने गृहस्थी की जिम्मेवारियो का पचास साल की उमर तक नही जाना, उसे तो "नव च नैव च।" ३ इतने समय तक गृहस्थी के बन्धन म न बधने का मतलब है, उसके सामने कोई आदश था। ऐसे पुरुष को तो और भी यह फँदा गले मे नही डालना चाहिए ४ जिसने घुमक्कडी म दीघ जीवन बिताया उसे तो विवाह के बिल्कुल पास नही फटकना चाहिए, ५ यदि साथ ही विद्या का व्यसन है तो तोबा-तोबा।

१३ सितम्बर को श्री मुकुन्दलालजी आए। अब की वह पटना भी गए थे। वहाँ उन्होने मेरे चित्रो के सग्रह को देखा था। कह रहे थे, तिब्बत के बाहर इतने सुन्दर चित्रपटो का सग्रह कही नही है। पटना म्यूजियम म अब भी मेरे सभी चित्रो को प्रदर्शित नही किया गया है। मैं भी तिब्बत से लाते समय उनके महत्व को नही समझता था। उस समय शायद कुछ इधर-उधर भी हो जाते, लेकिन १९३२ ३३ म लन्दन और पेरिस म प्रदर्शनी होने पर उनका जब मूल्य मालूम हुआ तो मैंने उन्हे सुरक्षित रखने का निश्चय कर लिया, और यह समझ म देर नही लगी कि इनकी रक्षा किसी सरकारी म्यूजियम म ही हो सकती है। डा० जायसवाल से अभी वयक्तिक परिचय नही था, वही न मैंने चित्रो को सग्रहालय को देने के लिए चिट्ठी लेना। वह यूरोप से सीधे पटना आ गए।

१४ सितम्बर को मध्याह्न भोजन औंध्या के ठाकुर साहब के यहाँ हुआ। अंग्रेजो से विद्रोह करने के कारण उनके दादा-परदादा ने राज्य को

खोया, पर जनता उन्हे "राजा साहब" ही कहती। कमला और हम गए। कप्तान शुक्ल और डा० गैरोला भी थे। मेहमान भी समय पर नहीं पहुँचे। और भोजन में इतनी देर होती देख पेट में चूहे चुलबुलाने लगे। रानी साहिबा ने स्वयं पकवान बनाने की जिम्मेवारी ली थी। कमला उनसे बहुत प्रभावित हुई। मास भी राजपूत के घर का था। भोजन तो स्वादिष्ट था ही साथ ही हम लोगों को बात के लिए भी बहुत अवसर मिला। कप्तान शुक्ला पर बुढापे का कुछ असर है कुछ रहस्यवाद और नये आविष्कार की धुन भी सिर पर सवार रहती है। वह गंगोत्री के पास कहीं सुमेरु शिखर को देख आए थे, और उस पर जोर देकर कह रहे थे। मैं भी अपनी भूल स्वीकार करता हू, क्योंकि हिमालय के परिचयात्मक ग्रथों को लिखने में न लगा होता और उसके द्वारा हिमालय के हरेक भाग से घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने का मौका न मिला होता तो मेरे लिए भी उसकी बहुत सी चोटियाँ और स्थान रहस्यमय मालूम होते, हाँ, देवताओं के निवास नहीं, दूर के अद्भुत भूखण्ड।

१५ सितम्बर को श्री बलभद्र ठाकुर की चिट्ठी मिली। शिव शर्मा और ठाकुर एक बार मानसरोवर जाने के लिए निकले थे। शिव शर्मा जान पर खेलकर निकल गए, ठाकुर उसके लिए तैयार नहीं हुए। पर, इसका यह अर्थ नहीं कि वह घुमक्कडी की योग्यता में पीछे रहे। शिव शर्मा का स्वभाव उबल पडने का है, और ठाकुर मोशाय गम्भीर हैं। वह घुमक्कड भी हैं, सस्कृत के अच्छे पडित हैं, और साथ ही कलम के धनी भी। अब की वह मानसरोवर भी हो आए, और मनीपुर भी। मानसरोवर के न जाने का सन्तोष तो मैं अपनी ल्हासा की ओर की यात्राओं से कर सकता था, लेकिन पूर्वोत्तर भारत और मनीपुर के पहाडों की यात्रा की लालसा तो मन की मन में ही रह गई। ठाकुर मोशाय ने लिखा था, मैंने तीन उपन्यास लिखे हैं।

२२

सरहपा के चरणों में

१९३४ में दूसरी बार मैं तिब्बत गया था। तालपोथियों को ढूँढते अपने प्रिय मित्र गेशे धर्मवर्द्धन के साथ सा-स्क्या पहुँचा। सा-स्क्या के महन्त राज के सबसे प्रभावशाली अफसर चागावा दोनी छेन्बो के घर पर ठहरा। महन्तराज से लेकर उनके अफसर तक सभी हमारी सहायता के लिए तैयार थे। बहुत सी तालपोथियों का पता तो तीसरी यात्रा में लगा। उस समय भी कुछ अमूल्य पुस्तकें देखने में आईं। इसके बारे में मैं "यात्रा" की दूसरी पोथी में लिख चुका था। पुजारी के यहाँ तालपोथियों के पत्तों के बंडल काट काटकर भक्तों में प्रसाद बाँटने के लिए रखे हुए थे, उन्हीं में आदि सिद्ध सरहपा के दोहाकोश के पत्ते भी थे। दोहाकोश पहले महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और फिर उससे अच्छा डा० प्रबोधचन्द्र बागची द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका था। सा-स्क्या से लाये हुए ये पत्ते बीस वर्ष से मेरे पास पड़े थे। पहला पन्ना लुप्त था। पर उससे एक ही पृष्ठ की क्षति हुई थी, क्योंकि आदिम पत्र के पहले पृष्ठ को खाली रखा जाता है। दूसरे पत्र के पहले पृष्ठ के अक्षर घिसकर बहुत से अपाठ्य हो गए थे। एक दिन इन पन्नों को यों ही देखा। ख्याल आया, इन्हें मिलाना चाहिए। हरप्रसाद शास्त्री की प्रति मेरे पास थी। पता लगा कि उसमें ८० से अधिक दोहे नहीं हैं, जबकि इस तालपोथी में १६० से अधिक हैं। डा० बागची की प्रति को मिलाने पर मालूम हुआ, कि हमारी प्रति विशेष महत्व रखती है। बागची के दोहाकोश में ११२, तिब्बती अनुवाद में १३४ और इसमें

१६३ "दोह" हैं। मैंने तालपत्र से उसे उतारना शुरू किया और महसूस किया कि इसे सम्पादित करना चाहिए। उस वक्त तो यही खयाल आया था कि एक संक्षिप्त भूमिका के साथ इसे प्रकाशित कर दिया जाए। लेकिन, जब उसमे लगा, तो काम अपने ही दूर तक खीच ले गया। अपभ्र श भाषा, सरह की कविता तथा दार्शनिक विचारो पर छोटी भूमिका नही लिखी जा सकती। वह काफी बढ गई। फिर ख्याल आया कि सरह के १४-१५ अपभ्र श ग्रंथ तिब्बती म अनुवादित है। क्यो न सरह की सभी अपभ्रंश कविताओ को हिन्दी म कर दिया जाए। फिर उसको भी हाथ म ले लिया। प्रकाशन के लिए विश्वभारती, जायसवाल इन्स्टीट्यूट और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद तीनो जगहो से माँग आई। इन्स्टीट्यूट और परिषद म प्रतिद्वद्विता लग गई। मैंने श्री जगदीशचन्द्र माथुर के ऊपर छोड दिया, और अन्त म परिषद की ओर स ही प्रकाशित होने का निश्चय हुआ। इन पंक्तियो के लिखते समय से पहले ही उसे छप जाना चाहिए था, किन्तु वह ऐसे प्रेस के दलदल म फँसा, जिसम "नेपाल" कई सालो स पडकर उबर नही रहा है।

सितम्बर के अन्त मे "नया समाज" मे कमला की कहानी "डायन" छपकर आई। कमला की कहानियो मे कुछ विशेष गुण है। उनको शब्दो की परख और घटनाओ को ठीक से चुनने की बात मालूम है। लेकिन, सबसे दोष है, कलम चलाने मे उन्ह बहुत आलस आता है। आरम्भिक कहानियो म भी मुझे भाषा म थोडा ही सुधार करने की आवश्यकता पडी थी और अब तो उसकी और भी कम पड रही है। मैं कितनी ही बार कहता कि १६ कहानियाँ लिख डालो, तो पुस्तकाकार निकल जाएँगी। लेकिन वह अभी नौ पर रुकी हुई है। जया अब मजे से अपने पैरो पर घूम सकती थी। ऊपर के कितने ही दात निकल आये थे। बहुत चचल थी गिरने-पडने और चोट खाने की पर्वाह नही करती थी।

८ अक्तूबर का बिहार के साथी कार्यानन्द शर्मा आए। शर्माजी से मेरा परिचय १९२१ के असहयोग के जमाने से है। "नये भारत के नये नेता" म मैं उनकी एक छोटी जीवनी लिख चुका हूँ। जवानी से कटकाकीर्ण मार्ग पर उन्होने पैर रखा और आज भी उसी पर अविचल चले जा रहे है। बहुजन

का हित उनके लिए हमेशा आदर्श रहा। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह साम्यवाद ही से हो सकता है, तो १९३८ में बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के साथ ही उसके मेम्बर बन गये। किसानों की बहुत-सी लड़ाइयां लड़ीं। यदि उन्होंने कंटकाकीर्ण रास्ता छोड़कर सुख का रास्ता पकड़ा होता, तो आज बिहार के दूसरे कांग्रेसी नेताओं से कहीं आराम में रहते। घर बार छोड़कर अकेला जीवन बिताना उतना तपस्या का नहीं है, जितना कि शर्माजी जैसे लोगों का, जिन्होंने सब कुछ को, अपने और अपने परिवार वालों को भी सुख से वंचित कर दिया। उनका स्वास्थ्य इधर खराब रहता था। दिल्ली आये थे, वहीं से कुछ समय के लिए चले आए थे।

अक्तूबर में मसूरी का शरद सीजन था। मंत्रियों को बुलाकर और दूसरे तरीके से मसूरी के भाग्य का सुधार करने की कोशिश की जा रही थी। राष्ट्रपति के घोड़ों ने पोलो मैदान में अपने कर्तव्य दिखलाए। केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों में किदवाई, जैन, महावीर त्यागी और केसकर आए। प्रदेश के मुख्य मंत्री पन्तजी भी पहुँचे। मंत्रियों का पधारना सिर आंखों पर लेकिन मसूरी का उससे क्या बनता है? उसको तो पांच सात हजार क्लर्कों वाले एक दो आफिसों की जरूरत है। दिल्ली में उनके लिए घर बनाने में करोड़ों रुपया खर्च होगा, मकान मिलना मुश्किल है। यहां अच्छे अच्छे मकान रहनेवालों के बिना गिर रहे हैं। मंत्री नौकरशाही के कठपुतली हैं—"सबै नचावैं रामगुसाइं।" आफिस भेजने की बात कह करके जाते हैं। खुर्राट नौकरशाह उसका विरोध करते हैं। सभी टांय टांय फिस हो जाती है। दिल्ली दरबार में रहने से नौकरशाहों का इहलोक-परलोक बनता है, इसलिए वह वहां से क्या हटेंगे?—परलोक से मतलब उनके बेटे पाते हैं, बल्कि बेटियां और बहुएं भी कह सकते हैं, क्योंकि कानून को ताक पर रख कर भी बेटियां बहुओं को बड़ी-बड़ी तनखाहों पर रक्खा गया है।

१४ अक्तूबर को लण्ढौर गये। अब के साल मानसरोवर कलाश में तिब्बत वालों का कुम्भ लगा था, जिसमें हमारे कुछ लम्बा मित्र भी गए थे। कह रहे थे लूट पाट अब नहीं है, चाहे जहां फिरते रहो, लेकिन चीजें बहुत महंगी हैं। दो रुपये में एक शाम भी पेट नहीं भरता। सचमुच यहां का रुपया वहां की दौड़ में पीछे था। तिब्बत में अब मजूर जितना एक रोज

मे कमाना है उसका हमारे रुपयो मे मूल्य नौ दस है। इसलिए वहाँ के मजूर के लिए जो चीज मँहगी नही मालूम होगी, वह हमारे आदमी को जरूर मालूम होगी क्योकि वहाँ पाच रुपया कमाने म ६ घटा नही, बल्कि तीन चार दिन लगाने होगे और उसके साथ काम का अनिश्चित होना भी शामिल है।

प्रयाग—एकान्त निवास रहने मे एक यह भी घाटा था कि कही जाना आना मुश्किल था। शमाजी आ गए थे मैंने सोचा दो हफ्ते कही चक्कर लगा आऊँ। पुस्तका के प्रकाशन का भी कुछ काम था और मित्रा से मिलना भी। १६ अक्तूबर को देहरादून पहुँचा। चार्ली विल्सन की बीवी से मिला। बुढिया क पास पुरानी सामग्री नही थी। बाप के बिक गये मकान मे चिर-रोगिणी बहिन के साथ अपने अतिम दिन बिता रही थी। पति ने बहुत पहले अपने बाप के बारे म "स्टटसमन" मे एक लेख लिखा था जिसकी कटिंग उन्होंने दी। उसी दिन रात को इलाहाबाद तक जानेवाले डब्बे मे बैठ गया। सवेरा होते समय हमारी ट्रेन मुरादाबाद म पहुँची। हमारे डब्बे मे ही पूर्णिया जिले के मनिहारी के महन्तजी थे। महन्तजी हाथरस वाले तुलसी साहब क सम्प्रदाय के थे। साधुओ का पथ कितना जल्दी दूर दूर तक फैल जाता है? कहाँ हाथरस और कहाँ मनिहारी। तुलसीसाहब के भक्त बहुत जगहो पर है, और मनिहारी के महन्त उनके सम्मानित गुरु है। हाथरस जाकर वह मुरादाबाद के भक्ता के पास आए। उन्हे बहुत स भक्त रेल पर पहुँचाने आए थ। आदमी डब्ब म कुछ ज्यादा थे, लेकिन बैठने म उनको कोई दिक्कत नही थी। तो भी एक भक्त कह रहे थे—बहुत बडे महात्मा हैं, अहोभाग्य समझिये इनके साथ चलने का। सचमुच ही मैंने अपने को अहो-भाग्य समझा, क्योकि तुलसीसाहब के वचनो को तो कुछ पढ़ा था, पर उनके किसी अनुयायी या महन्त स परिचय नही हुआ था। महन्तजी शिक्षित और मेरी कुछ पुस्तको को पढ हुए थे, इसलिए हम दोनो हो ने अहोभाग्य समझा। "मध्य एसिया का इतिहास" का बहुत-सा प्रूफ मेरे पास था, जिसे देखकर लखनऊ के स्टेशन म डालना था, इसलिए अपने सारे समय को सत्सग मे नही लगा सकता था। लखनऊ मे वह दूसरे डब्बे म चले गए,

और मेरा डब्बा प्रयागवाली ट्रेन मे कटकर लग गया, जहा ७ बजे रात को पहुँचा।

मैंने श्रीनिवासजी को चिट्ठी लिखी थी, लेकिन बहुत देर से। मैं सनीचर को पहुँचा। अगले दिन रविवार को चिट्ठी मिल नही सकती, सोमवार को मिली, तो मित्रो को सूचना नही हो सकी। आजकल दशहरे की छुट्टियाँ भी थी। पत्रो मे अगर खबर निकली होती, तो दरस परस का सुभीता होता। सोमवार को मैं प्रयाग मे ही रहा और खुद ही घूम घूमकर मित्रो से मिल लिया। सम्मेलन के कर्णधार लखनऊ गये हुए थे। डा० उदयनारायण पत्नी के आग्रह के कारण अल्लोपी बाग के अपनी पुरानी कोठरियो को छोडकर एक बँगले मे रह रहे थे। पर, कोठरियाँ उन्हे इतनी जल्दी छोडनेवाली नही थी। अन्त मे उन्ही को सुधारकर वहा रहना पडा। सोमवार को श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय से बात होती रही। मैंने इधर अपने अगले ऐतिहासिक उपन्यास के लिए ऋग्वेद का दाशराज-युद्ध चुना था। उसके बारे मे कुछ अध्ययन भी किया था। चट्टोपाध्यायजी का तो सारा जीवन ही एक तरह वेद के अध्ययन मे लगा था। वह अपने धार्मिक विचारो से तो परम रूढिवादी है किन्तु अनुसन्धान मे परम नास्तिक। उनके शिष्य डा० रामनारायण राय ने ऋग्वेदिक ऋषियो पर अपने डी० लिट० का निबन्ध लिखा था, उसे भी चट्टोपाध्यायजी ने दिखलाया। मैंने निश्चय किया कि इस काल के समाज के बारे मे लिखने पर रूढिवादी आपत्ति उठायेंगे, इसलिए पहले ऋग्वेदिक समाज के भिन्न भिन्न अंगो पर अलग अलग सप्रमाण लेख लिखू। मैंने चाहा था, उन्हे चट्टोपाध्यायजी देखकर कुछ सुझाव दे। लेकिन लिखकर सुझाव देने मे वह एक नम्बर के दीर्घसूत्री है, बैठकर चाहे घंटो आप उनसे सुनिये, ज्ञान का पता है, ज्ञान का अपार समुद्र आपके सामने लहरें मार रहा है। इस ज्ञान के समुद्र का पताका आ कागज पर न उतरे सामयिक इन विषयो पर, जिन पर अभी बहुत कम लिखा गया है तो चट्टोपाध्यायजी को अगले जन्म मे ब्रह्मराक्षस जरूर बनना पडेगा, क्योकि वह ऋषि ऋण से पूरी तौर से उऋण नही हुए।

अगले दिन निरालाजी के दर्शन के लिए दारागंज गया। असम्बद्ध बाते करना तो उनका स्वभाव है। कोई आदमी असम्बद्ध बात करने लगता,

यदि उसका जागृत और स्वप्न की मेडे टूट गई हो। आज उनके मुह से पहले पहल एकाध अश्लील शब्द सुने, लेकिन यह तकिया कलामवाले थे, जिसे कुछ गुस्सा आने पर कितने ही प्रकृतस्थ लोग भी मुह से निकाल देते हैं। वह अग्रेजी म बोलते कभी उर्दू म भी—मैं निराला नही हूँ, मैं डा० मुहम्मद हुसन हू। निराला का देखकर सरहपा याद आ गये। जिनका अभी-अभी भी मैं अध्ययन कर रहा था। सरहपा जब से १२०० वष पहले पैदा हुए थे। वह भी महान् कवि थे, वह भी असबद्ध प्रलापी थे, साथ ही जब सबद्ध बाते करते, तो उनके मुह से मोती झरते। निराला न सिद्धा का पथ नही पकडा, यद्यपि सिद्धो के सभी गुण उनम थे। यदि पकडा हाता, तो कौन कह सकता है, कि वह पाडीचरी और तिरुवन्नामल के सिद्धो से आग न बढ जाते। पुराना ने एसे निरकुश परन्तु महान् पुरुषो को अधिक सयत बनान के लिए एक उपाय निकाला था। बल्कि कहना चाहिये, सिद्धो ने अपने-आप उपाय निकाल लिया था। सरह नालन्दा म पढकर महापण्डित हुए वही सालो अध्यापक भिक्षु रहे। जब अपने समय के पाखण्ड झूठे मालूम हुए, तो एक क्षण के लिए भी नही रुके। भिक्षुआ का भेस और आडम्बर तोड फेका। पडिताई के सम्मान का सलाम किया। लोग उनके प्रति अधिकाधिक घृणा करे, इसके लिए कटिबद्ध हो गए। शराब पीने लगे। फिर एक बाण का फल बनानेवाली (सिकलीगढ की) तरुण कन्या को साथ म ले लिया। खुद भी बाण का फल तैयार करने लगे। शर बनाने के कारण लोगा ने उनका नाम सरहा रख दिया था। वह अपनी तरुण सगिनी—जिसे सिद्धो की भाषा मे महामुद्रा कहते है—को लिए एक जगह से दूसरी जगह घूमने लगे। सयानो ने कहा कोई असबद्ध प्रलापी पागल है। कोई कहता—दुराचारी शराबी, लुगाई लिए फिर रहा है। चारा आर स पहल थू थू के शब्द सुनाई देने लगे। सरह यही चाहते थे। वह खुश हाते थे। लेकिन, बहुत दिना तक दुनिया उनकी उपेक्षा नही कर सकी। साधारण जन उन्ह महात्मा कहने लगे। सरह अपनी पडिताई का कोई उपयोग नही कर रहे थे। सस्कृत को छोड चुके थे। कभी कभी लोगो की भाषा मे बोल पडते, जो दोहा का रूप लेते। उनकी भाषा इतनी सरल थी कि उस समय का साधारण आदमी भी समझ सकता था लेकिन उसका अर्थ इतना गम्भीर भी होता कि जिसम

पडित भी गाता खाने लगते। बहुत वर्ष नही बीते कि सरह का सब लोगो ने सिर माथा पर चढाया। बडे-बडे पण्डित उनकी चरणधूलि लेने के लिए दौडते। बडे बडे मुकुटधारी उनके पैरो म अपना मुकुट रखते। सरह को वैभव की जरूरत नही थी, सम्मान की जरूरत नहीं थी। वह अपनी अप भ्र श की कविताओ द्वारा अमर होने की इच्छा भी नही रखते थे। भारत म कई शताब्दियो के लिए वह मर भी गए। तिब्बत न उनकी रक्षा की, और वहा अब भी जीवित और परम सम्मानित बने रहे। अन्त में हमारा देश भी उनके भुलाने के लिए पश्चात्ताप करने लगा।

सरह समाज के ढोंग और पाखण्ड से तग थे। चाहते थे कि लोग उन्हे छोडकर सहज जीवन बिताए। धर्म के नाम पर जितनी बलाय बलाय घुस आई थी, उसके ऊपर उन्होने जबदस्त प्रहार किया। गोरख, कबीर और दूसरे फक्कड सन्त उन्ही के रास्ते पर चल कर पाखण्ड खण्डन करते रहे। निराला ने कवितादेवी की आराधना की। कभी कभी मै ख्याल करता हूँ यदि वह सिद्धो के मार्ग को अपना कर महामुद्रायुक्त हुए होते, तो अधिक उपकारक होते। महामुद्रा जैसी तैसी तरुणी नही हो सकती। सिद्धो के सम्प्रदाय म उसके नखसिख का जो वर्णन है, उस पर उतरनेवाली कुछ पद्मिनिया ही हो सकती है। यदि किसी पद्मिनी ने निरालाजी के लिए आत्मोत्सर्ग किया होता, तो वह भी धन्य धन्य होती।

सम्मेलन की ओर से अग्रेजी हिन्दी कोश बन रहा था। उसके दफ्तर म इकट्ठा हो डा० बाबूराम सक्सेना, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाहरी, श्री रामचन्द्र टडन आदि से मुलाकात हो गई। वही प० रामनरेश त्रिपाठी भी मिले। अगले दिन श्रद्धेय टडनजी के दर्शन किए। उनका आग्रह हुआ, कि मैं प्रयाग म रहूँ। पर, प्रयाग की गर्मिया बरसातो को मैं बर्दाश्त नहा कर सकता था और काम के लिए दो स्थान बना नही सकता था। उस दिन अमृत पत्रिका के दफ्तर म एक छोटी सी चाय पार्टी हुई जिसम सरहपा के दोहाकोश के ऊपर मैं बोला। पत्रिका ने तालपत्र के फोटो के साथ मेरी कई बातें भी छापी। अब की एक पुराने मित्र से मुलाकात हुई। १९१५-१६ में मैं आगरा म अरबी पढ़ता था। उस समय वहाँ के बपतिस्त हाइ स्कूल के प्रिंसिपल श्री समुअल आइजक से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला

था, और उनके सौहार्द्र स मैं इतना प्रभावित हुआ था कि मैन जीवन यात्रा के पहले खण्ड मे उसका उल्लेख किया था। उनके पुत्र श्री जगदीशकुमार सस्कृत और हिन्दी के पण्डित हो, प्रयाग के क्रिश्चियन कालेज म दोनो भाषाओ के विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होने मेरी पुस्तके पढते पढते उन पक्तियो को भी देखा, जिनमे मैंने उनके पिता का स्मरण किया था। जगदीशकुमार जी ने मेरे पास चिट्ठी लिखी और अपना परिचय दिया था। मुझे बडी प्रसन्नता हुई। वह पुराने मित्र के योग्य पुत्र थे। इसका तो हर्ष होना ही था। साथ ही यह जानकर कि जगदीश कुमार ने वह आदर्श उपस्थित किया, जो कि नये भारत के ईसाई तरुणो का होना चाहिए। धर्म मे बाइबल, ईसा मसीह के मानने मे कोई हर्ज नही पर, सस्कृति म सभी भारतीय एक है, चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, चाहे हिन्दू हो, ईसाई या मुसलमान। ईसाइ तरुणो को जगदीश कुमार ने रास्ता दिखला दिया। जब उन्होने बतलाया कि पिताजी भी यही आये हुए हैं, तो मैं उनके मिलने के लिए लालायित हो गया। शाम को वहाँ कुछ मित्रो की चाय पार्टी हुई। सेमुअल—श्यामलाल से बदला हुआ नाम—साहब की बडी बडी मूछे सफेद थी, देशी शुभ्र वेष मे थे। शायद धोती पहने हुए थे। छाती लगा कर मिले। उसी दिन मेरी पहली उडान के कलकत्ता के साथी श्री महादेव प्रसाद मिले। यह ४७ वर्ष पहले की बात है। लेकिन, महादेव प्रसादजी से इलाहाबाद म जब तब मुलाकात हो जाती थी। वृद्ध मालूम ही होना चाहिए। हमारी उमर के वह भी थे।

प्रयाग से अब श्री जयगोपाल मिश्र के साथ बनारस जाना था। यद्यपि मसूरी से यही निश्चय हुआ था श्री कृष्ण वेरी के यहाँ हम ठहरेंगे, पर, प्रयाग मे श्री देवनारायण द्विवेदी का पत्र आ गया था, जिसमे बाबू शिव प्रसाद गुप्त और मेरे सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए जोर देकर लिखा था कि सेवा उपवन मे श्री सत्येन्द्र जी के यहाँ ही ठहरें। सचमुच ही बाबू शिव प्रसाद जी के स्नेह और सम्मान को भूलना मेरे लिए सभव नही है। जब मैं सारनाथ म ठहरता तो वह वहाँ मिलने आते थे। भारतीय स्वतन्त्रता और सस्कृति के वह अनन्य आराधक थे। चूकि मैं वृहत्तर भारत के पुराने सम्बन्धो को जागृत करने म लगा हुआ था इसलिए उनका मेरे प्रति विशेष

पडित भी गाता खान लगते । बहुत वप नही वीत कि सरह का सब लागा ने सिर माथा पर चढाया । बडे-बडे पण्डित उनकी चरणधूलि लन क लिए दौडत । बड-बडे मुकुटधारी उनक परा म अपना मुकुट रखत । सरह को वभव की जरूरत नही थी, सम्मान की जरूरत नही थी । वह अपनी अप भ्रश की कविताआ द्वारा अमर हान की इच्छा भी नही रखत थे । भारत मे कई शताब्दिया क लिए वह मर भी गए । तिब्बत न उनकी रक्षा की, और वहाँ अब भी जीवित और परम सम्मानित बन रहे । अत म हमारा देश भी उनक भुलाने के लिए पश्चात्ताप करने लगा ।

सरह समाज के ढाग और पाखण्ड स तग थे । चाहत थ कि लाग उन्हे छोडकर सहज जीवन विताए । धम के नाम पर जितनी बलाय वलाय घुस आई थी, उसके ऊपर उन्हान जवदस्त प्रहार किया । गारख, कबीर और दूसरे फक्कड सन्त उन्ही क रास्त पर चल कर पाखण्ड खण्डन करत रहे । निराला न कवितादेवी की आराधना की । कभी कभी मै ख्याल करता हूँ यदि वह सिद्धा के माग का अपना कर महामुद्रायुक्त हुए हात, ता अधिक उपकारक हात । महामुद्रा जसी-तसा तरुणी नही हा सकता । सिद्धा क सम्प्रदाय मे उसक नखसिख का जो वणन है, उस पर उतरनवाली कुछ पद्मिनियाँ ही हो सकती है । यदि किसी पद्मिनी न निरालाजी क लिए आत्मोत्सग किया हाता, ता वह भी धन्य धन्य होती ।

सम्मेलन की आर स अग्रेजी हिन्दी कोश बन रहा था । उसक दफ्तर मे इक्ट्ठा ही डा० बाबूराम सक्सेना डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाहरी, श्री रामचन्द्र टडन आदि से मुलाकात हा गई । वही प० रामनरेश त्रिपाठी भी मिले । अगले दिन श्रद्धेय टडनजी के दशन किए । उनका आग्रह हुआ, कि मैं प्रयाग म रहूँ । पर, प्रयाग की गर्मिया बरसाता को मैं बदाश्त नही कर सकता था और काम के लिए दो स्थान बना नहा सकता था । उस दिन अमत पत्रिका के दफ्तर म एक छोटी सी चाय पार्टी हुई जिसम सरहपा क दाहाकोश के ऊपर मैं बाला । पत्रिका ने तालपत्र के फोटा के साथ मरी कई बातें भी छापी । अब की एक युग के मित्र स मुलाकात हुई । १९१५ १६ म मैं आगरा म अरबी पढ़ता था । उस समय वहाँ क बपतिस्त हाई स्कूल क प्रिंसिपल श्री सेमुअल आइजक से परिचय प्राप्त करन का अवसर मिला

था, और उनके सौहाद्र स मैं इतना प्रभावित हुआ था कि मैन जीवन यात्रा के पहले खण्ड म उसका उल्लेख किया था। उनके पुत्र श्री जगदीशकुमार सस्कृत और हिन्दी व पण्डित हा, प्रयाग के क्रिश्चियन कालज म दोना भाषाओ के विभाग के अध्यक्ष थे। उन्हान मरी पुस्तके पढत पढत उन पक्तियो को भी देखा, जिनमे मैंने उनके पिता का स्मरण किया था। जगदीशकुमार जी ने मेर पास चिट्ठी लिखी और अपना परिचय दिया था। मुझे बडी प्रसन्नता हुई। वह पुराने मित्र के योग्य पुत्र थे। इसका तो हप हाना ही था। साथ ही यह जानकर कि जगदीश कुमार न वह आदश उपस्थित किया, जो कि नये भारत के ईसाई तरुणा का हाना चाहिए। घम मे बाइबल, ईसा मसीह के मानने म कोई हज नही पर, सस्कृति म सभी भारतीय एक है, चाहे आस्तिक हा या नास्तिक चाह हिन्दू हा, ईसाई या मुसलमान। ईसाई तरुणा को जगदीश कुमार न रास्ता दिखला दिया। जब उन्होने बतलाया कि पिताजी भी यही आय हुए है, ता मैं उनके मिलने के लिए लालायित हो गया। शाम को वहाँ कुछ मित्रा की चाय पार्टी हुई। सेमुअल—श्यामलाल से बदला हुआ नाम—साहब की बडी बडी मूछें सफेद थी, देशी शुभ्र वेष मे थे। शायद धाती पहन हुए थ। छाती लगा कर मिले। उसी दिन मेरी पहली उडान क कलकत्ता के साथी श्री महादेव प्रसाद मिले। यह ४७ वष पहले की बात है। लकिन महादव प्रसादजी स इलाहाबाद म जब तब मुलाकात हो जाती थी। वृद्ध मालूम ही होना चाहिए। हमारी उमर क वह भी थे।

प्रयाग स अब श्री जयगोपाल मिश्र के साथ बनारस जाना था। यद्यपि मसूरी से यही निश्चय हुआ था, श्री कृष्ण बेरी के यहाँ हम ठहरेंगे, पर, प्रयाग म श्री देवनारायण द्विवेदी का पत्र आ गया था जिसम बाबू शिव प्रसाद गुप्त और मेरे सम्बन्ध का उल्लेख करत हुए जार दकर लिखा था कि सेवा उपवन म श्री सत्येन्द्र जी के यहाँ ही ठहरे। सचमुच ही बाबू शिव प्रसाद जी क स्नेह और सम्मान को भूलना मर लिए सभव नहीं है। जब मैं सारनाथ म ठहरता ता वह वहाँ मिलन आत थे। भारतीय स्वतन्त्रता और सस्कृति के वह अनन्य आराधक थ। चूकि मैं वृहत्तर भारत क पुरान सम्बन्धो का जागृत करन म लगा हुआ था इसलिए उनका मरे प्रति विशेष

पक्षपात था। ऐसे कामो मे वह हमेशा सहायता देने के लिए तैयार रहते थे। छावनी में स्टेशन से उतरे तो द्विवेदी जी और वेरीजी दोनो मौजूद थे। इतनी जल्दी मे पत्र मिला था कि हम वेरीजी को सूचित भी नही कर सके। बडे दुविधा मे पडे। वेरीजी को समझाया, और सेवा उपवन चले गये। इसके लिए वेरी जी को नाराजगी हुई हो यह स्वाभाविक था। लेकिन, करता क्या? दोपहर का स्नान-भोजन करने से पहले स्टेशन से आते हुए रास्ते मे अपने विद्यार्थी जीवन से घनिष्ठतया सम्बद्ध मोतीराम के बगीचे को देखने गया। बनारस आने पर इसको देखना मैं नही भूलता। बगीचा खतम है। जहा कोयरी खेती करता था, वहा गोयनका संस्कृत छात्रावास है। भीतर अभी जमीन खाली पडी हुई थी। ब्रह्मचारी चक्रपाणि की कुटिया अब भी खडी थी। पुराने निवासियो मे से अब कोई रह नहीं गया था।

सेवा उपवन मे जाकर स्नान भोजन और थोडा विश्राम किया। इसके बाद फिर मित्रो से मिलने के लिए निकला। हिन्दू विश्वविद्यालय मे पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी घर पर ही मिले। बच्चो ने उलाहना दिया, यहाँ क्या नही ठहरे। वासुदेवशरणजी के घर पर गये। वह इस वक्त कलकत्ता गये हुए थे। लौट कर उपवन मे थोडा ठहरा। प० रामचन्द्र शुक्ल के पौत्र ने पहले ही वचन ले लिया था कि हमारे घर पर शुक्लजी के फोटो का उद्घाटन करे। जिन खेतो मे शुक्लजी ने अपना घर बनाया था, वह मेरे परिचित थे, और परिचित थे रानी बडहर के मकान और मन्दिर। वहाँ जाकर चित्र उद्घाटन किया। यदि देशी समय के मुताबिक काम होता, तो कही न कही प्रोग्राम टूटता, इसलिए आग्रह को न मान कर समय पर ही उद्घाटन और भाषण किया। शुक्लजी ने अपने क्षेत्र मे हिन्दी के लिए कितना बडा काम किया यह इसी से मालूम हुआ कि अब भी उनके हिन्दी के इतिहास का परास्त करनेवाला कोई पैदा नही हुआ। वहा से ५ बजे भदैनी मे तुलसी पुस्तकालय मे स्वागत होनेवाला था। अस्सी संगम, सूरदास का अखाडा, मोतीराम का बगीचा काशी के ये वह स्थान थे, जहाँ मैंने संस्कृत ही नही पढ़ी, बल्कि जहाँ नागरिक और साहित्यिक जीवन से परिचय प्राप्त करने का मौका पाया। तुलसी घाट यही है। लेकिन, मेरे समय

म अभी तुलसी के नाम से कोई पुस्तकालय नही बना था। पण्डिता म अब मेरे परिचिता म से कोई नही रह गये थे। बहुत कम ही पण्डित बुढापे तक काशीवास के लिए रह जाते। विशेषकर यदि उनका घर बनारस म नही हो। वहाँ कृतज्ञता प्रकट करत थोडी देर 'आज'' कार्यालय म हो बेरीजी के हिन्दी प्रचार पुस्तकालय म और उनके विद्या मन्दिर प्रेस म गय, जो मान मन्दिर के पास था। समय के साथ हमारे प्रेस आग बढ रहे है, और छपाई के आधुनिक साधना से सम्पन्न हो रहे हैं यह बेरी जी के इस प्रेस से मालूम हुआ। यही श्री परमेश्वरीलाल गुप्त, त्रिभुवननाथ श्री ठाकुर प्रसाद सिंह और दूसरे इष्ट मित्र भी आ मिले। वहा से कचौरीगली होते आदि विश्वेश्वर के पास प० शिवगोपाल मालवीय के यहाँ थोडी देर के लिए ठहरे। इतन बन्धुओ से मिल कर बडा आत्म सतोष मिला और ६ बजे हम उपवन लौटे।

२२ के साढे सात बजे ही जयगोपालजी और श्री द्विवेदीजी को साथ लिय सारनाथ पहुँचा। काशी-यात्रा म यहाँ आना अनिवाय होता है। महा-बोधि स्कूल की इमारत काफी बढ गई थी। लद्दाख का एक वैद्य कई तरुण साधुओ को लिए ल्हासा जा रहा था। उसने अपन यहाँ की हालचाल बताई। मन्दिर और पुराने ध्वसावशेषो को देखत बर्मी धर्मशाला म महा-स्थविर कित्तिमा से मिले। चौथेपन मे यदि शरीर सूखता है, तो वह फिर कैसे हरा हो सकता है। कित्तिमाजी ने अपना सारा जीवन भारत म, और वह भी भारत और वर्मा के सास्कृतिक सम्बन्ध को पुनरुज्जीवित करने म लगाया। मेरे भतीजे उदयनारायण पाण्डे अब यही महाबोधि स्कूल मे अध्यापक थे, और रहत थे कित्तिमाजी के पास। उनके दो लडके और दो लडकियाँ थी। गहपत्नी भी यही रहती है। शिक्षित और सस्कृत जीवन के लिए आज के गाँवो मे कहा स्थान है? पहले के जो जीविका के साधन थे, वह भी अब खतम हो रह हैं इसलिए इस वग को ता आज या कल तो गाँवो से भागना होगा, या दूसर लागो के तल पर रहना होगा।

उदयप्रताप कालेज म बोलन का आग्रह था, लेकिन उधर १२ बजे काशी विद्यापीठ म भी समय दे दिया था, इसलिए कालेज म सात मिनट से अधिक बोल नही सका। विद्यापीठ मे भाषण देने के बाद डा० मगलदेव

जी के यहाँ गया। सभी जगह जल्दी जल्दी थी। मध्याह्न-भोजन वरोजी के यहाँ करना था। कितनी ही जल्दी करे, लेकिन समय से डेढ घंटा बाद पहुँचे। उनका घर बनारस की टेढी मेढी गलियों में था, जहाँ स्वयं पथ प्रदर्शक बनना पडा था।

वहा से फिर साथी रुस्तम सेटिन और मनोरमाजी के यहाँ चाय पीने गये। फिर ४ बजे नागरी प्रचारिणी सभा में स्वागत के लिए उपस्थित हुए। यहा बहुत से परिचित बन्धुओ के दर्शन हुए। प० चन्द्रबली पाडे भी थे, प० हजारीप्रसादजी भी। फिर कार से दौडे विश्वविद्यालय की साहित्य सहकार समिति में। स्वागत गोष्ठी के लिए उपस्थित होना पडा। गोष्ठी प० मन्नन द्विवेदी के अनुज अवध द्विवेदी के निवास पर थी। श्री मन्नन द्विवेदी का नाम सुनकर हृदय में टीस पैदा होती है। यह हिन्दी का प्रतिभाशाली लेखक और कवि जवानी में ही अपनी सारी क्षमताओ से हिन्दी माता को वंचित कर चल बसा। उनकी भोजपुरी की वसन्तकाल-सम्बन्धी कविता की पाँतियाँ अब भी मेरे कानो में गुनगुनाती हैं। सरकारी नौकरी होने से छद्म नाम से उनके लेख "प्रताप" में निकलते थे, और हमारे जैसे तरुण उसके एक एक अक्षर को घोल कर पीते थे। ऐसे पुरुषो का इतना जल्दी क्यो चला जाना चाहिए? उनको बहुत दीर्घजीवी होना चाहिए था। उनके अनुज भी साहित्य के एक बहुत मर्मज्ञ है। अँग्रेजी के अध्यापक हैं, पर हिन्दी का स्नेह अपने अग्रज से पाया है। कहना चाहिये रोटी अंग्रेजी की खाते है और काम हिन्दी का करते है। कई वर्षों से आँखो की ज्योति जाती रही, लेकिन उन्हे सदा प्रसन्न देखा जाता है। विश्वविद्यालय से अब फिर अंतिम प्रोग्राम पूरा करने के लिए गोदौलिया में सरस्वती प्रेस में पहुँचे। यद्यपि श्रीपतिजी और अमृतजी ने अब अपना स्थान प्रयाग में बदल दिया है, लेकिन इस मकान को अभी भी अपने पास रखा है। यहाँ मार्क्सीय क्लब मे बोलना पडा, और साढ़े ९ बजे रात को लौटकर अपने निवासस्थान पर पहुँचे।

ऐसे ही विद्वान आए जिनसे मिलकर कई काम की बात करनी थी। प्रिंसिपल राजबली पाडे, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री परमेश्वरी लाल गुप्त, श्री महेन्द्र शास्त्री न्यायाचाय, श्री दलसुखभाई मालवणिया, स्वामी सत्यस्वरूपजी और स्वामी योगीन्दरानन्द मे ६ वजे के वाद तक बातें होती रही। सभी अपने अपने कामो मे तन्मय हैं, यह जान कर प्रसन्नता हुई।

इस यात्रा का एक निजी प्रयाजन भी था वह था अपनी पुस्तका के प्रकाशन का प्रवध करना। एक प्रकाशक ने पहले चिट्ठी द्वारा आशा दिलाई थी कि हम वहुत सी पुस्तके छाप देंगे और कुछ अग्रिम भी देग। उन्हान यदि जान के दिन ही कह दिया हाता तो हम पुस्तका के प्रकाशन के प्रवध करन मे सुभीता होता। जब प्रस्थान करने म दो-तीन घटे रह तव असमथता प्रकट की। कुछ पुस्तके श्री सत्येन्द्रजी न प्रकाशित करनी चाही यह जानकर हम सतोप हुआ।

१० वजे भारत कला भवन गये। इसका आरम्भ रायकृष्णदास न नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान म किया था। अव वह अपने समुचित स्थान पर विश्वविद्यालय म आ गया था। श्री परमेश्वरीलालजी उसके क्यूरटर थे। मुझे सग्रहालय की मूर्तिया, चित्रा और मुद्राआ क देखन की उत्सुकता थी,। म्युजियम का अपना मकान वन रहा था, अभी वह अस्थाई तौर से एक वँगले मे था। परमेश्वरीलालजी स्कूल से पढाई छाडकर स्वतन्त्रता आन्दालन म लग गय। एक वार पढाई छूट जाने पर फिर मुश्किल से ही आदमी ढर्रे पर लगता है। लेकिन जिसम लगन हो, वह फिर अपन रास्ते को पकड लेता है। परमश्वरीलालजी का ध्यान पहले पत्रकारिता की तरफ गया। फिर पुरातत्व और प्राचीन मुद्राओ ने अपनी आर इतना अधिक खीचा कि वह उसी क हो गये। आजमगढ म रहत उनक एक मन क करीव कुपाण और पुराने सिक्का का मैं देख चुका था। उच्च शिक्षण सस्थाएँ उनका दुत्कारती थी क्याकि उनके पास उनम प्रवश करन के प्रमाण पत्र नही थे। लेकिन, क्षमता रखन वाले आदमी का कव तक दूर रखा जा सकता है? उन्हाने अपने लेखा द्वारा अपनी विद्या का परिचय दिया। वह सीधे एम० ए० म भरती हाकर सम्मान सहित उत्ताण हुए। आजकल के जमाने म जव डाक्टर की उपाधि टके सर वना दी गई है, ता

उसका आक्पण भी नही हो सक्ता। लेकिन, परमेश्वरीलालजी के लिए वह काई दुलभ चीज नही है। काशी से वह फिर बम्बई क म्यूजियम म बुला लिए गय, जहाँ डा० मोतीचन्द के साथ अब काम करत हैं।

काशी का अबका निवास कितना व्यस्त रहा, यह ऊपर के वणन स मालूम हागा। लौट कर भाजन किया। श्री सत्येन्द्रजी के साथ छावनी स्टेशन पहुँचे। बाबू शिवप्रसादजी अपने दोना नातियो का शेर और भालू कहते थे, जो उनके शरीर का देख कर उलटा हा गया। सत्येन्द्रजी अपन नाना से अधिक मिल्ते है और उनक अनुज दुबले पतले है।

पटना—गाडी चलनेवाली थी जब कि हम डब्बे म पहुचे। १ बजने वाला था। हमने मसूरी मे समझा था कि अक्तूबर के अन्त म अब नीचे गर्मी का डर नही रहेगा, लेकिन अधिकतर हम पखे की मदद से ही रहे। ट्रेन सीधे पटना जाती थी। बक्सर मे कुछ तरुण मिलने आये, उन्हे पत्रा स मालूम हा गया था कि हम इसी ट्रेन स जा रहे है। आरा मे भी कुछ पूछ-ताछ हुई थी। ६ बजकर २५ मिनट पर हम पटना जक्शन पहुँच गये। जयगोपालजी बनारस से ही लौट गय, और हम अकेले थे। स्टेशन पर श्री देवेन्द्रजी, कुसुम, वीरेन्द्रजी और अद्भुतजी आए, जिनके साथ हम देवेन्द्र जी के निवासस्थान पर पहुँचे। देवेन्द्रजी इधर रूसी पढने के लिए दा साल लन्दन गये हुए थे। सस्कृत के साहित्याचाय और मेधावी पुरुष हैं। रूसी भाषा पढने मे उनका मन भी लगा और सात आठ महाने और रहने दिया गया होता ता वहा से वे बी० ए० की जगह डाक्टर बन कर आते। उन्हाने चाहा, एक साल बिना वेतन की छुट्टी मिले लेकिन आजकल नौकरियो म तिकडम बहुत चल्ती है। लन्दन का डाक्टर दूसरो से आगे बढ जाता, इसका भी ख्याल था। उन्हाने कुसुम अपन लडके दीपक और लडकी दीप्ति को भी बुला लिया था। कुसुम अपने दोनो बच्चो का लेकर अकेला लन्दन चली गई, यह कम साहस की बात नही थी। पिता (प० गोरखनाथ त्रिवेदी) अपने समय के साइन्स के बहुत मधावी छात्र थे। वह यदि साइन्स की उच्च शिक्षा के लिए जमनी गये हाते, तो एक पीढी पहले ही यह ख्याल उठ गया होता कि समुद्र पार जान स धम नष्ट हो जाता है। लेकिन, वह प्रथम विश्व युद्ध का समय था। तब से अब जमीन आसमान का अन्तर

हा गया है। अब ता ब्राह्मण हो या कोई भी जाति, विलायत से लौट आये का सम्मान बढता था जात से निकालने का किसको साहस हो सकता था ? देवेन्द्रजी के पिता सस्कृत के दिग्गज विद्वान् यदि आज जीवित होते, तो न जाने अपनी बहू के इस काम का कसे लेते ? दस महीने रहकर बच्चो मे सबसे ज्यादा परिवतन देखने मे आता था। वह जहाँ शुद्ध अँग्रेजी बोल रहे थे, वहा साथ ही अँग्रेज बच्चो की सफाई और व्यवस्था को भी स्वाभाविक ढग से सीख आये थे।

२४ अक्तूबर को इतवार था। शिवपूजन बाबू सम्मेलन भवन मे ही रहते हैं, यह सुनकर उनके पास मिलन गये। ऐसा सरल और मधुर स्वभाव साहित्यकार मुश्किल से मिलेगा। वह टी० बी० सनिटोरियम म गये, तो सभी हिन्दी प्रेमियो को बहुत दु ख हुआ। अब वहाँ से तो चले आये, लेकिन शरीर बहुत कमजोर था। उन्होने जीवन-भर साहित्य-आराधना को गले पडी चीज नही समझा। जब गिन गिन कर पसे मिलते थे, तब भी वह उसी तन्मयता के साथ सेवा करते थे। इस समय वह स्वास्थ्य के ख्याल से भी मेहनत करने से बाज कैसे आ सकते थे ? सभी लोग कहते थे—कम मेहनत किया करें, दूसरो से काम लें। लेकिन शिवजी महाराज जो ठहरे। जीवन के एक-एक क्षण का माल चुका लेना चाहते हैं। बहुत लोगो ने उन्हे लेक्चर दिया होगा। मैंने भी दिया, तो क्या बुरा किया ? अगले दिन पता लगा, बेहोश हो गये थे।

*भोजनोपरान्त नागार्जुनजी के साथ म्यूजियम गए। जायसवाल प्रति*ष्ठान से तन्जूर के उन भागो का लेना था जिनमे सरह की कविताओ के अनुवाद थे। वही फ्रेजर रोड पर पार्टी का आफिस था। यद्यपि मैं इस पार्टी का मेम्बर नही था, लेकिन मैं पार्टी का था उसके कर्मियो के साथ असाधारण घनिष्ठता होनी भी स्वाभाविक थी। पुराने साथियो से मुलाकात हुई—इन्द्रदीप, चन्द्रशेखर, योगेन्द्र रामावतार। कुछ देर तक उनसे बातचीत हुई। घर लौटने पर देखा, शिवजी वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे है। प्रसन्नता और चिन्ता दोनो ही होनी थी। उन्होंने चिन्ता प्रकट करने पर कहा— 'नही, मैं रिक्शे पर आ गया था।" सरह ग्रन्थावलि और 'मध्य-एसिया के इतिहास' के बारे मे कुछ बातचीत करनी थी। उस दिन

का धूपनाथजी भी आ गए। बिहार म प्रगतिशील शक्तिया विभक्त थी यह दु ख की बात थी। सोशलिस्टा कम्युनिस्टा की परछाइ भी लाँघना नही चाहत थे और जब तक यह मनावृत्ति दूर नही होती तब तक जल्दी किसी बडे काम की आशा नही हो सकती।

२५ अक्तूबर का जायसवालजी के परिवार से मिलने गया। उनकी पुत्री धर्मशीला ने अपना बगला बना लिया था। जायसवालजी की सन्ताना मे ज्येष्ठ पुत्र चेतसिंह हीरा निकले। मुझे पहले ही से उनसे यह आशा थी। कितना उदार वह पुरुष था। बरिस्टरी पास करते समय वहा स अग्रेज तरुणी को पत्नी बना क लाया। पिता पहले ही पुत्र का ब्याह कर चुके थे, इसलिए यह उन्ह पसन्द नही आया। नया बैरिस्टर अपने पैरा पर इतना जल्दी खडा कैसे हो सकता था? चेतसिंह उलटे पैरा लौट अपनी प्रेमिका को लन्दन ले गए और वहा अपनी विवशता का दिखलाते उससे छुट्टी ली। कुछ वर्षो भारत म रहने के बाद चेतसिंह मलाया म बरिस्टरी करने चले गए। १९३५ म जापान जाते समय उनसे आखिरी बार मुलाकात हुई थी। तभी उनकी बरिस्टरी जम गई थी। महायुद्ध के जमाने म पता न लगने से तरह-तरह की आशका हो रही थी। अब चेतसिंह जायसवाल मलाया के निवासी हो गए है। वही परिवार है, घरबार है। ऐसी अवस्था मे उन्ह क्या जरूरत थी कि बीस हजार रुपया देकर भाइया का उद्धार करते। जायसवालजी के बगले के लिए भाइया और बहना म मुकद्दमा चल रहा था। भाई कहते थे, यह हमारी सम्पत्ति है। बहिन कहती थी, हमारा भी हिस्सा होता है। जायसवालजी ने कोई विल किया था, पर मुझे उसका पता नही था। यद्यपि मैं उनके घर का एक व्यक्ति-सा था, पर घरू बाता म न मुझे रुचि थी और न वह उसके बारे म बतलाते थे। हमारे पास दूसरे विषय बात करने के लिए बहुत थे। जायसवालजी के दूसरे लडके बिरद्ध कृषि विभाग म अच्छे पद पर थे। नारायण भी डाक्टर थे, लेकिन चतुर्भुज और दीप उसी बगले म पिलानो होटल चलाकर अपनी जीविका चलाते थे। बगला स्टेशन से नजदीक है, यह अनुकूलता थी। पिछली मतबे मिलने पर यही चिन्ता हो रही थी कि कही बहनें जीत गई और उन्होंने बगले का बाँटना चाहा तो जीविका छिन जाएगी। अब वह अपने बडे भाई का राम-

रोम स दुआ दे रहे थे। नई पीढी किस तरह समाज के पुराने बन्धना को ताडकर आगे बढती है, यह यहाँ दिखाई दे रहा था। बैरिस्टर धमशीला का अब उनके पति के साथ कोई सम्बन्ध नही है। सबसे छोटी बहिन ज्ञानशीला का व्याह एक प्रोफेसर स हुआ। सोच समझकर शादी की थी, पर पुरानी कहावत को चरिताथ किया "मन मिले का मेला नही तो भला अकेला।" वह यहाँ से डाक्टर होकर लन्दन ऊँची डिग्री लेन क लिए गई थी। बहिन बतला रही थी वहाँ उनका मन नही लग रहा है।

शाम का ६ बजे सम्मेलन भवन म गोष्ठी हुई। सौ के करीब साहित्यकार आए थे। सभा से साहित्यकारा की गोष्ठी अच्छी होती है, क्याकि इसम हिल मिलकर लोग बठते, अपन विचारा को प्रकट करत ह। लेकिन गाष्ठी की सख्या सीमित होनी भी जरूरी है। मैं भाषा और लिपि पर बोला। सारे देश की सम्मिलित भाषा होने और हमारे साहित्य और सस्कृति के वाहन बनने के कारण हिन्दी हमारी प्रेमास्पद है। लेकिन मै यह मानने के लिए तयार नही हूँ कि हमारी मातृभाषाएँ—भोजपुरी, मगही, मथिली आदि—उपेक्षित कर दी जाएँ। वहा उपस्थित साहित्यकार बन्धुआ म किसी की भी मातृभाषा हिन्दी नही थी, और कुछ तो ठेठ भोजपुरिया थे, जिनका प्राय सारा कथा-सलाप अपनी मातृभाषा म होता है। कुछ बन्धुआ ने बडे जोरदार शब्दा में मेरे मत का खण्डन किया। कुछ के कहने का यह भाव था कि गडे मुर्दे को क्या उखाडते है? मैं कसे मान लू कि भोजपुरी गडा मुर्दा है। मेरी अपनी मातृभाषा के लिए यह शब्द मैं सहन नही कर सकता था। मैंने अपने ऊपर बहुत सयम किया लेकिन प्रतिवाद म अपनी टोन को कोमल नही रख सका, इसका मुझे तुरन्त खेद हुआ। हमारे जो भी विचार हो, उसे तक और युक्ति-सहित दूसरा के सामने रखा। दूसरे चाहे जिस तरह से भी उसका उत्तर दे उस ठडे दिल स सुनना चाहिए। यही मेरी सामान्य नीति है। इसका यदि स्वय उल्लघन करूँ तो क्या न दु ख हो।

नालन्दा—२६ अक्तूबर को दीवाली का दिन था। और यही दिन मेरे पास बच रहा था। उस दिन दोपहर का श्री जगदीशचन्द्र माथुर के यहाँ भोजन का निमन्त्रण स्वीकार कर अच्छा नही किया था। क्याकि तब

तक हम नालन्दा से लौट जाना था। सवेरे साढे ५ बजे ही देवेन्द्रजी, दीपक, दीप्ति, योगेन्द्रजी के पुत्र मुन्ना के साथ योगेन्द्रजी की मोटर पर चले। उस वक्त अंधेरा था। आकाश में बादल घिरे हुए थे। कभी कभी बूंदा बूंदी भी हो जाती थी। फतुहा, बख्तियारपुर, बिहारशरीफ होते डेढ घंटे में नालन्दा पहुँचे। प्राय ४० मील प्रतिघंटा की चाल रही। नालन्दा के पुनरुज्जीवन के साकार प्रयत्न को देखने मैं पहली बार कई साल बाद आया था। बडे पोखरे के सामने पालि प्रतिष्ठान की एकमंजिला इमारत करीब करीब बनकर तैयार हो गई थी। काश्यपजी ने सभी चीजें दिखलाई। गाव के एक पक्के दोमंजिले मकान को किराए पर लेकर उसे पुस्तकालय का रूप दिया गया था। नालन्दा को कभी विस्मृत किया जा सकता? क्या पुरानी इमारतों के ढेरों को खुदवा कर तख्ती लगा देने भर से संतोष किया जा सकता है? इसने धर्मकीर्ति जैसे दिमागों को पैदा किया। आजकल सैकडो वर्षों तक भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध को दूसरे देशों से दृढ करने का महान काम किया। यहा कितने ही देशों के भिक्षु और विद्यार्थी मौजूद थे। नालन्दा सरकार को मकान बनवाने और दूसरे साधनों को जुटाने के लिए बाध्य कर रहा है। बिजली के नलकूप की तैयारी हो रही है। परिदर्शन करके भिक्षु जगदीश काश्यपजी की कुटिया में मध्याह्न भोजन किया। काश्यपजी इंस्टीट्यूट के आनरेरी डायरेक्टर हैं। कह रहे थे, मैं डायरेक्टर पद से इस्तीफा देना चाहता हू, ताकि काम करने में मुझे ज्यादा आजादी रहे। मैंने कहा जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। नालन्दा से राजगृह जाने के लिए अब समय नहीं रह गया था, इसलिए सिलाव जाकर वहाँ के प्रसिद्ध चूरा और खाजा को खरीदा। फिर गाडी पीछे मुडकर दौडी। १ बजे देवेन्द्रजी के यहा लोगों को छोडकर मैं सीधे मायुर साहब के बंगले पर गया। भोजन के साथ बातचीत हुई। फिर चाय पीने के लिए अलेक्स साहब के यहाँ।

रात को सारे शहर में दीपमाला हुई। मसूरी में भी दीपमाला होती है लेकिन मैं उसे देखने कभी नहीं गया। रात को ही डा० बाँकेबिहारी मिश्र मिले। हमारे देश में गाधीजी ने "लौटो गुहा-मानव की ओर" का नारा लगाया। उन्होंने इस सदिच्छा से लगाया था, लेकिन अब हमारे

भाग्यविधाता उसके द्वारा जनता की आँखो म धूल झाकने का काम करते हैं। देहाती विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं, जनता कालेज बनाए जा रहे हैं। कालेज और विश्वविद्यालय से अभिप्राय है उच्च शिक्षण सस्थाएँ। उच्च शिक्षण सस्थाए गाँवा म कैसे फल फूल सकती है ? वहाँ एक नए नगर बसाने के लिए पसा खच करने की सामथ्य कहाँ है। बिना नगर के छात्रा और अध्यापको का सास्कृतिक जीवन का सुभीता नही रहेगा, जिसके बिना वह वहा टिक नही सकेंगे। फिर इन सस्थाओ के लिए बडे पुस्तकालय, सग्रहालय तथा छात्रो की भारी सख्या की आवश्यकता है। मैं तो नालन्दा के पालि इन्स्टीट्यूट का भी आजकल अनुपयुक्त स्थान म पाता हूँ लेकिन नालन्दा का अपना एक इतिहास है, जिसे विस्मृति के गभ म स्वेच्छा से जाने नही दिया जा सकता। वह धीरे धीरे बडी सस्था होगी, वहा नगर का वातावरण भी हो जाएगा।

बिहार सरकार ने देहाती विश्वविद्यालय के सगठन के काम मे डा० बाँकेबिहारी मिश्र को नियुक्त किया था। मैंने कहा, यदि देहात म रखना ही है, तो ऐसे विश्वविद्यालय को नालन्दा मे रखें। वहाँ एक इन्स्टीट्यूट है ही, यह भी हो जाए और साथ मे एक कृषि कालेज रहे, तो कई सस्थाएँ मिलकर अपने दूसरे अभावो की पूर्ति कर लेगी। लेकिन अन्त म उसे मुजफ्फरपुर जिले के गाँव तुरकी म बैठाया गया। १९५६ की यात्रा म डा० मिश्र मिले, तो वह बहुत सतुष्ट नही थे। वह बहुत विद्याव्यसनी जीव हैं। जो आदमी एक अच्छे हाई स्कूल की हैडमास्टरी छोडकर किसान सत्याग्रह मे मेरी जगह जाने के लिए तयार हो जाए उसके साहस के बारे मे क्या कहूँ ? लेकिन डा० मिश्र भारत म अग्रेजी राज्य के इतिहास के गभीर विद्वान् हैं। उसकी रग रग को जानते हैं। लन्दन मे रहकर उन्होने इसी पर पी०-एच० डी० और डी० लिट० ही नही किया, बल्कि ब्रिटिश म्यूजियम को उस विशाल सामग्री का भी अवगाहन किया, जहाँ अग्रेजी शासन के इतिहास के मूल रेकाड भारी परिमाण म जमा हैं। उसके लिए भारत के ऐतिहासिक रेकार्डों की देख रेख का काम होना चाहिए था।

रात को ही दिनकरजी, नागार्जुनजी, श्री रामखेलावन पाडे और दूसरे साहित्यकार मित्र आए, जिनसे साहित्य के सम्बन्ध म बातें होती रही।

दिनकर के भावो म अब भी परिवतन नही हुआ था। वह एक तरफ देश की परतन्त्रता के खिलाफ अग्निवीणा बजा रहे थे, और दूसरी तरफ अग्रेजो की नौकरी कर रहे थे। अब नए प्रभुओ से मेल रखने के उनके प्रयत्न के बारे म लोग बुरा भला कहते हैं। मैं तो दिनकर की कविता को देखता हू। उस कविता मे निर्भीकता है। वह अब भी दहकते अगारा-जसे शब्दो म लिखी जाती है। म दिनकर का प्रशसक हूँ।

लखनऊ—पटना से पश्चिम आते वक्त कुसमय की ही गाडी पकडनी पडती थी। भला रात क तीन बजे कोई उठने का समय है? अपने उठने का मतलब घर भर का उठाना है। ४ बजे घूपनाथ और वीरेन्द्रजी स्टेशन पहुँचाने के लिए आए। पजाब मल पकडा क्योकि वही सीधे लखनऊ पहुँचा सकता था। कम्पाटमट म मसूरी जाने वाले दो तरुण-तरुणियाँ भी थी। आजकल मसूरी म वही जाते है, जो वहाँ पढते हो। य वहाँ के छात्र छात्राएँ थी। रास्ते म और पटना मे भी बूदा-बाँदी थी, लेकिन बनारस की ओर इसका कोई पता नही। रेल के सफर म इन्सुलिन लेने का नियम स्थगित रहता है, उसके बिना ही भोजन किया। ढाई बजे गाडी लखनऊ पहुँचा। साथी शिव वर्मा और यशपालजी की पुत्री मटो अपने भाई के साथ मिले। भिक्षु प्रज्ञान द भी आए थ। उनको बहुत सताप होता यदि मैं रिसालदार बाग बौद्ध विहार म ठहरता। लेकिन, मित्रो को मिलने जुलने मे सुभीता यशपालजी के यहाँ रहता है, इसलिए उनके और प्रकाशवतीजी के अनुपस्थित रहने पर भी उनके ही घर पर ठहरे। श्रीमती मोहिनी जुत्शी और जुत्शी साहब भी आए। दूसरे बौद्ध विहार मे मत्रू भिक्षु मगलहृदय भी मिले। दुर्गा भाभी के घर जाने पर उनके पुत्र सतीश को पहली बार देखा। सतीश कई साल बाद अमेरिका से पढकर लौटे थे और अब किसी सर्विस म लगे हुए थे।

यद्यपि पिता माता नही थे, लेकिन मटो और नन्दू न आतिथ्य सत्कार म किसी तरह की कमी नही होने दी। दोनो ने नाटक भी दिखलाए। अगले दिन नवानल हेरल्ड प्रेस गए। मध्य एसिया का इतिहास' की दूसरी जिल्द वहाँ छपाई म पडी हुई थी, लेकिन अब प्रबन्धक होकर श्री सीताराम जी आने वाले थ, इसलिए उनकी तन्दही पर पूरा विश्वास था। हम पहली

देखने के लिए तशरीफ लाएँ। कोशिश करने पर भी जब मैं उसके लिए समय नही निकाल सका, तो इसका अफसोस बहुत समय तक रहा। वहाँ आधा घटा भी निकालने की फुरसत नही थी, और मसूरी जाने पर जाना पडता था, मैं समय निकाल सकता था, और मुझे जरूर जाना चाहिए था। साथी सज्जाद जहीर वर्षों से पाकिस्तान की जेलो मे बन्द हैं, और यह वीर महिला अपने बूते पर अपने बच्चो को सँभाले हुए यहा है। रजिया कहानी लिखती है। हिन्दी मे भी लिखने लगी है। असल मे मन की अटक है, नहीं तो हिन्दी वाले को उर्दू मे और उर्दू वालो को हिन्दी मे लिखने के लिए भारी तैयारी की आवश्यकता नही होती। यदि दोनो शैलियो की पुस्तक नागरी मे छपने लगें, तब तो और भी सुभीता हो सकता है।

२९ अक्तूबर को साथी शिव वर्मा के साथ 'जनयुग' कार्यालय मे गए। साथी रमेश और दूसरे भी मिले। बसरो सामानी के साथ देश और जनता की सेवा करने वाली सस्थाओ और व्यक्तियो को कैसा कष्ट उठाना पडता है और कितनी प्रतिकूल समस्याओ का सामना करना पडता है, इसे उस समय से जानता हूँ जबकि मैं छपरा जिले मे काग्रेस का काम करता था काम की सबसे बडी जिम्मेवारी मेरे ऊपर थी। आदोलन कभी गरम होता, तो सभी साधन जल्दी जुट जाते। जब ठडा पड जाता, लोगो मे निराशा फैल जाती, तो चिट्ठियो के लिए टिकट का जुटाना भी मुश्किल हो जाता। महीनो मकान का किराया नही चुकाया जा सकता था। लेकिन जिस काम की आवश्यकता होती है, यदि उसके करने वाले हो, तो वह रुक नही सकता। 'जनयुग' की आवश्यकता थी, उसमे काम करने वाले साथी भी मौजूद थे। अपना प्रेस नही था। सस्ता छापने के लिए कम्पोज भर अपने यहाँ करा लेते थे, फिर दूसरे प्रेस मे छपवा लेते थे।

मध्याह्न भोजन श्रीमती मोहिनी जुत्शी के यहाँ हुआ। अपना मकान किरायेदार से छूट नही रहा था, इसलिए उन्हे होटल मे रहना पडता था।

मसूरी—२९ की रात को कानपुर से आने वाले देहरादून के डब्बे पर बैठा और अगले दिन साढ़े ८ बजे सवेरे देहरादून पहुँच गया। स्टेशन से सीधे मसूरी आने मे सुभीता रहता है, क्योंकि वही बस या टैक्सी मिल जाती है। लेकिन, यहाँ भाषण देना स्वीकार कर लिया था, इसलिए शुक्लजी के यहाँ

पहुँचा। उसी दिन ११ बजे साथी कार्यानन्द और मेहताजी भी मसूरी से आ गए। हालचाल मालूम हुआ। ४ बजे दयानन्द कालेज के हिन्दी विभाग और साढे ५ बजे इतिहास समिति की ओर से भाषण दिये। यहाँ के अध्यापकों में प्रो० मुकर्जी अपनी खास विशेषता रखते हैं। प्रतिभा के साथ अपने विषय—इतिहास—में उनकी असाधारण रुचि है। उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गदर पर डाक्टरेट के लिए अनुसंधान मेरी देख रेख में करना चाहा। मैंने स्वीकृति दे दी, और यह भी बतलाया कि ब्रिटिश म्यूज़ियम मे इस सम्बन्ध में जो सामग्री है उसकी प्राप्ति का उपाय डा० बाँकेविहारी मिश्र बतला सकते है। चिट्ठी लिखने पर डा० मिश्र ने बतलाया भी। सभी संस्थाओं मे अब योग्यता का नहीं, बल्कि जात पात और सम्बन्ध को देखा जाता है। यहा के इतिहास विभाग के अध्यक्ष थर्ड डिवीजन के एम० ए० थे। यदि उनकी देख रेख मे एक दो डाक्टर हो जाएँ, तो महिमा बढ जाती, इसलिए पीछे प्रो० मुकर्जी को इसके लिए बाध्य किया गया। उन्हे बहुत संकोच हुआ, मेरे पास आने में भी। जब मुझे यह मालूम हुआ तो मैंने कहा—मुझको इसके लिए ज़रा भी अफसोस का ख्याल नहीं हो सकता, क्योंकि मैंने तो आपके ख्याल से स्वीकृति दी थी। मुझसे जो सहायता हो सकती है उसे निस्संकोच आप मुझसे लीजिए। प्रो० मुकर्जी के विद्यार्थी उनकी हमेशा प्रशंसा करते नहीं थकते। कालेज के पालिटिक्स से उनको कोई मतलब नहीं अपने काम से काम है। यही डर लगता है कि ऐसे योग्य आदमी की सेवा से कहीं कालेज वंचित न हो जाय। कालेज के धनी धोरियो को इसके लिए क्या अफसोस होगा ? वह अपने दूसरे किसी आदमी को ला बैठाएँगे। शिक्षण संस्थाओं में इस तिकड़म को देखकर सचमुच ही दम घुटता है। लेकिन इस देश में किस जगह दम नहीं घुटता ? सभी कूडा करकट, सभी दमघोटू स्थितियो के हटाने का एक ही मार्ग है वह है लाल भवानी, साम्यवादी क्रान्ति।

३१ अक्तूबर का मध्याह्न भोजन प्रो० मुकर्जी के यहाँ हुआ। बंगला भोजन था। मछली कई तरह की बनी थी। १ बजे टक्सी नहीं मिली, फिर बस भी चली गई और ३ बजे की बस पकडकर हम किंक्रेग पहुँचे और पौने ६ बजे घर पर थे। जाते वक्त अभी भी मसूरी की सडकों पर बहुत से

आदमी दिखलाई देते थे, लेकिन अब वह सूनी थी। जया तो बिल्कुल भूल गई थी, लेकिन जल्दी जल्दी स्मृति फिर से जागृत हो गई। दो ही हफ्ता बाहर रहे, लेकिन इसी में बडी और मोटी मालूम होती थी। इसका कारण मनोवैज्ञानिक था। कलिम्पोंग का एक और तरुण आ गया था, जिससे नेपाल में हमारी मुलाकात हुई थी। भारत सरकार के शिक्षा विभाग का निमंत्रण मिला, यहा से बर्मा की संगीति में तीन चार बौद्ध विशेषज्ञ भेजे जाने वाले हैं, उसमे मैं भी जाऊँ। मैंने स्वीकृति दे दी। इस तरह पासपोर्ट भी आसानी से मिल जाता, यह भी ख्याल था। लेकिन, पीछे प्रतिनिधि मण्डल के जाने की जरूरत नही पडी।

इधर हैपीवली मे एक दुर्घटना की खबर मिली। १६ अक्तूबर को एक गुण्डा शराबी इधर गुजरा। मसूरी के बाहर के पहाडी गावो में शराब बनाने की छूट है, वह सस्ती मिलती है। पियक्कड वहा जाकर पी आते हैं। गुण्डा पीकर आया। पहले उसने कल्याणसिंह के बच्चे को धमकाया। चिल्लाने पर चौधरी ने ललकारा, यहा से भागा। फिर रतिलाल से यहाँ उलझ पडा। वहा से चालविल फाटक से आगे प्लेजा़स के सामने पहुचा तो शर्मा स्यालकोटी और डा० रघुनन्दनलाल मिल गये। उसने छुरा दिखलाया। शर्माजी के पास एक रुपया और कुछ पैसे थे। उसे छीनकर वहा से रफूचक्कर हुआ। शर्माजी प्रभावशाली व्यक्ति है। स्यालकोट के अपने लाखो के कार बार को छोडकर यहा आये और अब भी उनका बडा कारबार है। डा० रघुनन्दनलाल मेडिकल कालेज के बडे पद से पेन्शन पाकर अधिकतर यहीं रहते है। उनके साथ यह घटना हुई, और पुलिस कुछ नहीं कर सकी। हालाकि यह पता लग गया था कि वह यहा के एक हिंदू खटिक का सम्बन्धी है। आखिर पुलिस किस मर्ज की दवा है, और क्या पहले से तिगुना चौगुना उस पर खर्च किया जाता है? जान तो पडता है कि अब वह केवल शासक दल की आत्मरक्षा का सशस्त्र साधन मात्र है नागरिक स्वतन्त्रता की एक एक बात को कुचलना उसका काम है।

इधर डा० सत्यकेतु एक महीने के लिए चीन गए थे। १० नवम्बर को उनके स्वागत के लिए चाय-पार्टी दी गई। सभापति का आसन मुझे स्वीकार करना था। ८० से ऊपर मसूरी के सभी गण्यमान्य लोग वहाँ मौजूद थे।

पर छोड के, लगर का तोड के" आये थे, अब पछता रहे थे। लौटकर जाने के लिए खर्चा नही था, वहाँ जो नौकरी थी, उससे इस्तीफा देकर आये थे और यहा दिल्ला मे कोई पूछने वाला नही था। डा० पाडे के साथ मानव भारती म ठहरे हुए थे। विपद अकेली नही आती। वेचारे गिर गये, बडी चाट आई, और महीने से ऊपर चारपाई पर पडे रह।

२० नवम्बर को हमारे मुहल्ले मे रतिलाला का लडकी रुक्मणी की शादी हुई। बारात गाजियाबाद से आई। वर ग्रेजुएट और हट्टा कट्टा था। मुहल्ले वाले देखकर बडी प्रशसा कर रहे थ। लाला कह रहे थ पाच हजार गिनवा ता लिया, लेकिन वर को देखकर हम सन्तुष्ट है। कन्या भी स्वस्थ और अच्छी मैट्रिक पास थी। हमारे यहा शादी के साथ किस तरह बरबादी हाती है इसका एक उदाहरण हमारे सामने था। जितने रुपये वहा दिए, उसस कम की चीज यहा नही दी होगी। ऊपर से सौ के करीब घराती बराती मेहमाना का तीनो दिन तक भोज रहा। आजकल मसूरी के सभी बनिय अपने भाग्य के लिए रो रहे है। रतिलाल बूढे लाला शादीलाल के पुत्र का एक दजन से ऊपर का परिवार है। उस बोझ के साथ-साथ इतना खच। विदाई के दिन भाज म हम भी शामिल हुए। तरह-तरह क पकवान थे। अभी सब भाइया का मिलाकर आधे दजन लडकियाँ ब्याहने को है। यह सबसे बडी लडकी थी। हरेक के ब्याह के लिए दस दस हजार रुपये कहाँ स आएँगे ?

दिल्ली—दिल्ली मे सावियत भारत मैत्री सघ का सम्मेलन हो रहा था। मैं उसम शामिल होने के लिए २४ नवम्बर का मसूरी से चला। मेरे मित्र श्रीहरनारायण मिश्र के पुत्र प्रो० रूपनारायण मिश्र आगरा यूनिवर्सिटी म पी एच० डी० के लिए मेरे निर्देशन म अनुसधान करना चाहते थे। मैंने स्वीकृति दे दी। मैंने सोचा, दिल्ली से देहरादून की यात्रा रेल से ता बहुत कर चुका हूँ, जरा माटर से कुरुभूमि की सर करता चलू। कुछ हफ्ते अगर कुरुभूमि म विचरता, तो बहुत सन्तोष होता यदि वह सम्भव नही है तो यही सही। २५ तारीख का देहरादून स सीधे दिल्ली जाने वाली बस पकडी। वह सवा १० बजे रवाना हुई। बस से एक बार पहले भी सिवालिक को पार कर चुका था। यह दूसरी बार जा रहा था। यहाँ रास्ते पर पडनवाला

सिवालिक सूखा नही है। रुडकी, मुजफ्फरनगर और मेरठ मे बस थोडी-थोडी देर के लिए रुकी। कुरु की हरी-भरी भूमि बडी प्यारी मालूम होती थी। जान पडता है लोगो ने एक एक अगुल जमीन जोत डाली है। सौ वर्ष हुए गगा की नहर निकले। उसने कुरुभूमि को हरा भरा करने मे और भी ज्यादा सहायता की। हमारी बस साढे ४ बजे दिल्ली के अजमेरी दरवाजे पर पहुची। हमारे सहयात्रियो म एक सिक्ख दम्पती अपने ६-७ वप के दो बच्चो के साथ जा रह थ। उन्होने अग्रेजी मे बोलने की कसम खा रखी थी। यदि कोयले जैसे काले रग को न देखते, तो मालूम होता कि कोई अग्रेज-दम्पती बोल रहे है। शायद बच्चे मसूरी के किसी कान्वेन्ट मे पढते थे। वहाँ की सीखी अग्रेजी कही भूल न जाये, इसलिए माता पिता को फिकर पडी थी। उन्ही के पास अपने तीन बच्चो के साथ एक और पजाबी दम्पती थे। पिता का रग बिल्कुल इतालियन जसा था। वेष भूषा सबसे सम्भ्रान्त और शिक्षित मालूम होते थे, लेकिन उन्होने अपने बच्चो से अग्रेजी म बोलने की एक बार भी कोशिश नही की। क्या इसके लिए सिक्ख दम्पती को दोष दिया जाए ? यह हमारी राष्ट्रीयता का भारी अपमान था, इसम शक नही। लेकिन उसके अपराधी वह हैं, जो इस अपमान को करवा रहे हैं। इन्हे मालूम है कि उच्च नौकरियाँ अग्रेजी की योग्यता के बिना नही पाई जा सकती, नेहरू अग्रेजी की घुट्टी पीकर महान् हुए। उनके अचकन और पायजामे से भूलने की जरूरत नही, उनका रोम रोम अग्रेजियत से भीगा हुआ है। इसीलिए स्वतन्त्र भारत मे अग्रेजी और भी पनप रही है जब तक उनका वरदहस्त मौजूद है, तब तक ऊँची नौकरियो का दरवाजा उसीके लिए खुलेगा, जो अग्रेजो की पूरी तौर स नकल कर सके।

सिवालिक पार छुटमनपुर का काफी बडा बाजार मिला। नाम से मालूम हो रहा था, हम किसी पूर्वी जिले मे हैं। रुडकी म छावनी के पास बस खडी हुई। मगलौर भी अच्छा बाजार है। यह नाम हमारे पूवजो को कितना प्यारा था ? पश्चिमी पाकिस्तान के स्वात इलाके म मगलौर है, यहाँ कुरुदेश म मगलौर है, और दक्षिणी कर्नाटक मे भी। मगलपुरा की उस वक्त बडी माँग थी। खतौली एक अच्छा-खासा कस्बा है। मुजफ्फरनगर पहले से बहुत बढ गया है। मेरठ के बारे म तो कहना ही क्या ? कुरुभूमि म ऊख को

खेती बहुत हो रही है, और चीनी की मिलें भी काफी हैं। नहर ने इसके लिए सुभीता पैदा कर दिया। बस के अड्डे पर तांगा नही मिला। कुछ आगे जाकर कुली से सामान उठवाया और फिर भैयाजी के घर पर, २२, फैज बाजार पहुँच गया।

२८ को १० बजे सवेरे नई दिल्ली मे कान्स्टिट्यूशन क्लब मे पहुचे। आज यहाँ सम्पोजिया था। हमारी भाषा मे जबर्दस्ती कुछ शब्दो को लादा जा रहा है। सेमिनार, सेम्पोजिया, रिपोर्ताज ऐसे ही शब्द हैं। अभी तो लादना ही मालूम हो रहा है। लेना न लेना यह अगली पीढी का काम है। सेम्पोजिया का अर्थ है लिखित गोष्ठी, जिसमे लोग अपने-अपने लेख पढें और उन पर दूसरे अपने विचार प्रकट करे। मुझे ही उसका अध्यक्ष बनना पडा। हिन्दी और पजाबी साहित्य के सम्बन्ध मे कुछ लेख पढे गये। वरान्निकोफ के "रामचरितमानस" के रूसी अनुवाद पर डा० रामविलास शर्मा ने अपना निबन्ध पढा। विज्ञान के सम्बन्ध मे दो अधिकारी प्रोफेसरो ने जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे रूसी साइन्सवेत्ताओ के काम पर प्रकाश डाला। मैं भी वरान्निकोफ के अनुवाद के सम्बन्ध मे कुछ बोला। १ बजे तक गोष्ठी रही।

दिल्ली शहर लम्बाई मे बीस मील और चौडाई मे भी बीस मील तक चला गया है। यदि आधुनिक यातायात के सुभीते न होते, तो सचमुच ही जाने आने मे बहुत मुश्किल होता। घोडे के तांगे बहुत महँगे हैं, बहुतो का मोटर के तांगे—जिन्हे लोग फटफटिया कहते हैं—खा गये हैं। साइकल रिक्शा कुछ ही जगहो पर चल सकते हैं। कनाट सर्कस मे चार आने मे हम मोटर रिक्शा पर बैठे और आकर घर पर उतर गए। यदि घोडे का तांगा होता, तो दो-तीन रुपये से कम क्या लेता? मध्याह्न भोजन आज भैयाजी के साथ मोतीमहल मे हुआ। पेशावर के भाइयो ने बडी बेसरो-सामानी मे यहाँ अपना भोजनालय खोला था। शुरू से ही पठानो का पुष्ट और स्वादिष्ट भोजन उचित दाम पर उन्होने देने का व्रत लिया था। अब तो मोतीमहल सारी दिल्ली मे मशहूर हो गया है। सैकडो आदमी मासिक हिसाब पर यहाँ से भोजन मँगवाकर खाते हैं, और उनसे कही अधिक यहाँ बैठकर खाते हैं। भोजनालय के दो भाग है। एक [illegible] और दूसरे मे मा[illegible]

बैठत है। तन्दूर की रोटिया ता गरमागरम स्वादिष्ट होती ही है, लेकिन खास चीज यहाँ का तन्दूर मे भुना मुगमुसल्लम है। हमन डटकर भाजन किया। लौटे तो घर पर श्री प्रभाकर माचवे शरदजी के साथ मिले। उनसे बाते हाती रही। शाम का भी अधिवेशन था, लेकिन हम उसमे नही गए। आज सारा परिवार सकस देखन गया। भाभीजी कितन ही सालो से सिनेमा नही देखती थी लेकिन सकस मे डर नही था। हम सात आदमी थे। तमाशा शुरु होने से दो घट पहले ६ बजे पहुँचे, लेकिन टिक्टघर पर दूर तक कई पातियो का क्यू था। टिकट पाना आसान नही था। डेढ घटे मे किसी तरह टिकट आया। सवा तीन घटा सकस देखत रह। जानवरो के कई खेल थे। शेर कटघरा के छडो के भीतर आकर अपना तमाशा दिखला रहे थे।

२६ नवम्बर को कुछ और कबीर पथी महात्माओ के साथ बाबा नरसिंह दास आये। "महात्मा कबीर" फिल्म बना था। फिल्मवाले भला सौन्दर्य और शृंगार को पूरी मात्रा मे लाये बिना सफल कैसे हो सकते थे? कबीरपथी साधुओ मे इसमे बहुत असतोष था, और वह चाहते थे कि इस फिल्म को बन्द किया जाय, अथवा इसमे से उन बातो को निकाल दिया जाए जिससे कबीर के अनुयायियो के भावो को ठेस लगती है। बाबा नरसिंहदास से मिलकर बडी प्रसन्नता हुई। असहयोग के जमाने के जेल के साथी थे। वह सरकार को एक आवेदन पत्र देना चाहते थे। जिस समय हमारी महात्माओ से बात हो रही थी उसी समय सूचना विभाग के सेक्रेटरी श्री लाड आ गये। फिल्म की शिकायत भी इन्ही के पास जानेवाली थी, इसलिए हम सिफारिश करने के लिए दूर जाने की जरूरत नही थी। महात्माओ के सामने लाड साहब से भी बातचीत हुई। वह कह रहे थे कि यदि चरित्र पर कही आक्षेप होता, तो उस चीज को निकालने के लिए हम कह सकते हैं। कबीर साहब की जीवनियो के बारे मे जहाँ दो मत हैं, वहाँ एक मत को निकालने का आग्रह नही माना जा सकता।

मसूरी—२६ नवम्बर को ही हम गाडी मे यद्यपि दूसरे दर्जे मे बैठे थे, लेकिन स्थान पाने या सोने मे कोई दिक्कत नही हुई। देहरादून के पास पहुचते वक्त मसूरी मे बादल दिखाई पड रहे थे। स्टेशन पर मेहताजी मिले। स्टेशन वैगन मे दो रुपये मे सीट मिल गई। ड्राइवर परिचित और भलेमानुस

था। पौने ६ बजे चलकर आध घंटे में हम किताब घर पहुँच गये, और पौने ११ बजे "हान्‌ विलफ"। ज्वर चार दिन पहले भी आ सकता था, और उस वक्त यात्रा में विघ्न होता। उसने बड़ी मेहरबानी की जो मसूरी पहुँच जाने के बाद २ दिसम्बर को फेरा दिया। मैं दो दिन के लिए चारपाई पर आराम करने लगा, और निश्चय कर लिया कि जब तक पूरी तरह से भूख न लगे, तब तक खाना नहीं खाऊँगा। ३ तारीख को पानी भी नहीं पिया। ऐसे समय हलकी पुस्तकों के पढ़ने का अच्छा मौका रहता है। चाणक्य पर एक उपन्यास सम्मत्यर्थ आया था। सम्मति यही दी—उपन्यास दिलचस्प है। लेखक ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ अनौचित्य बरतनेवाला अकेला नहीं है। पग-पग पर ऐतिहासिकता और भौगोलिक स्थिति से विरोध है। पटना के पास पहाड़ बैठा दिया गया है। चाणक्य का एकाध नाटकों में जो कुछ वर्णन आया है, उसी को लेकर अपनी कल्पना और स्याही-कलम के भरोसे यह पोथी लिख डाली गई। कहीं-कहीं तो बहुत असह्य ढिठाई दिखाई गई है।

कल्याणसिंह का बच्चा बीमार पड़ा। दवाई दपन भी करा लेते हैं, लेकिन अभी उनके जैसे लोगों का विश्वास सयानों पर ज्यादा है। सयाना बुलाया गया, वह भी अपना मन्तर तन्तर कर रहा था और सत्यनारायण की कथा की भी व्यवस्था थी।

८ तारीख को एक बड़ी खुशखबरी मिली, "क्लिडेर" २२ हजार में बिक गया। यद्यपि मिस प्रसंग और उनकी बहिन का मसूरी से जाना हमें पसन्द नहीं था। बहुत अच्छे सहृदय पड़ोसी थे। लेकिन बुढ़िया के लिए मसूरी का जाड़ा बहुत खतरनाक था। उनके लिए यह बहुत अच्छा हुआ। पाँच सात वर्ष पहले उन्हें इसके ६० हजार मिल जाते लेकिन अब तिहाई पर भी बहुत खुश थे। कितना ही सामान साथ ले जाना था, जिसके लिए रेल का डब्बा ठीक किया गया था। उस वक्त अभी हम ख्याल नहीं था कि हम भी एक दिन इसी तरह मसूरी से बोरिया बिस्तर बाँध कर जाना होगा।

अब मैं ६२वें वर्ष के अन्त में था। तीन साल पहले भी शरीर में जितनी शक्ति का अनुभव करते थे, अब उतनी नहीं थी। जरा भी चलने फिरने में थकावट मालूम होती, छाती भीतर से दुखने लगती।

१२ दिसम्बर को श्री सेमुवालजी आये। अभी भी वह विनो हाई स्कूल

म हेडमास्टर थे। बदली कराने म सफल नही हुए। कहते थे, अब खाने को चीजो की उतनी दिक्कत नही है। डाक का प्रबन्ध पहले से अच्छा है और रोजाना डाक जाने का प्रबन्ध हो रहा है। तिब्बत की सीमा का ख्याल करके यहाँ सौ सशस्त्र पुलिस रखने का निश्चय किया गया है। चिनी को इसके लिए अनुकूल स्थान न समझकर अब स्कूल और दूसरे सभी दफ्तर कोठी मे ले जा रहे है। कोठी किसी समय पहले भी राजधानी रही है। यह वहाँ की सुदर पत्थर की मूर्तिया बतला रही थी। ७००० फुट पर होने से वह शिमला जैसी है। यह भी बतला रहे थे कि रोगी के नीचे से होकर कोठी तक मोटर की सडक बनने जा रही है। मोटर सडक पर जगह जगह काम भी लगा हुआ है। चिनी म अब कई दूकानें हो गई हैं, चाय और भोजन का होटल भी है। १९४८ की यात्रा के बाद अब कितना परिवतन हो गया ?

भूत हमारे घर की रखवाली करने मे बडा सहायक था, लेकिन सैर-सपटटे से बाज नही आता था। हाँ, चौधरी के टाइगर की तरह वह लण्ढौर तक की दौड नही मारता यही पास-पडोस और कुछ जगलो के भीतर तक जाता। शाम के वक्त बघेरे का नेवाला बनने से बचाने क लिए उसका घर के भीतर रखना आवश्यक है। १५ दिसम्बर को अधेरा हो रहा था, उसे बुलाकर ले आये। फाटक क भीतर आया, तो न जाने क्या चीज देखी, वह दूसरी ओर धोबिन के घर की तरफ दौडा और जरा देर मे गायब हो गया। कमला ने भूत के लाने के दिन बहुत क्रोध प्रकट किया था। कहा था—'क्यो लाये।" और अब जब कुछ देर तक उसका पता नही लगा तो वह अधीर हो गई और पागल की तरह इधर-उधर ढूढने लगी। अँधेरे मे जिस तरह वह गायब हुआ था, उससे अनिष्ट का भारी डर था। कमला तो निराश हो गई थी समझा उसे बघेरा जरूर ले गया। फिर फूट फूट कर रोने लगी। हमे भी भूत का अफसोस था, लेकिन इतनी अधीरता नही दिखलाते। खैर, कुछ और देर तक जगह-जगह "भूत भूत" कह कर बुलाया गया और वह सही-सलामत घर म लौट आया।

२२ दिसम्बर की रात को कलेजे मे दद होने लगा। गरम पानी की बोतल रखी, लेकिन उससे बहुत कम लाभ हुआ। मन कहने लगा, अगले साल से दिसम्बर स माच तक के महीनो के लिए मसूरी को छोडना पडेगा।

सोचने लगा, बगले को न लिया होता, तो अच्छा था। अब किसी तरह बिक जाय, तो आठ महीने के लिए यहाँ किराय पर मकान लेकर रहगे और चार महीना देहरादून म। अगले दिन शहर गय। डा० ज्वाला प्रसाद ने खून का दबाव देखा। वह १८८ था, होना चाहिए था १६२। तो भी बहुत ज्यादा नहीं था।

एक दाँत को भरवाना था। कुल्हडी म एक दाँत के डाक्टर को देखा। शीलाजी ने अपने परिचय की बात कही तो समझा अच्छा है, भरवा चलें। पहले दाम काम भी नहीं किया। उसने भर कर कहा १५ रुपये। यह सरासर अनुचित था, लेकिन अब तो गलती कर बैठे थे, और झगडने की आदत नहीं थी। खैर उसका भी कोई अफसोस नहीं होता, लेकिन वह तो पूरा ठग था। उसने ऐसी दवा दाँत म भर दी कि वह हमेशा के लिए काला हो गया। अब कोई देखता है, तो पूछता है आपका एक दाँत टूट गया ? उस समय अपनी बेवकूफी और उस ठग की सूरत याद आती है।

बम्बई स एक भाषण का निमत्रण आया था। वहाँ बडे बडे हृदय रोग के विशेषज्ञ रहते हैं, यह मालूम था, इसलिए एक पथ दो काज था। हमने मजूर कर लिया। पहले दिल्ली गये, और वहाँ से ३१ दिसम्बर को बम्बई के लिए रवाना हुए।

१३

जेता का जन्म

बम्बई यात्रा—हमारी ट्रेन १ जनवरी को साढ़े ६ बजे बम्बई सेंट्रल स्टेशन पर पहुँची। अभी अँधेरा ही था। स्टेशन पर राष्ट्रभाषा के श्री जोशी जी व्याख्यान के प्रबन्ध करनेवाले श्री अरविंद देशपाण्डे और श्री पोद्दारजी के ज्येष्ठ पुत्र उपस्थित थे। वहाँ से सीधे पोद्दारजी के घर पर मलाबार हिल पहुँचे। अभी भी अँधेरा ही था। मसूरी म गर्मियो म कभी हफ्ते मे दो मतबे मैं स्नान करता हूँ नही तो हफ्ते म एक मतबे साबुन से शरीर धोना पर्याप्त समझता हूँ। लेकिन, बम्बई म तो सर्दी कभी होती ही नही। यहाँ दिसम्बर जनवरी म भी पखे की जरूरत पडती है, इसलिए दिन म दो बार स्नान करन की इच्छा हो, तो कोई अचरज नही। स्नान और चायपान के बाद साढे १० बजे कार से निकला। बडे शहरो म कार की उपयोगिता आराम और समय की बचत दोनो के ख्याल से बहुत है। लेकिन, मैं तो चोट-फेट के डर से इसकी बडी आवश्यकता समझता था। फोट म जाकर डायरी खरीदी। मालूम हुआ देशी कम्पनी ने विलसन नाम की एक फौटेनपेन बनाई है जिसका प्राय सारा भाग देशी है। लालच हो आई। स्वदेशी का प्रेम तो है ही। सवा आठ रुपय म उसे खरीद लिया। वह दिल्ली का लड्डू साबित हुई—खाये सो भी पछताए न खाये सो भी पछताये। "यदि न खरीद *होता, तो मन कोसता, स्वदेशी चीज को तुमने लिया नही और कितनी* सस्ती थी?" अब खरीदा तो मालूम हुआ, वह लिखने के लिए नही बनाई गई है सिर्फ भक्ति-प्रदर्शन के लिए है। कभी लिखने के लिए जब मजबूर

होना पडता है, तो निब को उलटकर लिखता हूँ, और फिर बडी सावधानी करने पर भी वह स्याही का एक बडा बुदा कागज पर गिरा ही देती है। फिर याद आता है "सस्ता रोवे बार-बार, महँगा रोवे एक बार।" खैर यह सब तजर्बा उस दिन नही हुआ। म्यूजियम गए, तो आज नव वर्ष की छुट्टी थी। आदमी से पता लगा माटुगा मे डा० मोतीचन्दजी के पास पहुँचे। हम तो एक ही के दर्शन से अपने को कृतार्थ समझते, लेकिन वहीं डा० वासुदेव शरण और रायकृष्णदास भी मिल गये। डा० वासुदेवशरण तो कविमनीषी परिभू स्वयम्भू हैं। सारा समय अध्ययन मे लगाते है, और हमारे लिए नई नई खोज करते रहते है। डेढ दो घटा वहीं सत्सग मे बीता। आजकल बम्बई प्रदेश की सरकार ने हिन्दी के सम्बन्ध मे एक नया गुल खिलाया है। पहले हिन्दुस्तानी के नाम से हिन्दी के मुकाबिले मे उर्दू को खडा किया जाता था। उसमे सफलता नही हुई, तो अब हिन्दुस्तानी को दरवाजे से नही तो खिडकी से लाना चाहते हैं। यहा के कुछ लोगो की खोपडी मे समाया था कि सघ की भाषा के तौर पर जो हिन्दी स्वीकृत की गई है, वह वह हिन्दी नही है, जिसका व्यवहार हिन्दी प्रान्तवाले करते है। अर्थात् इस प्रकार नई हिन्दी गढने का मौका मिल जाये, और हिन्दुस्तानी को लाकर सिंहासन पर बैठा दिया जाए। हिन्दी का रास्ता अब भी साफ नही है, यह तो इन लोगो की चालो से मालूम ही हो रहा है, लेकिन दुनिया मे कही भी फरमाइश पर भाषा नही गढी गई बल्कि जो सिद्ध समामनाय (प्रयोग मे आता व्यवहार) है, उसी को लोग मानते हैं।

२ जनवरी को अँधेरी गये। सरदार भावनगर मे थे। प्रभावती बहेन, अजित और प्रज्ञा मिली। वहा से फिर डा० जगदीशचन्द्र जैन के पास पहुँचे। वह दो एक दिन मे आने वाले थे। उनकी पत्नी, पुत्री चक्रेश मिले। फिर अपनी पुस्तको के मराठी अनुवादक और प्रकाशक मोडक साहेब के पास पहुँचे। प्रकाशन से काम नही चलता था, इसलिए अब वह निर्णय सागर प्रेस मे काम करते है। भोजनोपरान्त सवा ४ बजे प्रार्थना समाज मे विजय मण्डल द्वारा सचालित हिन्दीविद्यालय मे गये। श्री एस० के० पाटिल ने प्रमाण वितरण किया, मुझे भी बोलना पडा। पाटिल बम्बई के काग्रेसी बाघ हैं। सभी निहित स्वार्थों के समर्थक होने से उन्हे सेठो का विश्वास

प्राप्त है। यद्यपि बाज वक्त वह काटजू की तरह दाढ निकालन म भी जरा नही हिचकत, पर वह कूटनीतिक भाषा पर भी अधिकार रखते है। बम्बई म हिन्दी का प्रचार पहले ही से रहा है क्योंकि भारत म जहाँ पर भी कई भाषाएँ इकट्ठी होती रही वहाँ किसी एक का सम्मिलित भाषा अपनान की जरूरत पडती और शताब्दियो के तजर्बे न बतला दिया था कि वह मध्यदेश की भाषा ही हो सकती है। कलकत्ता म भी यही हुआ, और वही बात बम्बई म भी हुई। मद्रास म बहुत कम हुई, क्योंकि वहा उत्तरी भाषाओ स सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओ के बोलनेवाले काफी नही गये।

जिस भाषण के लिए मैं विशेष तौर से निमन्त्रित हुआ था, वह राष्ट्र-भाषा समिति म ज्ञानसत्र की ओर से होनेवाला था। सरहपा पर मुझे दो दिन भाषण देना था, जो सरह के दोहाकोश की भूमिका क रूप म पीछे प्रकाशित होनेवाला था। यहाँ पर बहुत से हिन्दी साहित्यिक मित्र भी आये और महाराष्ट्र महिलाओ और पुरुषो की तो यह सभा ही थी। उस दिन डेढ घटा भाषण दिया और साढे ६ बजे बाद निवासस्थान पर लौटा।

३ जनवरी को मध्याह्न भोजन के बाद पहले श्री नाथूराम प्रेमीजी से मिलने गया। अब उन्होंने गृह स यास ले रखा है। चौमजिले पर रहते है। वहा स चढना उतरना हृदय के रोगी के लिए खतरनाक है। भानुचन्द्रजी स मिलकर उनके घर पर गये। भानुचन्द्रजी न प्रकाशन का काम जोर शोर से निकाला था, पोद्दारजी के ज्येष्ठ पुत्र कह रहे थे, बहुत-सा रुपया फँसा दिया, और किताबे बिक नही रही है। भानुचन्द्रजी कुछ समय तक बम्बई स अनुपस्थित रहकर अब फिर उन्होंने अपनी बुकसेलरी की दूकान सभाल ली है। प्रेमीजी के यहाँ पहुँचने पर यहा इकट्ठा ही कई महोत्सव प्राप्त हुए। अपभ्रश के दिग्गज विद्वान् डा० हीरालाल जैन और प्रा० उपाध्ये (कोल्हापुर) भी वही उपस्थित थे। त्रिमूर्ति से दरस-परस और बात करने का मौका मिला। डा० जैन अब नागपुर विश्वविद्यालय से अवसर प्राप्त कर चुके है। जैन धर्म के अद्भुत ग्रथ "जय धवला" के प्रकाशन म लगे हुए थे। प्रेमीजी का स्वास्थ्य पहले स कुछ गिरा था, पर बाकी बातो मे अभी जरा पर विजय प्राप्त किये हुए थे। सीढियो पर कुछ उतरे तो जैनेन्द्रजी मिल गये। फिर लौटे, और थोडी देर बातचीत होती रही।

गिरीशजी पोद्दारजी के यहाँ अध्यापन और दूसरा काम करते हैं। उन्हें लेकर कुछ खरीदने का काम किया। कुछ साडियाँ लेनी थी और कुछ अम्लान लौह (स्टेनलेस स्टील) के बरतन। हृदय की परीक्षा के बारे में पोद्दारजी से सलाह हो चुकी थी। बम्बई अस्पताल मे पोद्दारजी के परिवार का काफी दान है। मारवाडी सेठो ने इस विशाल अस्पताल को खोला है, जिसके मनेजर श्री जयदेव सिंहानिया थे। उनको भी लेकर पोद्दारजी के साथ बम्बई के प्रसिद्ध हार्ट स्पेशलिस्ट डा० दाते के पास पहुँचे। उन्होंने एक्सरे किया, कार्डियोग्राम लिया। रक्त का दबाव १०८-२१० बतलाया, यह बहुत अधिक था। फिर उन्होंने कहा, रक्त मूत्रादि की भी परीक्षा होनी चाहिए। श्री सिंहानियाँजी ने अगले दिन ६ बजे उसका इन्तजाम कर दिया।

४ जनवरी को उपवास रखा बिना चाय भी पीये ६ बजे अस्पताल पहुँचे। आध आध घण्टे पर पाँच बार चीनी का शरबत पिला नस के खून और पेशाब की भी जाँच की गई। परीक्षा की रिपोर्ट अगले दिन मिलने वाली थी। भारतीय विद्या भवन में डा० भयाणी से मुलाकात नहीं हो सकी। शाम को ६ बजे हिन्दी विद्यार्थी मण्डल के तत्वावधान में एक छोटी सी बैठक चर्च गेट में हुई। यही सुदर्शनजी और प्रदीपजी भी मिले—फिल्म जगत् में हिन्दी के यही दो लेखक और कवि रह पाए हैं। दूसरे हिन्दी लेखनी के धनी क्या नहीं जमे इसके बारे में प्रदीपजी की राय से मैं सहमत हूँ। वह पन्त और प्रसाद की भाषा फिल्म में ले आना चाहते थे, जिसके समझनेवाले इने-गिने मिलते। उन्हें पुरानी कहावत याद नहीं आई 'जो नहिं चाहे देन विदाई। पूछै केसव की कविताई"। केशवदास चुन चुनकर कठिन शब्दों को अपनी कविता में भरते थे। बहुतों के सामने उसका पढना भैंस के सामने बीन बजाना था। इसलिए कविता में रम न आने पर किसी के खीसे पर हाथ कैसे रखा जा सकता? यहाँ फिल्म में भी एक के नहीं, बल्कि लाखों के खीसों पर हाथ रखना है। गीत की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे समझने में लोगों को अधिक कठिनाई न हो। मैं पन्त प्रसाद की भाषा और उनकी कविता का प्रशंसक हूँ, खासकर प्रसादजी को तो भारत के सर्वोच्च कवियों में मानता हूँ। पर, जनसाधारण के लिए बच्चन की ही भाषा सबसे अच्छी है, और वही इस विषय में सबसे बड़े कवि माने जा

सक्ते हैं। वच्चन मिनमा म नही गये, तो बुरा नही किया। उदू कविताओ मे भी बहुत से गब्द सुननवालो के पल्ले नही पडत, पर चलती भाषा, चल्त उदू के छन्द और उसके साथ सिनमा के घनी वारिया की बीगामुश्ती, सब मिलाकर काम बन जाता है।

रेल से गुजरात पहुँचने पर ३१ दिसम्बर से कलेजे का दद बन्द हो गया था। मैंने समझा सर्दी ही उमका कारण हो सकती है। डा० दाते ने बतलाया न इसका सर्दी कारण है और न छ सात हजार फुट की ऊँचाई ही कलेजे पर कोई बुरा असर करती है। यह बात ८ को सत्य मालूम हुई, जब दद फिर शुरू हो गया। मुझे कलाकार स्वेतस्लाव रोयरिक की बात प्रामा णिक मालूम हुई। उन्होन कहा था, हृदय म कभी कभी ऐसा हो ही जाता है, फिर वह अपन आप प्रकृतिस्थ भी बन जाता है। १९५५ ५६ के जाडा के काफी समय को मैंने मसूरी म बिताया। समझ रहा था कलेजे का दद फिर लौट आएगा, लेकिन वह नही लौटा। वही बात १९५६ ५७ म भी हुई।

५ जनवरी की सवरे ९ बजे विहारो एसोसियेशन म गया। वैसे भोज-पुरिया की सख्या बम्बई मे लाखा होगी लेकिन वह अधिकतर मजूर हैं। उन्ह सभा एसासियेशन स कोई मतलब नही। ऐसे ही होली दीवाली को मिल मिला लेते ह, लेकिन उनम कुछ बुद्धिजीवी तथा नाममात्र के व्यापारी भी हैं। उन्होन अपना एसोसिएशन कायम किया है। विहारी एशोसियशन राजनीतिक सीमा के अनुसार केवल विहार भर का नही हो सकता, क्योकि आरा छपरा और गाजीपुर बलिया गोरखपुर के भीतर भाषा और सस्कृति सम्बन्धी सीमा रेखा नही खीची जा सकती। मुझे अपन भाइयो से मिलकर बडी प्रसन्नता हुई, और उन्ह भी।

मध्याह्न मे सरदार पथिवीसिंह आये। उनका स्वास्थ्य वसा ही था, जसा कि पिछली बार देखा था। भावनगर म काफी जमीन लेकर एक कृषि फाम खोला था। लेकिन आज के जमान म जब तक खुद आदमी किसान न बने, तब तक खेती चल नही सकती। ऊपर से इधर दो-तीन साल से सौराष्ट्र म वर्षा ठीक स नहीं हुई, जिसका भी असर पडा। सोच रह थे, कसे इससे पिण्ड छुटाया जाय? आखिर सरदार को अपन राजनीतिक जीवन से अवकाश लेने का तो अवसर नही मिल सकता, और वह उनस

सारा समय माँगता है। पार्टी आफिस में गये। सैंडहर्स्ट रोड के उसी राज भवन में, जहाँ पहले भारत की केन्द्रीय पार्टी का कार्यालय था, अब महाराष्ट्र पार्टी है। केन्द्रीय पार्टी दिल्ली में चली गई है। दिल्ली राजधानी होने से वहाँ सदस्यों के आने-जाने का सुभीता है, और कितने ही बडे-बडे नेता पार्लियामेंट के सदस्य भी हैं, इसलिए दिल्ली छोडकर एक कोने में पार्टी केन्द्र का रखना सभव नहीं था। साथी अयोध्याप्रसाद चाँसी के बहुत पुराने क्रांतिकारी और पार्टी मेम्बर हैं। अब वह यहीं मजूरों में काम करते हैं। वह नलगाँव ले गये, जहाँ शिक्षा के माध्यम पर बोलते हुए मैंने कहा, प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम तो मातृभाषाओं का ही होना चाहिए। वहाँ से मारवाडी पुस्तकालय में भाषण दिया। यही बम्बई में हिंदी का सबसे बडा पुस्तकालय है।

हमारे मेजबान श्री घनश्यामदास पोद्दार के सरल और मृदु स्वभाव के बारे में पहले भी कह चुका हूँ। उनकी पीढ़ी बहुत बातों में मारवाडी न रह भारतीय हो गई है। सेठानी भी हिंदी पुस्तकों के पढने में रुचि रखती हैं। और बडा लडका तो पिता से आगे है। अपने मद्रास की ओर के सैर सपट्टे की बात बडे रोचक ढंग से बतला रहे थे। किसी अपने मित्र के कम-चारी नौजवान को साथ ले गये थे। वह इनकी क्या सहायता करता, होटल में ठहरता और शराब पीकर अटचित हो जाता। शराब और गोश्त अब आजकल की पीढ़ी के लिए घृणा की चीज नहीं है। लेकिन, पीढ़ियों से मांस के प्रति जो घृणा दिमाग में बैठाई गई है वह अब भी बहुत से सेठ पुत्रों में देखी जाती है। अधिकतर उनमें अंडे तक हो जा पाते हैं। जाने को तो तरुण पोद्दार कई शहरों में गये, लेकिन उन्हें मजा नहीं आया। हाँ, साथी कदम कदम पर निशाना और साथ ही हँसता रहा। घनश्यामदासजी देखने में अस्वस्थ नहीं मालूम होते, लेकिन डाक्टर तो करोडपति सेठों के ऊपर ही पलते हैं। यदि देखने-सुनने में आदमी का स्वास्थ्य अच्छा मालूम होता है तो वह देते हैं हार्ट की बीमारी खून का दबाव है। जबाइ की काफी फीस मिल जाती है। हमारे भारत-सोवियत संस्कृति संघ के प्रधान डा० बालिगा की भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे। वे इस वक्त बम्बई के सबसे बड़े सर्जन हैं। दिल्ली में अबकी उनसे परिचय हो गया था, लेकिन वह दुःख के

विशेषज्ञ नही थे इसलिय मैं उसके पास नही गया। पोद्दारजी का तो उन्होंने बहुत सफल आपरेशन किया था। कह रहे थे, महीनो मैं फीस देने के लिए व्यग्र था, और वह बिल नही भेज रह थे। पोद्दारजी का एक मकान दिल्ली म भी है, जिसका बहुत सा भाग उन्होंन किराए पर दे रखा है, लेकिन दो तीन अच्छे कमरे अपन लिए रखे है। उनस कहा कि दिल्ली म आएँ तो वहाँ ठहरें। उन्होंने अपने आदमी को चिटठी भी लिख दी। उनके ज्येष्ठ पुत्र ने चिटठी म यह भी लिख दिया कि अगर राहुलजी को रुपए की जरूरत हो, तो दे देना। पर, उधार रुपया लेना मेरी आदत के विरुद्ध है।

६ जनवरी की रात को तरुण पोद्दार और गिरीशजी स्टेशन पर पहुँचाने आए। सीट ऊपर की मिली थी, जो कुछ कष्टप्रद तो जरूर हुई, पर सोने म कोई दिक्कत नही थी। ७ के सबेरे हमारी ट्रेन रतलाम मे थी। श्री माचवेजी भी इसी ट्रेन से जा रहे थे। हमारे नीचे वाली सीट पर जो सज्जन थे, वह रतलाम मे ही उतर गए। एक तरुण दसूजा सैनिक अफसर दिल्ली तक के लिए साथी रहा। कोटा से आगे कम्पार्टमेंट म हम ही दानो रह गये। फ्रान्टियर मेल था, इसलिए दूर-दूर के स्टेशनो पर खडा होता था। साढे सात बजे शाम का दिल्ली पहुँच, और रिक्शा ले भैयाजी के घर पहुँचे।

८ तारीख को दिन भर दिल्ली मे रहे। पार्टी के साथियो से मुलाकात हुई। साथी घाटे बीसियो वष से हृदय क मरीज है। कहते थे, इससे छुटकारा नही होता, और न इसस डरना चाहिए। न डरना चाहिए इसके सबूत वह स्वय सामने मौजूद थे। दवली म हम एक साल साथ रहे। उस साल भी वह हड्डी चमडे के घनी मुटठी भर क शरीर म हृदय के रोग को पाले हुए थे और अब भी वह बिल्कुल वैसे ही थे न घटे न बढे। उन्होंन बतलाया "खान-पीने म थोडा सयम चाहिए दो-चार दवाइयाँ करनी चाहिए और प्रसिद्ध डाक्टरो के पीछे नही पडना चाहिए। सभी नये व्यक्ति पर तजर्बा करते है।" मुझे भी भुक्तभोगी की चिकित्सा अधिक पसन्द है डायबेटीज क तजर्बे न यही सिखलाया है। भैया ने सपगन्धा की गोलियाँ दीं, और द्राक्षासव पीने के लिए कहा। मैं बहुत दिनो तक वही करता रहा।

शाम को १० बजे देहरादून की गाडी पकडी, और ९ को सबेरे देहरा-

दून पहुँच गया। जरा सी सावधानी न करने से टक्सी नहीं मिली, और बस भी चली गई, इसलिए अब दोपहर की बस पकड़नी थी। शुक्लजी के यहाँ गए। पति पत्नी किसी उत्सव में गए थे। भोजन पं० हरनारायण मिश्र के यहाँ हुआ। फिर आकर १ बजे वाली बस पकड़ी, २ बजे किक्रेग पहुँचे। कोई रिक्शा नहीं मिला, इसलिए लाइब्रेरी तक पैदल चलना पड़ा। चढ़ाई भी थी, बहुत धीरे धीरे चले, तो भी बहुत बुरा हाल था। मन में यही बात काम कर ही रही थी, कि हृदय की बीमारी वाले को चढ़ाई चढ़ना बुरा है। लाइब्रेरी से रिक्शा लेकर घर के पास तक चले आए। पूसग बहिनें दिसंबर में ही यहाँ से चली गई। कितनी सहृदय थीं। जया के दर्शन सबसे पहले हुए। अब की वह पहचान गई। लाल सलाम, नमस्ते, प्रणाम, आदाब अर्ज चार चार तरह से नमस्कार करना जानती है।

ईगर की चिट्ठी आई थी, जिसे मैं दिखाने ही के लिए ले आया था। कमला ने पहले ही देख लिया। फिर वही आग्रह। ईगर को कभी पत्र न लिखें। यद्यपि मैं समझता था, कमला के भावों का सबसे ज्यादा ख्याल करना होगा। सिर्फ उनके लिए ही नहीं, बल्कि बच्चों के लिए भी। पर यह समझ में नहीं आता था, कि ईगर की चिट्ठियों से उसमें क्या बाधा पड़ सकती है? मैं जानता हूँ कि जया और उसके आने वाले अनुज को ही मुझे अपना बाकी जीवन देना है, क्योंकि वह ऐसे देश में पैदा हुए हैं जहाँ बच्चे राष्ट्र के अवलम्ब की कोई आशा नहीं रख सकते। माता पिता ही उनके सर्वस्व हैं। पर, ईगर भी मेरा प्रिय पुत्र है पिता से सलाह-मशौर की तो आशा रखता है। वह साम्यवादी देश में पैदा हुआ है, वहाँ समय बीतने की जरूरत है, वह अपने आप अपनी क्षमता के अनुसार निर्वाध पढ़ लिख लेगा और काम भी पकड़ लेगा। यदि मैं पत्रों का भी जवाब न दूँ तो यह मेरे ऊपर भारी लांछन होगा। क्या करूँ। 'आग्रह हो या दुराग्रह कमला की ही बात माननी पड़ेगी" यही दिखाई पड़ता था।

१० जनवरी को पूर्वाह्न में दो बार कलेजे में पीड़ा हुई। डा० दात की बतलाई दवाई नियमपूर्वक खाने लगा और द्राक्षासव भी। ऐसा मालूम हो रहा था अब जाड़ों में मसूरी से हटना ही पड़ेगा। कुछ दिनों तो यही ख्याल दिमाग में चक्कर काटता रहा, कि मसूरी का मकान यदि बिक जाए, तो

दूसरा आठ-दस हजार म देहरादून मे ले ल। देहरादून से २५-२६ हजार शरणार्थी जबसे चले गये, तब से वहाँ मकानो का दाम गिर गया था। लेकिन मैं निश्चय कर चुका था, आगे मकान लेन-दन का जो भी काम होगा, वह कमला के ऊपर छोडना है।

११ जनवरी को राजेन्द्र बाबू की चिटठी आई, जिसम हमारे "प्रत्यक्ष-शरीर कोश" के शब्दा को उद्धत करक डा० सुन्दरलाल ने जो आक्षेप किय थे, उस भी भेजा था। मैंने जवाब म लिख दिया, और बातो म चाहे जैसे शब्द इस्तेमाल करे, लेकिन जहाँ तक परिभाषाआ का सम्बन्ध है, उसम भारत की सभी भाषायें—असमिया, बगला, उडिया, तेलुगू, तामिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, नेपाली, गुजराती आदि—बराबर के हिस्सेदार है। पिछले दो हजार वर्षों मे भारत और बहत्तर भारत म एक ही तरह की परिभाषाएँ इस्तेमाल होती आई हैं। जब तक इस परम्परा को तोडने के लिए तैयार न हा, तब तक परिभाषाएँ सरल तत्सम शब्दा म बने, यह छाड दूसरा कोई रास्ता नही है। यदि सुन्दरलालजी के अनुसार खोली (मत्रि-मडल) और बिचबिन्दी (केन्द्र) की तरह के शब्दो को बनाया जान लगा, तो वह हिन्दी क्षेत्र से बाहर बिल्कुल स्वीकार नही किय जाएँगे। दो ही रास्ता है। या तो उर्दू की परम्परा को अपनाकर अरबी से शब्दा को ला, या बाकी भारतीय भाषाओ की परम्परा को लेकर तत्सम शब्दो का।

हमन 'वोल्गा' (अग्रेजी), "राजस्थानी-रनिवास" और "बहुरगी मधुपुरी" तीन पुस्तकें छपवाकर प्रकाशन का तजर्बा कर लिया। यद्यपि उनम लगे रुपया के निकल आने की आशा थी, इसलिए इस तजर्बे का बहुत कडवा नही कह सकते, तो भी असफल रहा, यह तो निश्चित है। प्रकाशन वही कर सकता है, जिसके पास काफी पूजी है और सारा समय उसके लिए दे सकता है। हमारे पास दोनो नही थे। कई लेखका ने अपने प्रकाशन खोले हैं, और उनमे यशपाल और अश्कजी जसे असफल भी नही रहे हैं। पर, लेखको के लिए अच्छा यही होगा कि यदि वह कलम रखने के लिए तैयार नही हैं, तो प्रकाशन म हाथ न लगाएँ।

दिल्ली—कमला अन्तवत्नी थी। सैलानी सीजन का समय होता, तो मसूरी म सेट मेरी अस्पताल प्रसव के लिए सबसे अच्छा था। वैसा प्रबन्ध

ता दिल्ली म भी नही था। पर, इस वक्त जाडा म वह बन्द था, इसलिए दिल्ली जाना ही अच्छा समझा गया। १५ जनवरी को जया और कमला को लिय हम टक्सी म सीधे स्टशन पहुँचे। शाम का भोजन कमला न वही किया। एक रुपय म मास और देहरादून की वासमती का बढिया भात देख कर मालूम हुआ, सतयुग लौटना चाहता है। कमला का आग्रह था कि मैं शुक्लजी के यहाँ तक चला जाऊँ, किन्तु परिपूर्ण गर्भा को इस तरह छोडना मैंने पसन्द नही किया। सीट पहले से रिजर्व नही की गई थी, पर रिजर्व करने वाला तरुण मेरे नाम से परिचित था। उन्होन एक बहुत अच्छे कम्पार्टमेंट म नीचे की सीटें रिजर्व कर दी। जया न पहले-पहल रल और रेल का प्लेटफार्म देखा था। वह तो प्लेटफार्म पर कितनी देर तक टह-लती रही। बहुत से लोग आसपास चल रहे थे लेकिन उनकी उसे पर्वाह नही थी। हरेक चीज का गौर से देखती, और कुत्ते को देखकर "भूत भूत" कहने लगती। चलने से पहले मेहताजी और उनकी पत्नी भी आ गये।

१६ जनवरी का पौने ६ बजे हम दिल्ली पहुँचे। वर्षा थोडी हो गई थी। भैया स्टेशन पर आए थे। ताँगा लेकर हम उनके घर पर पहुचे। जाडा की रात बडी होती है, इसलिए अभी भी अधेरा था। ऊपर रहने की जगह पर गए। जया ने जल्दी इसे अपना घर बना लिया, और भाभीजी, उनकी माताजी तथा भैया सबसे हिल मिल गईं। मुन्ना (भाभीजी की बहिन का पुत्र) से मिलना तो चाहती थी, लेकिन उसने एकाध बार धक्का देकर गिरा दिया, फिर दूर दूर रहने लगी। ' हित अनहित पसु पछिउ जाना" बाबा ने ठीक ही कहा है। बम्बई से डाक्टर की रिपोर्ट भी पोद्दारजी ने भेज दी थी, जिसमे दवाइयो का नाम था। विशेष तो वही सर्पगन्धा थी, जिसे बहुत महँगा अग्रेजी नाम देकर बेचा जाता था। भाई साहब ने अपनी फार्मेसी म उसकी गोलियाँ बना रखी थी।

कमला के लिए कौन सा अच्छा अस्पताल होगा इसकी खोज करनी थी। हाजरा बेगम से मिले। वह महिलाओ म काम करती थी। उन्होंने डा० सुशीला दुग्गल का नाम लिया, जिनका अपना निजी अस्पताल था। अगले दिन (१८ जनवरी को) डा० सुशीला के यहाँ खान मार्केट (नई दिल्ली) म गए। उन्होने कहा प्रसव-समय २५ के आसपास है, और यह भी कि लडकी

हैं। मैंने कहा— [illegible] नहीं हुई है। मैंने [illegible] के लिए [illegible] और [illegible] था। [illegible] हुई और [illegible] मैंने उसके [illegible] है। [illegible] के [illegible]। [illegible] थे। [illegible] थे। [illegible] लेकिन [illegible] और उन्हें [illegible]। [illegible] को पूरी करने का अब भी स्वप्न रखते थे।

डाक्टर ने बहुत-सी चीजों की लिस्ट बनाकर दी थी जिनमें से अधिकांश को चाँदनी चौक से खरीद लाये। जामा मस्जिद के पास कुछ पुरानी उर्दू की पुस्तकें मिलीं। उर्दू के खरीदार अब कम हो रहे हैं। बहुतों को तो ६० फी सदी कमीशन पर भी देने के लिए तैयार थे। बुकसेलर अपना रोना रो रहे थे।

एक दिन मोटर-रिक्शे पर कहीं जा रहे थे। साथ बैठे दो सज्जन कह रहे थे— देखो, सन् १९५७ आ रहा है। भयंकर घटना घटने वाली है।" हमारा देश आधुनिक युग में तब तक नहीं आ सकता, जब तक ज्योतिषियों और इस तरह की बातों पर विश्वास है। १८५७ में गदर हुआ, १७५७ में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों ने विजय प्राप्त की, इसलिए इन दोनों सोपडियों को सनों ५७ कोई न कोई भयंकर घटना लाने वाले हैं। १९५७, १५५७, १४५७, १३५७ सभी दुर्घटना लाने वाले थे, क्या? जिन स्वार्थों को अभी हानि उठानी पड़ी है और जो अपने पुरखाओं की तानाशाही कायम करने का स्वप्न देख रहे हैं वस्तुतः वह सन् ५७ की घटनाओं के जबरदस्त प्रचारक हैं।

२० की शाम को श्रीनाथ आये। कनैला का समाचार पूरी तौर से बतलाया, जिससे मालूम हुआ कि घर की हालत उतनी बुरी नहीं है जितनी रामविलास ने अपनी चिट्ठी में लिखी थी। हाँ, चोरियाँ होती हैं। पुराने मजूर अब अपने बाप-दादों जैसे नहीं रहे। सहस्राब्दियों तक आदमी को कैसे गुलाम रखा जा सकता है? जिनका उनकी गुलामी में ही हित था, उन्हें अब सबक सीखना होगा।

२१ जनवरी का भैया भाभी और हम डा० सत्यकेतु और शीलाजी के यहा गए। वह भी जाडो के कारण मसूरी से यहाँ चले आए थे। जब तक पार्लियामेट की बैठकें शुरू नही होती, तब तक के लिए ससद सदस्यो के मकान खाली ही पडे रहते हैं। ऐसे ही एक मकान मे वह रह रहे थे। पार्लियामेट के सदस्यो की सख्या बहुत बढ गई तो उनके रहने के स्थानो को बढाना पडा। यह भवन वैसा ही था। उसमें आराम का और स्थान के पूरी तौर से उपयोग का ख्याल रखा गया था। डा० सत्यकेतु के 'आचार्य चाणक्य' ऐतिहासिक उपन्यास पर कलकत्ता की एक सस्था न हजार रुपये का पारितोषिक दिया था, उसके लिए वह कलकत्ता जानेवाले थे। ऐतिहासिक उपन्यास के साथ न्याय वही कर सकता है, जो उस समय के इतिहास की सारी उपलब्ध सामग्री के सग्रह और आलोडन के लिए तयार हो, और अपनी जिम्मेवारी को भी समझता हो। डा० सत्यकेतु इसके योग्य थे, इसे कहने की आवश्यकता नही।

२२ जनवरी को कुछ हिन्दी पुस्तकें और स्याही पेन्सिल के लिए हम फैजबाजार की किताब की दूकानो म गए। एक सज्जन ने कहा—"वी डोंट कीप स्टेशनरी" (हमारे पास कलम कागज नही है)। फिर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के बारे म पूछने पर कहा—"वो डोंट हैव हिन्दी पेपर" (हमारे पास हिन्दी पत्र नहा है)। वह केवल अग्रेजी बोलने की कसम खा चुके थे। उनका यदि इसका कुछ भी पता नही था कि हमारे देश म अग्रेज का राज्य नही है, इसलिए अग्रेजी का राज्य नही रह सकता, तो इसम उनका क्या कसूर? वह तो देख रहे थे कि अभी भी हमारे महाप्रभुओ के कारण दिल्ली मे अग्रेजी का ही बोलबाला है।

२३ जनवरी को श्रीनाथ और उनके परिवार से मिलने १० नम्बर किंग्सवे म गए। १० नम्बर की कोठी तो केन्द्रीय मत्री की है। वहाँ भला श्रीनाथ के लिए क्या स्थान हो सकता था? उसके पीछे नौकरो के क्वाटर थे। कोठीवाला के पास उतने नौकर नही थे। बहुत-सी कोठरियाँ खाली पडी थी। शरणार्थियो के हल्ले के समय उनम बहुत से आकर रहने लगे। राम हल्ले मे श्रीनाथ जसे अशरणार्थियो ने भी लाभ उठाया। छोटी छोटी कोठरियो म नर नारी बच्चे बच्चे भरे हुए थे। उन्ही म से एक म श्रीनाथ,

उनकी बीबी और दो बच्चे रहते थे। बडा लडका १४ वष का, कही स्कूल मे पढ रहा था। छोटा (जयप्रकाश) ६ वष का था। मैं जाकर चारपाई पर बैठ गया। अपने बडे भाई का अभिमान तो होना ही चाहिए था, उन कोठरिया म रहने वाले कुछ और भी जानते थे, इसलिए वह भी नमस्ते करन के लिए आये। आजकल कोठी म श्री के० सी० नियोगी रहते थे। श्रीमती नियोगी को मालूम हुआ, तो उन्होने श्रीनाथजी से मिलाने का आग्रह किया था। पर मैं समय नही निकाल सका। श्रीनाथ की जीविका का साधन मिठाइया बना फेरी करके बेचना है। खच बहुत कम कर लिया होगा, लेकिन दिल्ली मे चार प्राणिया का जीवन निर्वाह तो करना ही था। उस परिवार का देखकर मैं जान सकता था कि हमारे देश की भारी सख्या किस अवस्था मे रहती है।

२६ जनवरी को स्वतन्त्रता और गणराज्य दिवस था। दिल्ली म उसकी बडी तैयारी थी, लेकिन वह अधिकतर सरकार की ओर से ही थी। फैज-बाजार की सडक बहुत बडी सडक है यह बाजार भी अब विशेष महत्व रखने लगा है। जितनी बसे इस रास्ते जाती है, उतनी दिल्ली की किसी सडक से नही जाती होगी। उस दिन ६ बजे से ही यातायात बन्द कर दिया गया। राष्ट्रपति को सलामी देकर सारा सनिक जलूस यहा से लाल किले की ओर जाने वाला था। हमारे घर के बराण्डे के नीचे, पर परली ओर से उसे गुजरना था। साढे ११ बजे जलूस आया और डेढ घटे म यहा से पार हुआ। सेना, कला, हस्त शिल्प, उद्योग धन्धे आदि का प्रदशन था। पर, हमारे देश की असह्य दरिद्रता को छिपा रखा गया था। उसके लिए जबानी जमाखच करना भर काग्रेस के नेताओ का काम था। कभी गाधीजी के नाम पर लोगा की आखो मे धूल झोकते, अब के आवडी-काग्रेस म समाजवाद का नाम लिया गया, और मौके बेमौके उसकी दुहाई दी जाती है।

उस दिन शाम को माचवेजी और शरदजी आये। उनके साथ हम उनके घर गए। डा० सुशीला के यहाँ जाने पर उन्हाने बतलाया कि चार ही पाँच दिन और हैं। दद शुरू होते ही आ जाएँ। लौटते वक्त बडी मुसीबत मे फँसे। तमाशा देखने वाले लोग अपना घर-बार छाडकर मुख्य मुख्य सडको पर आ गए थे। टैक्सी एक जगह जाकर रुक गई। फिर टैक्सीवाला जाने से

इन्कार करने लगा। क्या करते ? साढे चार की जगह नौ रुपया देना स्वीकार किया, और बहुत चक्कर लगाकर ६ बजे वह हमारे घर पर पहुँचा गई। ट्राफिक का प्रबन्ध क्या हमारी पुलिस कभी नही कर सकेगी ? जहाँ रोकना चाहिए, वहाँ रोकने के लिए कोई तैयार नही, और जहाँ चारो ओर से सवारियाँ पहुँच जाएँ वहाँ रोकने के कारण सवारियो की लम्बी पातियाँ खडी हो जाएँ।

श्री ऋषिजी से पहले ही से पत्र-व्यवहार था। वह रूसी हिन्दी कोश मे लगे हुए थे। रूस मे दो साल भारतीय दूतावास मे रह चुके थे, इसलिए भाषा का अभ्यास किया था। हिन्दी उनकी बहुत मजबूत नही थी, और संस्कृत का परिचय भी नही था, लेकिन अभी नौजवान थे, अध्यापन से अपनी योग्यता बढा सकते थे। बहुत परिश्रमी थे इसे कहने की आवश्यकता नही। उन्होने महाकवि पुश्किन की प्रसिद्ध कविता 'सिगान' (रामनी) का रूसी से हिन्दी मे अनुवाद किया, और उसमे काफी सफल रहे। पूछने पर मैंने कहा था—रूसी से हिन्दी करने के काम को लो और उसके अंशो को प्रकाशित करते जाओ। पत्र वाले छापेगे या नही, इसमे हिचकिचाहट कर रहे थे। लेकिन, हिन्दी के पत्रो ने जब छापना शुरू किया तो उनकी हिम्मत खुल गई। कोश बहुत बडा काम था। चाहते थे, यह अच्छे से अच्छे रूप मे छपे। मुझसे भी सहायता लेना चाहते थे। मैंने कहा—यही समय है, शाम को आ जाया करो।

२८ जनवरी को उर्दू बाजार मे बुक्सेलरो की दूकानो की खाक छानता रहा। एक जगह 'तारीख तिबरी' (फारसी) देखी। मैंने तुरन्त उस पर हाथ मारा। बतला रहे थे, यहा तो इसे कोई पूछता नही, हम पाकिस्तान भेजने ही वाले थे। यह बहुत पुराने इतिहास ग्रन्थो मे है, जिसमे ईरान और मध्य एसिया पर अरबो के विजय के बारे मे बहुत लिखा हुआ है।

आज नेशनल स्टेडियम (राष्ट्रीय अखाडे) मे लोक नृत्य होने वाले थे। हम भी वहाँ गए और सवा ६ बजे से ६ बजे तक रहे। अखाडे मे जितने आदमी बैठ सकते थे, उसके चौथाई ही मुश्किल से थे। पागी (हिमाचल चम्बा), कश्मीर, पंजाब पेप्सू बुन्देलखण्ड, भरतपुर, मारवाड, सौराष्ट्र, बम्बई, गोवा, मद्रास, पांडीचेरी, उडीसा, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, सिक्किम,

नागा, मनीपुर आदि के जन-नृत्य दिखलाए गए। कुछ नृत्य नक्ली कलाकारो और क्लाकारिनियो न दिखलाए, यह खटकने वाली बात थी। दर्शको की आँख म धूल झाकना अच्छा नही है। सबसे अच्छा नृत्य मनीपुर, पागी, नागा, ब्रज और राजस्थान के थे। बम्बई का सिंह नृत्य भी अच्छा रहा। राष्ट्रपति भी आय थे।

साथी यनदत्त शर्मा ने आग्रह किया कि मैं किसी प्रतिनिधि मण्डल म विदेश जाऊँ। मैंने कहा मैं चीन ही जा सक्ता हूँ, और उसम भी तिब्बत जान का मुझे लालच है।

अब की अपनी किताबा के बदले म बुक्सेलरो से डेढ दो सौ पुस्तकें ली। प्रकाशन का यह तो लाभ होना ही चाहिए। समय मिलने पर उनमे से कुछ पढता भी रहा। नागार्जुन के 'बलचनमा' को समाप्त किया। ग्रामीण जीवन का बडा ही सजीव चित्र है। शिकायत यही है कि पाठक प्यासा ही रह जाता है।

जेता का जन्म—रात को डेढ बजे ही से कमला का दर्द होने लगा था। पहले १८-२० मिनट के अन्तर से, फिर जल्दी-जल्दी। ३१ जनवरी को साढे ४ बजे तक किसी तरह बिताया। उस समय टैक्सी मिलने म भी दिक्कत थी, और डाक्टर की भी परेशानी थी। जाना बहुत दूर था। फिर भया और हम कमला को लेकर डा० सुशीला के पास गए। उन्होंने तुरन्त सँभाल लिया। पौने ६ बजे कहा, अभी पीडा का आरम्भ ही है। शाम तक शायद प्रसव होगा।

सवा १० बजे फोन किया, तो डा० गिल ने बतलाया कि १० बजने मे १० मिनट था, जब पुत्र पदा हुआ। रमन भाई ने अपनी कहानी म कहा, कई बहनो के बाद मेरी पीठ पर जब भैया पैदा हुआ, तो मेरी पीठ पर भेली फोडकर प्रसाद बाँटा गया था। भाभीजी और अम्मा ने भी अनुमोदन करते हुए तुरन्त भेली मँगवाई और जया की पीठ पर फोड़ी। सब लोग ढोलक लेकर भाभीजी, उनकी मा, भाजा भाजी, हम और जया सभी डा० सुशीला के अस्पताल मे पहुँचे। अब की बहुत कष्ट उठाना नहीं पडा। कमला लेडी डाक्टर की तारीफ कर रही थी। यहा सेंट मेरी जसे सब साधन मौजूद नही थे, तो भी नर्स बहुत अच्छी थी। अगले दिन जाने पर देखा,

जेता ने आँखें खोल दी हैं। पैदा होते वक्त जया से भी अधिक वजन जेता का था, अर्थात् साढ़े ८ पौंड। डाक्टर की फीस १५० रुपये, आठ दिन रहने का खर्च ६४ रुपये और नौकर-चाकरों के लिए कुछ, सब मिलाकर २५० रुपये देना था। ७ फरवरी को कमला अस्पताल से चली जाएँगी, यह डाक्टर ने बतला दिया।

उस दिन "आजकल" कार्यालय में गया। चन्द्रगुप्तजी, सत्यार्थीजी, मन्मथजी और दूसरे साहित्यकार मिले। डायरेक्टर सिन्हा सारे विभाग के अध्यक्ष हैं। वह अंग्रेजी में ही बोल सकते हैं, और उसी के कारण तो इस पद पर हैं। उन्होंने बुद्ध शताब्दी के सम्बन्ध में प्रकाशित होनेवाली पुस्तक के लिए एक लेख माँगा था। मैंने 'दीपंकर श्रीज्ञान' पर एक लेख लिख कर भेज दिया, उसे "आजकल" ने छाप दिया। अब दूसरा माँग रहे थे। कह दिया 'शान्ति रक्षित" पर भेजेंगे। वहाँ से कुमारिलजी के साथ हरिजन निवास गये। वियोगी हरिजी वहाँ नहीं थे। कुछ देर वहाँ घूमकर चले आये।

अम्मा को छोड़े तीन दिन हो गये, और इतने ही में जया भूल गई। अच्छा ही था, नहीं तो रो रो कर तंग करती। बच्चा का प्रेम बँटा रहे, तो अच्छा है। ३ फरवरी को जया को साथ ले गये। उसने जेता को बड़े गौर से देखा। नमस्ते, सलाम, चुम्बन और प्यार भी किया। जेता दिन में अधिकतर सोता रहता। अभी जन्म के बाद की डायरियाँ नहीं हुई थी। पेट साफ करने के लिए प्रकृति ने इसका नियम बना रखा है। इसी दिन राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी मसूरी से लौटकर आई। उन्होंने लिखा था मेरी चिट्ठी को सुन्दर लालजी के पास भेज दिया है। पं० सुन्दरलाल का मेरा भाषा के सम्बन्ध में मतभेद बहुत पुराना है। लेकिन, उसके कारण हमारे सम्बन्ध पर कभी कोई असर नहीं पड़ा। अगले दिन दोपहर बाद जनेन्द्रजी भी आए। फैज बाजार इसी पाँती में ८ नम्बर के घर में रहते हैं। मैं भी वहाँ गया, देर तक बात होती रही।

४ फरवरी को पार्टी आफिस में साथी अजय से बातचीत हुई। मैंने फिर से पार्टी मेम्बर होने की बात कही, तो उन्होंने कहा—बहुत अच्छा स्वागत है। इसी समय मैंने आवेदन-पत्र दे दिया। यह तो सभी जानते थे कि मेम्बर न रहने के समय भी मैं पार्टी का ही था, और अपनी लेखनी से

चौधरी के साथ आए। नरत मिश्र का छपरा में लोग सोह स्वामी कहने लगे हैं। प० रामावतार शर्मा के शिष्य और अनुयायी, अर्थात् नास्तिक, लेकिन हिन्दू नास्तिकता आस्तिकता का समन्वय करना जानता है, विशेषकर ब्राह्मण। वाल्मीकि बाबू से पत्र द्वारा परिचय था, क्योंकि चक्रधर बाबू के विकृत मस्तिष्क होने के बाद अब वही राष्ट्रपति के निजी पत्र व्यवहार और दूसरे कामों का जिम्मा लिए हुए थे। मैंने पिछले पत्र में राजेन्द्र बाबू को लिखा था—मैं दिल्ली में आऊँगा लेकिन आपका समय बेकार लेना नहीं चाहता। राजेन्द्र बाबू से मिलने जुलने में मुझे कभी संकोच नहीं हो सकता था। पर, राष्ट्रपति होने के बाद उनके दर्शनार्थियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है इसलिए मैं उसमें एक की संख्या और बढ़ाना नहीं चाहता था। जब वाल्मीकि बाबू ने कहा, ११ फरवरी को साढ़े ५ बजे आप मिलने आवें, तो मुझे अपने पत्र के लिए पछतावा होने लगा। मैंने यह क्या लिख दिया कि आपका समय नहीं लेना चाहता। अब तो जाना ही पड़ेगा।

इसी समय फव्वाबाजार के डाकखाने में एक घटना घटी। आजकल अक्सर नोट देने पर चीज लेकर बाकी पैसे लेना मैं भूल जाता हूँ। उस दिन टिकट लिए और १ रुपया १० आना वहीं टिकटवाले क्लर्क श्री चनराम के पास भूल आया। अगले दिन गया, तो उन्होंने पैसे वापस कर दिये। अभी भी, और दिल्ली शहर में ईमानदार लोग हैं, इसका यह उदाहरण था।

सरहपाके दोहाकोश की जो (१०वीं—११वीं शताब्दी की) ताल पोथी मुझे तिब्बत में मिली थी, और जिसे मैं अब सम्पादित कर रहा था, प्रकाशकों की इच्छा हुई, कि उस सारी ताल पोथी का ब्लाक फुहार में दे दिया जाए। दिल्ली में ब्लाक [illegible] डेरा पड़े हैं। कई जगह [illegible] मैंने चावड़ी बाजार के एक [illegible] ब्लाकवाला को पसन्द किया। दस साल पहले एक [illegible] ने इस कारबार को शुरू किया [illegible] दिन की [illegible]
[illegible] काम में [illegible] [illegible] रहे। [illegible] काम
[illegible] गया था। [illegible] थे। [illegible] और
[illegible] भी अधिक [illegible] बात था कि [illegible]
[illegible] न रह पाए। [illegible] [illegible]
[illegible] दिन, [illegible] [illegible]

उसका काफी बढ़ चुका है, और, और भी बढाने की बात कर रहा था। मुझे श्री कृष्णप्रसाद दर की बात याद आती थी। अगर काम बढाने के पीछे इतने पागल न होते, तो अपने राष्ट्र विरवे—ला-जनल प्रेस—से दूध की मक्खी की तरह न निकाले जाते। मैंने सावधान किया, काम बढाने के ख्याल से सेठा के पास मत जाना।

राजकमल के यहाँ जाने पर देवराजजी ने एक किताब उठाकर कहा यह एक नए लेखक का बहुत अच्छा उपन्यास है। मेरे पास समय भी था और मैं सकडो पुस्तके इस वक्त जमा कर रहा था। मैने 'मैला आचल' भी ले लिया। उसे लिए जैनेन्द्रजी के यहाँ जाना पडा। जैनेन्द्रजी दार्शनिक न बनते, तो अच्छा होता, लेकिन किसी के दिल को कैसे रोका जा सकता है? उन्होने 'मैला आचल" को देखकर कहा, मैं इसे दि बेस्ट (श्रेष्ठ) तो नही कहता, पर दि गुड (अच्छा) कह सकता हूँ। जैनेन्द्रजी का इतना सर्टीफिकेट भी नये लेखक के लिए काफी था। दार्शनिक अपने हरेक शब्द को तोलकर बोलना तो जानते है। मैं उस पुस्तक को आद्योपान्त पढ गया। सचमुच ही उसके पढने मे प्रेमचन्द की कोई महान् कृति याद आती थी। मैं फणीश्वरनाथ रेणु की लेखनी का कायल हो गया। मैं तो समझता हूँ बडे उपन्यासो मे प्रेमचन्द के बाद ऐसा सुन्दर उपन्यास कोई नही लिखा गया। मैंने उसके बारे मे नोट भी किया था—"अच्छा लिखा है। वविध्य सौदर्य पूर्ण यथार्थ चित्रण है।" लेखनी मे बडी सम्भावना है।

११ फरवरी का सवेरे शिव शर्मा के साथ उनके कला भवन मे लाजपत नगर गया। कला भवन का मतलब है हिन्दी साहित्य विद्यालय। वह दिल्ली के एक छोर पर है। वहा तरुण तरुणिया पढकर पजाब युनिवर्सिटी के प्रभाकर, रत्न और मट्रिक का परीक्षाएँ देती थी। पजाब मे इस तरह के निजी विद्यालयो की स्थापना का बहुत रवाज है। कुछ लोग इन पर नाक भौ सिकोडते है और कहते है, ये शिक्षण सस्थाए नही, शिक्षण दूकानें है। मैं नही समझता कही भी शिक्षण सस्थाओ के लोग हवा पीकर रहते हैं सभी तनखाह लेते हैं। यहाँ भी यदि शुल्क लेकर पढाते है, तो क्या बुरा? यदि यहाँ पढे हुए लडके लडकियाँ परीक्षाओ मे पास नही होते, तो पढने क्यो आते? और जब बाकायदा स्थापित कालेजो और स्कूलो के लडको के साथ

फिर, राष्ट्रपति भवन वही मकान था, जिसे पहले वायसराय भवन कहा जाता था, और जिसके बनाने में अंग्रेजों ने बेदर्दी से प्रजा की गाढ़ी कमाई को स्वाहा किया था। मैं समय पर पहुँचा था, इसलिए जरा ही देर में राष्ट्रपति के पास पहुँचाया गया। राजेन्द्र बाबू वैसे ही सीधे सादे बैठे हुए थे। मैं भी बैठ गया। स्वास्थ्य, साहित्य और तिब्बत के बारे में बातचीत हुई। सरहपा की तालपोथी को उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से देखा। पूछा—कोई सहायता की जरूरत है? मैंने कहा—यद्यपि मेरा स्वास्थ्य पहले जैसा नहीं है, पर आजकल तिब्बत में पुराने मठों और पुस्तकालयों के खोल देने की जो खबरें मिल रही हैं, उनके कारण मैं तिब्बत जाना चाहता हूं। उसके लिए पासपोर्ट के बारे में आपकी सहायता करनी पड़ेगी। उस वक्त मुझे मालूम नहीं था कि उत्तर प्रदेश सरकार ने पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया है। राजेन्द्र बाबू ने पासपोर्ट के लिए कोशिश की। आखिर उन्हीं के नाम पर तो पासपोर्ट मिलते हैं, इसलिए केन्द्रीय सरकार क्या इन्कार करने लगी।

राजेन्द्र बाबू हमेशा से संकोची रहे। इसका यह मतलब नहीं कि वह प्रतिभा में पीछे रहे। आदमी आदमी का स्वभाव होता है। इतना संकोच उन्होंने कहाँ से सीखा? बड़े भाई महेन्द्र बाबू का अपने अनुज के ऊपर ऐसा घनिष्ठ प्रेम था, जैसा बहुत कम देखा जाता है। राजेन्द्र बाबू उनके सामने हमेशा अपने को छोटा सा बालक समझते थे, वैसे ही सम्मान और स्नेह रखते थे। शायद संकोच का आरम्भ वहीं हुआ हो। कुछ भी हो। बाज-वक्त अपने भावों को प्रकट करने में उनका संकोच करना अच्छा नहीं होता। वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति हैं। शताब्दियों बाद भारत में पहले पहल गणराज्य स्थापित हुआ और इसके गणपति बनने का उन्हें मौका मिला। वह जो रास्ता दिखलाएँगे, उसका अनुसरण बहुत पीछे तक किया जाएगा। नेहरू लिफाफिया परिवार में पैदा हुए, जिन्दगी भर लिफाफिया रहे। न उन्हें अपने पैसों को खर्च करने में कभी दर्द हुआ, और न भूखी नंगी जनता से जमा किये हुए पैसे में आग लगाने में कोई संकोच। इसका उदाहरण उनका वैदेशिक विभाग है। उनके राजदूत इस तरह की हृदयहीनता के लिए मशहूर हैं। विजयलक्ष्मी पण्डित तो शाहजादी हैं। मास्को के दूतावास के

सजाने के फर्नीचर को खरीदने वह यदि हवाई जहाज से स्वीडन गई, तो कोई अचरज की बात नहीं थी। उनका दम बकरार रहना चाहिए जिस दूतावास में भी पधारेंगी, उसे मुगल दीवानेखास बनाके छोड़ेंगी। मास्को में ऐसा ही किया वाशिंगटन में ऐसा ही किया, लन्दन में ऐसा ही कर रही हैं। जब तक बड़े भैया हैं तब तक वह राजदूता बनकर इसी तरह अपने गरीब देश की असली अवस्था पर पर्दा डालकर दूतावासों का नौक बढ़ायेंगी। मेनन साहब से आशा थी, वह संकोच करेंगे, लेकिन वह भी लन्दन में राजदूत होते ही राल्सराइस जैसी अत्यन्त खर्चीली मोटर खरीदने के लोभ को रोक न सके। इन लोगों के बारे में क्या शिकायत हो सकती है? लेकिन, राजेन्द्र बाबू को तो उनकी बात में नहीं पड़ना चाहिए था।

यह ठीक है वह बहुत नहीं बदले। अब भी उन्हें सादा के उसी पुराने धोती कुर्ते में देखा जा सकता है, अधिकतर वह अपनी देसी पोशाक में रहते हैं। पर, नेहरू ने सिखला दिया है कि मर्यादा रखने के लिए अचकन और चूड़ीदार पायजामे की बड़ी जरूरत है इसलिए राष्ट्रपति उस पोशाक में भी देखे जा सकते हैं। इस बात में उन्हें डा० राधाकृष्णन का अनुसरण करना चाहिए जिन्होंने कभी अपनी धोती नहीं छोड़ी। पर जैसा मैंने कहा, उनका संकोच बाज वक्त बुरा होता है। नेहरू भोजपुरी कहावत के अनुसार— 'बाड़-बाड़ गइल बित्ता भर पगहा ले गइल' सीधे-सादे राजेन्द्र बाबू को भी कितनी ही जगहों में पथभ्रष्ट करने में समर्थ हुए। राजेन्द्र बाबू हमेशा जनता के आदमी थे। जनता में घुल मिल जाने में ही वह सन्तुष्ट होते थे, और दिखाव के लिए नहीं बल्कि उनका कुछ ऐसा ही स्वभाव बन गया था। अब वह बिना शरीर-रक्षकों की पलटन के कहीं जा नहीं सकते। यह ठीक है कि उनके समय में हि[illegible]र हजारों आदमी और हजारों काम हैं [illegible] भी [illegible] कभी पटा-सा पटा निकाल [illegible] हैं। उस समय यदि वह मोटर को दूर ही छोड़ [illegible] अपनी पुरानी पोशाक में दिल्ली की गलियों में घूमा [illegible] तो क्या बुरा हो जाता? यह तो [illegible] है, पुराने राजाओं में भी कितनों ने ऐसा किया था। इससे क्या लाभ होगा? उनके लिए [illegible] और गरीब जनता [illegible] होगा। यह [illegible] कहने का [illegible] मौका [illegible]। सबसे बड़ी बात होगी कि आप के [illegible]

लिए रास्ता निकल आएगा, और नेहरू का रौब जाता रहेगा।

मुझे घडी की ओर देखते हुए राजेन्द्र बाबू ने कहा—उसकी पर्वाह न कीजिए। लेकिन, काम की बात तो कर चुका था। कुछ मिनट ही और बैठा। आध घंटे बाद वहा स चला आया।

१२ फवरी को डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० राजवली पाण्डे आए। कहने लगे, नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित करने की एक योजना केन्द्रीय शिक्षा विभाग के पास दी है। छ लाख रुपये के खर्च से पाच साल म इस काम को पूरा करना है। भारत सरकार ने इसे मजूर किया और पाच हजार मासिक और भी देना निश्चय किया है। प्रधान सम्पादक और चार सहायक सम्पादक होगे। हमारे काम की बडी अडचन दूर हो जाएगी, यदि आप प्रधान सम्पादक होना स्वीकार करे। मै सरकारी नौकरी करने के लिए कसे तैयार हो जाता ? उस वक्त तो कुछ नही कह सका, लेकिन पीछे अपने विचारो को लिख भेजा। उन्होने फिर अपनी कठिनाइयाँ रखी और कहा दूसरे को प्रधान-सम्पादक बनाने म कई उम्मीदवार हो जाएँगे और विवाद होने का डर है। फिर शिक्षा मत्रालय उसे मानने म गडबडी करेगा। मित्रो ने भी ऊँचा-नीचा सुझाया, यह भी बतलाया कि यह काम तो सभा करा रही है, सरकार तो केवल अनुदान देती है। कई महीने पीछे अन्त म मैंने अपनी स्वीकृति भेज दी।

१३ फवरी को जेता के जन्म पर चाय-पार्टी हुई। इसी बहाने दिल्ली के साहित्यकारो के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मेरी भी उसमे सहमति थी। डा० सत्यकेतु चन्द्रगुप्तजी, मन्मथनाथजी सत्यार्थीजी वाचस्पति पाठकजी देवनारायण द्विवेदीजी भगवतीप्रसाद वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, जैनेन्द्रजी, माचवेजी नवल्पुरी, सच्चिदानन्द आदि घर-बाहर के ३६ पुरुष और महिलाएँ उपस्थित थी। ऊपरी बराण्डे की जगह काफी साबित हुई। चाय पान के साथ साहित्य चर्चा भी हुई। इतवार का दिन था, इसलिए प्राय सभी काम से विरत थे। शीलाजी, भाभीजी, कमला आदि ने प्रबन्ध अपने हाथ म लिया था। श्रीनाथ और उनके परिवार ने भी भतीजे के उत्सव म भाग लिया था।

१४ फवरी को मैं चावडी बाजार म ब्लाको की कापी लेने गया था।

चादनी चौक और चावडी बाजार म भीड अक्सर रहती है। एक जगह भीड हुई। मालूम हुआ एक आदमी जान बूझकर रास्ता रोके हुए है। मैं उस पर गुस्सा हान जा रहा था, लेकिन उस समय दूसरी ओर ख्याल नही गया। आगे जाकर कोई चीज खरीदकर जब पैसा देने लगा, ता देखा चमडे का गोल मनी बग गायब है। सयोग से मैंने सभी अण्डे एक टोकरी मे नही रखे थे, दस रुपये का नोट अलग भी था, इसलिए दूकानदार का पैसा दे दिया। बटुये मे चार-पाच रुपये तो जरूर हागे। उससे भी ज्यादा बटुए का मोह था। १९४९ म शांतिनिकेतन म इसे लिया था। वह वहा के निवास का चिह्न था। पुराने विचारवाला के शब्दो म कहता तो वह बडा भगमाता था। कभी एसा नही हुआ कि वह पसे स खाली हो। मैं हैरान हो रहा था, कितना सफाई मे पाकेटमार जाकेट के ऊपरी जेब स उसे उडा ल गया। लेकिन, यहा सफाई की भी कोई एसी बात नही थी। जेब उडानेवाले कई मिलकर यह काम करते है। जिसने भीड के बहाने रास्ता रोका था वह उन्ही म से था। दूसरा बगल से थला निकालने की ताक म रहा। ११ १२ वर्ष पहले बगलौर मे ऐसा ही हुआ था। कई ने मिलकर योजना बनाई थी। एक न मेरी शैफर फौन्टेनपैन उडाई। उसने किसी और के हाथ म थमाई, उनका एक साथी जोर से भागने लगा। मेरा भोलापन कहिये, मैं उसके पीछे दौडा, और आगे जाकर पकड भी लिया। वह कसम खाने और नगाझोरी देने लगा—"मैंने कलम नही चुराई। मैं तो अपने काम स भागा जा रहा था।" सचमुच ही वह कलम लिए होता तो पकडाने के लिए ऐसे क्या दौडता ? दिल्ली के पाकेटमार उससे भी ज्यादा होशियार थे। खैर, जिन्दगी म दो-चार बार ऐसे अनुभव बुरे नही हैं, हालाकि इसमे स देह है कि आदमी उससे कोई लाभ उठा सकता है।

उसी दिन ३ बजे श्री रामलाल पुरी ने मेरे उपलक्ष्य म साहित्यकारो के लिए एक चाय पार्टी दी, जिसम डा० नगेन्द्र, श्री बाकेबिहारी भटनागर, माचवेजी आदि तीस के करीब साहित्यकार मित्र आए।

उसी (१४ फरवरी) रात को हम देहरादून की ट्रेन पकडनी थी। शाम को भैया भाभीजी, शिवकुमारजी, श्रीनाथ आदि स्टेशन पहुँचाने आए। ट्रेन १० बजे चली और अगले दिन ८ बजे के करीब देहरादून पहुँच गइ।

१४

मसूरी से मन भर गया

१५ फरवरी को हम देहरादून म रह गए। शुक्लाइनजी नये बाल-गापाल का देखकर वडी प्रसन्न हुई। हमे अव कमला की परीक्षा की चिता थी। वह अव के साल वहुत कम पढ सकी थी, मुश्किल से एक महोना मिला था। जो भी समय था, उसे पढने मे लगाना था।

अगले दिन (१६ फरवरी) को हमने टैक्सी की, और अपने फाटक के सौ गज तक उसे लाए। बीस रुपया किराया और पांच रुपया नगरपालिका के आना पत्र का देना पडा। साढे ६ वजे हम अपने घर पर थे। ठण्डी जगहा पर अव भी वफ मौजूद थी। अव क साल वफ अच्छी पडी थी, लेकिन हम उसे दखन का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ। पहले कलजे के दद से भागते फिरे, इधर महीने भर के लिए दिल्ली चले गए। आजकल सवाय हाटल म विश्व कार्टोग्राफी (भूचित्र निर्माण) सम्मेलन हा रहा था। उसम भारतीय प्रतिनिधिया ने चीन गणराज्य को सदस्य वनान का प्रस्ताव किया पर अमरिका और उसके पिट्ठू उसे क्या पस द करने लग ? सभी जगह उसी का वहुमत भी है। तुर्की का काई प्रतिनिधि न हान पर भी उसका उपाध्यक्ष चुन लिया गया। भारतीय प्रतिनिधि अपने प्रस्ताव म सफल तो नहीं हुए, लेकिन उ होने खूब खरी-खोटी सुनाइ। अमेरिका समय-समय पर अपन का नगा करक दिखला देता है। उसे दुनिया की जनमत की काई पर्वाह नही है। वह अपन डालरा और आततायीपन पर फूला नहीं समाता, लेकिन एक दिन यह नशा उतरेगा जरूर।

मक्खियो मे। गर्मी बढत ही वह आ धमकती। मक्खियो और मच्छरो का सवनाश तभी हा सकता है, जब सारे शहर म गन्दगी न हो। और यह थैली-शाही राज्य म होने की बात नही।

ठीक डेढ वप के हाने पर जया ने कितनी ही चीजा के नाम रख लिए थे, जसे गाय-वा, खाना-जबा, बकरी-मा, बिल्ली माँ, मोटर पोपो। अक्षरा मे का, चा, जा, ता, ना, पा, बा, मा बोल सकती थी। उसे घूमने का बहुत शौक था। झट से हमारी अँगुली पकड सडक पर चलने के लिए तैयार हो जाती थी।

मसूरी—२१ माच को कमला की परीक्षा (एम० ए० प्रीवियस) समाप्त हुई और अगले दिन हम मसूरी लौट आए। इस समय महादेव भाई कलकत्ता से आ गए थे। उन्हाने गगा की पढाई म भी सहायता दी।

दिल्ली—२३ माच को फिर दिल्ली के लिए रवाना होना पडा, जहा अगले दिन सवेरे पहुँचा। सनिक विभाग के विदेशी भापा स्कूल म तिब्बती की परीक्षा लेनी थी। सूचना स कुछ ऐसा मालूम हुआ, शायद कलिम्पोग से डा० जाज रोयरिक भी आने वाले है। इसी लाभ से वहाँ गया था। २५ माच का धौलपुर हौस म पब्लिक सर्विस कमीशन के आफिस म गया। डा० जाज रायरिक तो नही, पर उनके अनुज स्वतस्लाव रायरिक आये। वह, शिवायफ, मैं तथा विदेशी भापा स्कूल क सचालक मुकर्जी साहब वहा थे। सैनिक विदेशी भापा स्कूल क लिए रूसी अध्यापकी के उम्मीदवारो को देखना था। तातियाना बोस ही सबसे योग्य साबित हुइ। उनकी मातभापा ही रूसी नही थी, बल्कि रूसी की कवि और लेखिका भी थी। दूसरी तरुणी वाल्न चालने म बहुत अच्छी थी, पर उसका भापा का ज्ञान उतना गम्भीर नही था। सबन तातियाना ही को स्वीकार किया।

२६ माच का हम फिर लौटकर मसूरी आ गए। महादेवजी उसी दिन गए। आनन्दजी अपने दो साथियो के साथ कल आए थे। सयोग था जो मैं आज आ गया, क्याकि अगले दिन वह लौटने वाल थे। सुनकर बडी प्रसन्नता हुई कि "जातक" का हिन्दी अनुवाद भी समाप्त हा गया और आखिरी जिल्द छप रही है। अब ५० के हो गए है। मैंन पहले पहल १९२६ म मेरठ मे उन्ह देखा था। तब से २९ वप हुए। [बुढाप का असर दिखलाई पड रहा

१८ फरवरी को विंध्य सरकार की ओर से देव पुरस्कार के लिए आई पुस्तकों को देखकर अपनी राय दी। यद्यपि पहले सूचना मिली थी कि यदि कोई दूसरी पुस्तक भी नजर मे आए, तो उसके लिए हम लिखें। उस समय तक "मला आचल" को मैंने देखा नही था, नही तो इसम शक नही, मैं उसी को पहला नम्बर देता।

कमला का परीक्षा की तैयारी म अब सारा समय देना चाहिए था। मैंने कहा, कम से कम देहरादून जाने तक दो हफ्ते के लिए कोई नौकरानी रख दी जाए लेकिन उन्ह यह पसन्द नही था—खच बढेगा। हाँ खच तो बढेगा दस प द्रह रुपया, किन्तु वह बच्चे का कपडा धोयगी, उसे खिलाएगी। मेरी एक न मानी।

जया फरवरी के अन्त मे डेढ वष की होने जा रही थी। अब वह क, च, त प, व अक्षरा का बोल सकती थी। टवग और महाप्राण अक्षरा को बोलन म असमथ थी। इन्ह बच्चे बहुत दिनो बाद सीखते हैं। मैं अपन उपन्यास "सप्तसिन्धु" के लिए सामग्री जमा करने म लगा। पढ़न व बाद कितने ही स्थाना से अन्धकार हटता गया। ऋग्वेद म बिखरी सामग्री भारत म आन के तीन शताब्दिया बाद सप्तसिन्धु क आर्यों की कितनी ही बाता को साफ करती जा रही थी। उपन्यास के अभी जल्दी लिखन का सम्भावना नही थी। पर लेख लिख डालना चाहता था।

देहरादून—परीक्षा देन स एक हफ्ता पहले ही जया जता का लिये कमला और हम ६ माच को देहरादून गये। पहले आना चाहते थ, लेकिन हालो के हुडदग का डर था, इसलिए उस मसूरी म ही भुगताकर आए। अब हम जया की देखभाल करनी थी, और कमला का पाठय पुस्तकें पढ़नी। बीच-बीच म प्रा० बृहस्पति शास्त्री, प० हरनारायण मिश्र स सत्सग होता। १६ का प० किशोरीदास वाजपयी भी आ गए। आजकल हिन्दी व्याकरण के लिखन म लगे हुए थ, जिसे नागरी प्रचारिणी सभा अपनी ओर स लिखवा रही थी। उसका बहुत सा भाग वाजपयीजी न लिख भी लिया था जिसका टाइप कापियाँ विशपज्ञा क पास भेजी गई थी। मैं भी देखकर सुझाव द रहा था।

१८ माच तक मौसम गर्मी का मालूम होन लगा। सबरा वाद्दु का

मक्खियो म। गर्मी बढते ही वह आ धमकती। मक्खियो और मच्छरो का सवनाश तभी हो सकता है, जब सारे शहर म गन्दगी न हो। और यह थली-शाही राज्य म होने की बात नही।

ठीक डेढ वष के होने पर जया न कितनी ही चीजो के नाम रख लिए थे, जैसे गाय वा, खाना-जबा, बकरी मा, बिल्ली मां, माटर पोपो। अक्षरो म का, चा, जा, ता, ना, पा, बा, मा बाल सक्ती थी। उसे घूमने का बहुत शौक था। झट से हमारी अँगुली पकड सडक पर चलने के लिए तैयार हो जाती थी।

मसूरी—२१ माच को कमला की परीक्षा (एम० ए० प्रीवियस) समाप्त हुई, और अगले दिन हम मसूरी लौट आए। इस समय महादेव भाई कलकत्ता स आ गए थे। उन्होंने गगा की पढाई मे भी सहायता दी।

दिल्ली—२३ माच को फिर दिल्ली के लिए रवाना होना पडा, जहा अगले दिन सवेरे पहुँचा। सैनिक विभाग के विदेशी भाषा स्कूल म तिब्बती की परीक्षा लेनी थी। सूचना से कुछ ऐसा मालूम हुआ, शायद कलिम्पोग स डा० जाज रोयरिक भी आन वाले है। इसी लोभ से वहाँ गया था। २५ माच को धौलपुर हौस म पब्लिक सर्विस कमीशन के आफिस म गया। डा० जाज रोयरिक तो नही, पर उनके अनुज स्वतस्लाव रोयरिक आये। वह, शिवायफ, मैं तथा विदेशी भाषा स्कूल के सचाल्क मुकर्जी साहब वहा थे। सैनिक विदशी भाषा स्कूल के लिए रूसी अध्यापकी के उम्मीदवारो को देखना था। तातियाना बोस ही सबसे योग्य सावित हुइ। उनकी मातभाषा ही रूसी नही थी, बल्कि रूसी की कवि और लेखिका भी थी। दूसरी तरुणी बोल्न चालने म बहुत अच्छी थी, पर उसका भाषा का ज्ञान उतना गम्भीर नही था। सबने तातियाना ही को स्वीकार किया।

२६ माच का हम फिर लौटकर मसूरी आ गए। महादेवजी उसी दिन गए। आनन्दजी अपने दो साथियो क साथ कल आए थे। सयाग था, जो मैं आज आ गया, क्योंकि अगले दिन वह लौटन वाले थे। सुनकर बडी प्रसन्नता हुई कि "जातक" का हिन्दी अनुवाद भी समाप्त हो गया और आखिरी जिल्द छप रही है। अब ५० के हो गए है। मैंने पहले पहल १६२६ म मेरठ मे उन्ह देखा था। तब से २६ वष हुए। [बुढापे का असर दिखलाई पड रहा

था। पूछ रहे थे—दूसरे किस काम में हाथ लगाऊँ ? मैंने एक-दो सुझाव दिये। उसी दिन मंचू भिक्षु टान्ती ज्डि पो (मंगल हृदय) भी मिले। उनसे मसूरी और शिमला में मुलाकात हो चुकी थी। वह वस्तुतः मंचू थे, लेकिन आजकल शुद्ध मंचू बहुत कम रह गए हैं। उनमें से अधिकांश भाषा, भेस में चीनी बन गए हैं। वैसे जातितः और भाषातः मंचू मंगालो के बहुत नजदीक हैं, और उन्हीं की तरह कितने ही तिब्बत में आकर पढ़ते हैं। मंगल हृदय हमारे पास आना चाहते थे। रसोईघर के ऊपर का ही कमरा रह गया था। हमने कहा, वह हाजिर है। कितने ही दिनों तक वह वहां रहे। फिर उन्हें "आर्टेन" में अनुकूल स्थान मिल गया, इसलिए वह वहां चले गए। उन्होंने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की। हमने कहा, अच्छी बात है। लेकिन, जान पड़ता है, एक उमर के बाद कम से-कम भाषाओं का पढ़ना आदमी के लिए मुश्किल हो जाता, मन उसमें नहीं लगता और मेहनत नहीं होती।

आनन्दजी जब से अपने जन्मस्थान से निकले, तब से फिर नहीं गये थे। गाँव तो उनका अम्बाला जिले के खरड़ तहसील में था, पर, उनके पिता अम्बाला के स्कूल में अध्यापक थे, और आनन्दजी (पूर्व नाम हरिदास) का अधिक समय वहीं बीता। वहीं मेट्रिक पास किया, और कालेज में जाने की जगह वह असहयोग में चले गये। फिर कुछ समय बाद अपनी पढ़ाई लाहौर के कौमी विद्यालय में पूरी की। वह प० बलदेव चौबे—बाद में स्वामी सत्यानन्द—के सहपाठी थे। सहपाठी के निवास पर ही मेरठ में मेरी उनसे पहले-पहल मुलाकात हुई। उस समय क्या मालूम था, हमारी इतनी घनिष्ठता हो जायगी। अब वह अपनी जन्मभूमि देखना चाहते थे। मैंने अनुमोदन किया। एक ही छोटा भाई था, जो पटियाला में कहीं पटवारीगिरी करता था। कुछ कमाया, तो साबुन बनाने का कारबार शुरू किया, पूंजी गँवा बैठी, और अब फिर पटवारी के पटवारी।

मंगल हृदय से मैंने सरहपा के दोहाकोशों के अपने हिन्दी अनुवाद करने में सहायता लेनी चाही। लेकिन, तिब्बती अनुवाद में भी सिद्धों की भाषा अपनी विशेषता रखती है। मंगलहृदय उससे परिचित नहीं थे, इसलिए बहुत सहायता नहीं कर सके। ५ अप्रैल को अपराह्न में चंडीगढ़ के सरकारी कालेज के तीन प्रोफेसर आए। वहां की बातें बतला रहे थे। मालूम हुआ,

चण्डीगढ स्टेशन हिन्दी भाषा क्षेत्र म है। एक छोटा सा सूखा नाला है, वहीं पजाबी और हिन्दी भाषा की सीमा है। हमारे प्रभुआ को भाषा से लेना-देना क्या है? उनकी चले, तो बगाल की राजधानी आसाम मे बनाई जा सकती है। एक इतिहास और सस्कृत के पण्डित थे। उनसे मालूम हुआ, रोपड म हाल मे जो खुदाई हुई है, उसम मटमैले रग के बरतन मिले है जिनको वैदिक-कालीन कहा जाता है। पर, इस तरह के बरतन तो हस्तिनापुर मे भी निकले हैं जो ऋग्वेद के काल के हर्गिज नही है। मैं उत्सुक था ऋग्वेदकालीन बरतना और दूसरी चीजा को देखने के लिए। जो चीजे उस समय से लेकर पीछे तक चली आती थी, उनसे सप्तसिन्धु के आर्यों के ऊपर पूरा प्रकाश नहीं पड सकता।

कमला ने मेरे जन्मदिन को याद दिलाने का निश्चय कर लिया था। ९ अप्रल १९५५ को मेरा ६३वा जन्मदिन था। उस दिन कनल हरिचन्द, लेडली दम्पती, महताजी आए। शीलाजी और डा० सत्यकेतु गुरुकुल कागडी चले गए थे, इसलिए वह अब के नही आए। चार पाच दिना के लिए साथी खाडिल्कर भी आ गए थे, आज चाय के बाद वह चले गय। चाय पान हुआ। डा० हरिचन्द पेन्शन प्राप्त सिविल सजन है उन्होने ही मिस पूसग से "क्लिडेर" खरीदा है। मकान के बारे मे क्या शिकायत हो सकती थी? लेकिन, यहा का एकान्त जीवन उन्हे पसन्द नही आ रहा था। सीजन से पहले आ गए थे, इसलिए एकान्त और भी अधिक था। कहने लग कोई खरीदार हो तो ढूढ लीजिये। उस समय जान पडता था २२ हजार की चीज को कुछ घाटा सहकर भी बच देगे। लेकिन, जब साल भर बिता चुके तो घाटा सहकर बेचने का खयाल छोड दिया। अकेले आदमी हैं अग्रेज पत्नी मर चुकी है। एक पुत्र है, जो भारतीय फौज मे तोपखाने का मेजर है। एक लडकी अग्रेज से ब्याह कर विलायत मे रहती है। इतने बडे बँगले म अकेले कैसे मन लगे? ७० वष के ऊपर के है लेकिन अभी भी स्वस्थ है, घूम फिर लेते है। हम तो ऐसे पडोसी स विशेष लाभ है। कभी अपने ही टहलते हुए पूछने के लिए आ जाते हैं, और कोई भी बात होती है, तो हम उनके यहाँ पहुँच जाते हैं।

१३ अप्रैल को नेपाल से श्री कलानाथ अधिकारी अपने एक दूसरे जन-

गायक जोशी के साथ आए। कलानाथ अच्छी नौकरी को लात मारकर स्वतन्त्र नेपाल में लौट गए थे। एक दजन के करीब का परिवार कभी आर्थिक कठिनाई मे पड़ा हुआ था, देखकर भी दुःख होता था। अधिकारी-जी लोक गीतों के अच्छे गायक हैं। संगीत मे उनके सारे परिवार की रुचि है। लेकिन, शुद्ध जनगीतों की जगह वह अपने बनाये लोक गीतों का गाना ज्यादा पसन्द करते हैं, शुद्ध लोक धुनों की जगह उसमें अपना भी प्रवेश कराना चाहते हैं और इसको वह दोष नहीं समझते। वस्तुतः यदि यह दोष नहीं होता, तो उनका गला बहुत ही मीठा है। वह बहुत सुन्दर गा सकते हैं। तरुण है घूमने फिरने में आलस नहीं है, यदि वह दो चार हजार नेपाली लोक गीतों को जमा कर डालते तो अमर काम होता। पर, उसके महत्त्व को जब खुद समझें तब न। बतला रहे थे, नेपाल की स्थिति पहले से भी बदतर होती जा रही है। यहाँ कुछ दिनों रहकर मसूरी देख दोनों तरुण चले गए।

यहाँ रहते मेरी भारतीय भाषाओं में पुस्तकों के कई अनुवाद हुए। मद्रासीजी ने चार-पाँच पुस्तकें—अधिकतर उपन्यास और कहानियाँ—गुजराती मे अनुवादित और प्रकाशित की। केरल छोटा प्रदेश है, लेकिन वहाँ सबसे अधिक साक्षरता है, इसलिए पुस्तकें भी अधिक निकलती हैं। वहाँ तो कई विद्वानों ने अनुवाद करने की होड़ लगा रखी है। 'वोल्गा से गंगा' का अनुवाद करने की ओर रुचि स्वाभाविक है। अब तो यह भारत की कोई साहित्यिक भाषा नहीं है जिसमें उसका अनुवाद न हुआ हो। असमिया और कन्नड में पुस्तकाकार नहीं छपी, लेकिन वहाँ के पत्रों में उसकी कहानियाँ निकली हैं। मलयालम वालों ने 'विस्मृत यात्री' को सारे चित्रों के साथ छापने की हिम्मत की, इससे मुझे मालूम हो गया कि उनमें पुस्तकों की खपत ज्यादा है। दूसरे [illegible] विद्वानों ने दर्शन दिग्दर्शन का अनुवाद करके छापना शुरू कर दिया। मेरा इसमें हाथ नहीं था। मैं [illegible] था, तीन महीने के भीतर उसके कुछ फार्मों को छपा कर पास भेज दें। अब तक न छापा रहा किया और दूसरे ने अनुमति माँगी, तो मैंने उसे अनुमति दी। [illegible] बाद [illegible] फर्मों को छापकर [illegible] है कि ऐसा क्यों?

२८ अप्रैल को [illegible]

दिन कर्नल चाद ने देखा। उन्होंने कहा, यह भीतर का दर्द नहीं है, ऊपर मसल्स का दर्द है, जो मालिश करने से ठीक हो जाएगा।

१ मई को हरद्वार से सरदार जसवन्तसिंह आए। वह शरणार्थी साहित्यकार हैं। एक छोटा-सा प्रेस चलाते हैं। पर्याय कोश बनाने की ओर उनका ख्याल गया। पहले शायद पंजाबी में बनाना चाहते थे, फिर ख्याल आया, हिन्दी में इसके लिए ज्यादा क्षेत्र है। ऐसे कोश के बनाने के लिए हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि संस्कृत का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। यह कमी जरूर है, लेकिन उसकी पूर्ति सरदार अपनी धुन और संग्रह के परिश्रम से कर लेते हैं। आखिर रूसियों में भी रूसी हिन्दी कोश बनाने के लिए यह कमी थी। पर मैं समझता हूं उनका कोश अच्छा होगा। वह अपनी कमियों को दूसरों की सहायता से पूरा कर रहे हैं। सरदार के इस काम में भी मेरी दिलचस्पी थी और जब कभी भी वह मेरी सहायता चाहते, मैं उसे देने के लिए तैयार रहता।

"हर्न क्लिफ" बेचने का हमने निश्चय कर लिया था, और मई के महीने में 'स्टेटस मैन' में एक विज्ञापन भी निकाल दिया। ८-१० ग्राहकों के पत्र आये, लेकिन मकान बिकने की नौबत नहीं आई। आधे दाम पर भी फेंकने के लिए तैयार थे, देखें कौन आगे बढ़ता है? उस समय मेरा ख्याल यही था कि मसूरी में आठ महीना किराये पर रहेंगे और चार महीने के लिए देहरादून चले जाएँगे। पीछे कमला की सलाह हुई अच्छा होगा कलिम्पोंग जाना। वहाँ ४००० फुट की ऊँचाई होने से जाड़े गर्मी में अलग जगह ढूंढने की जरूरत नहीं होगी। कमला के पीहर का ही प्रेम इसमें कारण नहीं है, बल्कि वहाँ वह काम कर सकती हैं। फिर लम्बे अर्से तक तो उन्हें ही बच्चों को सँभालना है।

९ मई को डा० सत्यनारायणसिंह का सामान ऊपर 'हर्न हिल' में जाते देखा। न उन्हें पता था, मैं पास के बँगले में रहता हूँ, और न मुझे मालूम था कि वह ऊपर के बँगले में अपनी पत्नी और पुत्री के साथ आ रहे हैं। उनके विवाह की बात भी मुझे मालूम नहीं थी। डा० सत्यनारायण से मेरा परिचय बहुत पुराना है, बल्कि थोड़ी सी अतिशयोक्ति करते कहा जा सकता है कि उस समय से जबकि उनके दूध के दाँत टूटे नहीं थे। उनके अग्रज बाबू

रामविनाद सिंह ना असहयोग के जमाने म छपरा मे हमारे सहकारी थे। पहले-पहल मैंने तभी देखा था, जबकि बारीक सूत कातने म उन्हान किसी होड मे विजय प्राप्त की थी। उस समय किसको मालूम था, यह बालक भारी घुमक्कड बनेगा, एक के बाद एक भाषाओ को फडफड सीखता जाएगा। मैंने भी भाषाएँ सीखी है, पर मै अपने को भाषा सीखने म बहुत चतुर नही मानता। मैं भाषा भाषा के लिए नही सीखता, बल्कि उससे काम लेने के लिए। फिर वह काम भर की ही रह जाती है। सत्यनारायणजी यूरोप की कई भाषाएँ—जिनम रूसी भी है—फर फर बोलते है। जब उनको मुक्त होकर विचरण करने का मौका मिलता है, तो वह अपने रूप म दिखाई पडते है। 'आवारा' ने यह क्या किया? यह पत्नी और परिवार कैसा? पर अब समय से ही सही, उनके बाल बहुत सफेद थे। यद्यपि इसका मतलब यह नही कि वह बुढापे म दाखिल हो गये थे। इधर उन्होने पार्लियामेट मे कम्युनिस्टो के ऊपर जबदस्त प्रहार किये। मै उसकी याद भी दिलाना नही चाहता था, लेकिन वह स्वय समझते थे, और कुछ व्याख्या भी करना चाहते थे। लेकिन, उससे क्या होता है। किसी विषय मे हम मतभेद घोर हो सकते हैं, लेकिन उसके कारण हम अपने पुराने सम्बन्धो को थोडे ही छोड सकते है। जब उन्हे सोवियत जाने का उसी साल वीजा मि गया, तो बडा खुशी से कह रहे थे—'बाबा, मुझे सोवियत सरकारने वीज दे दिया। मैं वहाँ कही जाकर घूम सकता हूँ, और उसके बारे म लि सकता हूँ।" वह गए और हाल ही म उनके कई लेख पत्रो म निकले, जो अच्छे थे।

मसूरी म नौकरो की हमेशा दिक्कत रही। कुछ तो अच्छे नही मिल, इसलिए हटाना पडा। दो ने चोरी की। कुछ अच्छे मिले तो हमारी गलती से रह न सके। १० मई को हमने महेश को नौकर रखा। शायद यह आखिर तक मसूरी म हमारे साथ रहे। कुछ दोष हैं, प्याले गिलास बहुत तोडता है, काम करते ऊघता रहता है। रमाइया भी उतना अच्छा नही है पर अब हम जानते हैं कि सर्वतोभद्र नौकर नही मिल सकता इसलिए अपने ऊपर अंकुश रखने की जरूरत है।

जैता भी आगे खुले हाथ पर नो दो महीने तक किसी चीज का दाम

नही सकता था, फिर वह देखने लगा। चौथे महीन म पहुँचने पर वह अपने आस-पास की चीजा को बहुत ध्यान से देखता। जया से १६ दिन बडी सत्यनारायणजी की पुत्री मजू थी। दोनो आपस म अक्सर मिला करती थी। पत्नी लखनऊ मे पैदा हुई बगाली तरुणी थी। बर्लिन मे भारतीय दूतावास मे काम कर रही थी, वही 'आवारे' से भेंट हुई, और दोना बन्धन मे बँध गये। सत्यनारायणजी बरावर आते जात रहते थे। उनकी पत्नी सिफ एक बार आईं। मजू रोज आती। कुछ बातो म जया उससे आगे बढी थी और कुछ बातो मे मजू। मजू के सिर पर बडे बडे बाल थे, जिन्ह मा ने बाटकर रखा था। जया क छोटे छोटे बाल थे। जेता के पैदा होने बाल का नाम नहीं था, और १४ महीन बाद भी अभी जरा ही जरा दिखाई पडता था।

मई मे सैलानिया का सीजन शुरू हा गया था। बहुत से मित्र और परिचित आने लगे थे। १५ मई को डा० भगवतशरण उपाध्याय अपने कनिष्ठ पुत्र के साथ आये। देर तक बातें होती रही। जिस आयु मे मै उनके पुत्र को देख रहा था, किसी समय म उस आयु म पिता को देखा था। भगवतशरण का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत गम्भीर है, सबसे बडी बात यह है कि वह अपने किसी बात को लिखते वक्त शब्दो का मूल्य जानत हुए इस्तेमाल करते हैं। उनके लिखने की शली बडी रोचक होती है। आम इतिहासकारा की तरह उसमे रूपापन नही होता। आखिर वह कथाकार और सफल निबन्धकार भी तो है।

अब रविवार के दिन घर मेहमाना से भर जाता। अपराह्न की चाय मे तो जरूर दस-बारह मित्र आये रहते। अच्छी चहल पहल हा जाती।

पहली यात्रा (१७२३ ३७) मे जब मैं सिंहल म था, तो वहा के विद्यार्थिया का पढाने क लिए मैंन पाच सस्कृत पुस्तके लिखी थी, जिनम चार भाषा और पाँचवी छन्द अलकार सिखलाने के लिए थी। वे वही सिंहली भाषा के साथ सिंहली अक्षरो मे छपी थी। ख्याल आया कि उन्ह हिन्दी के साथ नई तरह से लिख कर प्रकाशित किया जाय, तो अच्छा हो। इधर जब कभी कोई मुझस सस्कृत पढने की कोशिश करता, तब और भी इस ओर ख्याल जाता। मगलहृदयजी को पढात वक्त यह ख्याल आया और मैंने निश्चय किया कि उसे सशोधित सवर्धित करके 'सस्कृत पाठमाला' के रूप

मे तैयार करूँगा। २६ मई को मैंने स्वय उसे टाइपराइटर पर लिखना शुरू किया। पाचो पुस्तकें कई हफ्ता बाद तैयार हुइ। इसमे पाठो को सरल रीति से देने का उपक्रम था। जिसम भाषा की कठिनाइया धीरे धीरे सामने आइ इसकी ओर ध्यान रखा। साथ ही पाठो के रूप म सस्कृत साहित्य क कितने ही ग्रथा से उद्धरण भी दिय। इसी दौरान म ख्याल आया, "सस्कृत काव्यधारा को किसी ने हाथ मे नही लिया, क्यो न मैं ही" उसे लिख डालू। फिर उसमे भी हाथ लगा कर पूरा किया। १९५५ क आरम्भ म भी मुझे ख्याल नही आया था कि मैं सस्कृत के सम्बन्ध म इन पुस्तको को लिखूगा।

२८ मई का मेरे चाचा बसी पाडे के पुत्र चन्दर आए। बरस डेढ बरस की उमर म मैने उन्ह कितनी ही बार खिलाया था। अब उनके बाल सफेद हो गए थे। मेरे दादा जानकी पाडे घर के सरदार थे। उन्हाने अपने तीना चचेरे भाइयो को अपने साथ मिलाकर रखा, और उनके मरने के बाद बल्कि मरे जन्म के भी बाद ही अलगा बिलगी हुई। बसी काका उन्ही तीन घरो मे स एक के सरदार थे। उनके छाटे भाई किना (कृष्ण) मेरे लगाटिया यार थे। च दर से मालूम हुआ कि किना का पता नही कहा चले गए। बसी काका मर चुके हैं। चन्दर घर की हालत बतला रहे थे। कनैला मे जोती हुई जमीन से भी अधिक परती जमीन थी, जिसे आबाद करके अब गाव के ब्राह्मण लोग अच्छी हालत म हो गए थे। समय रहे थ, इसी तरह कम से कम दो तीन पीढी तक तो निद्वन्द्व होकर चैन की बशी बजती रहेगी। लेकिन, जमाना उनके इन मन्सूबो पर हँस रहा है, इसका उन्हे क्या पता था? कनला मे बडी जाति से छाटी जाति की सख्या कुछ अधिक है। पहले जमाने म छोटी जाति मे छून-अछूत का भेद बहुत बाधक होता था। लेकिन, छोटी जाति वाला ने देखा, गरीबी और अधिकार वचित हाने मे हम सभी एक साथ है। गाव के मालिक ब्राह्मण है, खेत उनके हाथ म हैं। हम उनक हरवाहे चरवाहे होकर ही अब तक जीत आए हैं। अब समय हमारे पक्ष म है। उनम से कितना को थोडी-बहुत जमीन भी मिल गई, वह भूमिदार बन गए हैं, लेकिन अधिकाश अब भी बेखेत के मजूर हैं। छाटी जाति म अहीर, भर चमार, दर्जी, चूडीहार, मडिहार तथा कहार हैं। पचायत के चुनाव म

सरपच एक भरा तरुण चुना गया। मेरे बचपन म उनम कभी कोई पढे-लिखेगा इसकी सम्भावना भी नही थी पर अब कई पढ रहे ह। च दर का अपना खेत लेखपाल न किसी छोटी जात के आदमी के नाम लिख दिया था। हो सकता है, च दर न उसे जोतने को दे रखा हो, लेकिन नही चाहते थे कि खेत पर उसका हक हो। मुकद्दमे म सफल नही हुए। कह रहे थे, आप सिफारिश कर दें कि लेखपाल वहा से बदल दिया जाए। म भला कसे सिफारिश कर सकता था ? उन्होंने हलवाहे को अपने अच्छे खेत म से चार-पाच बिसवा दे रखा था। ब्राह्मण ठहरे, अभी हल जोतने से परहेज करत थे, इसलिए हलवाहे बिना खेती नही हो सकती थी। इस साल अपने खेत मे ऊख बो रहे थे। हलवाह के टुकडे को भी साथ म पानी से सीच दिया। बोन के लिए ऊख का भी काटकर रात को पानी मे डाल दिया। सवेरे ऊख बोने के समय हलवाह ने आने से इन्कार कर दिया। गाव भर के जितन भी हल जोतने वाली जातिया थी, सबके हाथ पैर पडे चिरौरी विनती की, लेकिन कोई अपने वग के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नही हुआ। यदि आज खेत नही बोया जाता, तो उसम दिया पानी बेकार हो जाता, और बोने के लिए भिगोई ऊख भी खराब हो जाती है। गाव भर के ब्राह्मणो ने समझा, आज तो यह बला चन्दर के माथे है कल हमारे मत्थे भी आएगी। अपन तात्कालिक वर और मनमुटाव को भूलकर सब लोग चन्दर के खेत पर पहुँचे। सब ने हल चलाने की कोशिश का। लेकिन, एक दिन म हल चलाना थाडे ही आता है। सभी असफल हुए पर एक नौजवान ने किसी हल चलाने मे सफलता पाई। खेत बोया गया। चन्दर हम मे पूछ रहे थे—'क्या करना चाहिए ?" मैंने कहा—"ससार का चक्का उलटा नहीं घुमाया जा सकता। पुरान दिनो को भूल जाओ। क्या सब पुरानी बाते तुम्हारे यहाँ चल रही है ? उन्होन कहा—' हल जोतने के लिए नियम का तो हमारे सारे गाव ने तोड दिया। पुराना समय होता, तो इसी पर सारा गाँव रोटी बेटी नही कर सकता था। लेकिन अब सबक घर म बेसन्तर देवता आए है, इसलिए कोई किसी के ऊपर अँगुली नही उठा सकता।

पीछे उसी इलाके क एम० एल० ए० बाबू कालिकाप्रसाद सिंह भी कह रहे थे कि हमार पूर्वी जिलो मे बडी छोटी जातिया म जबदस्त अपापिन

युद्ध—मौन युद्ध कह लीजिए—छिड़ा हुआ है, मालूम नहीं कब वह घोषित युद्ध मे परिणत हो जाए। दूसरा समय होता, तो बड़ी जातवाले डण्डे का हाथ दिखलाते, लेकिन अब तो प्रतिद्वन्द्विया के पास अधिक डण्डे और अधिक हिम्मत है। इस युद्ध का कहाँ अन्त होगा? अन्त वही होगा, जबकि अधिकारवंचित भी अपने अधिकारो को पा जाएगे। भारत म यह भेद नहीं रह सकता। चन्दर ने यह भी बतलाया कि अब जाति की दूसरी मर्यादाएँ भी टूट रही हैं। उनके एक चचा ने विधवा विवाह कर लिया है। उनके पुत्र अच्छे कमा खा रहे है। एक दूर के चचा की बात बतला रहे थे, उसने चमार की लडकी अपने घर म डाल ली है। ऐसी और भी बाते वही बतला रहा है कि सब एक वर्ण होने जा रहा है। बस एक दो पीढिया की देर है।

तो क्या किया जाए?—चन्दर ने पूछा।

—सारे गाँव के सुख से ही अब एक घर को भी सुख मिल सकता है। उस दिन ऊख बोने के वक्त तुमने देख ही लिया कि सबका सहयोग न होता, तो काम बरबाद हो जाता। सारा गाँव सहयोगी खेती करे, तभी सिरदर्द हट सकता है।

—यह तो सम्भव नहीं मालूम होता। किसी के पास ज्यादा खेत है, किसी के पास कम। पुराने जमाने से यही प्रथा चली आई है कि एक घर का दो और दो का चार घर बना।

—पहले एक खेत का दो और दो का चार हुआ करता था। अब उसे उलट तौर से करना होगा।

—शायद हम अपने चारो घरो नही तो तीन घर का इकट्ठा करने म सफल हो।

मैंने कहा—चार घर का इकट्ठा करके तुम अपने सिरदर्द को तत्काल के लिए कम कर सकते हो। और मुसीबत देखेंगे, तो तुम्हारी पट्टी के सभी घर इकट्ठे हो जाएँगे। यह भी हो सकता है, गाँव के तीनों पट्टी वाले इस शर्त पर इकट्ठा खेती करने के लिए राजी हो जाएगे कि अपने खेत के रकबे पर भी उन्हें दो-तीन मन प्रति बीघा अनाज अलग से दिया जाय। पर, यदि गाँव के सभी ब्राह्मण ऐसा करने म सफल हुए, तो इसका फल अब्राह्मणों के ऊपर क्या होगा? क्या वह काम और भूमि से वंचित होकर चुप रहेंगे? पट

आदमी से क्या-क्या नही करवाता ? अभी जो युद्ध की आग भीतर ही भीतर सुलग रही है वह भभक उठेगी। तुम्हारे लिए एक ही रास्ता है कि देर या सबेर सारे गाँव के खेतो को इकट्ठा कर दो। छोटी बडी जात सबको उसमे शामिल करो। हाँ जिसका जितना खेत है उस पर भी थोडा-सा अनाज दे दो, बाकी को हरेक परिवार के काम के अनुसार बाट दो। मै जानता था, यह अभी दूर की बात है। पर, आदमी को समय स्वय दूर की जगहो पर पहुँचा देता है। उस समय वह असभव नही रह जाता।

१ जून को चन्दर गए। चन्दर ने थोडी सस्कृत पढी है। बहुत वर्षों पहले बनारस मे मिले थे। मैंने उनके लिए एक पाठशाला मे सिफारिश कर दी थी। ज्योतिष काम लायक पढे है लेकिन हमारे गाव के ब्राह्मणो को जजमानी का कोइ काम नही है।

आचार्य गोवर्धन की बात सोलहो आना पाव रत्ती सच है। दाम्पत्य जीवन मे अकारण खटपट हो ही जाती है। हमारे घर मे कभी कभी हो जाती, और दानो ओर दिमाग का पारा बहुत ऊँचा चढ जाता। इस समय अपत्य का मूल्य मालूम होता। सचमुच ही यदि सन्तान न हो तो दाम्पत्य सम्बन्ध हिमबिन्दु ही नही, कभी-कभी उबाल बिन्दु पर पहुँचकर महान् विस्फोट पैदा कर दे।

हमे घर के भीतर ही देखना नही था। बन्धु मित्र आते रहते थे। कुछ दिनो के लिए गायत्री देवी अपने पति के साथ आइ। पति सिहल भिक्षु से अब गृहस्थ बने थे। अगले दिन प० जगन्नाथ उपाध्याय श्री श्यामनारायण पाडे के साथ आए। उपाध्यायजी बनारस सस्कृत कालेज के दर्शन के अध्यापक हैं, और श्यामनारायणजी करैला के पास गाजीपुर जिले मे मुडकुडा के इण्टर कालेज मे अध्यापक। वह भी शास्त्री तक सस्कृत पढे थे। दोनो एक महीने यहा रहे। रसोईघर के ऊपर का कमरा ही बाकी था और उसमे वे बहुत आराम से रहे। उपाध्यायजी तरुण हैं, बौद्ध दर्शन उनके आचार्य परीक्षा का विषय रहा, और अब भी अध्ययन मे तत्पर रहते है। अभी उनका समय था, यदि तिब्बती भाषा पढ लेते, तो बहुत काम कर सकते थे। अन्त मे जब उनकी इच्छा हुई, तो मैंने एक दो हफ्ते इतना पढा दिया कि जिससे वे आगे बढ सकते थे। मेरी यह हर्गिज इच्छा नही थी कि जब-

पूछने पर उससे बतलाया—पाचा । उसे उठाकर लाई। अगर धाबिन न मिली होती तो मालूम नहीं यह साहस यात्रा कहा खतम होती ?

१८ जून का अलीगढ युनिवर्सिटी के अरबी क अध्यापक युरोपियन जैसे गोरे जलमामून साहब आए । ६५ वष के वद्ध हैं। सिरिया जन्मस्थान है। ३१ वष से वह भारत म है और अब भारत के नागरिक हा गये ह । रूसी जमन, फ्रेंच, अग्रेजी, तुर्की और अरबी जानत है। अरबी ता खर उनकी मातृभाषा ही है। उदार विचार के और सूफी मत के मानने वाले है। कितनी देर तक उनसे बातचीत हुई । उसके बाद एक दिन वह आये ।

१९ जून का श्री जयगोपाल और श्री शिवगोपाल मिश्र आये । जयगोपालजी निरालाजी के पटट शिष्य और कवि हैं। कवि होने के लिए आवश्यक योग्यताओ की उनम कमी नही है । उनके अनुज रसायन शास्त्र के एक अच्छे छात्र है। डी० फिल० किया है उनसे बहुत आशा है । पर वह भी अपने अग्रज की तरह साहित्य म जरूरत से अधिक समय दे रहे है, ये अच्छे लक्षण नहीं हैं ।

जून म नेहरू तीन हफ्ते के लिए रूस यात्रा पर गये। वहा उनका हर जगह भव्य स्वागत हुआ, जिसकी खबरें हमारे पत्रो और मास्को रेडियो से मालूम हो रही थी। इस यात्रा से हमार दोनो देश एक-दूसरे के बहुत नजदीक आएगे, यह जानकर प्रसन्नता हुई ।

२८ जून के आनवाला म आजमगढ के वकील श्री पद्मनाथ सिंह एम० एल० ए० भी थे । कनला उनके निर्वाचन क्षत्र म पडता है, अर्थात् उनके वोटरा म हमारे घरवाले भी शामिल है । वह भी चन्दर की बात का समर्थन कर रह थे और कह रहे थे, कि हमारे जिला म बडी छोटी जातियो का सघष बहुत उग्र है ।

१ जुलाई को श्री मुकुन्दलालजी आए । हर सीजन म उनके दशन की उत्कण्ठा रहती है। मैंने पेशावर काण्ड के वीर चन्द्रसिंह गढवाली की जीवनी लिखने का निश्चय किया था । मुकुन्दलालजी ने उस मुकद्दमे मे गढवालीजी की पैरवी की थी। मैंन उनके पास लिखा था। वे मुकद्दमे की फाइल मुझे दे गय जिसस मुझे काफी सहायता मिली ।

गगा पहले तो मैट्रिक म फेल मालूम हुई। एकाएक नेपाल की जगह

हिन्दी माध्यम लेकर परीक्षा दी थी और सो भी निजी तौर से पढ कर। २ जुलाई का पास होनेवाले छात्रो की जो सूची मिली, उससे मालूम हुआ कि पास हो गई। घर भर को बडी प्रसन्नता हुई। उसकी मसूरी यात्रा सफल रही। उसके लिए हम दोनो चाहते थे कि दिल्ली मे नर्सिग कालेज मे दाखिल हो जाए। दाखिले का समय बीत गया था, लेकिन बीच मे कोई लडकी चली गई थी और मित्रो के प्रभाव के कारण वह स्थान मिल गया था। पर, गगा को नर्स नही अध्यापिका बनना पसन्द था इसलिए हमने वह ख्याल छोड दिया, और अन्त मे वह ट्रेनिग पाने के लिए कलिम्पोग चली गई।

सीजन मे ठाकुरानी गुलाबकुमारी "आर्टेन" मे आकर रहने लगी थी। उनकी नौकरानी लडकी कान्ति अक्सर जया को अपने साथ खेलने के लिए ले जाया करती थी। बच्चो को खेलना पसन्द है, और वह उनके लिए लाभदायक भी है। हमारे यहाँ उसकी उतनी सुविधा नही थी। बचारी जब खेलना चाहती है, तो झिडकी खानी पडती है, और कभी-कभी अम्मा हलका सा हाथ भी लगा देती, जिससे वह कान्ति के साथ जाने के लिए तैयार रहती। एक वर्ष दस महीने की भी अभी नही हुई थी। एक दिन आते वक्त उसने कान्ति से कहा—"कल आना"। अब वह कल का अर्थ भी समझने लग गई थी, और असली मनसा तो यह थी ही कि हम आकर तुम्हारे साथ खेलेगे।

अब के साल जुलाई के पहले हफ्ते मे एक बार वर्षा हुई, फिर रुक गई। लोगो के मन मे तरह-तरह की आशका होने लगी। इस वर्षा से चारो ओर हरियाली दिखाई पडती थी।

डा० बद्रीनाथप्रसाद के पुत्र श्री प्रकाशचन्द्र के ब्याह का निमन्त्रण आया। लखनऊ मे ब्याह हो जा रहा था। कन्या पजाबी और उसमे भी सिक्ख थी। तरुण पुरानी मेडो को तोडगे, जिसकी देश को बडी आवश्यकता है। डा० प्रसाद की बडी लडकी का ही ब्याह अपनी जातियो मे हुआ। लडके ने पजाबी लडकी से ब्याह किया, तो उसकी छोटी बहिन ने पजाबी लडके से ब्याह कर के कर्ज चुका दिया।

कनैला बहुत पिछडा हुआ, शहर तथा रलवे से बहुत दूर बसा गाँव था।

लेकिन, आज ऐसी दखी जाती भूमि हमेशा एसी रही हो, यह बात नही। हमारे काशी कौशल जनपद म मनुष्य का इतिहास बहुत पुराना है। मैंन सुन रखा था, हमारे गाव की वडी पोखरी म बडी-बडी ईंटें निकल्ती हैं। उस दिन च द्र ने बतलाया, आज की जमीन स कुछ हाथ नीचे दूर तक इन्ही ईंटा से उस पोखरी का घाट बँधा है। इधर लाग गाडियो म खोदकर ले जाया करते थे। श्यामलाल को लिखने पर ता उ होंने बतलाया कि इटो की लम्बाई १६ ८ इच, चौडाई ८ २ इच, मोटाई २ २ इच है। यह मौय युग-काल की इटें हैं, इसमे स देह नही। श्री पद्मनाथजी न भी अपनी ओर के गावा म पुरानी जगहो का पता बताया था। वडी पोखरी का इन बडी ईंटो ने दिमाग म खलबली मचाई, और मैंन मौय-काल के सामन्त की "बडी रानी" क नाम से एक कहानी लिख डाली। यह भी प्रकट किया कि पुरान समय म मँगई नदी व्यापार-माग का काम देती थी। उसके किनारे मीला तक फला सिसवा का ध्वसावशेप एक सामन्त की राजधानी थी। मगई के दोनो तरफ राजधानी और उसके उपनगर फैले हुए थे। कनैला उसी के भीतर था। और शायद उसका कनहट उपनाम पुराना है। श्याम-नारायणजी न सिसवा स चार कोस पूव मगई के किनारे अवस्थित ध्वसाव-शेपा स पचीसा पचमाक सिक्को की छाप भेजे, जिसन सिद्ध कर दिया कि मगाई-उपत्यका मौय-काल म एक समृद्ध उपत्यका थी।

१५ अगस्त को पोर्तुगालिया के दासता म पडे गोआ के मुक्ति आन्दोलन ने सत्याग्रह का रूप लिया। फरिस्त पोर्तुगाल स और आशा क्या की जा सकती थी? ३१ सत्याग्रहिया को पोर्तुगालियो न भून दिया, और कितन ही घायल किय। सत्याग्रह का असर उस पर पड सकता है, जहाँ कुछ शिष्टता, सस्कृत और जनमत का आदर हो। पार्तुगाल म सालाजार की निरकुशता बीसियो वप स चल रही है, जिसने अपने ही आदमियो के खून से हाथ रँगन म आनाकानी नही की, वह भारतीया का कैसे क्षमा कर सकता था? फिर उसकी पीठ पर अमेरिका और इग्लैड के तानाशाह हैं। यद्यपि अमेरिकन थैलीशाहा न खुलकर बहुत पीछे कहा, गोआ पार्तुगाल का प्रदेश है पर उस वक्त भी यह बात किसी से छिपी नही थी कि अमेरिका का क्या रुख है। पोर्तुगाल और स्पेन की तानाशाही स अमेरिका को क्या इतना

प्रेम है ? यह आकस्मिक बात नही है। अमेरिका मे खुद जबदस्त थलीशाही की तानाशाही है। इसलिए उसे कम्युनिज्म से भय लगता है, और दुनिया-भर म दूसरो का भी डराता फिरता है—"कम्युनिज्म से होशियार रहो"। लेकिन, उसे इस पर पूरा विश्वास नही है कि गाढे म लोग उसके काम आएगे। यह कोरिया म देखा गया, वियतनाम मे देखा गया। जहाँ की जनता को फ्रेको और सालाजार जसे तानाशाहो ने कुचल दिया है, उस देश को अमरिका अपना गाढा मित्र मानता है। भारत के थैलीशाह तो अमेरिका की जय मनात ही रहते है, यहा के प्रभुओ मे भी एक प्रभावशाली दल है, जो अमेरिका के हाथ मे देश को बेचने के लिए तैयार है। उनका सबसे बडा स्तम्भ उठ गया और नेहरू उनके साथ नही, इसलिए हमारे थैलीशाह दिल मसासकर रह जाते है। आज यदि गोआ परतन्त्र है, तो पोर्तुगाल क कारण नही बल्कि अमेरिका के कारण। इसम कोई सन्देह नही। आज पाकिस्तानी हर साल पचासो जगह हमारी सीमाओ के भीतर घुसकर गालियाँ चलाते हैं, उसका कारण भी अमरिका है। अमेरिका कम्युनिज्म के खिलाफ पाकिस्तान का हथियारबन्द करन की बात कहता है। आज का कम्युनिज्म ३८ वष पहले का कम्युनिज्म नही ह कि निबल की जारू सारे गाँव की भाभी हो। यदि कम्युनिज्म न हमला किया, तो पाकिस्तान क तीसमार खाँ एक फूँक मे उड जाएँगे। पाकिस्तान को अमेरिका जो नये नय हथियार दे रहा है वह हमारे खिलाफ अभी भी इस्तेमाल हो रहे हैं और आग भी होगे, यह किसी से छिपी बात नही है। डलेस या आइजनहावर छिपकर शिकार नही कर सकते। भारत जानता है, मुह म राम बगल म छुरी रख कर कोई भगत नही बन सकता।

हमारे पडासी जान लेडलो न डेरी खोलकर उस जमा लिया है। सीजन के वक्त सारी मसूरी म उनका दूध जाता था। अपनी भी दस बारह गायें और दो-तीन भसें ह, लकिन इतन दूध स क्या बनता ? गाँववालो से जाकर दूध लेते उस कोठियो म भेजत हैं। जाडो म कोई काम नहीं रहता, इसलिए बाहर के दूध को लेकर मशीन स क्रीम बनात, क्रीम तोल कर हा दाम दते हैं। इसम पानी डालन स कोई फायदा नही होता। क्रीम स बनाया घी शुद्ध होता है, लाग उसे चाव स लेते। पिछले जाडो म उन्होंने ४० ५०

टिन घी बना डाला। अबकी सीजन मे उसकी बिक्री बहुत कम हुई, इसलिए कई टिन बच रहे। दिखाने पर बनिया ने कहा—"इसका तो स्वाद बिगड गया है।" मैंने तो स्वाद बिगडा नही देखा। अब वह सेर पीछे चार आना आठ आना घाटा सहकर बेच रहे थे, चाहते थे कि किसी तरह जल्दी निकल जाए। इधर जब लोगो ने देखा कि "हन लाज" डेरी जम गई है, तो प्रतियोगिता करने वाले भी खडे हो गये। क्रीम बनानेवाली मशीन खरीद कर एक दो ने गावो मे जाकर दूध लेना शुरू किया। किन्ही ने सीजन के वक्त डेरी खोली, लेकिन उससे लेडली को ज्यादा नुक्सान नही हो सकता था, क्योकि "हन लाज" के शुद्ध दूध की धाक जम चुकी थी।

शिमला यात्रा से कबाडियो से एक पुरानी पुस्तक लाए थे जिसमे ब्रिटिश साम्राज्य के वीरो की जीवनिया आकडो के साथ बडे दिलचस्प ढग से दी गई थी इसमे १७५७ से १८५७ ई० तक अग्रेजो ने किस तरह अपने प्रभुत्व का विस्तार किया, और हमारी कमजोरियो से लाभ उठाया, इसका वर्णन था। मैंने २२ अगस्त से उसका अनुवाद करना शुरू करके कुछ दिनो बाद खतम कर दिया।

भैया और भाभीजी अबकी बहुत पीछे अगस्त मे आए। आशा थी डेढ-दो महीना तो जरूर रहेंगे, लेकिन तार आया, अमृतसर के मकान की छत गिर गई इसलिए वह २३ अगस्त को यहा से चल दिए। कुछ ही दिन मे भाभीजी भी चली गईं। छत की कडियाँ चीड की थी। बीस पच्चीस वर्ष हो गए थे, चीड की इससे अधिक क्या आयु हो सकती थी? ऊपरी बैठक के कमरे की छत गिरी और नीचे की छत को भी लिये दिये नीचे चली गई, फर्नीचर, शीशे, तस्वीरें जो कुछ भी कमरे मे थे, सब चूर चूर हो गए।

हमारा पितृग्राम कनैला अपने गर्भ मे मौर्य शुगकालीन अवशेषो को ही छिपाये हुए नही है बल्कि आदिम मुस्लिम काल के भी चिह्न वहाँ मौजूद है। सैयद बाबा की कोट और उसके अत्याचारो की कितनी ही कथाएँ मैंने भी वृद्धो के मुह से सुनी थी। हमारे गाव के सारे चुडीहारे और दर्जी मुसलमान शायद उसी समय के परिचायक हैं। ४ सितम्बर को मैंने 'सैयद बाबा' कहानी लिख डाली। ऐसा दिखाई पडने लगा, कनैला पर और ऐतिहासिक

कहानियाँ लिखी जा सकती है। 'कनला की कथा' का बीज मन म पड गया।

'वोल्गा से गगा' का बँगला अनुवाद हाल म प्रकाशित हुआ था। आज भारत की सभी भापाओ म इस पुस्तक का अनुवाद है, लेकिन जसा कला आवरण पृष्ठ बँगला का है, वैसा किसी का नही। एक पत्रिका 'होमशिखा' म किसी ने उसकी आलोचना करते गुण दोप तो दिखाया ही, लेकिन साथ ही यह भी कह डाला कि यह भारतीय सस्कृति पर जबदस्त प्रहार है, इस लिए सरकार को चाहिए कि इसका प्रचार ब द कर दे। हिन्दी म जब पहले पहल पुस्तक निकली थी, तो बहुतो ने वावेला मचाया था, लेकिन शायद किसी ने इतनी दूर तक जाने की जरूरत नही समझी थी जितना कि यह बँगला के समालोचक। भिन्न भि न काल मे हमारे खान पान, वेप-भूपा और रीति रवाज मे जबदस्त परिवतन हुए, जिनकी गवाही हमारी पुरानी पुस्तके और पुरातात्विक सामग्री देती है। भारतीय सस्कृति के प्रति किसी से कम मेरे हृदय म प्रेम नही है। सच पूछिए तो औरो का प्रेम दिखावे का है। उनके लिए ईश्वर, धम, वेदान्त योग, टाटके टोने आदि अनेक आदर स मान की चीजे हैं, जिनके सामने भारतीय सस्कृति गौण पड जाती है। मेरे लिए तो वही सब कुछ है। उसका बदलता रहना दोप नही गुण है। वह अब भी बदल रही है, और आगे भी उसके रास्ते को कोई रोक नही सकता। उस लेखक को पढकर मैंने सोचा कि सप्तसि धु' उप न्यास लिखने स पहले उसकी मूल सामग्री के आधार पर लेख लिखने का निश्चय ठीक है। समालोचक पहले उस पर आक्षेप करें, तब उ ह उप यास पर कलम दौडाने का हक होगा।

इस काल के कामो मे बडे भाई च द्रसिह गढवाली की जीवनी लिखना भी शामिल था। मैंने ७ सितम्बर से उसम हाथ लगा दिया। बडे भाई ने अपनी जीवनी पहले स्वय लिखी थी, जिसे सुधार कर किसी ने १९३५ तक पहुँचाया था। मैंने बडे भाई को लिख दिया था कि इसके लिए आपको यहाँ आना पडेगा।

दिल्ली—विदेशी भापा स्कूल म तिब्बती की परीक्षा लेन के लिए बुलावा था। और भी कामो को देखकर मैंने जाना स्वीकार कर लिया,

और २४ सितम्बर के दोपहर को देहरादून पहुच गया। प्रो० रूपनारायण मिश्र के पैर मे भारी चोट आ गई थी। पिता की तरह इन्हें भी शिकार का शौक था, दरजनो बडे बडे बाघ खुद मारे और उनसे भी अधिक उन राजा साहब से मरवाये, जिनके सेक्रेटरी थे। यह अच्छा ही किया कि जमीदारी उठने से पहले नौकरी छोडकर अध्यापन शुरू कर दिया। शिकार का शौक था, जब भी छुट्टी मिलती सिवालिक के जगलो म जाते। और छुट्टियो मे तो दूर दूर की दौड मारते। पिछले साल की गर्मियो मे वह महाराज के युवराज के साथ कुल्लू म लाल भालू के शिकार के लिए गये थे। इस साल गगोत्री की तरफ जाने की इच्छा थी। दुरारोह पहाडियो म नही धोखा हुआ, और यहाँ देहरादून शहर म जीप से जाते वक्त एक मोड पर लुढक गए पैर टूट गया। कितने ही हफ्ता तक प्लास्टर बाधे चारपाइ पर लेटे रहे। अब वह चल सकते थे, लेकिन अभी पूरे इत्मीनान के साथ पैर के प्रयाग मे देर थी।

साथी महमूद जफर यही थे। उनसे मिलने गए। उन पर हृदयरोग का जबदस्त प्रहार उसी समय हुआ जब मैं भारत सोवियत मैत्री सघ के सम्मेलन मे गया था। वह सघ के सेक्रेटरी थे। इस वक्त अच्छे थे, लेकिन हृदय के रोग म अच्छे बुरे का कोई निश्चय नही है। महमूद कलम के धनी है, लेकिन शशव से ही अग्रेजी म पले, इसलिए उसी पर अधिकार रखते है। मैंने कहा—"अब इधर-उधर घूमने का ख्याल छोड दे, और लिखना शुरू करें। अग्रेजी म लिखें, हिन्दी अनुवाद को सुन ले।" जिसे हीरा आदमी कहते है, वसे ही है यह महमूद। इन्हाने कभी धन सम्पत्ति की जिन्दगी का ख्वाब नही देखा, साम्प्रदायिक सकीर्णता उनके पास छू तक न गई। अपनी प्रिय पत्नी रशीदा को गँवाने का प्रभाव उनके दिल पर बहुत बुरा पडा, इसम सन्देह नही। यद्यपि उनकी सहज मुस्कराहट को देखकर उसके बारे म कोई ख्याल भी नही कर सकता।

शुक्लजी को हाल ही मे नतिनी हुई थी। पैदा होते वक्त चार पौड की थी, अर्थात् जया और जेता की वजन से आधे से भी कम। बहुत दुबली-पतली थी, लेकिन उसकी कसर घने काले-काले बालो ने निकाल दी थी। चिन्ता करने की आवश्यकता नही थी। हमारे आज के समाज मे चाहे

कहानियाँ लिखी जा सकती है। 'कनैला की कथा' का बीज मन म पड गया।

'वोल्गा से गगा' का बँगला अनुवाद हाल म प्रकाशित हुआ था। आज भारत की सभी भाषाओ म इस पुस्तक का अनुवाद है, लेकिन जसा कला-आवरण पृष्ठ बँगला का है, वसा किसी का नही। एक पत्रिका 'होमशिखा' म किसी न उसकी आलोचना करते गुण दोष तो दिखाया ही, लेकिन साथ ही यह भी कह डाला कि यह भारतीय सस्कृति पर जबदस्त प्रहार है, इसलिए सरकार को चाहिए कि इसका प्रचार बद कर दे। हिदी म जब पहले पहल पुस्तक निकली थी, तो बहुतो ने वावेला मचाया था, लेकिन शायद किसी न इतनी दूर तक जाने की जरूरत नही समझी थी जितना कि यह बँगला के समालोचक । भिन्न भिन्न काल म हमारे खान पान, वेषभूषा और रीति रवाज म जबदस्त परिवतन हुए, जिनकी गवाही हमारी पुरानी पुस्तक और पुरातात्विक सामग्री देती हैं। भारतीय सस्कृति के प्रति किसी से कम मेरे हृदय म प्रेम नही है। सच पूछिए तो औरो का प्रेम दिखावे का है। उनके लिए ईश्वर, धम, वेदान्त, योग, टोटक टोने आदि अनेक आदर सम्मान की चीजे हैं, जिनके सामने भारतीय सस्कृति गौण पड जाती है। मेरे लिए तो वही सब कुछ है। उसका बदलता रहना दोष नही गुण है। वह अब भी बदल रही है, और आगे भी उसके रास्ते को कोई रोक नही सकता। उस लेखक को पढकर मैंने सोचा कि 'सप्तसिधु' उपन्यास लिखने से पहले उसकी मूल सामग्री के आधार पर लेख लिखने का निश्चय ठीक है। समालोचक पहले उस पर आक्षेप करें, तब उन्हे उपन्यास पर कलम दौडाने का हक होगा।

इस काल के कामो म बडे भाई चद्रसिह गढवाली की जीवनी लिखना भी शामिल था। मैंने ७ सितम्बर से उसम हाथ लगा दिया। बडे भाइ ने अपनी जीवनी पहले स्वय लिखी थी, जिसे सुधार कर किसी ने १९३५ तक पहुँचाया था। मैंन बडे भाई का लिख दिया था कि इसक लिए आपको यहाँ आना पडेगा।

दिल्ली—विदेशी भाषा स्कूल म तिब्बती की परीक्षा लेने क लिए बुलावा था। और भी कामो को देखकर मैंने जाना स्वीकार कर लिया,

और २४ सितम्बर के दोपहर को देहरादून पहुंच गया। प्रा० रूपनारायण मिश्र के पैर म भारी चोट आ गई थी। पिता की तरह इन्ह भी शिकार का शौक था, दजनो बडे बडे बाघ खुद मारे और उनसे भी अधिक उन राजा साहब से मरवाये, जिनके सेक्रेटरी थे। यह अच्छा ही किया कि जमीदारी उठने से पहले नौकरी छोडकर अध्यापन शुरू कर दिया। शिकार का शौक था, जब भी छुट्टी मिलती सिवालिक के जगलो मे जाते। और छुट्टियो मे तो दूर दूर की दौड मारते। पिछले साल की गर्मियो मे वह महाराज के उमराव के साथ कुल्लू म लाल भालू के शिकार के लिए गये थे। इस साल गगोत्री की तरफ जाने की इच्छा थी। दुराराह पहाडियो म नही धोखा हुआ, और यहां देहरादून शहर म जीप से जाते वक्त एक मोड पर लुढक गए पैर टूट गया। कितने ही हफ्ता तक प्लास्टर बाधे चारपाई पर लेटे रहे। अब वह चल सकते थे, लेकिन अभी पूरे इत्मीनान के साथ पर के प्रयोग मे देर थी।

साथी महमूद जफर यही थे। उनसे मिलने गए। उन पर हृदयरोग का जबदस्त प्रहार उसी समय हुआ जब मैं भारत सोवियत मैत्री सघ के सम्मेलन म गया था। वह सघ के सेक्रेटरी थे। इस वक्त अच्छे थ, लेकिन हृदय के रोग म अच्छे बुरे का कोई निश्चय नही है। महमूद कलम के धनी है, लेकिन शशव से ही अग्रेजी म पल, इसलिए उसी पर अधिकार रखते है। मैने कहा—"अब इधर उधर घूमने का ख्याल छोड दे, और लिखना शुरू करें। अग्रेजी म लिखे, हिन्दी अनुवाद को सुन ले।" जिसे हीरा आदमी कहते है, वैसे ही है यह महमूद। इन्होने कभी धन सम्पत्ति की जिन्दगी का ख्वाब नही देखा, साम्प्रदायिक सकीर्णता उनके पास छू तक न गई। अपनी प्रिय पत्नी रशीदा को गँवाने का प्रभाव उनके दिल पर बहुत बुरा पडा, इसमे सन्देह नही। यद्यपि उनकी सहज मुस्कराहट को देखकर उसके बारे म कोई ख्याल भी नही कर सकता।

शुक्लजी को हाल ही मे नतिनी हुई थी। पैदा होते वक्त चार पौड की थी, अर्थात् जया और जेता की वजन से आधे से भी कम। बहुत दुबली-पतली थी, लेकिन उसकी कसर घने काले-काले बालो ने निकाल दी थी। चिन्ता करने की आवश्यकता नही थी। हमारे आज के समाज मे चाहे

लडकियो का मूल्य कम हो और उनकी बहुत उपेक्षा की जाती हो, लेकिन प्रकृति उन्हे बहुत मजबूत कलेवर देती है, जिससे वह सभी आफ्तो को झेल कर आगे बढ जाती है।

रात की दिल्ली जाने वाली गाडी पकडी पहले से रिजर्व न करने पर भी फर्स्ट क्लास के अच्छे कम्पार्टमेन्ट मे नीचे की सीट मिली थी। दूसरी सीट पर एक और सज्जन थे, और नीचे ही तीसरी सीट खाली थी। श्रीमती वकतुल्ला किसी दूसरे कम्पार्टमेन्ट मे अकेली थी। आजकल रेलो मे खून होने की खबरे छपती रहती थी, इसलिए वह भी इसी मे चली आइ। वह ईसाई महिला थी। उनके पति वकतुल्ला पजाब के अपने सम्प्रदाय के सबसे बडे पादरी थे। यह भी धर्म प्रचार का बडा धुन रखती थी। मैं श्रोता था ही उन्होने कुछ लेक्चर दिया इसके बाद ईसा के पहाडी उपदेश की एक पुस्तिका देकर पूछा, तो मैंने कहा तीसियो वर्ष पहले इसे पढा था। अच्छा फिर पढ लूगा। उस वक्त कोई काम था नहीं, सोचा बुढिया का लेक्चर सुनने से अच्छा है इस पुस्तिका ही को खतम कर कर दें। खतम करने के बाद फिर लेक्चर शुरू होते देख मैंने कहा—मुझे ईसा के भक्तो और भगवान् के भक्तो के साथ सहानुभूति है, लेकिन मैं पूरी तौर से समझता हूँ कि दुनिया मे भगवान् नाम की कोई चीज नही है। मैंने कुछ नरमी से और घुमा फिराकर कहा था जिसमे कि बुढिया के दिल को काफी धक्का न लगे।

१५ सितम्बर को ६ बजे से कुछ पहले अंधेरा रहते ही दिल्ली पहुँच गया। रिक्शा लेकर चला, तो साथी फारूकी मेरे लिए स्टेशन जाते रास्ते मे मिले। पहले साथी मनदत्त और सरलाजी के निवासस्थान पर गया। ठहरना तो था मुझे भाभीजी के यहाँ ही था, लेकिन बहुत से काम थे, सोचा यहीं मिलते हो जाएँ। चाय पी। सरलाजी दिल्ली नगरपालिका की सदस्या हैं। उनसे गंगा के नर्सिंग स्कूल मे भरती करने की बात कही थी। उन्होने प्रिंसिपल से बातचीत करके ठीक भी कर लिया लेकिन जैसा कि मैंने पहले लिखा, गंगा ने उसे पसन्द नहीं किया। भाभीजी ने चाय-नाश्ता कराया। वहाँ से पार्टी-आफिस गया। अब "हम क्लिफ" को बेचना निश्चय हो गया। पता लगा था साथी डॉग ट्रेड यूनियन के लिए मसूरी मे बाद मकान

लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, यदि घाटे पर बेचना ही है, तो ट्रेड यूनियन को ही क्यों न दे दिया जाए? साथी डांगे ने दाम पूछा। मैंने कहा दस हजार। उन्होंने कहा एवमस्तु। अक्तूबर में आकर लिखा पढ़ी करने की बात भी तै हो गई। मुझे बहुत संतोष हुआ। चलो एक बड़ी चिन्ता दूर हुई, लेकिन अभी प्याले और ओठ में काफी दूरी थी।

आज का मध्याह्न-भोजन साथी फारुकी और उनकी पत्नी विमलाजी के यहाँ हुआ। फारुकी के पूर्वज मुगल बादशाहों के गुरु होते थे। सन् ५७ के गदर में जब चेलों पर आफत आई तो गुरु कैसे बचते? इसलिए वह भागकर मुजफ्फरनगर जिले के किसी गाँव में चले गए। उसी गुरु घराने में "डूबा वंस कबीर का उपजे पूत कमाल" के अनुसार कम्युनिस्ट फारुकी पैदा हुए और ब्याह किया एक काफिर कम्युनिस्ट लड़की से। कुछ व्यंजन दिल्ली के भी थे। सरलाजी कई पीढ़ियों की निरामिषाहारिणी थीं, लेकिन वही बात उनके पति यज्ञदत्त शर्मा की भी थी। सरलाजी गुप्ता से शर्मा हो दो सीढ़ी ऊपर ही गईं। लेकिन आजकल तो सब धान बाईस पसेरी है। शाकाहार का रोब तो दोनों के दिल से उठ चुका है, पर सरला बेचारी डाक्टरों के परामर्श के कारण गोश्त नहीं खातीं।

सितम्बर का मध्य था। गर्मी के मारे तबीयत परेशान थी, तो भी रिक्शा ले करके इधर-उधर जाना पड़ा। १६ सितम्बर को मिश्रा से मिलने निकला। पहले माचवेजी के यहाँ गया। वहीं मराठी के महान नाटककार मामा वरेरकर से मुलाकात हो गई। मध्याह्न भोजन यहीं करना था। साहित्य अकादमी के सेक्रेटरी कृपलानीजी से भी मिला। सभी माचवे दम्पती के यहां मध्याह्न भोजन के लिए निमंत्रित थे। कमला की फरमाइश थी, खादी की एक रेशमी साड़ी लाने की। सुना कनाट प्लेस में एक बहुत बड़ी खादी की दूकान खुली है, जिसमें हाथ की बहुत सी चीजें बिकती हैं। मैं वहाँ गया। सचमुच ही यह दुकान दिल्ली के देवताओं और देवियों के अनुकूल थी। आधुनिक ढंग से पर कलापूर्ण और सुरुचि के साथ सभी वस्तुएँ सजाई गई थीं। बेचने वाली कितनी ही लड़कियां थीं, जो फर फर अंग्रेजी बोल रही थीं। मुझे आशा नहीं थी, यहाँ भी मेरा कोई परिचित मिल जायेगा। नैनीताल के श्री बांकेलाल कौंसल के छोटे भाई यहीं काम करते

थे। एक और बिहारी मित्र मिल गए। दूकान का काम शुरू करने म कुछ देर थी। कौसलजी ने कहा, जरा हमारे मैनेजर स मिल लें। मनेजर का आफिस ऊपर का ओवरक म था। बडा स्वागत किया। लेकिन मैं एसे मौके पर पहुँचा था, जबकि साढे १० बजे दूकान खुलने से पहले भगवान् की प्राथना जरूरी थी। मैनजर साहब ने सहज भाव से कहा—"आप भी चलें" मैंने भी सहज भाव ही से जवाब दिया—मेरा भगवान् पर विश्वास नही है।" कमचारियो के रखने समय भगवान् पर विश्वास होना जरूरी तो नही समझा जाता ? लाठी के हाथ स भगवान् कब तक लोगो के दिलो पर शासन करेग। म वहा बठा रहा। दूकान खली, एक साडी ली। ११ बजे मुझे परीक्षा लने क लिए प्रतिरक्षा विभाग के विदेशी भाषा स्कूल म जाना था। अब उसम दस ही पन्द्रह मिनट रह गए थे। जगह देखी हुई नही थी। टक्सी ली, घूम घुमौवे रास्ते स उसने वहा पहुँचा दिया। सचालक साहब ने बतलाया, आपकी स्वीकृति की सूचना नही मिली, पर मैं तो जवाबी तार दे चुका था। यदि सरकारी तारा के साथ ऐसी उपेक्षा हो सकती है तो साधारण लोगो की बात क्या ? खैर, जिन तीन विद्यार्थियो की परीक्षा लेनी थी वह सब यही क सनिक अफसर थ। आध घटा-पौन घटा देर हुई। टेलीफोन करके सबको बुला लिया गया। मैंने उनकी परीक्षा ले ली। उनके अध्यापक सिक्किम के मेरे पुराने परिचित निकले। बहुत आग्रह किया कि आएँ तो हमारे यहा ठहरे।

यहाँ से छुट्टी लेकर माचवजी के यहाँ भोजन पर गए। वरेरकरजी साहित्यकार थे। कृपलानीजी तो विश्व भारती म साला रहे, वहा के वातावरण से प्रभावित थ। चाय पीने के लिए यही नई दिल्ली म चन्द्रगुप्त जी क यहा जाना था, इसलिए और मेहमानो के विदा हो जाने पर भी मैं वहीं आराम करता रहा। जसग अब अचिगा नही था और उनकी बहिन दूना भी खूब बोल रही थी। उन्ही से मनबहलाव होता रहा। सस्कृत पाठशाला' तयार हो गई थी, और 'सस्कृत काव्यधारा' क भी कुछ अग तयार कर लिए थे। श्री चन्द्रगुप्तजी के यहाँ चाय पी। उन्होंने अपने एक प्रकाशक मित्र क बारे म लिखा था कि वह उन पुस्तको को छाप देग। इसलिए उनको उन्ही क पास रख दिया। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टडन आजकल यहीं थ। चन्द्रगुप्तजी

के साथ वहा चले। रास्ते मे डा० सत्यनारायण मिल गये। मिलते ही बोले —"बाबा मैं रूस जा रहा हूँ। सोवियत दूतावास न सारा प्रबन्ध कर दिया है।" मैंने मुबारकबादी दी। टडनजी से थोडी देर बात हुई। अँधेरा होने पर फैज बाजार लौटा। सोचा, मोतीमहल का मुगमुसल्लम अकेले खाना ऋषियो के वचन के विरुद्ध है—"केवलाघो भवति केवलादी' (अकेले खाने-वाला केवल पाप खाता है)। यह विश्वास था कि गर्मी होने पर भी तन्दूर का भुना मुगमुसल्लम मसूरी तक सही सलामत पहुँच जाएगा। और वह सही सलामत पहुँचा। अफसोस यही होने लगा कि दो क्यो नही लाए। रात को देहरादून की गाडी पकडी।

अगले दिन ७ बजकर ५० मिनट पर देहरादून पहुँचा। ढाई रुपये म तुरत टक्सी मिली। नौ बजे किक्रेग पर रुकना पडा। आध घट बाद जब गेट खुला, तो लाइब्रेरी पहुँचे। वहा से रिक्शा ले १० बजे के करीब घर पहुच गए।

आजकल आबकारी अफसरो की यही पर कान्फ्रेंस हो रही थी। श्री जमुनाप्रसाद वैष्णव अशोक भी उसम आए हुए थे। मिलने आये। अशोकजी ने हिन्दी कथाकारो मे सम्मानित स्थान प्राप्त कर लिया है। हिमालय न कई ऊँचे दर्जे के साहित्यकार पैदा किय, लेकिन उनम बहुत कम ही ऐसे है, जो अपनी कृतिया मे अपनी जन्मभूमि की छाप आने देते हो। अशोकजी अपनी कथाओ मे गढवाल को नही भूलते, यह उनकी विशेषता है।

अब मसूरी का दूसरा सीजन था, इसलिए कितने ही परिचितो के मिलने की सम्भावना थी। अगले दिन रविवार को श्री मोहिनीजी जुत्शीजी के साथ आइ। इस साल वह यहा आ अल्मोडा चली गई थीं। गूग बहरे स्कूलो क अध्यापका का सम्मेलन हो रहा था, पटना से श्री गोरखनाथ पाडे अपनी पत्नी के साथ आये। आजमगढ की बात बतला रहे थे, लेकिन अब मेरी तरह ही उनका भी सम्बन्ध आजमगढ से टूट-सा चुका है।

२० सितम्बर को जया का जन्मदिन था। आज वह दो साल की हो गई थी। शब्दा ही नही वाक्यो को भी बोल लेती थी। एक दिन गिना तो उसके शब्दकोश म करीब सौ शब्द मालूम हुए। चायपार्टी मे उषा-बाबा, डा० सत्यकेतु, लालाजी, ठाकुरानी गुलाबकुमारी, श्री मुकुन्दीलाल, कला-

कार नौटियाल और दूसरे मित्र आए। जया अभी अपने जन्मदिन का क्या समझती ? हा यह देख रही थी कि कितने ही परिचित और अपरिचित चेहरे साथ बैठ कर खा रहे थे।

२४ सितम्बर तक पास की सामग्री के आधार पर बडे भाई की जीवनी लिख डाली थी। उनके आने की प्रतीक्षा थी, और वह २६ सितम्बर को आ भी गए। बुढापे का पूरा असर था, यद्यपि उत्साह अब भी उनमे तरुणो जसा था। अब अपराह्न मे उनसे पूछ कर नोट लेने और अगले दिन पूर्वाह्न मे जीवनी टाइप पर डिक्टेट करने का काम शुरू हुआ। बडे भाई के स्वभाव से कमला भी बहुत खुश थी। निर्भीकता और निर्लोभता की वह साक्षात् मूर्ति हैं। अपने विचारो पर इतने दृढ कि सारे आर्थिक कष्टो की पर्वाह नही करते।

२७ सितम्बर को जुत्शीजी, और उनके कनिष्ठ पुत्र योगीनाथ भी आए। योगीजी अल्मोडा मे इजीनियर थे। अभी ३० के भी नही हुए कि पत्नी मर गइ। दो जुडवा लडकिया के अतिरिक्त एक लडका और एक लडकी—चार बच्चे हैं। उनको सम्भालने मे दादी बहुत हाथ बटा रही थी। उसी तरद्दुद के कारण वह अबके साल पहले सीजन मे यहाँ नही आई थी। योगीजी ने लडके-लडकी को नैनीताल के कान्वेन्ट मे रख दिया था। उनका विचार ठीक था। वह कह रहे थे, बच्चो को सँभालना अम्मा के लिए तरद्दुद का काम होगा। सबसे छोटा बच्चा भी जरा दाखिल करने लायक हो, तो इसे भी वही दाखिल कर दूगा। मोहिनीजी का कहना था—'वहाँ खर्च भी बहुत पडेगा और साथ ही पारिवारिक स्नेह नही मिलेगा।'' तो भी पुत्र की राय के वजन को स्वीकार करती थी। माता पिता अपने तरुण पुत्र को पत्नीविहीन नही देखना चाहते थे—मोहिनीजी विशेषकर ? हमारे यहाँ के कश्मीरी ब्राह्मणो के कुछ हो हजार परिवार हैं जो एक दूसरे से सुपरिचित हैं। लडकियो के ब्याहने की उनके यहाँ भी समस्या उठ खडी हुई है। किसी लडकी वाले ने माता पिता पर जोर दिया होगा, इसलिए वह भी अपने पुत्र पर जोर दे रही थी। पुत्र कह रहा था— अभी मैं ब्याह करने की स्थिति मे नही हूँ। बच्चो पर बहुत खर्च करना पडता है। परिवार के लिए पैसे कहाँ से आएँगे ? माता यह विश्वास तो नही कर सकती थी कि सौतेली माँ आकर बच्चो को सँभाल लेगी।

भैया २ अक्तूबर को अमतसर से आ गए। अभी भी छत बनाने का काम पूरा नही हुआ। उन्होने गलती की, जो दूसरी कमजोर छता को भी उजाड डाला। सोचा, एक ही साथ लोहा-सीमेन्ट लगा कर पक्की छत बनवा दे। पर इसी साल पजाव म जबदस्त बाढ आई हजारो घर बरबाद हो गए। सीमट मिलना मुश्किल हो गया। भाभीजी पहले ही चली गई थी, भैया को काम नही रह गया था, इसलिए सोचा दो चार दिन के लिए मसूरी हो आएँ। मकान बेच देने के पक्ष म वह पहले ही से थे। कह रहे थे कुल्हडी या लाइब्रेरी के आसपास कोई बँगला ले लें हम भी वही आकर रह लिया करेंगे। कमला बाजार के उतना नजदीक नही रहना चाहती थी मैं भी इससे सहमत था। अगर किराये के बगले म जाना पडे तो थोडा हटकर ही रहना चाहिए। अगले दिन भैया न प्राय सारा दिन यही बिताया। बडे भाई से भी उनका परिचय हुआ। पेशावर काण्ड के वीर गढवालियो का नाम किसने नही सुना? भैया कह रहे थे—"अब जिन्दगी भर हाय हाय-पट पट करना अच्छा नही है। जानकी का दिल्ली मे बठा दिया। उनके लिए मकान के किराये से पाच छ सौ रुपये आ जाएँगे। फार्मेसी से पाच-छ सौ रुपय मासिक हमे मिल जाया करेंगे। और क्या करना है? चार मास मसूरी और चार चार मास इधर उधर बिता देंगे। वह मुझसे दो-तीन वष बडे थे, बाल बिल्कुल सफेद, लेकिन अब भी उनके शरीर मे निबलता नही थी। चलने मे हवा से बाते करते थे।

अब की छोट सीजन का उद्घाटन मुख्यमत्री श्री सम्पूर्णानन्दजी ने किया।

६ अक्तूबर की चिट्ठियो म अहरौरा (मिर्जापुर) के पुराने मित्र श्री रामखेलावनजी प्रहरी 'वद्ध कवि" की भी थी। बुढापे मे अपने साथी समाजो वहुत कम रह जाते हैं। उस वक्त पुराने मित्रा से साक्षात् या पत्र द्वारा मिलने म वडा आनन्द आता है। श्री रामखेलावनजी ने १९२७ से ही काग्रेस के आन्दोलन म भाग लिया था। लडका मट्रिक फेल हो गया है। घर की आर्थिक स्थिति तो ४० वष पहले भी अच्छी नही थी। चाहते थे, लडके को कही नौकरी मिल जाए, लेकिन आजकल नौकरी मिलना आसान नही। कोरे शब्दो द्वारा सान्त्वना देने के सिवा और मैं क्या कर सकता था।

७ अक्तूबर को बडे भाई गये। बडे जीवटवाले पुरुष हैं, कमठ और स्वच्छ हृदय भी। नानसचय म बहुत उत्साह नही रहा, नही तो और भी सीख सकते थे, लेकिन तब भी उन्होने काफी सीखा है। विवाह ने भी बाधा पहुँचाई। आर्थिक कठिनाइयो से लोहा लेना पड रहा है। उन्हे अपनी नही लेकिन अपने बच्चो की चिन्ता बहुत रहती है—"मेरे बाद उनकी कौन देखभाल करेगा यही सोचते रहते है।" बीवी ने बहुत कष्ट सहा। आर्थिक सघप मे पडने से मिजाज चिडचिडा हो जाए तो आश्चय क्या ?

८ अक्तूबर को राजा महेन्द्रप्रताप आए। स्वतन्त्रता सघष के जीवित शहीदो की वह ज्वलन्त मूर्ति है। मै समझता था, ७० से ऊपर के होग, लेकिन अभी उम्र ६८ की ही थी। स्वास्थ्य इस अवस्था म जैसा होता है, उसे देखते बुरा नही था। ससार-सघ की धुन उन्ह बहुत वर्षो पहले ही से हैं। जानते है, बात सुननेवाले भले ही मिले, लेकिन माननेवाले नही मिलते। तो भी उर्दू, हिन्दी, अग्रेजी तीनो म अपने "ससार सघ" को निकालते ही जा रहे हैं। मैंने अपने मकान के बेचने का विज्ञापन दिया था। उसके ही बारे मे बातचीत करने आये थे। लेकिन, उनके जसे स्वास्थ्यवाले आदमी का इतनी दूर मकान लेना कैसे ठीक हो सकता था ? मकान की बातचीत बीच मे ही पडी रह गई और दूसरी बातें चल पडी। वह प्रथम श्रेणी के घुमक्कड है। राज रियासत छोडकर बेसरो सामानी स देश से निकल गय। अग्रेजो के कुत्ते उनके पीछे पडे रहते। सगे सम्बन्धी उनकी गन्ध से भी डरते। पर, आजीवन वह अपने विचारो पर डटे रहे। अग्रेजो के प्रति उनकी अपार घृणा कभी नही घटी। कई बार उन्होने पृथ्वी परिक्रमा की। सिर्फ होटलो, रेलो और जहाजो वाले रास्तो पर ही नही गय, बल्कि तिब्बत के दुराराह पवतो को भी पार किया। ऐसे पुरुष की जीवनी कितनी रोचक और प्रेरणा दायक होगी, यह सोचकर मेरा मन होता, उसे लिख डालू। उन्होने अपनी छपी अग्रेजी जीवनी भेजी, जो मेरे लिए पर्याप्त नही हो सकती थी। एक तो वह सारे जीवन की नही थी, और दूसरे वह नोट के रूप म थी। ठीक जीवनी तभी लिखी जा सकती थी जब मैं उनके पास बैठकर पूछ-पूछकर नोट कर लू। मैंने पीछे लिखा, पर वह लगातार दो चार हफ्ते दे नही सकते थे। उनके पैरो म अब भी चक्का बँधा हुआ है, इसलिए राजपुर म दो-चार

दिन रहने के बाद फिर वह किसी तरफ चल पडते हैं जीवनी लिखन का सक्ल्प मन का मन ही मे रह जाता मालूम होता है।

१२ अक्तूबर का जेता को बुखार आया। उसन दूध नही पिया। उधर दस्त भी बन्द हो गया। चौथे दिन रेडी का तल देकर जुलाब कराया। बेचारा सुस्त हा गया। बुखार धीरे धीरे हटा। हमने समझा, यो ही मामूली बुखार आ गया है। कई दिनो बाद पता लगा कि उसका दाहिना हाथ उठ नही रहा है। "पोलिया" का नाम सुनकर दिल डर गया। कल्याणसिंह की लडकी के दोना पैरा और दोना हाथो पर पोलिया हुआ था। डाक्टरो न निराश कर दिया था, लेकिन भैया न कहा—' मालिश करो। धीरे-धीरे ठीक हा जाएगा।" जेता के बारे मे लिखने पर उन्हाने एक दवाई भेजी और कहा—"डरने की जरूरत नही। देर लगेगी, हाथ अच्छा हो जायगा।" कई महीना तक हमे बहुत चिन्ता रही। फिर थोडा थाडा हाथ उठने लगा। आज ५ महीने बाद हाथ पर तो उसका पूरा काबू है, और मुट्ठी बाधने मे ता कभी भी उसको दिक्कत नही हुई। लेकिन, अभी भी बाएँ हाथ क बराबर दाहिने हाथ म बल नही है।

सरकारी दफ्तरा से जब सम्पर्क करना पडता है तो हमारे जैसा को भी अनकुस लगन लगता है, दूसरा की ता और भी बुरी गत हाती होगी। हर साल इन्कम टैक्स के लिए दफ्तर की कदमबोसी करनी पडती है जिसका कोई महीना निश्चित नही है। कभी मई-जून म, कभी उसके बाद और अब के तो अक्तूबर की १९ तारीख, सो भी देहरादून म बुलाया गया। ता भी एक छोडकर जितने भी अफ्सर मुझे मिले, सभी सज्जन थे। अब के साल आमदनी ६७०० थी। इसम कुछ अग्रिम थे, और कुछ सरकारी सफर खच आदि के भी। पर, उनको अलग करके बहस करने की जगह मैं यही बेहतर समझता हूँ कि उस पर भी कुछ टक्स लग जाये। देहरादून गया। काम होने म कुछ ही मिनट लग। चाय शुक्लजी क यहाँ पी, और स्टेशन से टैक्सी लेकर उसी शाम मसूरी लौट आया।

२२ अक्तूबर का डा० जयनारायणगिरि अपनी पत्नी गुजन क साथ आए। हमारे घर मे मुझे छोडकर सभी नेपाली और अध-नेपाली हैं, इसलिए नेपाली मेहमान से प्रसन्नता होनी ही चाहिए, और गिरिजी तथा उनकी

पत्नी का स्वभाव कुछ इतना मधुर था कि वह आते ही घर जैसे मालूम होने लगे। डाक्टरी पास करके आजकल वह लखनऊ म विशेष शिक्षा ल रह थे। पत्नी को इसी शर्त पर ब्याहा था कि वह पढ़ेगी। बाप ने बिल्कुल अनपढ़ लड़की के लिए और रास्ता नही देखा, और मास्टर रखकर पढाया। गुंजन मट्रिक पास किया जब पटना मे एफ० ए० मे पढ रही थी। मैंने कहा —इन्हे जीव विज्ञान म एफ०एस सी० करके डाक्टरी म डाल दीजिए। पति पत्नी दोनो डाक्टर रहगे, बहुत अच्छा रहेगा। पर, गिरि परिवार धनाढय है। अभी भी उनके दिमाग म पुराने विचार चक्कर काटते है— हमारे पास खाने पीने क लिए बहुतेरा है, तरददुद करने की क्या जरूरत? एक बडा भाई डाक्टर होकर अधिक शिक्षा के लिए विलायत जाने वाला था। पैसे लेकर आया, फिर विलायत कौन जाये? पटना मे होटल खोलकर बैठ गया। सबसे बडा भाई नेपाल के स्वतन्त्रता आन्दोलन म एक नेता थे। कोइराला मन्त्रिमडल के समय मोरंग का राज्यपाल बना, और कोइराला के बहनोई बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। जात पाँत भारत मे ही नही टूट रही है, नेपाल पर भी इसका छीटा पड रहा है। पुराने आचार-विचार के ठेकेदार स्वय माहिला गुरु के छोटे साहबजादे ने एक राणाकुमारी से ब्याह किया। गिरि ने ब्राह्मण कुमारी से ब्याह किया। नेपाल के गिरि पुरी का समाज मे वही स्थान है, जो हमारे यहाँ के गृहस्थ गिरि लोगो का। यह निश्चय है कलियुग सिर्फ भारत म ही आकर नही रह जायगा।

२७ अक्तूबर को श्री मुकुन्दीलालजी आये। इस साल का उनका यह अन्तिम फेरा था। परिवार को नीचे ले जाने के लिये आए थे। गढवाल में रूपकुण्ड की हिमानी म सैकडो लाशें मिली थी जिनके बारे म तरह-तरह की कल्पनाएँ हो रही थी। मुकुन्दीलालजी का कहना था— जम्मू के जेनरल जोरावरसिंह के साथियो की ये लाशें नही हो सकती। हमारे यहाँ पहाड म बीच-बीच म नन्दादेवी का कुम्भ लगता है, जिसम हजारो नर नारी दर्शन करने के लिए जाते हैं। वही बर्फ के तूफान म किसी समय फँसकर मर गये।' यह भी बतलाया कि वहाँ गणेश की मूर्ति पर 'गंगाधर' उत्कीर्ण मिला है। जब चमड़े मांस सहित आदमियों की वहाँ अनेक लाशें

१५

जाड़े की यात्रा

जाड़ा आ रहा था। पिछले साल तापमान के ४० डिग्री के नीचे पहुँचने पर कालेज म तकलीफ हो गई थी इसलिए इस साल भी आशका थी। निश्चय कर लिया, कि सर्दी बढ़न पर नीचे चल चलेंगे। जेता का दाहिना हाथ हथेली से पहुँचे तक ठीक से काम कर रहा था, किन्तु कन्धे के पास अभी कसर थी। उसकी मालिश हो रही थी।

सरह के दोहाकोश के आठ फार्मों के प्रूफ मैंने डा० शहीदुल्ला के पास ढाका भेजे थे। उन्हे वह राजशाही मे मिले। ढाका युनिवर्सिटी स अवसर प्राप्त कर अब वह राजशाही म अध्यापन कर रहे थे। डा० शहीदुल्ला सस्कृत और अपभ्र श के पण्डित है। सरहपा और कण्हपा के अपभ्र श दोहा पर उन्होने अपने डाक्टरेट की थिसिस लिखी थी। मैंने चाहा था, ममज्ञो के पास प्रूफ के रूप म कोश को भेज दू ताकि उनक सुझाव प्राप्त हो सकें। डा० शहीदुल्ला का उत्तर शुद्ध हिन्दी म आया था। बगला भाषियो क लिए शुद्ध हिन्दी उर्दू से आसान है। बल्कि यह कहना चाहिए कि यदि वह उर्दू के शब्द और क्रिया रूपो को जानते है तो जहाँ उर्दू के लिए हजारो फारसी अरबी के शब्दो का ढूढना पड़ेगा, वहाँ अपन बगला शब्दो को इस्तमाल करके वह उच्च श्रेणी की हिन्दी म लिख सक्त हैं। बगाल क मुसलमानो न अपनी मातभाषा के लिए प्राणो तक को दिया, और अन्त म पाकिस्तान सविधान सभा को बिना चू चिरा के उर्दू के साथ साथ बगला को भी राज्य भाषा स्वीकार करना पड़ा। डा० शहीदुल्ला अपनी बगला क जब

दस्त प्रेमी और सेवक हैं। यद्यपि सविधान ने बगला को मजूर कर लिया है, लेकिन २३ मार्च १९५६ के गणराज्य के उद्घाटन के समय जो भाषण कराची म हुए, उनसे मालूम होता था कि पाकिस्तान के धनी धोरियो ने "पचो का न्याव सिर माथे पर लेकिन पनाला वही रहेगा" वाली कहावत को स्वीकार किया है। रेडियो पर नेताओं के सारे भाषण कुछ अंग्रेजी छोड कर उर्दू म हुए, बगला के राष्ट्रभाषा होने का वहाँ कही पता नही था। निश्चय ही धीगा मुस्ती बहुत दिनो तक नही चलेगी। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान वाले एक और तरह से पाकिस्तानी बगालियो की जड खोदने के लिए तयार है। पाकिस्तानी बगाली धौंस दिखलाते थे कि हमारी सख्या पाकिस्तान मे सबसे अधिक है। उनके समथक मुल्ला पूर्वी बगाल म ऐसा आतक फैला रहे है कि वहाँ के हिंदू भागकर भारत चले जाए और इस प्रकार पाकिस्तान म बगालियो का बहुमत खतम हो जाए।

आदमी अकेले रहते वक्त, विशेषकर घुमक्कड, आर्थिक चिन्ताओ म नही पड सकता। कम से कम मेरा तजर्बा यही था। लेकिन, घरबार, बाल-बच्चे होने पर वैसी बेपर्वाही नही रह सकती। उसे कल की चिन्ता होती है, और उस वक्त की और जबकि वह नही रहेगा। मेरे दिमाग मे यही विचार चक्कर काट रहे थे। यद्यपि किताब महल वालो ने रायल्टी को २० सैकडा मे १८ सैकडा कर लेने पर ५०० रुपया मासिक नियमित रूप से देने के लिए वचन दे दिया था। चीन या चकोस्लोवाकिया मे चलने की बात कहने पर कमला टस से मस नही होती और कहती— "औरो के भी तो बच्चे है?" हाँ, ठीक है औरो के भी बच्चे हैं, लेकिन उनमे से बेयारो मददगारो की हालत कैसी होती है यह भी हम देखते हैं। "कम से कम दो-तीन वर्ष के लिए चलो"। पर उन्हे तो "हमे है प्यारी हमारी गलियाँ" याद आता है। वह समझती हैं कि एम० ए० करने म एक ही साल है। कलिम्पोग म पढ़ाने का काम पकड लूगी। पर, पढाई म सौ डेढ सौ रुपए मासिक से अधिक नही मिलेगा, जिससे आधा तो मकान के किराए मे ही चला जाएगा।

नवम्बर के चौथे सप्ताह मे मेरी दिनचर्या थी ७ बजे सवेरे उठना, साढे सात बजे चाय-नाश्ता करना, फिर बैठकर टाइप राइटर पर साढ़े ११-१२ बजे तक पुस्तक लिखवाना। साढे १२ बजे भोजन, समाचारपत्र, डाक

पढ़ना। मनायन करते ३ साढ़े ३ बजे जाना। अभी एकाध घंटे के लिए सो जाना ८ बजे चाय पीना। फिर लिखाय हुए कागजों या प्रूफो को रात के नवा ८ बजे तक देखना, आध घंटा रेडियो पर खबर सुनना, फिर काम करते साढ़े १० बजे के करीब सो जाना। इसी बीच मे जया और जेता के साथ खेलना भी शामिल था। जया अब बहुत बातें करने लगी थी।

२८ नवम्बर को रीवा जिले के तरुण घुमक्कड शम्भूदयाल त्रिपाठी आए। २० वर्ष की उमर होगी। बड़ा मुश्किल से मट्रिक प्रथम श्रेणी मे पास हुए। साइन्स पढने का उत्कट इच्छा थी, पर आगे बढने का कोई रास्ता नहीं। कुछ साल तक स्कूल मे मास्टरी की। ६० ७० रुपये मिल जाते थे। आगे की पढ़ने और घुमक्कडी की आकांक्षा ने चैन से रहने नहीं दिया। मेरी कुछ पुस्तकें पढ चुके थे। सोचा पश्चिम मे भारत की सीमा पार करते ही पाकिस्तान आ जाएगा, जिससे लगा ही अफगानिस्तान है, फिर तो दो कदम पर सोवियत रूस है। यदि वहाँ चले चले, तो साइन्स के पढ़ने का रास्ता खुल जाएगा। किसी तरह सीमा पार करके पाकिस्तानी पंजाब मे पहुंचे। पकड लिए गए। "क्यों आए ?"—पूछने पर, कुत्ते बिल्ली की कहानियां कहने लगे "पाकिस्तान मे नौजवानो के पढने का बहुत अच्छा प्रबन्ध है, यही सोचकर मैं चला आया।" जवाब मिला—"आए तो भला किया, कानून तोडा इसलिए एक मास गोलघर मे चलो।" सजा काट लेने पर फिर सीमा के पास लाकर कहा गया—"अब यहां से तुम चले जाओ।" बेचारे अमृतसर आए। पास मे पैसा कौडी नही लेकिन घुमक्कड को ईमानदारी के साथ किसी भी काम करने से आनाकानी नही करनी चाहिए, यह शिक्षा उन्हे मालूम थी। होटल मे जाकर कुछ हफ्ता तक बरतन धोते रहे, फिर वहाँ से चलकर चण्डीगढ़ आए। कहीं पढने का रास्ता नही मिला। अन्त मे घूमते घामते मसूरी मे पहुँचे। मैं क्या सहायता कर सकता था ? तरुण को देखकर बहुत तरस आता था। भिखमगे की मैली और फटी पोशाक थी। पर नंगा ओढने के लिए टाट ले रखा था। न जाने कितना भूखा था ? भोजन कराया कई परिचय पत्र दिए। एकाध जगहों का नाम बतलाया, जहां टेक्नीकल शिक्षा मिल सकती है। यह भी कहा कि यदि तुम साइन्स छोडकर संस्कृत पढना चाहते हो, तो साधु बनकर यह काम आसानी

से कर सकते हो। पर, न वह साधु बनने के लिए तैयार थे, न संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखते थे। "शिवास्ते सन्तु पंथान" (तुम्हारा कल्याण हो) यही कामना हम कर सकते थे।

अब के जोधपुर की ठाकुरानी गुलाबकुमारी २८ नवम्बर को मसूरी से गईं। यह केवल उन्हीं की बात नहीं थी पुराने राजाओं, जागीरदारों और जमींदारों के वर्ग की यही हालत है। वह अपनी राजधानियों में नहीं रहना चाहते। जहां पर पीढ़ियों से उनका निरंकुश शासन था, वहां वह जनसाधारण की तरह कैसे रहते? रहने पर भी चापलूस, लग्गू-भग्गू मुसाहिब आ घेरते। किसी के घर ब्याह है, किसी के लड़के की पढ़ाई नहीं चल रही, किसी के घर में खर्ची नहीं आदि आदि सच्ची झूठी बातें कहकर वह कुछ पाने की आशा रखते। न देने पर उनके कोप और निन्दा का भाजन होना पड़ता। संकोच करते करते भी कुछ देना ही पड़ता। आमदनी थोड़ी और नपी तुली। इन सबसे बचने के लिए जिनका मसूरी जैसी किसी पहाड़ी जगह में रहने का इन्तिजाम है, वह यहां सबसे पहले आते और जाड़ों में ही लौटते। तालुकदारों ने अपने महल जैसे मकानों को अच्छे किराए पर सरकारी दफ्तरों के लिए दे दिया। किराए पर छोटी मोटी बंगलिया ले रखी हैं, जिनमें मन मारकर वह जाड़ों के दो चार महीने गुजार देते हैं। सबसे ऊँचे वर्ग की आज यह स्थिति है। उनको अपने पैरों पर खड़े होने के लिए पैसे यदि मिलें भी, तो उसका ठीक से इस्तेमाल करना उन्होंने कभी सीखा ही नहीं। कुछ तो दिवंगत महाराणा उदयपुर की तरह समझते हैं—अपनी जिन्दगी भर पुरानी ही तरह रह लो, आगे की बात आगे वाले देखेंगे।

दिसम्बर के पहले सप्ताह तक "संस्कृत काव्यधारा" (५० कवियों का काव्य संग्रह) समाप्त हो गई। मैंने हरेक कवि का इतना उदाहरण देना चाहा कि जिससे कवि की विशेषता पाठक समझ सकें। पुस्तक में बाईं ओर मूल संस्कृत और दाहिनी ओर प्रतिपंक्ति हिन्दी अनुवाद रखा है। कवियों को उनके कालक्रम से रखकर परिच्छेदों को तत्कालीन बोलचाल की भाषा के अनुरूप काल विभाजन द्वारा उपस्थित किया है। छन्दस् या संस्कृत काल के लिए ऋग्वेद के कितने ही कवि (ऋषि) दिए, पालि काल के लिए महाभारत और रामायण से उद्धरण लिए। प्राकृत काल में अश्व-

घोष ने कालिदास—सुंदर तक की कविताएँ दी। अपभ्रंश-काल में दण्डी से हीर-पुत्र श्रीहर्ष के नमूने दिए। तीन कवि और कवयित्रियाँ मुगलकाल की भी आ गई। कालक्रम से इन कविताओं को पढ़ने से संस्कृत काव्य साहित्य की भाषा और भावों के विकास का अच्छी तरह पता लगता है। सारी पुस्तक पर एक विस्तृत भूमिका अभी लिखनी है। हरेक काल के लिए एक छोटी भूमिका और हरेक कवि का दस-पाँच पंक्तियों में परिचय दे दिया है। संक्षेप करने का ख्याल रखते हुए भी ५० फार्म का ग्रंथ हो गया।

७ दिसम्बर को "मध्य एसिया का इतिहास (१)" की कुछ गैलियों का पहला प्रूफ आया। दूसरा खंड लखनऊ के नेशनल हेरल्ड प्रेस में छप रहा है। पहला भाग सम्मेलन मुद्रणालय में छप रहा था। देखें, यहाँ कैसा तजर्बा होता है? प्रेसों का तजर्बा बहुत बुरा रहा। ८ दिसम्बर को राष्ट्रपति का पत्र आया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि चीन के पासपोर्ट के लिए मैंने पन्तजी को लिख दिया है और मिलने पर भी उनसे कह दूंगा। आखिर पासपोर्ट जिसके नाम से मिलने वाला है, यदि वही तैयार हो, तो पासपोर्ट मिलने में क्या दिक्कत हो सकती है? लेकिन, जब तक वह हाथ में न आ जाए तब तक इत्मीनान नहीं किया जा सकता।

११ दिसम्बर को २२ वर्ष बाद लाहुल के ठाकुर पृथ्वीचन्द अपनी पत्नी के साथ मिलने आए। १९३३ में लदाख से लौटते लाहुल में वह मिले थे और कई दिनों तक भिन्न-भिन्न जगहों को देखते वक्त मेरे साथ रहे। मातृभाषा तिब्बती होने के कारण कालेज की पढ़ाई में उन्हें दिक्कत होने लगी, इसलिए उस वक्त उसे छोड़कर घर पर बैठे हुए थे। पीछे टेरिटोरियल फौज में भरती हो गए। लड़ाई के दिनों में उन्हें और उनके चचेरे भाई (ठाकुर मंगलचन्द के पुत्र) खुशहालचन्द को कमीशन मिल गया। अब दोनों भारतीय सेना के लेफ्टनेंट कर्नल थे। उस समय का कहाँ वह नवतरुण शरीर और कहाँ अब ४५ वर्ष के प्रौढ़? पत्नी धर्मशाला की नेपालिन हैं जिनसे १५ साल पहले उन्होंने ब्याह किया था। सन्तान कोई नहीं, लेकिन भाई और पत्नी के परिवार के बच्चों को पालने में सन्तुष्ट हैं। देहरादून में एक साल से अधिक उन्हें रहते हो गया था और अकस्मात् किसी ने मेरा मसूरी का पता दिया। इन दिनों चीन में जो भारतीय सैनिक अफसर गए थे

उनमे ठाकुर पृथ्वीचन्द भी थे, और वेतनाम वाले कमीशन के वही अध्यक्ष थे। मैं लद्दाख के बारे मे उनसे विशेष सुनना चाहता था। मैंने सुन लिया था, वह लदाख की प्रतिरक्षा के लिए गए थे।

बतला रहे थे—जब पाकिस्तानियो ने लद्दाख और जास्कर पर हमला किया था, तो हमारा दिल घबरा उठा। आखिर हमारे लाहुल की सीमा उससे लगती थी। हम दोनो ने सरकार को अपनी सेवाएँ अर्पित करते हुए कहा—'हम लद्दाख मे जाना चाहते हैं।" सरकार का सारा ध्यान कश्मीर उपत्यका के ऊपर था। वह लद्दाख के महत्व को नही समझती थी। हम २५ सैनिक, दो सौ के करीब बन्दूकें तथा गोलिया मिली। उन्ही को लेकर हम लद्दाख पहुँचे। पाकिस्तानी लेह के पास पहुच गये थे। लद्दाखी अपना बोरिया बँधना बाधकर तिब्बत भागने के लिए तैयार थे। हमारा तिब्बती-भाषी और बौद्ध होना उस समय बडे काम आया। हम उन्हे रोकने मे समर्थ हुए। कुछ जवानो को तुरन्त गोली चलाना सिखाया। दो चार दिन भी तो सिखाने के लिए नही थे, इसलिए कारतूस भरना और घोडा दबाना भर सिखलाकर अपने एक दो सीखे सिपाहियो के साथ उन्हे ले पाकिस्तानियो के पीछे पडे। जब एक दो मील हम उन्हे भगाने मे सफल हुए तो लद्दाखियो की हिम्मत बढी। वह खुशी से स्वयसेवक बनने लगे। लेकिन, हमारे पास उतने हथियार नही थे। तीन महीने के करीब तब भी हम पाकिस्तानियो को पीछे ढकेलते गए। कुमक पहुँची, और उधर जोजीला से हमारे टैक भी करगिल की ओर आये। पाकिस्तानी भाग खडे हुए। हम सिन्धु-उपत्यका से उन्हे भगा सकते थे, लेकिन इसी समय अस्थायी सन्धि हो गई और हम रुक जाना पडा। पृथ्वीचन्द और कर्नल खुशहालचन्द दोनो को इस वीरता के उपलक्ष मे 'महावीर चक्र' मिला। मित्रो का यह काम मेरे लिए भी अभिमान की बात थी।

ठाकुर पृथ्वीचन्द उत्तरी वियतनाम की स्थिति देखकर बडे प्रभावित हुए। वह रहे थे, चीटियो की तरह वहाँ का हरेक आदमी काम मे लगा हुआ है। युद्ध के कारण देश का सत्यानाश हुआ, कितनी ही चीजो का वहाँ भारी अभाव है, तो भी सभी लोग खुशी-खुशी अपने देश के नव निर्माण मे लगे हुए हैं। अपने यहाँ, विशेषकर सैनिक अफसरो की स्थिति से सन्तुष्ट

नही थे। कह रह थे, यहा पर तरक्की होने म तिकडम और मौका मिलने पर घूस रिश्वत बहुत चलती है। जिसके कारण ईमानदार सैनिक अफसर निरक्त हो गये हैं। कहते हैं—'हम अपने लडका को अब सेना म नही भेजेंगे।' मैंने पूछा—"और यदि देश पर सकट आ जाए तो ?" ठाकुर साहब ने कहा—'तब ता हम अपने सवस्व की बाजी लगानी होगी। हम अपनी स्वतत्रता दूसरी बार खोने के लिए तैयार नही है।"

कमला न अपनी गुरुआनी कलिम्पाग के हार्टस्कूल की प्रिंसिपल का लिखत समय आशा प्रकट की थी कि एम० ए० करके मैं शायद कलिम्पोग चली आऊँगी। उन्होंने बहुत खुशी प्रकट करत हुए लिखा—"तुम्हे अपन स्कूल म आकर पढाना चाहिए।" एक खूटा और गड गया। अब वह कलिम्पाग का ही स्वप्न देखने लगी।

देहरादून—पिछले साल १८ दिसम्बर को कलेजे म दद हुआ था। इसलिए १४ दिसम्बर को यहाँ से चल पडा। आकाश म बादल थ, मसूरी म सर्दी काफी थी। डेढ बजे घर स निकला। जया रोन लगी। गोपालू सामान लिए पीछे रह गये, इसलिए बस नही मिल सकी। टक्सी पकड कर शाम श्री गयाप्रसाद शुक्लजी क घर पर पहुँचे जब कि अँधेरा हान लगा था।

सावियत नता ख्रुश्चेव और बुल्गानिन तीन हफ्ते के दौरे पर भारत आए थे उनका आशातीत स्वागत हुआ। भारत के अधिकाश लाग गरीब या अनिश्चित जीवन वाले हैं। वह पिछली डेढ पीढिया से रूस के निश्चित जीवन के बारे म सुनत आये थे, और सभी कामना करत थे कि हमारा देश भी कब उस तरह का होगा। रूसी और विदेशी पलीताही ने सारे समय हजारा झूठी झूठी बातें कहकर सोवियत के खिलाफ धूआधार प्रचार किया पर उसका हमारे जनसाधारण पर कोई असर नही पडा। आज अपने हृदय के भावो को प्रकट करन का अवसर मिला था, फिर वह क्या न हर जगह क प्रदशनो और सभाओ म पुराने रिकार्डों को तोडत ? आज ही रूसी नेता दिल्ली से काबुल गय। मुनस लोग पूछन रह थ—'इसका क्या असर हागा ?' मैंने कहा—"पैलाशाह और उनके हाथ म त्रिशूल के ऊपर कोई असर नही होगा उनकी छाती पर साँप लोटेगा। जा पहल न ही सावियत

के हितैषी थे उनका उत्साह दूना होगा। बीच के ढिलमिलयकीनो म से बहुतो को सच्ची बात का पता लगगा, और वह अमेरिकन प्रोपगडा के जाल स बाहर जाएँगे।" यद्यपि हिमालय की दो पुस्तको का छोड सभी खटाई म थी, लेकिन मुझे अपना काम पूरा करना था। 'हिमाचल प्रदेश' और "जौनसार देहरादून" को भी मैंने लिख लिया था। देहरादून जिले के बारे म कुछ और बातें भो जोडना चाहता था। खासकर हाल म देहरादून म जो खुदाई हुई थी, उसके स्थान को देख लेना चाहता था। १५ दिसम्बर को कुछ घटा क लिए एक मोटर मिली और उस पर शुक्लजी और मेहताजी क साथ मैं चला। चूड़पुर बाजार होते जमुना पुल पार करने से पहले ही दाहिनी ओर कुछ दूर जाकर, पक्की सडक स प्राय डेढ मील पर उस जगह पहुँचे, जहा खुदाई म ईसवी दूसरी शताब्दी क राजा शीलवर्मा न यज्ञ किया था। सहारनपुर के लाला जगतप्रसाद न जगलात स कई सौ एकड जमीन लेकर यहा अपना फाम बनाया था। बुलडोजर जगल साफ करने म लगे तो उनके फाल म कुछ इट फँस गइ। खोदने पर कई इटो को देखकर लालाजी ने भारतीय पुरातत्व विभाग को सूचना दी। पिछले दो सालो मे उसने खुदाई की। मालूम हुआ, शीलवर्मा न यहाँ कम से कम चार अश्वमेध यज्ञ किए। कई खडित ईंटो पर कुषाण ब्राह्मणी अक्षरो म लेख था। पूर्ण लेख दिल्ली ले गए थे जो था

नपतेर्वार्षगण्यस्य पौणापष्ठस्य धीमत
चतुर्थस्याश्वमेधस्य चित्याय शीलवर्मण ।
सिद्ध। ओ युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपते ।
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपते शीलवर्मण ।

शीलवर्मा के चौथे अश्वमेध की यह चिति (वेदी) थी। खोदने पर पास म ही दो और चितियाँ मिली, लेकिन चौथी का पता नही। अश्वमेध चुप चुप नही किया जा सकता। उसम घोडा छोडकर पडोसी राजाओ को युद्ध क लिए चेलेंज दिया जाता, जिसम कितने ही राजा मिलकर मुकाबिला कर सकते थे। इसलिए शीलवर्मा शक्तिशाली राजा हुआ होगा इसम सन्देह नही। उस समय पास के पहाडो का नाम युगशैल था, जिसका वह महीपति था। ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी का उत्तरी भारत का इतिहास अध

काराच्छन्न है। इतना ही मालूम है कि कुषाण प्रभुता अब छिन्नभिन्न हो रही थी और प्रतापी गुप्ता के आने में शताब्दी नही तो कई दशाब्दियां की दर थी। इसी समय कुरु और उत्तर पचाल को लेते सारे पहाड पर शीलवर्मा का शासन रहा होगा। उससे चार पांच सौ वर्ष पहले यहा से जमुना पार थोडी दूर आगे आधुनिक काल की एक प्रसिद्ध नगरी थी जिसके महत्व को जानकर अशोक ने शिला पर अपने धर्मलेख खुदवाए। हम अश्वमेध यज्ञ की बाज (श्येन) के आकार की चिता को देख रहे थे। उसी समय लालाजी के कारिंदे आ गये। चौकीदार बतला रहा था—इसमे घोडे की हड्डिया भी मिली थी। कारपर्दाज साहब आर्यसमाजी थे, वह भला कैसे मानते कि पुराने धर्मयुग मे जबकि वेद भगवान की तूती चारो तरफ बोल रही थी, कोई घोडा मार कर यज्ञ कर सकता था। घोडा मारते ही नहीं बल्कि यज्ञ शेष के रूप उसके प्रसाद को भी पुरोहित और यजमान गले के नीचे उतारते थे, इसे वे भला कैसे मानते? उन्होने कहा कुछ विद्वानो ने हड्डी को घोडे की बतलाया है, लेकिन इसमे सन्देह है। सन्देह की बात वह अपने जैसा की ओर से कह रहे थे। मैंने कहा—' सन्देह है? वह बडे जानवर की हड्डियाँ घोडे की नही तो ऐसे की होगी जिसका मानना आपके ख्याल से और बुरा होगा।" लेकिन यह गोमेध नही था क्योकि शीलवर्मा ने स्वयं इसे अश्वमेध लिखा है। वस्तुत ऐसे लोगो से साथ माथा पच्ची करना ही बुरा है।

वहाँ से फार्म बहुत बडा है। पूजीवाले आदमी फार्मों से पैसा कमाना चाहते हैं, और उसे ऐसी जगह लगाना चाहते हैं जहा कम से कम खतरा हो। पहले जमीदारी इसके लिए उपयुक्त समझी जाती थी, अब उसकी भी जड खुद गई। खेत भी एक मात्रा में ही रख सकते हैं लेकिन आधुनिक ढंग के फलो या दूसरी चीजो का फार्मों मे एकड की सीमा नही है, यह जानकर अब वह इस तरह के फार्मों में पैसा लगाने लगे है। वहाँ बुलडोज़र और ट्रैक्टर थे, बाकायदा आफिस था। खेत अभी-अभी बाये गये थे। जहाँ हजारो वर्षों तक जगल के वृक्षो की पत्तियाँ सडती रही हैं और जमीन मटियाली है, वहाँ फसल खूब होगी ही। हम लौटकर दाई सडक पर आए। बाई और सामने की ओर एक वैसी ही सडक अशोक आश्रम की तरफ जाती दिखाई पडी। श्री धर्मदेव शास्त्रीजी से आने के लिए कई बार वह पुकार था, यद

अच्छा मौका था। कुछ खेतो म फिर जगल स होकर आधा मील जाना पडा। शास्त्रीजी आश्रम मे ही थे। पिछली मतबे जब १९४३ म कालसी आया था, तो वह जेल म थे और एक टूटे-फूटे से मकान मे अशाक आश्रम था। उसे और बढान के लिए इस जगल म लाया गया। आश्रम मे काफी जगह है, जिसम खेती और साग सब्जा भी होती है। आश्रम का काम काफी बढ गया है। वह हिमालय की हरिजन और पिछडी जातियो म सेवा का काम कर रहा है। कनौर के सबसे पिछडे हगरग इलाके चम्बा के पागो और ऐसे ही दूर दूर की जगहो पर उसने पाठशालाएँ, हस्तशिल्प और चिकित्सा स्थान स्थापित किए हैं। इस वक्त कितने ही कायकर्त्ता शिक्षण-शिविर के लिए आए हुए थे। अगले ही दिन पिछडी जातियो के बडे अफसर आने वाले थे। हम गाडी का साढे चार बजे ही मालिक का लौटा देना था, इसलिए एक एक मिनट को फूक फूककर खच करना पड रहा था। पर, शास्त्रीजी के विद्यार्थिया के सामने थोडा बोलना और कुछ जलपान करना अनिवाय था। शुक्लाइनजी बेचारी सिवाय कुम्भ और अधकुम्भ के मुश्किल ही से कहो देहरादून से बाहर जाती थी। इस वक्त उन्ह भी ले आये थे, साथ मे उनकी दोना नतिनियाँ मधू और सुधा भी थी। अशाक आश्रम के काम से हमारी पूरी सहानुभूति थी, यद्यपि उसका यह अथ नही कि वह मज की अचूक दवा है।

मोटर से लौटकर फिर पक्की सडक पर आ जमुना का पुल पार किया। कालसी जान की निचली सडक छाडकर ऊपर चले गये, लेकिन उधर से भी एक सडक बाजार का जा रही थी। बाजार मे पहुँचे। यद्यपि अब भी काल्सी बारह वष पहले की तरह ही सिसक रही थी लेकिन अब की चार-छ दूकानें देखी। जाडा म चकरौता तहसील यहाँ उठ आती है, शायद उसक कारण हो। खाने म दर हो रही थी और सुधा मधु भूखी थी। बाजार म एक मन्दिर के आगे पक्का चबूतरा मिला। वही खान का डौल लगान लग। पास के दूकान वाले बडे सज्जन निकले। लाकर दरी बिछा दी, लोटा और बालटी दे दी। पास ही निमल जल की नहर बह रही थी, जा शायद अशोक के समय भी इसी तरह चलती हागी। वही बैठकर भाजन किया। शुक्लाइनजी तरह-तरह के पक्वान बनाकर लाई थी। घर

का जमा दही भी लाना चाहती थी, लेकिन हमने कहा—दचके में सारा दही गिर जाएगा। खैर, पूड़ी भी थी, मीठी चीजें भी थीं, नमकीन भी, और इतनी अधिक कि ड्राइवर सहित हम लोग खाकर खतम नहीं कर सकते थे। कपिलजी अब चकरौता तहसील से पेंशन प्राप्त कर ग्राम सुधार के काम में अपना समय दे रहे थे, वह यहीं पर थे। वह हमारी प्रतीक्षा निचली सड़क पर कर रहे थे, और हम दूसरी सड़क से चले आए। लौटते वक्त उनसे मिले। खाना पीना कर चुके थे, और उधर समय की भी कोताही थी, इसलिए कुछ बातचीत हुई। उनसे मालूम हुआ, यहाँ काल्सी के खेतों में भी कहीं-कहीं पुरानी बस्ती के अवशेष मिलते हैं।

लौटते समय सरकारी डेरी को भी देखना चाहते थे, लेकिन समय नहीं रह गया, पर अशोक के अभिलेख का देखना तो जरूरी था। पक्की सड़क पर मोटर छोड़ हम जमुना के किनारे उस शिला के पास गए, जिस पर अशोक के अभिलेख हैं, और जिसकी रक्षा के लिए मकान बनाकर ढाक दिया गया है। दरवाजे में ताला लगा था, चौकीदार नहीं था, इसलिए हमने बाहर ही से देखकर संतोष किया। लौटते वक्त दस कदम पर एक मकान और एक गोरे चिट्टे प्रौढ आदमी को देखा। उन्होंने बतलाया, मैं कश्मीर का दरद हूँ, यहीं कारबार के सिलसिले में आया और घर बना इन खेतों को आबाद किए हूँ। हम साढ़े ८ बजे देहरा पहुँच कार को लौटा देने में सफल हुए।

१६ दिसम्बर को यहां के एक होनहार तरुण वकील अपनी पत्नी के साथ आए। वह एम० ए० एल एल० बी० हैं, और फारसी की उच्च शिक्षा भी प्राप्त की है, पत्नी एम० ए० हैं। चाहते थे पत्नी के पी एच० डी० का मैं निर्देशक बनूं। घर में जिन स्त्रियों को बहुत काम नहीं रहता, वह यदि अपने समय का उपयोग कुछ और पढ़ने में किया करें, तो अच्छा ही है। पर हमारे यहाँ की अधिकांश स्त्रियों के तो युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ अब जेवर का काम करती हैं। जैसे उनके शरीर पर कुछ हजार के सुनहले और जड़ाऊ आभूषण चाहिए, वैसे ही एम० ए०, पी एच० डी० भी शोभा की चीज है। मैंने उन्हें कहा कि रहीम के ऊपर आप अनुसंधान करें। रहीम सम्बन्धी कितनी ही सामग्री फारसी में मिलती है जिसमें आपके पति सहायता दे सकेंगे।

दिल्ली—उसी दिन शाम का गाडी पकडी, और १७ को साढे ५ बजे
ी पहुच गया। रिक्शा ले भया के घर पर गया। वहा ताला ब द था।
क बठा इ तजार करना पडा, जब तक कि अंधेरा दूर नहीं हो गया।
ी आना प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के लिए हुआ जा
ही शुरू हुआ था। प० गावि द वल्लभ प त ने उद्घाटन भाषण किया।
सभापति श्री अन तशयनम् अय्यगर न अपना अध्यक्षीय भाषण दिया।
ी के देवताआ मे से दो न हि दी के पक्ष का समथन किया लेकिन जब
ढेरी पर साप बैठा है तब तक हि दी का रास्ता कैसे साफ हो सकता
? प्रधान मत्री जबानी जमा खच कभी कभी दे दिया करते है, सो भी एक
: से हि दी का यदि कुछ समथन करते हैं, तो दूसरी ओर उसके विरोध
लिए दूना मसाला दे देते हैं। शिक्षा म त्राल्य ता इसीलिए बना है कि
दी के रास्ते मे पग पग पर रोडा अटकाए। मैंने इन बातो को अपने अगले
' के भाषण म कहा। वहा आचाय चतुरसेन शास्त्री से मिलकर बडी
न्नता हुई। वह हमारी पीढी के है, और मेरी ही तरह से सस्कृत से हि दी
कथासाहित्य क्षेत्र मे उतरे। १८ दिसम्बर को साथी अजय से मिलने गया।
ता मैंने सुना था कि उनकी पत्नी डा० गोपीच द भागव की बेटी है,
तु मै यह नहीं समझता था कि वह मेरी पूवपरिचिता भी हैं। फिर च द्र-
तजी के यहाँ गया। दिल्ली क्या हमारे सभी जगहा के नौकरशाह जनता
प्राण धन की काई पर्वाह नही करते। बरसात म बाढ आई मोरियो का
ी पीने के पानी से मिल गया। स्वास्थ्य विभाग ने पर्वाह नही की, और
ा लोगो को उसी के कारण खतरनाक पीलिया राग हा रहा था। च द्र-
तजी भी पीलिया म पडे हुए थे। बुखार भीषण हा उठा था। उ होंने
ग्ना, अनाडी डाक्टर न अनुचित इजेक्शन देकर पीलिया पदा किया। पर,
ा तो मालूम ही है कि पीलिया का कारण इजेक्शन नही था।

ढाई बजे सम्मेलन की साहित्य परिषद् का अधिवेशन शुरू हुआ। सभा-
ति पद का भाषण मैंने दिया, और दिल्ली के देवताओं की बेरुखी पर खूब
ड्वी भाठी कही। यह बाते देवताओ के काना तक पहुँच नही सकती, उसके
ए तो अग्रेजी म कहा जाना चाहिए। लेकिन, मै देवताओ पर विश्वास
ही रखता, मरे लिए जनता सब कुछ है। हि दी का यदि सविधान म सघ

को भाषा स्वीकार किया गया, तो देवताओं के कारण नहीं, बल्कि जनता के कारण। देवता जानते थे, कि वोट मांगने के लिए हमें लोगों के पास ही जाना पड़ेगा हिन्दी का विरोध करके हम बहुत सा वोट खो देंगे, इसीलिए देवों महादेवों सबको हिन्दी के लिए हाथ उठाना पड़ा। और भी कितने ही हिन्दी साहित्यिकों ने भाषण दिये। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का भाषण बहुत अच्छा और विनोदपूर्ण था। जैनेन्द्रजी ने दर्शन बघारा। नरेन्द्र शर्मा भी अच्छा बोले। सभा समाप्त होने से पहले ही निकले कि लाल किले में श्रीमती सुनयना सेन के स्वागत में शामिल हों। साथी फारूकी ने आध घंटा प्रतीक्षा भी की, लेकिन देर से आया, समय पर सवारी नहीं मिल सकी और जा नहीं सका। दिल्ली में रहते छापने के लिए पड़ी आधे दर्जन से अधिक पुस्तकों के लिए प्रकाशक ठीक करना था। लेकिन, एक ही पुस्तक 'शादी' (उपन्यास) दे सका जो भी लौट आई। सबसे ज्यादा उत्सुक था हिमाचल प्रदेश' और 'संस्कृत काव्यधारा' के लिए। 'संस्कृत काव्यधारा' के लिए माचवजी ने लाड साहब से मिलने के लिए आग्रह किया। उनके यहाँ ७ बजे के करीब पहुँचा। घंटे भर प्रतीक्षा करने पर वह आफिस से आए। पुस्तक को दिखलाया। लेकिन, इस तरह के संस्कृत काव्य-संग्रह को अकादमी दूसरे विद्वानों से तैयार करा रही थी, इसलिए वह इसे लेने में असमर्थ थे। कितनी ही देर तक बातें होती रहीं। फिर वहाँ से निकले। उनका बँगला औरंगजेब रोड पर, बस स्टैंड से बहुत दूर था। उस रात को कोई सवारी नहीं मिल रही थी बड़ी परेशानी हुई। पछता रहा था, क्यों इस रात का आना स्वीकार किया ? खैर, मेरे साथ शिव शर्मा भी थे इस लिए हम लोगों ने जाकर बस पकड़ी, और रात को १० बजे के करीब घर लौटे।

२० दिसम्बर को सवेरे निकला। यद्यपि हम अब्दुर्रहीम खानखाना की समाधि देखना था लेकिन पास ही में निजामुद्दीन की दरगाह भी है, जिसके भीतर अमीर खुसरो भी सो रहे हैं। आशा थी, शायद वहाँ खुसरो की बाबत कुछ किताबें मिल जाएँ। किताब नहीं मिली। पता लगा पास ही में गालिब का मकबरा है। वहीं गए। कब्रिस्तान में मामूली कब्रों की तरह गालिब की कब्र भी रही होगी, लेकिन अब उसके ऊपर संगमरमर की मढ़ी बना दी गई

बस पकडी। भलेमानुस ड्राइवर जामिया के पास तक छोड आया। हम ठीक समय पर नही आए थे। जामिया की छुट्टी हा रही थी। हमारे परिचित अध्यापक डा० सलामतुल्ला और दूसरे छुट्टिया मनाने बाहर चले गए थे। स्कूल को देखा। फिर ट्रेनिंग कालेज की तरफ गए। मक्तबा के सचालक श्री हामीद अली खा मिले। उन्होने अपने कामो को दिखलाया। यहाँ से अभी अभी वयस्को के लिए हिन्दी मे निकले विश्वकोश "ज्ञानसरोवर" की दस जिल्दो म से पहली जिल्द निकली थी। पुस्तक बडी उपयोगी थी, कोई हिन्दी का पक्षपाती उसमे कोई दोष नही निकाल सकता। हामिद अली साहब कह रहे थे—हमने आग इसका निकालना बन्द कर दिया, क्योकि सम्प्रदायवादी हिन्दू सरकार के जामिया मिलिया को रुपया देकर इस काम के करने की बुरी तरह से नुक्ताचीनी करते हैं। मैंने जोर देकर कहा—कम से कम इसकी बाकी नौ जिल्दो को निकालने तक तो अपने हाथ को पीछे न हटाइये। हिन्दी हिन्दुओ की बपौती नही है। कुतबन, मझन, जायसी, रहीम ऐसे दावे को झूठ साबित करते हैं। बीच की शताब्दियो म मुसलमान उदासीन रहे, लेकिन वह समय बहुत जल्दी आ रहा है जब मुसलमान हिन्दी के अच्छे-अच्छे कहानीकार, निबन्धकार और कवि होगे। सारे हिन्दी क्षेत्र मे मुसलमान तरुण-तरुणियाँ हिन्दी पढ रहे हैं। उन्हे अपना उचित स्थान पाने से कौन वचित कर सकता है? क्या मुसलमान होने से हिन्दी साहित्यकार भेदभाव बरतेंगे? यदि कुछ सकीर्ण हृदय एसा करना भी चाहे, तो वैसा करने मे वे सफल नही होंगे, यह मुझे पूरा विश्वास है।

यह ठीक है कि जामिया मिलिया म अब भी हिन्दी की उपेक्षा है, और उर्दू का सर्वेसर्वा रखा जा रहा है। यहा के विद्यार्थियो म ऐसे भाव पैदा किए जाते हैं जिसके कारण यहाँ से निकले तरुण तरुणियाँ अपने को विशाल भारतीय जाति का अभिन्न अग न मान पुराने पृथक्त्व को कायम रखे। एक नौजवान इतिहास के प्रोफेसर ने मेरी उर्दू 'वोल्गा से गगा' की भेंट की हुई कापी को इसलिए फाडकर फेंक दिया कि उसमे अकबर के एक मुसलमान अमीर की लडकी का ब्याह हिन्दू अमीर के लडके से कराया गया था। इससे सन्देह और बढ़ जाता है। लेकिन समय ऐसे प्रतिगामी लोगो का सहायक नही हो सकता। हिन्दी जाति एक होकर रहेगी, ऐसे चाहे जो मान

पाने वाला गरीब। श्मशान वैराग्य तो सभी को आ जाया करता है, लेकिन वह दो मिनट का होता है। धनी भी जब विपरीत परिस्थिति म पडते हैं, तो उनको ऐसा वैराग्य हो जाता है।" हाल म ही डालमियाजी पर जो सकट आया था, उसक कारण उनक परिवार म इस तरह का श्मशान वैराग्य आना जरूरी था। अपने पुत्र का चक्रवर्ती और अपने का अगल जन्म मे कही का राजा होने की भविष्यवाणी ज्योतिषियो ने की थी। डालमियाजी उसी धुन म चल जा रहे थे। अन्त मे जबकि उनका पत्नियो और सन्ताना की सख्या एक दजन के करीब पहुँच गई तो पासा उलटा पड गया। सट्टेबाजी मे उन्होने करोडो कमाया, और उसी सट्टबाजी ने आज ऐसी हालत कर दी, कि उनका सब कुछ दामाद के हाथ मे चला गया। फिर परिवार क्या न चिन्तित होता? आज की सामाजिक व्यवस्था कितनी निष्ठुर है।

२१ को फुटपाथ पर जा रहे थे। किसी ने केला खाकर छिलका फेंक दिया था। देखा नही पैर पडा और फिसलकर गिर गए। बाया घुटना छिल गया, खून नही निकला, पर लाल हो गया। डायबेटीज़ वाले को तो इससे बहुत बचना होता है, लेकिन चौबीस घटे और तीसियो दिन कितना बचे, कभी आदमी चूक ही जाता है। तुरन्त पनिसिलिन का मलहम लगाया। अगले दिन कानपुर पहुँचना था।

कानपुर—पिछली रात को ही रेल पर बैठे २२ को ७ बजे स्टेशन पहुँचा। सेकड क्लास म जगह मिल गई। सब के पास अधिक स अधिक सामान था जिससे रास्ता रुक गया था। गाजियाबाद म श्रीमती कमला चौधरी आइ। डब्बे मे अगर एक आदमी परिचित निकल आए तो जगह मिल ही जाती है। उनके साथ छोटी लडकी भी थी, जिसे मैंने डेढ दो वर्ष का देखा था। अब वह कान्वेन्ट म पढ रही थी। पिता मर गए थे, उसी सिलसिले म कमलाजी मिर्जापुर जा रही थी। अब आयु का प्रभाव पडने लगा था। इधर उन्हे भी डायबेटीज़ की शिकायत है। रास्ते भर साहित्य और राजनीति की चर्चा रही। साढे ४ बजे गाडी कानपुर पहुँची। स्वागत के लिए मित्र किसी दूसरी ही तरफ ढूढ रहे थे। डब्बे म से बाहर निकलने मे काफी मुश्किल पडी। समझा समय बहुत बीत गया है, इसी कारण कोई मित्र यहा नही पहुच सका। प्रतीक्षा किए बिना ही कुली से सामान

उठवा कर पुल पार तागे पर बैठ सीधे मनीराम की बगिया मे श्री पुरुषोत्तम कपूर के घर पर पहुँचा। मालूम हुआ, लोग फलमाला लिए प्लेटफाम देख रहे है।

कानपुर मे जब-जब आया हू तब-तब प्रोग्रामो की बडी भीड रहती है। चाहे उसके कारण थोडा-सा तरद्दुद हो पर इतने मित्रो से मिलकर मुझे प्रसन्नता ही रही। कानपुर की कई साहित्यिक सस्थाओ की ओर से शाम का स्वागत हुआ। प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी सभापति थे। मैंने भी स्वागत का उत्तर दिया। लौटकर आन पर घर पर ही प्रगतिशील, तरुण लेखको की गोष्ठी थी, जिसमे एक दो घटे बीते।

२३ दिसम्बर को जुहारीदेवी और म्युनिसिपल कन्या इटर कालेजो मे भाषण देना पडा। इसमे से जोहारी देवी मे श्री पुरुषोत्तमजी की पत्नी श्री विमला कपूर पढाती हैं। डबल एम० ए० करने का कुछ उपयोग होना करना चाहिए यह सोच कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। पर पुरुषोत्तमजी इधर बुरी तौर मे फँस गए थे। साझे मे लाखो का कारबार था। एक साझीदार के ऊपर इतना छोड दिया, कि कई वर्षों तक लेखा जोखा नही किया। फिर मालूम हुआ कि उन्होने कई लाख के गुलछर्रे उडाये। एकाएक पहाड सिर पर पडा। बहुत-सी जायदाद बेचकर देन का भुगतान किया। अब भी बतला रहे थे ८० हजार रुपया बाकी है। रहने का घर भी रेहन है। जितना वक्त भार उतारने के लिए तरद्दुद कर रहे थे, यदि उतना पहले किया होता, तो यह दिन देखना ही क्या होता ? पर, हमारी सयुक्त परिवार-योजना के लिए अभी ऐसे कडे नियम नही बने है, कि उसकी नया का मँझदार मे जाने से पहले ही खतरे का पता लग जाए। पुरुषोत्तमजी बहुत सहृदय और उदार पुरुष है। उनकी इस अवस्था को देखकर हमे भी दुख हुआ। उनके घर मे साथी सतोषी जैसा कम्युनिस्ट पैदा हो गया है, जिसके कारण घर के स्त्री-पुरुष भी कम्युनिज्म से भडकते नही। पुरुषोत्तमजी और उनकी पत्नी रूस को अपनी आँखो देख आए हैं। वह जानते है कि वहा का जीवन सबके लिए कितना निश्चिन्त और सुखद है। हमारे प्रोग्रामो को पालन करने मे पुरुषोत्तमजी हमेशा अपनी कार लिए साथ साथ रहे।

शाम को ६ बजे श्रीचद्र कौशल के यहाँ भोजन का निमत्रण था।

साला से मैंने रात के भोजन को छोड दिया है। इधर डाक्टरो के कहने पर कि एक ही समय पटका पूरा भरना ठीक नही है उसे रात पर भी बाटना चाहा, लेकिन अभी अनुकूल नही साबित हुआ। फिर रात के वक्त सौ पचास किलोरी के भीतर रहते साग सब्जी खाना स्वीकार किया। अच्छा भी था, क्योकि इसके द्वारा किसी मित्र को निराश करने से बच जाता था। कौशल जी के यहा साग-सब्जी तैयार थी। पिछली एक यात्रा म कमला के साथ हम उनके घर पर ठहरे थे। उस वक्त दोनो भाइयो और देवरानी जेठानी ने बडा स्वागत सत्कार किया था। कौशलजी की बीवी बार बार पूछती थी—'कमलाजी को क्यो नही लाये ?" मैंने कहा—एम० ए० का अन्तिम वर्ष है पढाई म विघ्न होता इसीलिए नही लाया। कौशलजी ने टेक्नालाजी म बी० एस सी० किया था। हमारे परिभाषा के काम म उन्होने बडी सहायता की थी। लेकिन टेक्नालोजी की जगह वह टोले मुहल्लेवालो को इन्कम टेक्स के मामलो म परामर्श देने लगे। धीरे धीरे इसी ने व्यवसाय का रूप लिया, और अब तो वह एल० एल० बी० होकर पूरे वकील बन अपने व्यवसाय मे काफी ख्याति रखते थे।

उसी दिन शाम को बगाली भद्रजनो की मिलनी म हिन्दी भाषा और राष्ट्रभाषा की समस्या पर मैंने भाषण दिया। छोटी-सी सभा थी, लेकिन सभी सुशिक्षित और सुसस्कृत थे। उसी रात एक और साहित्य गोष्ठी म जाना पडा, जहा कानपुर के साहित्य राजनीति पितामह श्री नारायणप्रसाद अरोडा और कुछ कानपुर के करोडपति भी मौजूद थे। देर तक साहित्य चर्चा रही।

२४ दिसम्बर को सवेरे ६ बजे से रात के १० बजे तक पाच जगह व्याख्यान देने जाना था, जिनम एक डी० ए० वी० कालेज के पोस्ट ग्रेजुएट छात्रो के सामने था। एक स्तरवाले श्रोताओ के सामने बोलने म मुझे बहुत सुभीता होता है और अनेक स्तरवालो के सामने दिक्कत। इसका कारण यही है कि मैं श्रोताओ को देखकर बोलता हूँ। व्याख्यान को जस-तस श्रोताओ के सामने फेंकना नही चाहता। उस दिन दोपहर का भोजन श्री खेतानजी के यहाँ हुआ। खेतानजी मारवाडी हैं। उन्होने प्रगतिशील साहित्य के प्रचार और प्रकाशन का काम अपने कररेंट बुक डिपो द्वारा किया है।

पुस्तक-विक्रय और प्रकाशन के व्यवसाय को मारवाडी व्यवसायी पसन्द नही करते। इसमे सिमट कर बूद जमा होती है, और उन्हे चाहिए तुरन्त बडे-बडे नफे, जिसमे दो चार वर्ष मे दो चार करोड बनाये जा सके। उनके सामने ऐसे उदाहरण भी काफी है। फिर खेतानजी तो साधारण प्रकाशक नही, बल्कि प्रगतिशील साहित्य के प्रकाशक है, जिसमे और भी कम लाभ होने की गुजाइश है। अपनी प्रगतिशीलता को उन्होने व्यवसाय के तौर पर ही नही दिखलाया, बल्कि अपनी जाति को भी चलेन्ज दिया। उनकी पत्नी मुस्लिम माता और हिन्दू पिता की सन्तान है। मारवाडियो के लिए यह कितना कडवा घूट है। तरुण की हिम्मत कितनी प्रशसनीय है, इसे कहने की आवश्यकता नही। उस दिन रात का साग भोजन श्री ललितकुमार अवस्थी के यहा हुआ। पहले ललितजी सम्पादक थे। वह अनिश्चित काम था, इसलिए अब वह कालेज मे प्रोफेसर है। यह कार्य साहित्य साधना मे सहायक है। उनकी वृद्धा माता अब भी जीवित है। उन्होंने दीवार पर ठापा बना रक्खा था। पूछने पर मालूम हुआ कनौजिया मे भी अहोई की पूजा होती है। भोजपुरियो मे न देखकर मैने समझ लिया था, कि यह सिर्फ पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान की चीज है।

२५ दिसम्बर के बडे दिन को भी सवेर ९ बजे से रात तक सभाओ का ताता रहा। एक जगह राष्ट्रीय सेवा सघ के काग्रेसी तरुणो के सामने ससार उत्पत्ति पर और अन्तिम गोष्ठी मे तिब्बत की खोजो पर बोला। यहा प्रयाग से श्री देवी प्रसाद शुक्ल (प्रयाग विश्वविद्यालय) भी मिले। ८० वर्ष के करीब पहुँच कर भी अभी वह काफी तन्दुरुस्त है।

उस दिन दोपहर का भोजन श्री जगदम्बाप्रसाद हितैषी के यहा हुआ। कान्यकुब्ज ब्राह्मणो का भोजन था, जिसमे मास की प्रधानता थी। शाम को श्री कैलाश कपूर के यहाँ साग भोजन हुआ। पिछली बार कैलाशजी अरविन्द के अनन्य भक्त मालूम हुए थे, पर अब रमण महर्षि के थे। दोनो ही महापुरुष अब ससार छोड गये है। "भारत मे ब्रिटिश राज्य के सस्थापक" पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए श्री खेतानजी ले गये। एक भार तो कम हुआ। उसके कुछ भागो को दोहरा कर यही दे दिया।

प्रयाग—२६ दिसम्बर को पौने ५ बजे सवेरे ही पुरुषोत्तमजी हमे

स्टेशन ले गय। सवा ५ वजे ट्रेन आई। पहले दर्जे का एक छोटा सा कम्पार्टमेन्ट मिला। अँधेरे-अँधेरे ट्रेन रवाना हो गई। इलाहाबाद जिले म घुस गए थे, जब कि मनौरी के पास कही पर मिट्टी की छता का स्थान खपडला ने लिया। मेरे लिए यह भेद काफी महत्व रखता है, क्याकि मिट्टी की छता का आरम्भ रूस म उराल पर्वतमाला से शुरू होते मैंने देखा था।

स्टेशन पर श्रीनिवासजी, डा० उदयनारायण तिवारी, श्री वाचस्पति पाठक, श्री जयगापाल मिश्र और दूसरे मित्र मिले। वहा स हम श्रीनिवास जी के घर पर पहुँचे। भाजनापरान्त पहले सम्मेलन मुद्रणालय म छपाई की गतिविधि दखन गए। आजकल प्रेस सम्मेलन परीक्षा-सम्बधी कागज छापन मे अस्त व्यस्त था। जा गेली प्रूफ हमने देखकर लौटाया था उसका सशोधन भी नही हो सका था। यह जानकर सताेप हुआ कि पुस्तक आगे पच की जा रही है। श्रीनिवासजी के यहाँ देखा, कि 'काल मार्क्स" के १८ फाम छप चुके है। 'सस्कृत काव्यधारा' के छापन म वह हिचकिचा रह थे, लकिन पीछे स्वीकार कर उन्हान सम्मेलन मुद्रणालय म छपाना मजूर किया।

कमला की चिट्ठी पाकर चिन्ता हुई। हपी वेली म रतिलाला के यहाँ चारी हो गई और चोर बरावर आ रह है। मगल परीक्षा देन देहरादून चले आए थे। उस वक्त भरोसा कवल भूत का था। कमला रिवाल्वर को हाथ नहीं लगाना चाहती थी। अब लिखा था—'मुझे उसका अफसोस हो रहा है। बन्दूक और रिवाल्वर दोना को अलमारी से निकाल कर चारपाई के पास टाग रखा है।" मैंने लिख दिया— कल्याणसिंह के जिम्मे बँगले का लगाकर तुम देहरादून या अमतसर चली जाओ।"

अगले दिन सम्मेलन मुद्रणालय म गुठेजी से मुलाकात हुई। उन्हान मध्य एसिया का इतिहास" को जनवरी तक निकाल देने के लिए कहा। मुझे सन्ताप क्यो होने लगा, जब कि मैं जानता था, कि प्रेसवाले, जितना ही जल्दी निकालने के लिए कहगे, वह उतना ही देर करगे। उसी दिन निरालाजी स मिले। स्वास्थ्य बुरा नही मालूम हुआ बस आयु का प्रभाव ता था ही। आजकल वह सिर्फ अंग्रेजी म बात करत थे। कुछ देर बात करके मैं वहाँ से उठा, ता वह भी बाहर निकल आए। फाटा लिए और नमस्कार

करके विदा हुआ। भोजन डा० तिवारी के यहाँ था। पुराने जमाने की कुटिया को कुछ हजार लगा कर उन्होंने नया रूप दे दिया है। अब वह प्रोफेसर के रहने लायक है। पीछे थोड़ी सी साग सब्जी की जगह भी निकाल ली। लेकिन, यह जानकर चिन्ता हुई, कि मालिका से कोई कागज-पत्र उन्होंने नहीं लिखवाया।

२८ को सवेरे म्युनिसिपल म्यूजियम देखने गया। श्री सतीशचन्द्र काला ने सभी चीजें दिखलाईं। म्यूजियम का अब अपना भव्य मकान बन गया है। मैं पहली बार आया था। अभी स्थान अपर्याप्त है, और पास में कुछ और इमारतें बन भी रही हैं। पुराने पंडित कल्पापूर्ण देवता जुट जाने चाहिए, वह अपना मकान अपने बनवा लेते हैं—इस बात की यथार्थता मैंने यहाँ देखी। यह सुनकर अफसोस हुआ कि इसी जिले में अवस्थित कौशाम्बी की सामग्री यहाँ नहीं जमा की जा रही है। उसमें से कुछ लखनऊ भी जाय, इसमें हरज नहीं, लेकिन, उस सामग्री को देखे बिना जो लोग कौशाम्बी देखेंगे, उनको घाटा होगा।

उसी दिन फतेहपुर जिले के एकडला के श्री ओमप्रकाश राउतजी ने अपने पूर्वजों के संगृहीत चित्रों को दिखाया। इनमें से कुछ चित्र बहुत ही सुन्दर हैं। राजा मानसिंह कछवाहा का चित्र उनमें से एक है। राग-रागनियों के दो सेट हैं, जिनमें से एक बहुत ही सुन्दर है। एकडला जैसे और भी गुमनाम स्थान हमारे देश में और घर हो सकते हैं, जहाँ पुरानी बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित है। कुतबन की 'मृगावती'' और मंझनकी 'मधुमालती'' भी इनके संग्रह में मिली हैं। वहाँ कितनी ही संस्कृत की हस्त-लिखित पुस्तकें भी हैं। मैंने सलाह दी कि इन चित्रों को दिल्ली के राष्ट्रीय चित्रालय में भेजना चाहिए, तभी ये सुरक्षित रह सकते हैं। ये राउत लोग एक विशेष जाति के हैं। इनके रीति रवाज राजपूतों की तरह हैं, लेकिन उनके साथ ब्याह शादी नहीं होती। सबके गोत्र काश्यप हैं। एक गोत्र होने से ब्याह करना पड़ता है, सिर्फ एक मूलस्थान का परहेज करते हैं।

कुछ देर के लिए श्री श्रीकृष्णदासजी के घर पर गये। उनकी बीवी ने मद्रिक पास कर लिया है, और एफ० ए० में पढ़ रही हैं। मैं इनसे थोड़ा श्रीकृष्णजी का दर्शन चाहता था, लेकिन मालूम हुआ, कि पति में पढ़ने में

कोई प्रोत्साहन नही मिला। सचमुच ही पत्नी ने हिम्मत का काम किया था। मध्याह्न भोजन के लिए श्रीपर्णेन्द पाण्डे के यहां आए। भात और मछली दाना वलियाटिक ढंग से बने थे। फिर वहीं के राधारमण कालेज फिर अग्रवाल इण्टर कालेज में व्याख्यान दिये। लौटते वक्त डा० बद्रीनाथ प्रसाद के यहा गये। बडी लडकी और लडके का ब्याह हो चुका था छोटी लडकी अरुणा का ब्याह २३ जनवरी को होने जा रहा था। डाक्टर साहब का आग्रह था और मैं भी बहुत चाहता था लेकिन आगे के प्रोग्रामो के कारण फिर लौटकर आने में असमर्थ रहा। यह ब्याह और डा० बद्रीनाथ प्रसाद का परिवार नये भारत के निर्माण का महत्वपूर्ण काम कर रहा था। सिर्फ बडी लडकी का ब्याह अपनी जात मे हुआ था, पुत्र और छोटी पुत्री ने जात पात और प्रान्त प्रदेश की सीमाएँ तोड डाली।

उस दिन शाम को पार्टी आफिस में गोष्ठी हुई। नागार्जुन ने अपनी कविता सुनाई। तरुण पण्डा ने बुन्देली के बहुत सुन्दर गीत गाये।

२९ दिसम्बर को सवेरे पहले डा० भगवतशरण उपाध्याय के पास गया। उनके पिता का शरीर सूख गया है पेट में केन्सर है। चल फिर रहे हैं और परिवार की गाडी खीचे जा रहे हैं। भगवतशरणजी यही कुछ काम कर रहे है। यदि हिन्दी विश्वकोश का प्रधान-सम्पादक मुझे बनना पडा, तो उनकी जरूरत मैं सबसे अधिक समझता। लेकिन अभी तो वह केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय के कारण खटाई मे पडा हुआ था। उस दिन मध्याह्न भोजन डा० बद्रीनाथ प्रसाद के यहा हुआ। भोजन करते वक्त बार-बार लक्ष्मीजी याद आती थी। इस घर में महीनो नही तो हफ्तो और न जाने कितनी बार मैं घर की तरह रहता लक्ष्मीजी भोजन कराया करती। अब सदा के लिए वह इसे सूना करके चली गयी।

शाम को निराला परिषद की ओर से गोष्ठी हुई। प० लक्ष्मीनारायण मिश्र, गिरीशजी और दूसरे मित्रो के साथ सयोग से श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी भी पहुँच गये थे। मिश्रजी ने अपने गाँव के प्राचीन अवशेषो के बारे में बतलाया, जिससे मालूम हुआ कि आजमगढ में न जाने कितने महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थान अनुसन्धानकर्ताओ की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सम्मेलन में झगडे के कारण गतिविरोध हो गया था। इससे हिन्दीभाषा

क्षेत्र के साहित्यकारो का सम्मेलन के अवसर पर मिलकर विचार करना रुक गया था। अब की उसी तरह का एक सम्मेलन वर्धा मे होने जा रहा था। वहा पर बहुत से मित्रो से भेट होगी, यह ख्याल कर मैंने भी चलना स्वीकार कर लिया।

वर्धा—उस दिन साढे ७ बजे रात को काशी एक्सप्रेस पकडा। यद्यपि भीड थी पर, ऊपर बिस्तरा बिछ गया था, इसलिए सोने का आराम था। इसी ट्रेन से प्रयाग से कुछ और मित्र भी जा रहे थे, लेकिन उस वक्त पता नही लगा। ३० दिसम्बर के ७ बजे सवेरे हमारी ट्रेन इटारसी पहुँची। यहाँ से ग्राड ट्रक पकडनी थी। श्री ओमप्रकाश (राजकमल), श्री ज्योतिप्रसाद निर्मल और तीन चार और साथी वर्धा के लिए मिल गये। गाडी मे बडी मुश्किल से जगह मिली। मै और ओमप्रकाशजी अपने सामान को सैनिको से भरे एक कम्पार्टमेट मे रखकर दूसरे डब्बे मे चले गये। डाइनिंग कार मे मध्याह्न भोजन करते कुछ समय बिताया। सामिष भोजन सवा रुपये मे बुरा नही था। अब अपने सामानवाले डब्बे मे आये। सैनिक सभी शिक्षित और मद्रासी थे। कश्मीर से छुट्टी पर जा रहे थे। सभी अग्रेजी जानते थे और उत्तर मे रहते हिन्दी भी बोलते थे। सैनिको मे अवश्य भारी अन्तर आ गया था। उनमे बहुत भद्रता देखने मे आई। मुमकिन है शिक्षित होने के कारण हो।

अमला के पास टोकरियो मे भर कर नारगियाँ बिक रही थी। दो रुपये मे ८५ का टोकरा हमने भी खरीद लिया। आध घटा लेट रहकर ट्रेन वर्धा पहुँची। स्वयसेवक वहा तैयार मिले। पहले तो डर लग रहा था, इस भीड से सामान कैसे निकालेंगे दरवाजा खुलने का रास्ता ही नही था। लेकिन निकालना तो जरूर था, किसी तरह बाहर निकले।

हिन्दीनगर पहुँचे। डा० उदयनारायण तिवारी डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० नगेन्द्र डा० दशरथ ओझा, श्री बलदेव नारायण मिश्र आदि बहुत से साहित्यकार आये हुए थे। मेरठ से प्रेमजी भी अपनी पत्नी के साथ पहुचे। हम एक ही कमरे मे ठहरे। अब की भी समिति के मकानो मे वृद्धि हुई थी। खासकर वे कमरे नये थे, जिनमे प्रतिनिधि ठहराये गये थे। तम्बू भी पडे थे। वही कनला के पास उमरपुर के तिवारीजी

चाड्क के एक वृद्ध सेठजी के पास आय। दोना साहित्य से अनुराग रखत है। सेठजी आयसमाज के भक्त है। उसके लिए वहा काफी खच करके सस्था कायम की है। तिवारीजी अपने गाव की बातें बतलाते हुए बाले—अब ता जीविका का साधन यही हो गया है, इसलिए कभी दो-चार साल म घर चला जाता हूँ।

३१ दिसम्बर को सम्मेलन की विषय निर्धारिणी की बैठक हुई। एक प्रस्ताव इस विषय का भी स्वीकार किया गया कि सम्मेलन के सम्बन्ध म सरकार एक विशेष कानून बनाये। वही बम्बई प्रवासी श्री माधवाचाय स मुलाकात हो गई। मुझे क्या किसी भी आदमी की बात सुनने से शुरू शुरू म यही मालूम होगा, कि यह आदमी बहुत हल्का है। इस बात की आशका माधवाचाय अपने ही बहुत सी झूठी सच्ची बाते करके बढा देत हैं। लेकिन कुछ समय की बातचीत से मुझे मालूम हो गया कि इस पुरुष ने सस्कृत के दशन का गम्भीर अध्ययन किया है। ऐसे पण्डितो मे से है, जिनकी सख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। ब्रज म जन्मे थे, फिर काँची के प्रतिवादी भयकर गुरु के पण्डितो म रहे। अगले दिन फिर मैंने दिल खोलकर बात करने का निश्चय किया था, पर मालूम हुआ, वह सवेरे ही चले गये थे। मुझे बहुत अफसोस हुआ। उनकी विद्या का जसा उपयोग चाहिए वसा नही हो रहा था। बम्बई के किसी कालेज म सस्कृत पढा रहे थे।

अपराह्न अधिवेशन म प्रस्ताव पास हुए। यह आशा रखी गई थी कि प्रयाग सम्मेलन के विरोधी दल के लोग यहा आएँगे, और उनसे मिलकर कोई रास्ता निकाला जायगा, लेकिन उनम से कोई नही आया। सभापति श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र थे। अधिवेशन बहुत सफल रहा। उसके अन्त के साथ यह सन् भी खतम हो रहा था।

इस साल मेरे कार्यो म 'लेनिन", 'बचपन की स्मृतियाँ' और 'सरदार पृथ्वीसिंह' (द्वितीय सस्करण) प्रकाशित हुए। विस्मृत यात्री' और मार्क्स' करीब करीब छप चुके हैं। 'सस्कृत पाठमाला" और 'सस्कृत काव्यधारा" लिखकर तैयार है। 'गादी" और 'भारत म अग्रेजी राज्य के सस्थापक" प्रेस म हैं। समय का उपयोग किया, यह जानकर सतोष हुआ।

१६

छोटी सी यात्रा

१ और २ जनवरी को वर्धा ही म रहना पडा। वर्धा म आकर सेवा ग्राम की यात्रा करनी आवश्यक हो जाती है। १ तारीख को सवेर ७ बजे श्री हरिहर गर्मा (मद्रास) के साथ मोटर से ६ बजे हम सेवाग्राम पहुँचे। बापू की कुटिया सूनी थी पर वहा जहाँ-तहा साइनबोर्ड लगा दिये गए थे। अगर चेला के भरोसे होता, तो सारा आश्रम ही सूना रहता, पर भला हो तालीमी सघ का। उसने कई शिक्षण सस्थाएँ कायम करके घरो को भर दिया है। श्रीमती आशादेवी आयनायम, उनके पति तथा और कितने ही आश्रमवासियो से भेंट हुई। श्रीमती आशादेवी गाधीवादिनी हैं, पर ऐसी नही कि वाद की सीमा के भीतर सती होने के लिए तैयार हो। पति द्रविड और स्वय बगाली है। बगालियो की चौमुखी सास्कृतिक प्रगति का उन जसी शिक्षिता महिला पर असर न हो, यह हो नही सकता था। उनका बहुत आग्रह हुआ कि यहाँ के शिक्षार्थी तरुण-तरुणियो के सामने मैं कुछ बोलूं। एक बडे हाल जैसे कमरे म थोडी देर म डेढ सौ श्रोता जमा हो गए। मैंने अधिकतर तिब्बत की यात्रा और वहाँ की सास्कृतिक निधियो पर भाषण दिया।

वहाँ से लौटकर महिला आश्रम पहुँचा। वहाँ अगले दिन साढे ८ बजे बोलने का आग्रह हुआ। इसी समय छुट्टी मिल गई होती, तो अच्छा होता। उस दिन शाम को सवा ८ बजे टौन हाल म सामयिक समस्याओ पर बोला, और दूसरे स्थान पर बैठकर गोष्ठी ११ बजे तक चलती रही। अगले

साढे ८ बजे महिला आश्रम की छात्राओ म बोलना पडा। पिछली यात्रा म छात्राओ की सख्या कम थी, लेकिन अब ५० ट्रेनिंग पानेवाली तरुणियो के भी हो जाने से उनकी सख्या ११२ हो गई थी। ट्रेनिंग पाने वालो को २५ रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलती है। गाधीजी की प्रेरणा स भारतीय सास्कृतिक वातावरण म लडकियो को शिक्षा देने के लिए यह सस्था कायम हुई थी। बजाजजी और उनके परिवार का इसकी स्थापना और सहायता म बडा हाथ रहा। मैंने भारतीय सस्कृति पर ही बोलना आवश्यक समझा, और बतलाया—हमारी सस्कृति कभी एकागी, आस्तिक नही रही। यदि उसम परमभक्त पैदा होते रहे, तो परमनास्तिक भी होते आए हैं। सस्कृति कोई पत्थर की लकीर नही है, बल्कि नदी का प्रवाह है, जो सदा प्रति क्षण बदलता रहता है।

चलते समय एक सीढी बाकी थी का ख्याल नही किया, और अगूठे म चोट लगवाकर खून निकलवा लिया। डायबेटीज म यह बुरा है, और बुरी चीज सबसे पहले आ उपस्थित होती है।

कमला का ध्यान कलिम्पाग जाकर रहने का हो रहा था। उनको ही लम्बे काल को पार करना है, इसलिए रहने के बारे म उनकी राय का ख्याल करना सबसे जरूरी है। आनन्दजी अब अधिकाश कलिम्पोग म ही रहते हैं। वे बतला रहे थे, यहाँ साग-सब्जी दार्जिलिंग से भी ज्यादा महँगी मिलती है। लोगो मे भारी बेकारी है, सम्पत्ति का मूल्य गिर गया है। सम्पत्ति का मूल्य तो और भी गिरेगा, बेकारी और भी बढेगी, क्योकि ल्हासा और तिब्बत के व्यापार ने कलिम्पाग को बसाया था। अब ल्हासा से जो मोटर-सडक टोमो (चुम्बी) उपत्यका के छोर तक बनकर आई है, वहाँ गगतोक से करीब पडता है। अभी भी दोनो तरफ की सडको के छोरो के बीच मे दो ही तीन दिन पैदल का रास्ता है जिसे और कम किया जा सकता है। माल के लिए डाडे पर रोपवे लगा दी जाए तो कोई अचरज नही। न भी लगे तब भी अब आयात निर्यात का द्वार कलिम्पोग नही, बल्कि गन्तोक होगा। पीछे मणिहृपजी से मालूम हुआ कि अभी ही, भारी किन्तु अपेक्षाकृत कम दाम वाले माल को गगतोक से ल्हासा भेजा जा रहा है। कीमती माल के आयात निर्यात करने वालो को अपने कलिम्पाग के घरो को भी

देखना है, और लारी पर जाने पर दाम में एक दो पैसे का अन्तर पड़ता है, जिसकी वे पर्वाह नही करते। तो भी आधुनिक यातायात का जितना सुभीता गन्तोक को प्राप्त है, उसके कारण खरीदने बेचने वाले भी दोनो तरफ से वहा ज्यादा पहुँचेगे। यह सुनकर आश्चर्य नही होगा कि कुछ ही सालो बाद कलिम्पाग की भाग्यलक्ष्मी भागकर गन्तोक चली गई।

उसी दिन ३ बजे मेरी अध्यक्षता मे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की बैठक हुई। वस्तुत इसी के लिए मैं एक दिन ठहर गया था नही तो कल ही और मित्रो के साथ चला गया होता। श्री मोहनलाल भट्ट दुबारा मन्त्री चुने गए। बजट छोड दूसरे सब निश्चय कर लिये गए।

मऊ छावनी (मालवा) के श्री बैजनाथजी वहा के योगिराज महेश की हकीकत बतला रहे थे। पहले योगिराज के पास आसमान से छप्पर फाड-कर सम्पत्ति आती थी। वह कई सालो से लाखो का मन्दिर बनवा रहे थे, जिनमे इतालियन सगमरमर लगता था। हरेक बात तो रहस्यमय रखी जाती थी। पर बहुत दिनो तक रहस्यमयता रखना मुश्किल है, और योगिराज अरविन्द या रमण महर्षि की तरह साधन और साधक सम्पन्न भी उतने नही, इसलिए थोक दूकान से काम न होते देख उन्होने खुदरा सौदे का भी काम शुरू कर दिया है। धर्मों ने हर देश की सस्कृति की बडी सेवा की, लेकिन सबसे बडा पाप उसका यही दूकानें और इनके सेठ है, जो आखो मे धूल झोककर दुनिया को भेड बनाना चाहते हैं।

प्रयाग—३ जनवरी को साढे ७ बजे सवेरे ही हम स्टेशन पहुच गए। गाडी लेट थी। दिन भर चलने मे कोई दिक्कत नही थी, पर इटारसी से प्रयाग रात को चलना था। पिछली बार जिस मुसीबत का सामना करना पडा था, उसके कारण यही समझा कि टिकट प्रथम श्रेणी का ले लिया जाए। ग्राण्ड ट्रक दूर से आने वाली ट्रेन थी, जो यहा से सीधे इटारसी ले जाती। जगह अच्छी थी। नागपुर के कितने ही हरिजन कार्यकर्ता बडी आशा रखते थे कि मैं वहाँ एक दिन के लिए उतर जाऊँगा। पर, समय की कमी थी। ट्रेन मे डा० अम्बेडकर के अनुयायी अनेक तरुण आए, जो अगली वैशाख पूर्णिमा के समय अपने नेता के साथ लाखो की सख्या मे बौद्ध बनने वाले थे। उनके आग्रह को ठुकराना बहुत मुश्किल था, लेकिन मजबूरी

औसतन खर्च जरूर आ जाता है। एक यह भी कारण था, जिससे कमला का कलिम्पांग जाना मुझे पसन्द था। वहाँ शायद तीन सौ रुपये में काम चल जाता। दुनिया की आज की व्यवस्था, विशेषकर साम्यवादी देशों के बाहर, ऐसी है, जिसमें निश्चित जीवन बिताना मुश्किल है। आर्थिक चिन्ता स्वाभिमानी और अनेक मित्रों वाले आदमी के लिए सबसे मुश्किल है।

उस दिन रात को श्री अशोक (जमुनाप्रसाद वैष्णव) के यहाँ शाम को भोजन के लिए गया। भोजन तो स्टार्च रहित साग-पात ही थोड़ा सा मैं शाम को करता हूँ, लेकिन वहाँ अनेक पर्वतीय साहित्यिक मित्रों से मुलाकात हुई।

५ जनवरी को नागार्जुनजी आए। वह एक उपन्यास के लिखने में लगे थे। प्रकाशक ने पिंजरे में बन्द कर रखा था, ताकि समय पर वह पुस्तक को समाप्त कर सकें। मैंने सोचा था, "संस्कृत काव्यधारा" वही लिखेंगे। कई सालों की प्रतीक्षा के बाद जब उसे नहीं होता देखा, तो स्वयं ही हाथ लगाना पड़ा। 'पालि काव्यधारा' के बारे में भी किसी दाता को ढूँढ रहा हूँ देखूँ वह मिलता है या उसे भी अपने ही करना पड़ेगा।

उस दिन सवेरे श्री रामनाथ त्रिवेदी आए। पंचायती चुनाव हुआ था, जिसकी बातें बतला रहे थे। कह रहे थे—बड़ी जात वालों ने बड़े छल बल से अपने प्रभुत्व को कायम रखना चाहा। लेकिन, बार बार बहुजन को धोखा कैसे दिया जा सकता है? उसी दिन महादेवीजी के महिला विद्यालय में भी गये। डेढ़ घंटे तक वहीं साहित्य और राजनीति पर बातें होती रहीं। अपनी परेशानियों को बतला रही थीं। पं० सुन्दरदास की तरह महादेवी-जी भी काजी जी दुबले शहर के अंदेशे के फेर में पड़कर साहित्यकारों को सहायता पहुँचाना चाहती हैं। सभी अपनी अपनी इच्छाओं को लेकर आते हैं। महादेवीजी के पास अक्षय भण्डार तो नहीं है। यदि किसी की इच्छा पूर्ण नहीं होती तो वह विरोधी बन बैठता है। ऐसे भी हैं जो उनको ढाल बनाकर अपना काम सिद्ध करना चाहते हैं, जिसकी बदनामी भी उनके ऊपर पहुँचती है। लेकिन वह अपनी आदत से मजबूर हैं। अब उमर भी ऐसी आ गई है जबकि ठोकरें खाकर सीखना मुश्किल है। आदमी कछुआ तो नहीं है, जिस वक्त चाहे सिर हाथ बाहर फैला दे, और जिस वक्त

चाहे भीतर खीच ले। बढा हुआ व्यक्तित्व अनेक खूटियो मे बँध जाता है, जो आदमी के मान से बाहर की होती हैं। उस दिन शाम को ६ बजे श्रीपतिरायजी के घर पर चाय और गोष्ठी हुई। श्रीपतिराय बडे व्यावहारिक हैं हाँ बुरे अर्थो मे नही। इसकी पहचान तो उनकी सवारी ही बतला रही थी। उन्होने एक ऐसी छोटी ट्रक ले रखी थी, जिसमे ड्राइवर की सीट पर दो आदमियो को और बठा सकते थे, और पीछे सात आठ मन सामान आसानी से रख सकते थे। बतला रहे थे, मैं परिवार को लेकर पहाड पर भी इससे हो आया हू। हा, व्यवसायी का ऐसी ही सवारी चाहिए। वह दो मोटरो का काम एक से ले रहे थे। गोष्ठी मे कवि श्री सी० वी० राव, डा० भगवतशरण उपाध्याय और दूसरे कितने ही नवयुवक साहित्यकार आये थे। साहित्य पर ही हमारी बातचीत होती रही।

बनारस—बनारस प्रयाग से छोटी बडी दोनो लाइनें जाती है, पर मैं बराबर ही छोटी लाइन से आया जाया करता हूँ। शायद इसका कारण ट्रेनो के समय की अनुकूलता हो। लेकिन, आजकल तो अनुकूल नही थी। ट्रेन ५ बजे अँधेरा रहते रवाना होने वाली थी, इसलिए साढे ४ बजे ही स्टेशन (रामबाग) जाना जरूरी था। जब ५ बजने मे आधा घटा रह गया, तो श्रीनिवासजी के ड्राइवर की आशा छोडनी पडी। उसकी जरूरत भी नही थी, क्योकि मेरी शका निर्मूल साबित हुई, और आनन्द भवन के सामने कई रिक्शे उस समय भी खडे थे। स्टेशन पर पहुचा। ५ बजकर १० मिनट पर गाडी रवाना हुई। 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रकाशित करने की मुझे सबसे ज्यादा चिन्ता थी। श्रीनिवासजी ने उसे ले लिया, और गुण्ठेजी ने सम्मेलन मुद्रणालय मे छापना भी स्वीकार कर लिया था, लेकिन छपाई के मोल भाव के ठीक होने मे काफी समय लगा। तो भी मैं उसके सौ पृष्ठ दे चला था। ट्रेन के बाहर देख रहा था—सरसो, मटर फूली हुई है, आलू की फसल भी तैयार होने लगी है। देहात मे भी बिजली के खम्भे खडे देखकर आश्चर्य करने की जरूरत नही थी। हमारे उत्तर प्रदेश और बिहार के बहुत भाग की समस्या सिंचाई है। जब तक जमीन के नीचे बहती गगा को ऊपर नही लाया जाता तब तक हर दूसरे तीसरे साल फसल की भारी क्षति को रोका नही जा सकता। ट्यूबवेल जारी करने के लिए बिजली की

बडी जरूरत है। यह बिजली सिफ उसी म खर्च होगी क्याकि जैसी गरीबी हमारे गाँवा मे है, उसके कारण गाँवा म शायद एक दो घर ही बिजली लगाना पसन्द करे।

स्टेशन पर श्री सत्येन्द्रजी के पिता और प० दवनारायण द्विवेदी मौजूद थे। सत्येन्द्रजी के पिता की फ्रेंच कट दाढी वतला रही थी, वह प्राचीनपथी नही हैं। और पीछे तो उनके साहित्यिक विचार भी बहुत उदार मालूम हुए। सीधे सेवा उपवन पहुँचे। सत्यन्द्रजी का अपने प्रेस के काम के लिए उसी दिन कलकत्ता जाना था, लेकिन उनके अनुज और घर की शिक्षित महिलाएँ मौजूद थी। जाकर पहले स्नान भोजन किया। सत्येन्द्रजी के दोनो वहनोई सैनिक अफ्सर है, एक लेफ्टिनेन्ट कनल और दूसर कप्तान। कप्तान साहब अपनी पत्नी के साथ इस वक्त ससुराल मे आए थे। बनिए फौजी अफ्सर हो, यह आश्चय की बात होगी। पर, भारत को ऐसे अलग-थलग रहने वाले न बनियो की आवश्यकता है न क्षत्रियो की, न और किसी की। वह पुराना कटघरा पहले भी कायम नही रह सका, और अब तो काल से लडकर वह वच ही नही सकता। आखिर अग्रवाले तो आज से डेढ ही हजार वष पहले दुधष जयमनशाली यौधेय क्षत्रिय थे। उनके गण-राज्य का नाश हुआ। उसके पुनरुज्जीवित करने की कोई सम्भावना नही रह गई, फिर आग्रेया और उनके दूसरे बन्धुओ ने तलवार की जगह तराजू पकड लिया। अब यदि वह तराजू का फिर तलवार स बदलें, तो इसमे कहने की क्या बात है? कोई भी पेशा किसी की बपौती नही है। जिसकी भी उसके विषय मे रुचि और क्षमता हो, उसे करना चाहिए।

बनारस मे सत्येन्द्रजी क आतिथ्य मे कई सुभीते भी है। घर मे आत्मी-यता मालूम होती है। यद्यपि सत्यन्द्रजी की पत्नी और उनकी [illegible] सुसस्कृत सुशिक्षित महिला होन से कुछ सुनना चाहती है, और यह [illegible] उनके आतिथ्य से उऋण होने का भी अच्छा अवसर है, लेकिन, [illegible] न कोई मित्र आये रहत है, या मुझे ही दशन करने के [illegible] जाना पडता। इसलिए मैं अपने ऋण का अदा नहीं [illegible]। [illegible] दिन २ वजे मोटर स निकला, तो पहले अस्सीघाट पर [illegible] म [illegible] बचपन की एक उडान के दो तीन दिन के [illegible]

उनके सारे बाल सफेद और बुढ़ापे की पूरी पकड में आ गए थे। उनके बडे भाई अब इस दुनिया मे नही थे। थोडी देर उनसे दु ख सुख की बात चलती रही। फिर मोतीराम के बगीचे मे गया। मोतीराम का बगीचा अब नहीं कहना चाहिए, यह गोयनका पाठशाला है। पर, मोतीराम के बगीचे का नाम मर लिए जितना प्रिय है, उतना यह नाम नही। विशेषकर जब कि मैं देखता हू कि अपने समय के निष्कपट सन्त महाविद्वान वास्तविक सन्त मँगनी ब्रह्मचारी का नाम मिटाकर यह विद्यालय खोला गया। मुझे काल से यही विश्वास है कि दूसरे के नाम को मिटाकर बनी इस सस्था का भी नाम मिट जाएगा। सेठो ने कोई श्रमपूर्वक धन नही कमाया है कि उन्हे मनमानी करने के लिए छोड दिया जाए।

फिर हिन्दू यूनिवर्सिटी के सग्रहालय (म्यूजियम) गए। दस लाख की इमारत बन रही है। अभी उसके नीचे के ही कुछ कमरे तयार हो पाए है। सामग्री यहा आ गइ है। राय कृष्णदासजी ने इस सस्था की नीव डालते चित्र, मूर्तियाँ और दूसरी चीजे बडी लगन से नागरी प्रचारिणी सभा मे एकत्रित करनी शुरू की थी। अब वह एक बडे सग्रहालय की बुनियाद बनने जा रही है। यहा के चित्रो के सग्रह मे कवि रहीम की तस्वीर भी है। वही कूटस्थ अचल विद्वान जिज्ञासुजी भी मिल गये। मारकण्डेय की तरह उनके ऊपर काल का कोई प्रभाव नही पडता। कह रहे थे—आप ऋग्वेद के इतिहास के सम्बन्ध मे लिख रहे है तो पुस्तक निकल जाने दीजिए, हम उसके जवाब मे साबित करेंगे कि ऋग्वेद दो अरब वर्ष पहले सृष्टि के आदि मे भगवान् का दिया हुआ ज्ञान है। विचारो मे भेद रहते हुए भी जिज्ञासुजी की लगन और स्वाध्याय की मै सदा कदर करता रहा हूँ। आखिर आर्य समाज से मैंने भी कुछ बातें सीखी, जिस उपकार को मैं भुलाना नही चाहता। यही डा० राजबली पाण्डे भी मिल गये। वहा से डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल के यहा थोडी देर बैठे। निवास पर आने पर आचार्य जगन्नाथ उपाध्याय तथा कितने ही दूसरे तरुण मिले।

पत्रो मे आने की खबर छप चुकी थी। पत्र आधुनिक दुनिया की महान् देन है। और अखबार से यह भी सुभीता है कि बनारस मे मुझे अपने मित्रो को आने की सूचना देने के लिए अलग अलग पत्रो के लिखने की जरूरत

नही पडती। ७ जनवरी को सवेरे साढे ७ बजे ही से मिलने-जुलने वाले आने लगे, तो १२ बजे तक उसका ताता बराबर जारी रहा। भोजनोपरान्त श्री अत्रिदेव विद्यालकार के यहाँ गया। गुरुकुल के स्नातक प्राचीन साहित्य और विद्याओ के बारे म इतन साधन सम्पन्न होते है कि यदि वह चाहे, तो बहुत काम कर सक्त हैं। अत्रिदेवजी ने आयुर्वेद को अपना विषय बनाया, और उस पर उन्होने अनेक पुस्तकें लिखी। उनके पास ही अग्रेजी के अध्यापक डा० ओझा मिल गये। मैं सोच रहा था यह चेहरा कही देखा हुआ है, पर याद नही आ रहा था कि १९४८ म प्रयाग म कितनी ही बार हम दोना घटो टहला करत थे। इस बीच म वह कई साल अमेरिका रहकर आये थे, और वहा की प्रगति से बडे प्रभावित थे। सोचते थे भारत भी उसी रास्ते प्रगति कर सकता है।

वहा स भारतीय महाविद्यालय (कालेज आफ इण्डोलोजी) म डा० राजवली पाण्डे प्रिसिपल की अध्यक्षता मे तिब्बत के बारे म भाषण दिया। हिन्दू युनिवर्सिटी म मैंने तो समझा था, यही एक भाषण होगा और शायद विद्यार्थियो न भी एसा ही समझा था। इसलिए वह बडे लेक्चर हाल मे भी कसे समा सक्त थे? उसके लिए ता हाल की जरूरत थी। वहा से साहित्यकारो की गोष्ठी म गया। वही शान्तिप्रिय द्विवदी मिल गए। गोष्ठी के बाद हम साथ ही रिक्शे पर चले। शान्तिप्रिय द्विवेदी का व्यक्तित्व बडा सीधा-सादा करुण है, और साथ ही मोहक भी है। उनको देखकर मुनी अष्टावक्र की आकृति सामने आ जाती है। यह बिलकुल स्वनिर्मित पुरुष, और भाषा के तो महान् शिल्पकार है। एक एक शब्द को तोल कर और सँवार कर लिखते है। भोले भाले भी कितन? पर उसका अथ यह नही कि प्रतिभा म कमी है। वस्तुत आदत बुद्धि से भी ऊपर होती है। शान्तिप्रियजी को सबसे दिक्कत रोटिया की मालूम होती है। उस मासे-भर शरीर के लिए रोटिया चाहिएँ ही कितनी? पर, ठिकाने मे या उनकी रुचि के अनुसार उसका प्रबन्ध नही हो पाया। आजकल वह किसी वृद्धा के यहा रोटी खा रहे थे। शान्तिप्रियजी का ४ बजे शाम या १२ बजे रात को रोटी चाहिए वह इतनी देर कसे मिल सकती थी? मैंने कहा—' ब्याह क्या नही कर लेते?" ब्याह की बात पूछत मुझे वाचस्पति पाठक की बात याद आ रही थी। दोना

हो एक ही शहर के रहने वाले ठहरे, इसलिए बहुत पहले से एक दूसरे स परिचित थे। तुलसीदास ने सच ही कहा है "तुलसी वहा न जाइय, जहा जनम को ठाव। भावभक्ति का मरम न जाने धरै पाछिलो नाव।" शान्ति प्रियजी का लडकपन म मुच्छन नाव पड गया था। उनके कभी भा बडी वटी मूछें रही हो यह सम्भव नही मालूम होता, इसलिए यह नाम बिल्कुल अयुक्त था। पर पुराने यार लोग अब भी मुच्छन कहकर पुकारने के लिए तैयार है। वडी कमाई करके इतना सुदर शातिप्रिय नाम मिला था, जब वह फिर लौटकर "पुन मूक" कैसे बन सकते थे ? अपने पुराने मित्रो पर विश्वास करना आदमी का स्वभाव है। पाठकजी पर भी उन्होने विश्वास किया जब उन्होने कहा कि मैंने तुम्हारे लिए एक बहू ढूढी है। बहू भी उन्होने पचास वष की ठीक कर ली थी—ठीक क्या कर ली थी उसको अभिनय करने के लिए तैयार कर लिया था। शान्तिप्रियजी का भोजन वही निश्चित किया गया। भावी पत्नी महान् साहित्यकार क चरणो म पलको के पावडे बिछाने के लिए थी। महिला किसी स्कूल म अध्यापिका थी, बहुत सुसस्कृत और शिक्षित थी, इसलिए उनके एक एक शब्द यदि मधु से पागे हो, तो आश्चय क्या ? पाठकजी ने सकेत करने की कोशिश की, यही आपकी भावी पत्नी है, पर शान्तिजी का मन नही मान रहा था। आखिर वह कसे विश्वास कर लेते कि उनका बालमित्र उनके साथ मजाक कर रहा है। मजाक नही, धोखा ही वह समझ सकते थे। वह बूढी रमणी का दखकर यह विश्वास कैसे कर लेते कि इन्ही के साथ मुझे अपना सारा जीवन खेना है। लेकिन, नाटक तो ऐसा ही किया गया था। शान्तिजी को यह मालूम हुआ या नही कि ब्याह की बात मजाक की नही थी। ऐसा न होने पर भा वह बुढिया से ब्याह करने के लिए कैसे तैयार होते ? आखिर उन्होने कविहृदय पाया था उन्ह अपने शरीर और चहरे के अनुरूप नही बल्कि कला और विद्या के अनुरूप पत्नी मिलनी चाहिए। सचमुच ही इसे बडे अफसोस की बात माननी पडेगी कि इतने सुदर साहित्यकार की गुणग्राहिका एक भी तरुणी सारे जम्बूद्वीप म न मिले। मैंने भी पाठकजी की घटना से अनभिज्ञता प्रकट करते हुए यही सलाह दी कि बस अपनी उमर की अथवा चालीस बष से ऊपर की महिला स ब्याह कर लो, रोटी का दुख तुम्हारा हमेशा क

लिए दूर हो जायगा। लेकिन उनके दिमाग म यह बात समाने वाली नही है। शान्तिप्रियजी के प्रति जैसा मेरा स्वाभाविक स्नेह है, वैसा बहुत कम ही के बारे म मैं कह सकता हूँ। मे स्वप्न म भी इसका खयाल नही कर सकता कि उनको अपनी किसी हरकत स दु ख दू।

शाम को साढे ६ बजे कार से गादौलिया के चौरस्ते के पास बनारस लाज म पत्रकारो क सामने भाषण देना था। बनारस की सडके आजकल के जमाने क लिए नही बनाई गई थी, खासकर चौक से विश्वविद्यालय और चौक से स्टेशना को जाने वाली सडके। इतनी भीड हाती है कि वहा रास्ता पाना मुश्किल हा जाता है। हर समय डर लगता है कि काई दुघटना न हो जाए। चौक तो पहले ही जमा हुआ था, अब गोदौलिया स दशाश्वमेध तक की भी सडक बडी बडी दूकानो स भर गई है। इसी पर बनारस लाज का यह भव्य होटल था, जा अभी पूरी तौर से बनकर तैयार नही हुआ था। पत्रकार पितामह श्री लक्ष्मीनारायण गर्दे अध्यक्ष थे। पत्रकारा की काफी सख्या वहाँ जमा हुई, जिस जब मैं अपने विद्यार्थी जीवन के बनारस से मुकाबिला करता, तो मालूम होता, काशी भी काल क प्रवाह म बहने से नही बच पाई। ये पत्रकारा की जमात और यह भव्य होटल इसके साक्षी थे।

सारनाथ—८ जनवरी को सारनाथ का प्रोग्राम था। प० देवनारायण-जी साथ म थे। मोटर से सारनाथ इस रास्ते शायद अब अन्तिम बार जाना हो रहा था, क्योकि चौक से सीधे सारनाथ जाने वाली सडक क लिए वरुणा म पुल बन रहा था, जो कि अब की ही मई मे बुद्ध की २५वी शताब्दी के महोत्सव के समय तयार हो जाने वाला था। हम ६ बजे सारनाथ पहुचे। पिछले साल स वैसे भी कुछ परिवतन होता, लेकिन २५वी शताब्दी के कारण तो यहाँ निमाण म बडी तन्देही देखी जा रही थी। पचीसो लाख रुपये हमारी सरकार खच कर रही थी। स्टेशन पुरानी जगह स खिसककर अब मूलगध कुटी विहार के पास वाले नरोखर पोखरे क पूर्वी भीट पर जाने वाला था, और नरोखर के बीच स सडक बनकर सीधे विहार म लाई जा रही थी। पुराने स्टेशन से आने वाली सडक से निकलकर जो कच्ची सडक विहार की ओर जा रही थी, वह भी पक्की बनाई जा रही थी। महाबोधि

उपजाऊ जमीन है। यदि खेती करें, तो कही अच्छी तरह से रह सकते है। पर, पुरानी खोपडी कुछ सोच नही सकती। वह बीते युग की चतुराई मे पार होना चाहती है जो इस समय के लिए कोई काम नही देती। उदयनारायण ने बतलाया, पास के गाव मे हमारी बहुत अच्छी जमीन थी, जिसका तीन हजार आसानी से मिल जाता था। हमने कहा बेच दे क्योकि हम उसे आबाद नही कर सकते। पिताजी को पसन्द नही आया। वह पुराने जमाने की बात सोच रहे थे। समय रहे थे, जब हमारे नाम जमीन है, तो उसको कौन ले सकता है? लेकिन आजकल के जमाने मे जमीन को वही अपने हाथ मे रख सकता है, जो उसकी सेवा पूजा कर सकता है उसको जोत सकता है। किसी ने दावा कर दिया, पटवारी को सौ पचास रुपये दिए, और उसने कागज पर उसका नाम लिख दिया तो वह जमीन योही चली गई।

श्यामलाल भाग्य को और दुनिया को दोष दे सकते है। शायद यह समझकर सतोष कर सकते है कि इस लोक मे नही तो परलोक मे न्याय जरूर होगा। पर, न्याय का रास्ता बडा गहन है। क्या उनके पूर्वजो ने न्याय करके कनला गाव की सारी भूमि को अपने हाथ मे लिया था? आखिर वहा के बडी जातवालो के भाग जाने पर जो लोग अब भी चिराग जलाते चले आये थे वे वही पर रहते थे और अपनी सख्या और सामर्थ्य के अनुसार कुछ खेतो को आबाद भी किये हुए थे। पर, राज्य हिन्दू का हो, या मुसल्मान या अग्रेज का सभी चाहते है भूमि की लगान नियमपूर्वक मिला करे, ऐसे मोटे आसामी को पकडें, जो किस्त बकिस्त रुपया अदा करे। छोटी जात वालो पर विश्वास नही कर सकते थे, इसलिए जब १८वी सदी के शुरू मे बडी जात वाले इच्छा पाण्डे अपने चन्नपानपुर गाव से कनला आने के लिए तैयार हुए, तो पुराने निवासियो का कोई भी खयाल न करके गाव उनके नाम लिख दिया गया। यह क्या कोई न्याय था? और यदि वह न्याय था, तो आज का न्याय है--जो जोते, उसकी भूमि।

लौटते समय शम्भुधारा मे रामानन्द विद्यालय का आग्रह भी मानना पडा। इस विद्यालय को मेरे मित्र स्वामी भागवताचार्य ने स्थापित किया था। सस्था एक बार स्थापित हो जाये, और अगर उसकी आवश्यकता है,

तो कितनी कठिनाइयों में पड़ने पर भी वह मरती नहीं। इसका उदाहरण यह विद्यालय था। यहाँ कई विषयों की आचार्य तक की पढ़ाई होती है। विद्यार्थियों में रामानन्दी (वैरागी) वैष्णव ही अधिक हैं। हमारे समय में कहीं मुश्किल से एक दो आचार्य वैरागी मिलते थे। अब विद्या में अधिक प्रगति हुई है। विद्या और काल ने मिलकर लोगों का अधिक उद्धार भी बना दिया है। मैं किसी समय वैरागी था, आर्यसमाजी हुआ, बौद्ध भिक्षु बना, और फिर बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा रखते हुए मार्क्स का शिष्य बन गया। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात थी कि जिन घाटों से मैं गुजरा, वे सभी मेरे प्रति आत्मीयता रखते हैं। यहाँ वैसी ही आत्मीयता देखी। बोलने के लिए कहने पर कहा—"घुमक्कड़ी और संस्कृत तथा सांस्कृतिक निधियों की रक्षा का दायित्व जब तक वैरागी अपने पास रखेंगे, तब तक उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।" शकुधारा से लगा ही हुआ खुजवा मुहल्ला है। आज से तीस ही वर्ष पहले यह शहर का मुहल्ला नहीं, बल्कि गाँव सा मालूम होता था। लेकिन अब आबादी बढ़ गई है, दूकानें भी बहुत हैं। कुछ नौजवानों ने तीस वर्ष पहले खिलवाड़ के तौर पर एक पुस्तकालय खोल दिया। उन्होंने कुछ जमीन भी ले ली। धीरे धीरे दुमंजिला घर बन गया। अब वह एक अच्छे पुस्तकालय का रूप ले चुका है। उनके बड़े बूढ़ों में अब भी कुछ मौजूद हैं, जो लड़कों के इस खेल का उपहास करते थे। पर, आज वह देख रहे हैं कि नई पीढ़ी इस पुस्तकालय से बहुत लाभ उठा रही है। वहाँ से विद्यापीठ में बोले। फिर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के हाल में। अँधेरा होने पर लौटे। यहाँ पर भी लोग आते रहे। सबेरे से आधी रात तक व्यस्त रहना मैं बुरा नहीं मानता। एकान्त रहने के लिए तो आखिर मसूरी है ही। यहाँ तो मित्रों और परिचितों से दिल खोलकर मिल लिया जाय।

९ जनवरी को १२ बजे तक घर पर ही गोष्ठी चलती रही। भोजनोपरान्त शहर गये। श्रीमती शिवरानीदेवी प्रेमचन्द से मिले। अब बहुत दुबली हो गई हैं, हड्डी और चमड़ा भर रह गया है। बेटे दोनों प्रयाग पहुँच चुके हैं क्योंकि पुस्तक-व्यवसाय के लिए उन्हें प्रयाग उस स्थान से अधिक उपयुक्त साबित हुआ। श्रीपति तो अपना अच्छा बँगला बनवा चुके हैं और अमृत कम्युनिस्ट के पीछे फकीर बन गया है। शिवरानीदेवी को लड़का इस

समय यही थी। बुढ़ापे म किसी को साथ रहना चाहिए। अब भी वह कभी-कभी लमही मे प्रेमच द की बाल्य स्मृतिया का देख आती है। पका आम है। पुरानी पीढ़ी को नई के लिए स्थान छोडना ही पडता है, लेकिन समवयस्को को इसके लिए जरूर अफसोस होता है।

लौटकर भोजन किया।

हि दू विश्वविद्यालय के छात्रो न भाषण करन के लिए निमत्रण दिया था। मैंने समझा, वह विद्यार्थिया की एक साधारण सभा होगी, पर वहा जान पर मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय छात्र सघ का वार्षिक उद्घाटन मुझे करना है। बाहर शामियाना लगा हुआ था। भारी सख्या मे छात्र-छात्राएँ मौजूद थी। विश्वविद्यालय के कुलपति सभी जगह वृद्ध होते है, जो अपनी पुरानी कमाई पर जीते हैं और समय का नही पहचान सकते। वह एक तरफ तो ढिढोरा पीटना चाहते हैं कि छात्रा का हम स्वत त्रतापूर्वक अपने सगठन और विचार प्रकट करने का अवसर देते ह, और दूसरी तरफ चाहते है कि वह हमारी मुट्ठी मे रह। उद्घाटन करने के लिए जिसे वह पस द करते, उसे नया खून पस द नही करता। इसी वजह से किससे उद्घाटन कराया जाय, इसे निश्चय नही किया जा सता था। मेरे जाने पर छात्र एक ओर से सहमत हो गये कि मैं ही उद्घाटन करूँ। मुझे ऐसे अवसर पर कहन के लिए कई बातें थी लेकिन उद्घाटन का पता तो तब लगा, जब शामियाने म पहुँचा। कुलपति इससे सहमत नही हुए, और उ होने अपना रोष प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा था। सघ के म त्री ने उसे दिखलाते हुए कहा—देखिय इसम लिखा है कि उनके इस विरोधात्मक पत्रो को छात्रा के सामन पढ दिया जाय। सचमुच ही उसके पढ देने का मतलब आग मे घी डालना होता, विद्यार्थी भडक उठते, और वह कही शीशे खिडकियाँ तोडन लगते तो उ ह अनुशासनहीन और उच्छृ खल बतलाकर बदनाम किया जाता। म त्री और अध्यक्ष ने उस पत्र का नही पढा। पुरानी पीढ़ी अधिक विचारशील है या नई पीढ़ी, इसे यहाँ परखा जा सकता है। खूसट दिमाग ज्यादा खुराफाती है, चाह वह क्षमता म शू य हो। वह कुछ द नही सकता, और बिगाड बहुत सकता है। मरा चले, तो कहूँ कि ६० वष की ऊपर की आयु का कोई व्यक्ति एस जवाबदेही के पदो पर नियुक्त न होने

पाये। मैंने संक्षिप्त ही भाषण किया। चाय-पार्टी में शामिल हुआ। बाबू राधारमण की मोटर आई हुई थी, इसलिए उस पर मडुआडीह में उनकी कोठी पर पहुँचा।

राजा मोतीचन्द के अजमतगढ प्रासाद को मैं उसी समय देख चुका था, जब अभी अभी वह बना था। वह बनारस की नये ढँग की स्पृहणीय इमारत थी। उसी के पास एक दूसरा भी प्रासाद तैयार हो गया है, यह मुझे मालूम नहीं था। श्री राधारमण बनारस के बड़े रईसों में हैं। नाबालिग रहते समय इनके अभिभावक राजा मोतीचन्द रहे, जिनके उत्तराधिकारी और भतीजे श्री चन्द्रभूषणजी, और भी पाँच सात गण्यमान्य पुरुष वहाँ मौजूद थे। श्री गिरधारीरमणजी भक्त वैष्णव हैं। मैं केवल मान्यता रखनेवाला नास्तिक नहीं था बल्कि अपनी जबान से भक्तों के भगवान पर जबर्दस्त चोट पच्चीस वर्ष से करता आ रहा हूँ। भक्त शिरोमणि ब्रह्मचारी प्रभुदत्त की चलती गरम सँड़सी से ऐसी जीभ मुँह से निकाल लें। पर आज के भक्त भी मालूम देता है कलियुगी बन गये हैं। वह भगवान और भक्तों दोनों को सन्तुष्ट रखना चाहते हैं। डेढ़ घंटे तक वहाँ गोष्ठी रही। बहुत नफीस चाय के साथ पकवान भी था। पर पकवान अब मैं खा नहीं सकता था। बनारस का पान सारे ब्रह्माण्ड में मशहूर है, और वहाँ के सबसे उत्तम बीड़े को बड़े नफीस ढंग से पेश किया गया था। मन अफसोस कर रहा था, इसके खिलाफ अजन्ता में प्रतिज्ञा क्या कर डाला? लेकिन, जब एक बार प्रतिज्ञा कर ली तो उसे तोड़ने का साहस नहीं कर सकता। अधिकतर हमारी बात सांस्कृतिक और साहित्यिक विषयों पर रही।

८ बजे नागरी प्रचारिणी सभा में पहुँचा। साल में एक बार बनारस आना होता है और साहित्यिक मित्र उस समय स्वागत करना आवश्यक समझते हैं। मुझे उस बहाने बहुत से मित्रों से इकट्ठा मिलने का मौका मिल जाता है। सभा में पौने घंटे बोला, [illegible] अपना सद्भाव प्रकट किया। [illegible] गये थे, जिस तरह कि अकबर। [illegible] 'साहित्य वाचस्पति' [illegible]

छाँटते वक्त मुझे उनकी कृतियो म से गुजरना पडा था। साहित्य ही नही, दशन का भी यह अद्वितीय विद्वान काशी मे पैदा होकर कितना उदार था जो कि मुसलमान तरुणी को खुल्लमखुल्ला अपनी धमपत्नी बना विपक्षियो के हजार प्रयत्न करने पर भी अपने धम और सस्कृति पर अटल रहा। तानसेन अक्बर क समय मे भी ऐसी हिम्मत नही कर सके। सभा से निकलते ही श्री सत्ये द्रजी की पत्नी अपनी कार लिये मौजूद थी। उनसे रास्ते म बात करने का मौका मिला। उनका मैं अतिथि था, पर समय कहा कि बात करन का मौका निकाल सकता। वह दिल्लीवाली है। यह जानकर आश्चययुक्त हष हुआ कि उन्ह अपनी लोकगीतो के साथ बहुत प्रेम है, और जो याद है उन्ह गा भी सकती हैं। हम लोग किताब से पढकर हिन्दी सीखते हैं, और उनकी हिन्दी मातभाषा थी। दिल्ली के पुराने हिन्दू परिवारो की भाषा करीब करीब पूरी तौर से साहित्यक हिन्दी हो गइ है लेकिन उस पर कौरवी का प्रभाव खतम नही हुआ है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रभाव को गुण न समझकर दोष समझा जाता है, और उन्ह शुद्ध करने की कोशिश की जाती है। उर्दूवालो की मतरूक (त्याज्य) की परम्परा को हिन्दी न भी मान लिया। आजकल वह अचार और मुरब्बे की नई विधियो के सीखन मे लगी हुई थी। लखनऊ से कोई सिखानेवाली महिला भेजी गई थी। दो दजन से अधिक ललनाए उनसे अचार और मुरब्बे बनाना सीख रही थी। निवास स्थान पर आकर फिर १० बजे रात तक मित्रो के साथ गोष्ठी चलती रही।

१० जनवरी को कही बाहर नही गया, और १२ बजे तक यही गोष्ठी होती रही। चलने से थोडे ही पहले चौखम्बा सस्कृत सिरीज के स्वामी श्री जयकृष्णदासजी आ गए। उन्होने कुछ पुस्तके छापने के लिए माँगी। मैंने "सस्कृत पाठमाला" ही दी और वह सहष उसे ले गये। वह "सस्कृत काव्यधारा" को भी चाहते थे, पर उसे तो प्रयाग मे दे आया था।

१२ बजे चला। चौक से द्विवेदीजी भी साथ हो लिए। श्री श्याम-नारायण पाण्डे बनारस म करीब करीब बराबर रहे। वह भुरकुडा के उच्चतर महामाध्यमिक विद्यालय म अध्यापकी करते अपने और आदर्शों का भी प्रचार करना चाहते है, विशेषकर सस्था की गन्दगी को दूर करन

रह कर आप परलोक मे पा सक्ते है। पर यदि जरा भी स देह हो, तो जौ की रोटी की तपस्या नहा करनी चाहिए। जौ की रोटी म चीनी बनानेवाले तत्व मौजूद है, जिनको भी पचान का काम इन्सुलिन ही को करना पडेगा। मरी राय मानिये, और रोज इन्सुलिन लीजिए, और मिठाई आदि जिस चीज का खाने की इच्छा हो, उस खाइए। शाम को भोजन छोड रखे, तो अच्छी बात, जिसमे पट हलका रह।" म्यूजियम गया, शेर साहब मिले। अल्टेर साहब रोज नही आते।

आजमगढ स श्री मुखरामसिंह की चिट्ठी आई। मैंने वहा वालो के आग्रह के बारे म लिखा था—"मैं पाँच छ दिन के लिए वहा आ सक्ता हूँ। पुरातात्विक स्थानो के देखने के लिए सारा प्रव ध हो जाना चाहिए।" आजमगढ के नए गजटियर की समिति म मेरा भी नाम था। मैं चाहता था, उसके लिए कुछ नई सामग्री जमा करके दू। मुखराम बाबू ने लिखा—यात्रा का सारा प्रव ध हमने कर लिया है। पटना मे दस दिन मैंने इसीलिए दिए थे, कि यहाँ रहकर "सरह के दोहाकोश" का देखकर प्रिंट आडर दू, लेकिन प्रेसवाले देवताओ से भुगतना था। लेखक उनसे बच नही सकता था, लेकिन कामना कर सक्ता है, कि खुदा इनसे बचावे। दस दिन पटना मे रहना बेकार था, इसलिए सोचा, कि बीच मे तीन दिन के लिए छपरा चला जाऊँ।

पत्रो म निकल चुका था, इसलिए यहाँ पर भी मित्रो और ब धुओ का आना-जाना शुरू हुआ। पटना कालेज और बी० ए० कालेज म भाषण देना स्वीकार किया। यदि पहले से पता लगा होता, तो छपरा मे सूचना दे दी होती, और समय का पूरा इस्तेमाल हो सकता। १२ तारीख को म्यूजियम मे जाकर क्युरेटर शेर साहब से मिला। दो-तीन पत्थर की मूर्तियाँ ले आकर हमने डा० बद्रीनाथ प्रसाद के यहाँ प्रयाग म रख दी थी। वह अबकी मिलीं। वही म्यूजियम को देना चाहा, पर नही दे सके इसलिए उन्हे पटना म्यूजियम को दे दिया। इन मूर्तिया म एक प्रेमचन्द्र की जन्मभूमि लमही मे मिली थी, जो १२वी शताब्दी की मालूम होती थी। तिब्बत से लाए ताल-पत्रो का उपयोग हमने "दोहा कोश" म कर लिया था, इसलिए उसे अब सुरक्षित रखना था, और म्यूजियम को ही दे दिया।

१३ जनवरी को बीच-बीच म समय निकाल कर "भारत म अंग्रेजो

राज्य क सस्थापक" तथा "सस्कृत पाठमाला" की दो पोथिया की कापी ठीक करके प्रकाशकों के पास भेज दी। श्री वैदेहीशरणजी का नाम बहुत सालो स सुन रहा था। उनके नाती-नातिनिया से मसूरी मे भट हुआ करती थी। वह अपन पुस्तक भण्डार मे ले गय। वदेहीशरणजी सन्त प्रकृति के पुरुष हैं, तो भी व्यवहार-बुद्धि इतनी कि उन्होने पुस्तक भडार जैसी विशाल प्रकाशन-सस्था खडी कर दी। अपने भक्तिभाव म रहने लगे, काम नौकर चाकरो पर छोड दिया, जिसके कारण वह डूबने लगा। लेकिन अगली पीढी उस गलती को दूर करने के लिए तैयार हो गई है। पहले भडार लहैरिया सराय (दरभगा) म स्थापित हुआ था, लेकिन उनक लिए पटना अधिक अनुकूल स्थान है, इसलिए अब वही कारबार हा रहा था। भडार की बहुत-सी पुस्तकें भेट की। बिहारीजी (वैदहीशरण) से पता लगा, कि हेमचन्द्र—जिन्हे मुसलमान लेखक घृणा प्रकट करत हुए हेमू बक्काल कहते हैं—वस्तुत सहसराम के रौनियार बनिया थे। इतिहासकार उन्हे दूसर बनिया कह कर पश्चिम का बतलात है। दूसर बनिया अब भागव ब्राह्मण बन गए है, यह ईर्ष्या की बात नही है। ब्राह्मणा को अपनी सख्या बढने का अधिक अभिमान हाना चाहिए। पर, हमचन्द्र दूसर नही रौनियार थे। शेरशाह अपने को सहसराम का समझते थे। दिल्ली के बादशाह हा करके भी उन्होंने कालिजर म बारूद मे झुलसे शरीर को सहसराम म ही दफनाना पसन्द किया। शेरशाह पठान थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार म फैले भोजपुरी भी हिन्दू पठान ही है, इसलिए शेरशाह का भोजपुरिया पर बहुत अधिक विश्वास था। हेमचन्द्र यदि शेरशाह के बहुत विश्वासपात्र हो गय, और अपनी योग्यता से कोश मन्त्री ही नही, बल्कि बडे सनापति बन गय हा, तो अचरज नही। बिहारीजी ने बतलाया, कि हमारी महिलाए विशेष समय पर हेमू और उनक पिता क गीत गाती हैं।

मोहन प्रेस "सरहके दोहाकोश" छाप रहा था और वही "नेपाल" का भी अचार बना रहा था। तीन वष स नपाल" मोहन प्रेस म पडा हुआ है। चार सौ पृष्ठ क करीब छप हैं। मैंने कहा—दो सौ और छाप कर इसका पहला भाग निकाल दो, तो तुम्हारा रुपया भी लौटने लगगा। कहा —'हां, हां।" विलैया दण्डवत करन म माहन प्रस के माहन बाबू बडे

सिद्धहस्त हैं। मुझे विश्वास नही, "नेपाल" दलदल से कभी निकल कर बाहर होगा।

शाम की चाय देवेन्द्र बाबू के यहा पीकर पटना कालेज के साहित्यकार परिषद् के विद्यार्थियो के सामने राष्ट्रभाषा की समस्या पर भाषण दिया।

लौट कर आए, तो प्रो० काश्यप मौजूद मिले। यह भोजपुरी के बडे ही सिद्धहस्त नाटककार हैं। विद्यार्थी अवस्था से ही बाबू लोहासिंह के नाम स बडे ही चुभते भोजपुरी एकाकी रेडियो के लिए लिखने लगे। नाटक मे वह स्वय लोहासिंह बनकर बोलते हैं। रेडियो पर अनेक बार मैं उसका आनन्द ले चुका था। कल मिलने पर मैंने स्वय लोहासिंह के मुह से कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। वैसे उनके कई नाटको का सग्रह मे हाल ही मे पढ चुका था। साहित्य की भाषा बनने से वचित हमारी भाषाए कितनी गुण-वती हैं, इसे शिक्षित लोग मानने से इन्कार करते हैं। पर, लोहासिंह या जगडू (हरियानी) जैसी कृति जब सामने आ जाती है, तो उनका लोहा मानना पडता है। हमारी अलिखित भाषाएँ मुहावरा और चुटकुलो मे बहुत धनी हैं, उनके सामने साहित्यिक हिन्दी अत्यन्त दरिद्र है। इसीलिए साहित्यिक हिन्दी का, उसकी अपनी कौरवी बोली से पुन घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है। प्रो० काश्यप ने अपने नाटक के कुछ अश सुनाए। वहाँ और भी श्रोता जमा हो गये थे।

श्री देवकुमारजी अपने पुत्र की समस्या बतला रहे थे। उसे देहरादून के एक विशेष स्कूल म इस ख्याल से भर्ती किया था, कि वह मिलिटरी म जाएगा। पर, अब उसकी सम्भावना नही समझ रहे थे। फेल हो जाता था, और शरीर का स्वास्थ्य भी भोजपुरी के अनुरूप नही था। मैंने उनसे नाटककार प० लक्ष्मीनारायण मिश्र के लडके के बारे म बतलाया। देव कुमारजी अपने लडके पर दो-चार सौ रुपया महीना आसानी से खर्च कर सकते थे, लेकिन प० लक्ष्मीनारायण ऐसी स्थिति मे नही थे। उनका लडका और बातो म बहुत तेज, शरीर भी भोजपुरियों के अनुरूप, पर पढ़ना वही विषय चाहता है जिसम उसकी रुचि हो। हमारी पाठ्य व्यवस्था म ऐसे लडको के लिए कोई स्थान नही है। जेनरल नालेज (साधारणज्ञान) म जो बराबर म सबको परास्त करता हो, वह भी तब तक आगे नहीं बढ़ सकता,

जब तक की सभी पाठय विषयो मे पर्याप्त नम्बर न पाए। प० लक्ष्मीनारायणजी कह रहे थे—"अब क्या करे ? यह पास होकर अफसर तो नही बन सकता, और हमने अभी तक इसके बारे मे सारा ख्याल सैनिक अफसर बनने के तौर पर ही किया था। साधारण युनिवर्सिटी ग्रेजुएट हो जाता, तो कोई दूसरी नौकरी भी मिल जाती, लेकिन उसे भी फिर से शुरू करना होगा। वह जिद करता है, मैं जाऊँगा सेना मे ही।" मिश्रजी यह भी कह रहे थे— 'वह तो सिपाहियो मे भर्ती होने के लिए तैयार है।" मैंने कहा —"मिश्र महाराज वह बिल्कुल ठीक कह रहा है। आप जरा भी रुकावट न डालें। वह होनहार लडका है। जरूर हमारे यहा अंधेरगर्दी है और सेना मे भी तरक्की उसी योग्यता को देखकर की जाती है जिस तरह दूसरी सरकारी नौकरियो मे। पर, आपको ख्याल रखना चाहिए, कि २०वी सदी का ही एक प्रसिद्ध जेनरल लार्ड राबर्ट सिपाही होकर भर्ती हुआ था। आपका पुत्र सैनिक ज्ञान मे पीछे नही है, न और योग्यताओ मे। वह जल्दी आगे बढ जाएगा।"

लेखो की इतनी माँगे आती है, जिन्हे मै सारा समय देकर भी पूरा नही कर सकता। यात्रा मे मिलने वाले सम्पादक मित्रो को तो यह कहकर छुट्टी ले ली थी कि वही आऊँगा और लिखवा दूगा। इसी के अनुसार १४ जनवरी का एक लेख श्री शिवचन्द्रजी "दृष्टिकोण" के लिए लिख ले गए और दूसरा "किशोर" के सम्पादक।

अब पत्रो द्वारा छपरा मे भी मेरे आने का पता लग गया था। नयागाँव हाई स्कूल के हैड मास्टर श्री शत्रुघ्न तिवारी का फोन अपने यहाँ आने के लिए आया। मैं तो वहाँ जा ही रहा था। उनके द्वारा सोनपुर भी खबर पहुँचाने का अच्छा मौका मिल गया, और फोन से ही प्रोग्राम का निश्चय हो गया, कि १६ तारीख को सोनपुर, नयागाव और छपरा तीनो स्थानो मे पहुँचूगा। उसी रात वीरेन्द्रजी भी आ गए। उन्होने अगले ही दिन छपरा, एकमा और अतरसन आदमी दौडाए। उस दिन साढ़े ५ बजे शाम को पटना कालेज की राजनीति परिषद् मे तिब्बत और भारत के सम्बन्ध पर व्याख्यान देना पडा। सभापति श्री विश्वनाथप्रसाद वर्मा थे—हिन्दी, संस्कृत वाले नही, बल्कि इतिहास और राजनीति वाले। उनका भाषण

आदि से अन्त तक अंग्रेजी में हुआ, इसमें शक नहीं कि अंग्रेजी अच्छी थी, पर हिंदीभाषी विद्यार्थियों के सामने वह अस्वाभाविक सी मालूम होती थी, इसमें सन्देह नहीं।

नालन्दा—१५ जनवरी को साढ़े ५ बजे तड़के ही देवकुमारजी की मोटर आ गई। हम उसमें नालन्दा के लिए रवाना हो गए। ८ बजे नालन्दा में थे। अब की राजगृह छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिए काश्यपजी को खबर देकर आगे चला जाना चाहते थे। काश्यपजी रास्ते ही में टहलते मिल गए, और उनसे कहकर हम गिलाव हो राजगृह पहुँचे। सीधे गिरि-मेखला के भीतर अवस्थित पुराने राजगृह के ध्वंसावशेष पर पहुँचे। इधर जंगलों में और भी कुछ जगह खुदाइयां हुई हैं। चहारदीवारी से घिरा एक स्थान उघाड़ा किया गया है, जिसे बिम्बिसार का कारागृह बतलाया जाता है। अब मोटर सड़क पहाड़ के आर पार होकर गया की ओर चली जाती है। गृध्रकूट का रास्ता भी कुछ बहतर बना दिया गया है लेकिन वहां तक जाने के लिए हम समय नहीं दे सकते थे। सोनभण्डार के पास तक मोटर जाने में कोई दिक्कत नहीं हुई। उसके पास की जमीन को वन विभाग ने ले लिया है। वहाँ उसका बंगला है और प्रसार के लिए पौदें भी लगी हुई हैं। राजगृह के जंगलों की रक्षा होगी, यह अन्दाज लग रहा था। सोनभंडार की बगल में एक और भी चट्टान काटकर बनी हुई गुफा निकल आई है। राजगृह के आसपास बहुत से पुरातात्विक स्थान हैं। पर, पुरातत्व विभाग उतना साधन सम्पन्न नहीं है। बर्मी धर्मशाला में १४ वर्ष से वहां के स्थानिक भिक्षु रह रहे हैं, पर हमने एक दूसरे को देखा नहीं था। जब पन्द्रह पन्द्रह वर्ष बाद फेरा लगे, तो परिवर्तन अधिक मालूम ही होगा पर राजगृह का इतिहास नहीं, एक से अधिक तप्त कुण्ड इस बात की मांग कर रहे हैं, कि स्वास्थ्य के लिए उनका अधिक उपयोग किया जाए। इसी तरह पुराने राजगृह के कोने में कई मीलों के घेरे में किसी समय मगध की गौरव "सुमागधा" पुष्करिणी थी, जो इस पार्वत्य भूमि के सौन्दर्य की वृद्धि तथा जल की समस्या को ही हल नहीं करती थी, बल्कि आज भी उसके अस्तित्व में आने पर हजारों एकड़ जमीन सींची जा सकती है, पर अभी उसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया है। आज मकर संक्रान्ति का मेला था, इस-

ि्ए सुनसान राजगृह का एक भाग सहस्रा नर नारियो स मनसायन हो रहा था।

लौटकर सिलाव से चिउरा और खाजा ले हम १० बजे नालन्दा पहुचे। छोटा पूची के पुत्र अब गृही हो गए हैं। पत्नी और पुत्र उस तिब्बती विहार म मौजूद थे। छोटा पूची इस समय वहाँ नही थे। नालन्दा पालि इस्टीट्यूट का नाम बदलकर "नव नालन्दा विहार" रख दिया गया है, जो अधिक उपयुक्त है। अध्यापको के चार-पाँच बगले बन चुके है और भी बनत जा रहे हैं। नई बनी इमारत मे अब लोग रहने लगे है। विद्यार्थियो म एसिया के सभी बौद्ध देशो के भिक्षु या विद्यार्थी मौजूद थे। पुस्तकालय क लिए तीन लाख रुपए की अलग इमारत बनने जा रही थी। भारत सरकार की आर्थिक सहायता से नागरी अक्षरो म पालि त्रिपिटक सम्पादित होकर छपने लगा है, लेकिन ऐसी गति स छप रहा है, कि शायद बीसवी शताब्दी के अन्त मे भी वह पूरा न हो सके। आजकल के जमाने म मोनोटाइप स अच्छी छपाई करने वाले बहुत स प्रेस हैं लेकिन यह काम बम्बई क एक पुराने प्रेस का दे दिया गया है, जो चीटी की चाल चलने के लिए बहुत मशहूर है। महायान बौद्ध धर्म के ग्रथो के सम्पादन का काम दरभगा के मिथिला इस्टीटयूट को दिया गया है। न जाने इसमे क्या बुद्धिमानी समझी गई। चाहिए तो यह था, कि बौद्ध ग्रथो के लिए—चाहे वह किसी भाषा म हो —नालन्दा म प्रबन्ध किया जाता। ब्राह्मण ग्रथो को मिथिला इस्टीटट म और जैन ग्रथो को वैशाली इस्टीटयुट म। लेकिन उन्हे भाषानुसार बाँटा गया, अर्थात् तीनो प्रतिष्ठान क्रमश पालि, सस्कृत और प्राकृत क लिए रखे गए है, जो बिल्कुल अयुक्त है। तिब्बती और चीनी ग्रन्थो के अनुवाद या सम्पादन के लिए किस को पसन्द किया जाएगा? नालन्दा को ही न?

एक और भी असन्तोषकर बात देखने मे आई। सिंहल, बर्मा, थाइभूमि, कम्बोज आदि के छात्र भारत म आकर सस्कृत पालि के अतिरिक्त हिन्दी का भी अध्ययन करना चाहते है, क्योंकि भारत की सघराष्ट्र भाषा होने स उनके देश म उनका महत्व है। अलग समय म मुफ्त पढ़ाने के लिए अध्यापक भी तयार हैं, लेकिन नए सचालक यहाँ हिन्दी का पढना बेकार समझते हैं। अभी हमारे कितने ही अहिन्दी विद्वानो क दिमाग म हिन्दी का महत्व

घुस नही रहा है। वह अग्रेजी को प्रथम स्थान देने के लिए तैयार हैं, चाहे कम्बोज, चीन आदि देशो मे उसका महत्व न हो, और वह चाहते हो, कि भारत की प्राचीन और आधुनिक सर्वत्र प्रचलित भाषाओ का अध्ययन करें। मैंने अवतनिक सचालक काश्यपजी से कहा, पालि-त्रिपिटक की कम से कम सौ या पचास प्रतियाँ हाथ के कागज पर जरूर छपवाएँ। एसियाटिक सोसाइटी, बगाल और कितनी ही दूसरी जगहो से पचासो प्रकाशित पुस्तको के पन्ने आज ही इतने जीर्ण-शीर्ण हो गए है, कि वह जिल्द से बाहर निकल आते हैं, और जरा भी असावधानी होने पर टूट जाते है। कम से कम सौ कापियाँ तो दो चार सौ साल रहने लायक छपें।

वहाँ से हम बडगाव मे गए। मुख्य गाँव इसी नाम से मशहूर है। उसे सूय मन्दिर के कारण सूय तीर्थ बना पडे स्वत नियुक्त हो गए है। मन्दिर ने *मूर्तियो के सग्रहालय का रूप ले लिया है। भीतर और बाहर* चार से अधिक बूटधारी सूय की मूर्तियाँ हैं। पाल-काल की भी कितनी ही मूर्तियाँ है। गाँव म पचायत है, थोडी सडक भी दुरुस्त की गई है, पर गावो का समृद्ध जीवन अभी बहुत दूर की बात है।

पटना लौटते समय बिहार शरीफ की बडी दरगाह देखने गए। यह मुस्लिम शासन के आरम्भिक काल मे आए एक फकीर की दरगाह है। बिहार शरीफ आरम्भिक मुस्लिम शासको का शासन केन्द्र रहा। उन्हे *मूर्तियो का तोडन, मन्दिरो म आग लगाने म बडे पुण्य की आशा थी,* इसलिए उन्होने नालन्दा के अद्भुत पुस्तकालय को भस्मात् करने मे जरा भी आनाकानी नही की। बिहार और आसपास म लोग आतक के मारे मुसलमान हो गए। बिहार शरीफ म ऊँचे वग के मुसलमानो की काफी सख्या थी, जो अपने को हिन्दी संस्कृति से अछूता रखने के लिए सब तरह की कोशिश करते थे। आज यद्यपि हमारी सरकार इस बात का प्रयत्न करती है कि भारत के सभी नागरिको का समान अधिकार हो, पर समाज से जिन लोगो ने अपने को अलग-थलग रखने की पूरी कोशिश की, वह अब एकान्त बना न अनुभव करें। हम दरगाह दिखाने के लिए एक सम्भ्रान्त पथ प्रदशक मिल गए। बात-बात मे उनकी निराशा टपक रही थी। दूसरी तरफ मैं अपने साथ गए ड्राइवर महदी मियाँ को देख रहा था। यह उच्च वग के

१७

छपरा

सोनपुर—५ बजे अंधेरा रहते हो परतन्त्र सवारी पकडना बडी कवा हट की बात है। इसी समय हम महेन्द्रू घाट में गंगा पार ले जाने वाले स्टीमर को पकडना था। वीरेन्द्रजी अपने साथ रिक्शा लेते आये थे नहीं तो वह भी समस्या थी। घाट पर प्राय एक घंटा इन्तिजार करने पर जहाज आया। बडी भीड थी। ६ बजे के बाद हम पलेजा घाट पहुँचे। सोनपुर में खबर मिल चुकी है यह रवीन्द्र विश्वकर्मा के स्वागत से मालूम हुआ। रवीन्द्र तीसरी पीढ़ी में है। उनके दादा बडे अच्छे मिस्त्री और सोनपुर स्वराज्य आश्रम के पडोसी थे। आश्रम में रहने वाले अदलते बदलते रहते थे, पर मिस्त्री अचल थे। वह आश्रम की देखभाल ही नहीं करते, बल्कि समय-समय पर आने वालों का आतिथ्य भी करते थे। न जाने कितनी बार रवीन्द्र ...री मैंने भोजन किया होगा। दादा अब नहीं रहे, पिता भी ...र पाना जवान था। दादा निरक्षर थे। पिता ने कुछ ...ा अब शिक्षित और सम्पन्न रूप में हमारे सामने था। ...परिवर्तन होना है। ट्रेन पर बैठ कर ...ापुर स्टेशन ...मर लिए घर द्वार था। महीना नहीं तो दिना वहीं ...। में घूमना मेरे लिए असाधारण बात नहीं थी पर ...ना था। सोनपुर गाँव में जाने का समय नहीं ...न पर पुराने सहकर्मी नेताजी बाबू जमुनासिंह ...के अतिरिक्त साथी गिरवचनसिंह और दूसरे

मुसलमान नही थे। साधारण जुलाहा या किसी जाति के थ, जो हिंदुओ से मुसलमान होकर भी भाषा, वेष भूषा म हिंदुओ से भिन्नता नही रखते थे। महदी मियाँ धोती कुर्ता पहने थे। होटलवाला ब्राह्मण भी उन्हें थाली म भोजन देने के लिए तैयार था। जब तक उनका नाम न पूछे, तब तक कोई कह नही सकता था, कि वह मुसलमान है। वस्तुत भारत के लिए ऐसे ही हिन्दू मुसलमानो की जरूरत है। महदी फौज म नौकर थे। जब देश का बँटवारा होने लगा तब ना ना करने पर भी उनका नाम पाकिस्तान म लिख दिया गया। मजबूरन कई महीनो तक लाहौर म रहे। वहाँ बराबर अपने चम्पारन को याद करके रोते थे। बहुत जोर लगाया अन्त म अपने देश लौट आए। महदी मियाँ को मैं देखता था, और उधर दरगाह के पथ प्रदर्शक को। महदी मियाँ को निराशा छू नही गई थी। वह अपना म थे। किसी समय हिन्दू उनके हाथ का रोटी पानी नही ग्रहण करते थ, लेकिन अब हिंदुओ म शिक्षित और सम्भ्रान्त इस छूआछूत का कोसो छोड चुके हैं।

४ बजे तक हम लोग पटना लौट आए। प० गोरखनाथ त्रिवेदी और श्री धूपनाथजी आ गए थे। त्रिवेदीजी उसी रात को लौट गए। अगले दिन हम भी छपरा जाना था।

१७

छपरा

सोनपुर—५ बजे अँधेरा रहते हो परतन्त्र सवारी पकडना बडी बचा
हन की बात है। इसी समय हम महेन्द्रू घाट म गंगा पार ले जाने वाले
स्टीमर को पकडना था। धीरेन्द्रजी अपने साथ रिक्शा लेते आये थे नहीं
तो वह भी समस्या थी। घाट पर प्राय एक घंटा इन्तिजार करने पर जहाज
आया। बडी भीड थी। ६ बजे के बाद हम पल्जा घाट पहुँचे। सोनपुर म
खबर मिल चुकी है, यह रवीन्द्र विश्वकर्मा के स्वागत स मालूम हुआ।
रवीन्द्र तीसरी पीढी म हैं। उनके दादा बडे अच्छे मिस्त्री और मानपुर
स्वराज्य आश्रम के पडोसी थे। आश्रम म रहने वाले अदलते बदलते रहते थे,
पर मिस्त्री अचल थे। वह आश्रम की देखभाल ही नहीं करते, बल्कि समय
समय पर आये गयों का आतिथ्य भी करते थे। न जाने कितनी बार रवीन्द्र
के दादा के यहाँ मैंने भोजन किया होगा। दादा अब नहीं रहे, पिता भी
बूढे हो चुके और पोता जवान था। दादा निरक्षर से थे। पिता ने कुछ
पढा था और लडका सुशिक्षित और सहृदय रूप म हमारे सामने था।
पीढियों म कितना परिवर्तन होता है। ट्रेन पर बैठकर सोनपुर स्टेशन
पहुँचे। सोनपुर कभी मेरे लिए घर द्वार था। महीना नहीं तो दिनों वहाँ
रहना, आसपास के गाँवों म घूमना मेरे लिए असाधारण बात नहीं थी पर
अब मैं कुछ घंटे ही दे सकता था। सोनपुर गाँव म जाने का समय नहीं
निकाल सकता था। स्टेशन पर पुराने सहकर्मी मनाजो बाबू जमुनासिंह
और मास्टर नागवंश सिंह के अतिरिक्त साथी शिवबचनसिंह और दूसरे

मुसलमान नहीं थे। साधारण जुलाहा या किसी जाति के थे, जो हिंदुओं से मुसलमान होकर भी भाषा, वेष भूषा में हिंदुओं से भिन्नता नहीं रखते थे। महदी मियां धोती कुर्ता पहने थे। होटलवाला ब्राह्मण भी उन्हें थाली में भोजन देने के लिए तैयार था। जब तक उनका नाम न पूछे, तब तक कोई कह नहीं सकता था, कि वह मुसलमान है। वस्तुतः भारत के लिए ऐसे ही हिन्दू मुसलमानों की जरूरत है। मेहदी फौज में नौकर थे। जब देश का बँटवारा होने लगा, तब ना ना करने पर भी उनका नाम पाकिस्तान में लिख दिया गया। मजबूरन कई महीनों तक लाहौर में रहे। वहां बराबर अपने चम्पारन को याद करके रोते थे। बहुत जोर लगाया अंत में अपने देश लौट आए। महदी मियां को मैं देखता था, और उधर दरगाह के पथ प्रदर्शक को। मेहदी मियां को निराशा छू नहीं गई थी। वह अपना में थे। किसी समय हिंदू उनके हाथ का रोटी पानी नहीं ग्रहण करते थे, लेकिन अब हिंदुओं में शिक्षित और सम्भ्रान्त इस छूआछूत को कोसों छोड़ चुके हैं।

४ बजे तक हम लोग पटना लौट आए। पं० गोरखनाथ त्रिवेदी और श्री धूपनाथजी आ गए थे। त्रिवेदीजी उसी रात को लौट गए। अगले दिन हम भी छपरा जाना था।

१७

छपरा

सोनपुर—५ बजे अँधेरा रहते ही परन्तु सवारी पकड़ना कभी कभा की बात है। इसी समय हम महेन्द्रू घाट में गंगा पार ले जाने वाले स्टीमर को पकड़ना था। वीरेन्द्रजी अपने साथ रिक्शा लेते आये थे नहीं तो वह भी समस्या थी। घाट पर प्रायः एक घंटा इन्तिजार करने पर जहाज आया। बड़ी भीड़ थी। ६ बजे के बाद हम पलेजा घाट पहुँचे। सोनपुर में खबर मिल चुकी है, यह रवीन्द्र विश्वकर्मा के स्वागत से मालूम हुआ। रवीन्द्र तीसरी पीढ़ी में हैं। उनके दादा बड़े अच्छे मिस्त्री और सोनपुर स्वराज्य आश्रम के पड़ोसी थे। आश्रम में रहने वाले अदलते बदलते रहते थे, पर मिस्त्री अचल थे। वह आश्रम की देखभाल ही नहीं करते, बल्कि समय-समय पर आये गये का आतिथ्य भी करते थे। न जाने कितनी बार रवीन्द्र के दादा के यहाँ मैंने भोजन किया होगा। दादा अब नहीं रहे। पिता भी बूढ़े हो चुके और पोता जवान था। दादा निरक्षर थे। पिता ने कुछ पढ़ा था, और लड़का अब शिक्षित और सम्पन्न रूप में हमारे सामने था। पीढ़ियों में कितना परिवर्तन होता है। ट्रक पर बैठकर सोनपुर स्टेशन पहुँचे। सोनपुर कभी मेरे लिए घर द्वार था। महीनों यहीं तो दिन यहाँ रहना, आसपास के गाँवों में घूमना मेरे लिए असाधारण बात नहीं थी, पर अब मैं कुछ घंटे ही दे सकता था। सोनपुर गाँव में जाने का समय नहीं निकाल सकता था। स्टेशन पर पुराने सहकर्मी नवाबी बाबू जमुनासिंह और मास्टर नारायण सिंह के अतिरिक्त साथी शिवबचनसिंह और दूसरे

पुरुष स्वागत करने के लिए आए। बाबू जमुनासिंह को उस समय से दसियो साल पहले लोगो ने नेताजी कहना शुरू किया था, जबकि श्री सुभाषचन्द्र को अभी यह नाम नही मिला था। वह और मास्टर भागवत सिंह अब पूरे बूढे हो गए थे। स्टेशन ही पर चाय पिलाई गई, फिर वहा से 'आभा' कार्यालय मे थोडी देर बैठना पडा। यहा के शिक्षितो, विशेषकर विद्यार्थियो और अध्यापको ने इस पत्रिका को वर्षों से निकालना शुरू किया है। पहले हस्तलिखित होती थी, अब उसके कुछ अक छपे भी है। फिर स्वराज्य आश्रम मे गए। १६२१ से मैं इस स्थान से परिचित हू। लेकिन भूमि के अतिरिक्त और बातो मे परिवर्तन हुआ है। ओसारे के साथ कुछ कोठरियाँ और आगे काफी बडा चबूतरा है, जिसमे डेढ सौ आदमी बैठ सकते है। नीचे एक तरफ १६४२ के शहीदो का स्मारक है। सभा मे तीन सौ के करीब आदमी आए। पुराने परिचितो और नई पीढी ने अपने पुराने सुराजी कर्मी का अकृत्रिम रूप से स्वागत किया। मैने भी अपने को धन्य धन्य माना। नेताजी ने भोजन कराया। यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई, कि वह और मास्टर भागवतसिंह अब बुढापे से निश्चिन्त हैं। यही पर नयागाव हाई स्कूल के हेडमास्टर श्री शत्रुघ्ननाथ तिवारी भी मिल गए। तिवारी का वह चेहरा भी मुझे याद है, जबकि वह १६ १८ वर्ष के जवान थे। मट्रिक पास किया था, आगे बढने की इच्छा थी, और साथ ही देश के लिए काम करने की। ऐसे तरुण मुझे छपरा मे और अन्यत्र भी मिलते थे। मैं उन्हे हमेशा प्रोत्साहित करता था कि वह अपने सामने बडा लक्ष्य रखे। लेकिन, सभी बडा लक्ष्य तो नही रख सकते। जब उस दिन फोन पर तिवारी से बातचीत हुई और मुझे मालूम हुआ, कि वही तरुण अब एक हाई स्कूल का बहुत योग्य हेडमास्टर है, तो मुझे बडी प्रसन्नता हुई। भोजनोपरान्त नयागाँव का प्रोग्राम था।

नयागाव—जहा सडक हो, वहा मोटर बस न चलती हो, यह सम्भव नही। यदि रेल का सुभीता हो, तब भी मोटर के लिए गुजाइश नही रह जाती, यह भी बात नही। रेलवे अधिकारियो की रिपोर्ट से मालूम होता है, कि भारत की जनता का एक प्रतिशत रेलो पर जरूर चलता है। मैं समझता हूँ, इस एक प्रतिशत मे वे मुसाफिर नहीं शामिल हैं, जो मोटर-बसो पर चलते हैं। जहाँ सरकारी रोडवेज की बसें चलती हैं वहाँ प्राइवेट बसें

नहीं चलती। सोनपुर से छपरा रेल जाती है पर प्राइवेट बसें भी यहां से बराबर जाती रहती हैं। आजनाड के बारे में तो सुनने में आया कि जहां राडवेज ने सडक को ले लिया है वहां पर प्राइवेट मोटर वाले माल ढोने को लारियां चलाने लगे हैं। बैलगाडी किराया करने की जगह लोगों को लारी किराया करने में सन्तोपन मालूम होता है। लारी में तिवारीजी और वीरेन्द्रजी के साथ हम चले। नयागांव के ही प्राइमरी स्कूल में भिखारी अध्यापक हैं। भिखारी शापित जाति के हैं मुश्किल से मैट्रिक पास किया। कालेज पढने की बडी इच्छा थी। एक तरफ आर्थिक कठिनाइ और दूसरी तरफ देश से शोषण दूर करने की उमंग दोनों के कारण उनकी पढाई आगे नहीं बढ सकी। अब यहीं एक प्राइमरी स्कूल में पढाते अपने विचारों का फैलाने में भी लगे रहते हैं। मैं तो इनके जैसे लोगों को असली तपस्वी मानता हूं।

हाई स्कूल के कितने ही कमरे बन चुके हैं। लडकों की संख्या बढ रही है, उसी के अनुसार मकान भी नये बढते चले जा रहे हैं। नयागांव ने कई शिक्षित और प्रसिद्ध पुरुष पैदा किये हैं। बटाहिया के बाबू रघुवंश नारायण यहीं के थे। पटना विश्वविद्यालय के कुलपति वासुदेव नारायण यहीं के हैं। छपरा में मिडिल तक की हिन्दी शिक्षा को निःशुल्क करके चलाने का तजर्बा जिस जिला स्कूल निरीक्षक के तत्वावधान में हुआ था वह यहीं के थे। आसपास की टूटी-फूटी मूर्तियों और ध्वसावशेषों से यह भी मालूम होता है कि इस भूमि में कितनी ही ऐतिहासिक निधियां छिपी हुई हैं। विद्यार्थियों और अध्यापकों ने स्वागत किया और मैंने भाषण दिया।

यहां से साढे ३ बजे जनता ट्रेन पकडनी थी जिसके लिए स्टेशन पर चले गये। लडकों की काफी संख्या स्टेशन पहुंची। उनमें से कुछ रेल पर जाने वाले थे और कुछ आज के वक्ता का तमाशा देखना चाहते थे। १५-१६ वर्ष से नीचे वाले लडके भला मेरे बारे में क्या जानते होंगे? दादा होते तो कुछ बातें बतलाते, पर अब संसार में नहीं रहे। सुराजी कर्मी के तौर पर मुझे जानने वालों की संख्या अब छपरा में बहुत कम रह गई थी। हां, पढने लिखने का शौक रखने वाले लेखक के तौर पर राहुलजी का नाम जरूर जानते हैं। ये लडके जो कितनी ही देर तक खडे खडे स्टेशन पर

और देख रहे थे, वे यदि सुन भी रहे होंगे, तो उस बड़ी दूर की किसी आवाज की तरह। हाई स्कूल के विद्यार्थी थे। लेकिन सौ में से दस के पैरों में भी जूता नहीं था। कपड़े यदि फटे नहीं थे तो मैले जरूर थे। दोनों का कारण गरीबी है। हमारे नेता गरीबी का मुंह काला करने की लम्बी-लम्बी बातें करते हैं। लेकिन, उनके प्रयत्न से लक्ष्मी गरीबों के घर में नहीं, बल्कि सेठों के घर में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। वे अपने जीवन तक तो कभी गांवों से दरिद्रता के भगाने की आशा नहीं रखते, और न उनके लिए प्रयत्न करते हैं।

छपरा—हमारी ट्रेन साढ़े ५ बजे छपरा के करीब पहुंची। बहुत से पुराने मित्र और तरुण स्टेशन पर मिले। छपरा में हमेशा से पं० गोरखनाथ त्रिवेदी का घर ही मेरा घर रहता आया है, इसलिए सीधे वहीं गया। उसी दिन शाम को टौन हाल में भाषण का भी प्रबन्ध किया गया था, इसलिए थोड़ी देर ठहरकर वहां पहुँचा। टौनहाल में सभी आदमी कैसे आ सकते थे पर हाल में दर्जनों परिचित चेहरों को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। छपरा में चाहे शहर में हों या देहात में, मैं बराबर भोजपुरी में ही भाषण देता रहा हूँ, लेकिन आज न जाने क्या वह बात टूट गई। दूसरों को हिन्दी में बोलते देख मैं भी उसी में बोल पड़ा। त्रिवेदीजी के डेरे पर आने पर और कितने ही मित्र मिलने के लिए आए। एक दिन अभी और छपरा में आकर रहना था।

परसा—कोशिश तो की गई, कि मोटर बड़े तड़के ही मिल जाए, और हम आज ही एकमा, परसा अमनौर और हो सके तो सिवान भी होकर रात को छपरा लौट आयें। पर मोटरें बहुत कम लोगों के पास रह गई है। सरकारी अफसर और कुछ सेठ ही उसे रखने की हिम्मत कर सकते है। पहले हर दो चार गाँव पर कोई एक बड़ा बाबू जमींदार होता, जिसके पास पहले हाथी घोड़ा बग्गी होते। मोटरों का जमाना आया, तो उसने इन चीजों को मोटर से बदल दिया। अब जमींदार के उठने पर वे बाबू नहीं रह इसलिए मोटरों की सुविधा नहीं। खैर बस ट्रक मिश्रित एक मोटर सवा १० बजे आई, और हम छपरा छोड़ने में सफल हुए। साथ में वीरेन्द्रकुमार और श्री रामानन्द सिंह थे। दोनों धूपनाथजी के भतीजे हैं। रामानन्द न

बी० ए० करके अपना समय राजनीति मे लगाया, काग्रेस के नेताओ म से ह। हमारे सामन ही तो होश सँभाला था, और अभी बुढापे की छाप उनके चेहरे पर दख रह थ। एकमा ४५ मिनट म पहुँचे। पचासो मुर्रा भैंसे और अच्छी जाति की गाएँ—जिनमे कुछ के साथ बछडे भी थे—सडक से जा रही थी। पता लगा, कलकत्ता से आ रही हैं। दूध देते समय मालिका न उन्ह कलकत्ता म रखा, जब विसुक गई तो उन्ह अपन घर पर ला रहे हैं। फिर ब्यान पर उन्ह पटना तक पदल और फिर रल पर चढा कर कलकत्ता ले जाएगे। मेरा रोम राम छपरा क इन गोपालको का आशीर्वाद देने लगा। कलकत्ता म दूध के लिए भारत की श्रेष्ठ जाति की भैसे और गाएँ जाती ह, जो दिन म १५ २० सेर तक दूध दती है। विसुक जाने पर उनको दो रुपया रोज कौन खिलाएगा। बहुत से तो विसुकी गायो और भैसो को कसाइयो का दे देते ह। अधिकाश दूध देन वाले पशु और इतनी उच्च जाति के एक वियान दूध देकर मार दिये जाते ह। कितनी भयकर और मूखतापूण रीति से पशुधन का सहार होता है।

जिस गोवश और महिषवश की रक्षा और वृद्धि करना हमारा परम कतव्य है, उसका इस तरह ध्वस हो रहा है। कम से कम इन गायो और भसो की रक्षा के लिए तो कानून जरूर बनना चाहिए। पर, उससे क्या पैसे की मार की चोट कम हो जायगी ? विसुकी गायो और भसो को बिठाकर तीन चार रुपया रोज कौन खिलायेगा ? सभी गोपालक छपरा या आसपास के विहारी जिलो के नही है कि वह कलकत्ता से अपने माल को यहा ले आएँगे। इसका तो एक ही उपाय है कि कलकत्ता और इस तरह के दूसरे शहरो से सौ पचास मील पर ४००-५०० एकड अच्छी गोचर भूमि सरकार सुरक्षित कर दे जहा विसुके गायो-भैसो को पाँच दस रुपया प्रवेश फी लेकर रख लिया जाए। मालिक बियाने पर उन्ह फिर ले जाने का हक रखे। इससे दूसरा तरीका यह हो सकता है कि बडे शहरो म डेरी का काम सरकार अपने हाथो मे ले, लेकिन इसके कारण हजारो आदमी बेकार हो जाएँगे, इसका भी ध्यान देना होगा। यही बाते सोचते मैं जा रहा था कि पास के बछडे ने चिल्लाकर बाँ किया। दो-तीन बछडे एक रस्सी म बँधे चल रह थे। मोटर उनके पास से धक्का देती निकली। मेरा स्वप्न भग हुआ, और

कलेजा कितनी दर तक कांपता रहा। एक तो इस खयाल स कि कही मोटर उसके पैर पर चली जाती और दूसरा यह कि इस तरह के हजारो बछडे और उनकी मॉयें कलकत्ता म पैर रखने का ठौर न पा कसाइया की छुरी के नीचे जबह हो चुकी हागी।

एकमा म लक्ष्मी बाबू से कह दिया कि हम सीधे परसा जा रहे है, वहाँ स लौटकर यहा आएँगे। परसा अब के मैं तीस वप बाद जा रहा था। १९२६ के बाद कभी इस भूमि पर पैर नही रखा। उस समय काग्रेसी उम्मीदवार के खिलाफ यहाँ के बहुत जबदस्त जमीदार शिवजी जिला बोड के लिए खडे हुए थे। मैं काग्रेस की आर से प्रचार के लिए यहाँ आया था। जमीदार को खुश करने के लिए कुछ एसे लोग गाली गलोज पर उतर आए जिनके बारे मे मैं जानता था वे मेरे विरोधी नही हो सकते। इसी समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जमीदारी प्रथा नही उठेगी तब तक परसा नही आऊँगा। अब आन का समय हो गया था, इसलिए मैं परसावासिया स भी अधिक लालसा के साथ यहाँ आया था। पहले ही मठिया मिली। वही मठिया, जहाँ का भावी महन्त बनान क लिए महन्त लक्ष्मणदासजी मुझे बनारस स लाए थे। यदि मैं मठिया म टिक नही सका और महन्त नहीं बन सका ता उसम किसी और का दाप नही, बल्कि मरी अपनी घुमक्कडी और विद्या की तीव्र जिज्ञासा का था। सचमुच ही मैं उस छोटे स ताल क भीतर रहकर कसे देश देशान्तर विचर सकता था, कस कण-कण करके ज्ञान अजित कर पाता। आज मठिया का रूप बदला हुआ था। दो मन्दिर और समाधि तथा एकाध और घरो को छाडकर सभी नय मकान थे। खपडल और कच्ची दीवारा को हटाकर उनकी जगह पक्की इमारतें बन गई थी। मर गुरु महन्त लक्ष्मणदास को पक्के मकाना के बनान की सनक थी। वह आमदनी की कुछ पर्वाह नही करत थे, और कज ले-लेकर उस इट चून पर लगा रहे थे। वह सारे मठ का ईंटे चून का बनान म सफल हुए। जिस वक्त मैं पक्तिया का लिख रहा हूँ, उस समय तीस वप बाद मठ का जाकर देख तीन हा महीने हुए हैं। पर, मर मानस-पटल पर तास वप पहल का ही मठ अकित है। शायद युवाप के मन पर प्रतिबिम्ब अधिक गाढा नहीं हाता, और जल्दी मिट भी जाता है। तब ईंटें चून का नहीं और मिट्टी और खपडैल

का यह मठ था, उस समय सौ सौ मूर्ति साधु यहा रहा करते थे। हर जगह चहल-पहल रहती थी। मेरे रहते समय (१९१३ ई०) म भी भोजन के वक्त दो दजन से अधिक साधु पाती म वठत थे। अब तो जमाना ही बदल गया।

मरे बार बार भाग जाने पर निराश होकर महन्तजी ने अपन भतीजे श्री सत्यनारायण दास को चेला बनाकर महन्त बनाया। उनस पहले श्री वीर राघवदास शिष्य बने थे। वतमानजी बहुत सीधे सादे हैं। वीर राघवदासजी अधिक हाशियार है, और मठ के प्रबन्ध का भार भी उन्ही पर ज्यादा है। दोनो नौजवान थे, जबकि पिछली बार मैंने मठ को देखा था। अब दोनो के बाल सफेद हैं। जमीदारी प्रथा समाप्त हुई, उसका प्रभाव मठो पर उतना नही पडा है। लेकिन, लालबुझक्कडो ने मठो के अधिकारियो की नीद हराम कर दी है। जब-जब मठ की सम्पत्ति पर गाढ पडता, घुमक्कडी छाडकर मैं महन्तजी के बुलाने पर परसा आता, और मेरे आने से लाभ भी होता। यह बात हमारे दोनो गुरुभाई जानते थे। उन्होने सलाह पूछी। पता लगा, किसी अक्लि के अजीण वाले महन्त ने यह सिखलाया है कि हम अपने मठा की सम्पत्ति को प्राइवेट घोषित करे, तो वह बच जायेगी। मैंने समझाया, जमीदारी प्रथा और जमीदारी के रूप मे मौजूद सम्पत्ति तो कभी भी पहले की तरह नही रह सकती। जोतने वाले का खेत पर अधिकार होगा, इसे ब्रह्मा भी नही टाल सकता। मठ की सम्पत्ति को अगर सावजनिक धर्मोत्तर सम्पत्ति मानते हैं तो आपको विशेष रियायत मिलेगी। जमीदारी से जा वार्षिक मालगुजारी मिलती रही है, उसमे से वसूल-तहसील क लिए दो चार सैकडा काटकर बाकी नगद रुपया मिल जायेगा। यह सुभीता किसी निजी जमीदारी वाले व्यक्ति को नही है। इसके अतिरिक्त निजी जमीदार को कुछ बिगह ही अपनी खेती के लिए रखने का अधिकार होगा। आपके मठा मे बीसियो साधु रहते हैं, उनके हिसाब से मठो को अपनी निजी जोत की काफी जमीन रखने का अधिकार होगा, और सैंकडा बीगहे आप खेती करा सक्त हैं। यह सुभीता भी नहीं रहेगा, और वही बीस-तीस एकड जमीन आपके मठ को भी मिलेगी, जो कि दूसरो को। बिहार ही म नही, उत्तर प्रदेश मे भी महन्ता मे ऐसी हलचल है। कितने ही महन्त पहले भी ब्याह करके मठ की सावजनिक सम्पत्ति को निजी बना

चुके हैं। अभी ब्रह्मचारी मगलदेवजी कह रहे थे कि अब तो उत्तर प्रदेश के कितने ही महन्त एक ओर से ब्याह करने की सोच रहे है। सार्वजनिक सम्पत्ति का इस तरह से ध्वस और लूट खसूट होने देना किसी सरकार को शोभा नही देता। सरकार को उसकी रक्षा के लिए विशेष विधान बनाना चाहिए।

मठ म चारो तरफ घूमकर पोखरे के किनारे से हम पुराने मठ म गए। मूल मठ यही था, जो कि गाव से सटा हुआ है, और जिसम गोपाल मन्दिर है। १९१३ म भी यह काफी बडा मठ था। उससे पहले तो यहा बडा फाटक और उसके ऊपर शहनाई या नगाडा बजाने वालो के बैठने का स्थान तथा सैकडा आदमियो के ठहरने लायक मकान थे। महन्त की गद्दी यही है। अब मठ को सकुचित कर लिया गया है। यहा से एक मन्दिर (रामजी) को उठाकर पिछले मठ म ले गये है, तो भी स्थिति बुरी नही है। गाव के बनिया म किसी की भक्ति ने जोर मारा, और उसने गोपाल मन्दिर के फर्श को नकली सगमरमर का बना दिया। गाँव के भीतर से होकर हाई स्कूल म जाना था, वहाँ पर स्वागत की सभा होने वाली थी। तीस वर्ष म परसा के बहुत से पुराने आदमी चल बसे, उनका स्थान लेने वाले मेरे परिचित नही थे। पर, रामउदार बाबा का नाम तो सभी सुन चुके थे। जब किसी पढ़े लिखे जवान ने मेरी किसी किताब की चर्चा की होगी, तो उसके गुरुजन ने कहा— 'तुम क्या जानो रामउदार बाबा को। उन्हे हम पुजारीजी कहते थे। इसी परसा मठ म वह रहते थे। बडे अच्छे थे। वह रहे होते, तो वही मठ के महन्त होते। सुराज म काम करने लगे, फिर न जाने कहाँ चले गये।" उस भीड मे उन सैकडो मुखो म मेरी आँखें परिचितो को ढूढ रही थी। "बाइसवी सदी" म मैंने जिस पुराने अच्छे बडे गाँव का दयनीय चित्र खीचा है, वह यही परसा था, और उस दयनीय चित्र म अब भी कोई अन्तर नही पडा है। परसा बहुत पुराना ग्राम होगा। किसी समय यह एक सामन्त की राजधानी रही। परसा के बाबू वस्तुत उसी सामन्त की सन्तानें हैं। उनका निवास-स्थान अब भी गढ कहा जाता है, और गढ के चारो ओर की खाई के कुछ अश अब भी मौजूद हैं। सामन्त की राजधानी म बाजार और शिल्प-उद्योग होना ही चाहिए। परसा अपने कांसे और [illegible] बरतनो [illegible] प्रसिद्ध

चुके हैं। अभी ब्रह्मचारी मगलदेवजी कह रहे थे कि अब तो उत्तर प्रदेश के कितने ही महन्त एव आर से ब्याह करने की सोच रहे है। सावजनिक सम्पत्ति का इस तरह से ध्वस और लूट खसूट होने देना किसी सरकार को शोभा नही देता। सरकार को उसकी रक्षा के लिए विशेष विधान बनाना चाहिए।

मठ म चारो तरफ घूमकर पोखरे के किनारे से हम पुराने मठ म गए। मूल मठ यही था, जो कि गाँव से सटा हुआ है, और जिसम गोपाल मन्दिर है। १९१३ म भी यह काफी बडा मठ था। उससे पहले तो यहाँ बडा फाटक और उसके ऊपर शहनाई या नगाडा बजाने वालो के बठने का स्थान तथा सैकडा आदमियो के ठहरने लायक मकान थे। महन्त की गद्दी यही है। अब मठ को सकुचित कर दिया गया है। यहा के एक मन्दिर (रामजी) को उठाकर पिछले मठ म ले गये है, तो भी स्थिति बुरी नही है। गाँव के बनिया म किसी की भक्ति न जोर मारा, और उसन गोपाल मन्दिर के फश को नकली सगमरमर का बना दिया। गाव के भीतर से होकर हाई स्कूल म जाना था, वहाँ पर स्वागत की सभा होने वाली थी। तीस वष म परसा के बहुत से पुराने आदमी चल बसे, उनका स्थान लेने वाले मेरे परिचित नही थे। पर, रामउदार बाबा का नाम तो सभी सुन चुके थे। जब किसी पढे लिखे जवान ने मेरी किसी किताब की चर्चा की होगी, तो उसके गुरुजन ने कहा—"तुम क्या जानो रामउदार बाबा को। उन्ह हम पुजारीजी कहते थे। इसी परसा मठ म वह रहते थे। बडे अच्छे थे। वह रहे होते, तो वही मठ के महन्त होते। सुराज म काम करने लगे, फिर न जाने कहा चले गये।" उस भीड म उन सकडा मुखो मे मेरी आखें परिचितो को ढूढ रही थी। "बाइसवी सदी" मे मैंने जिस पुराने अच्छे बडे गाव का दयनीय चित्र खीचा है, वह यही परसा था, और उस दयनीय चित्र म अब भी कोई अन्तर नही पडा है। परसा बहुत पुराना ग्राम होगा। किसी समय यह एक सामन्त की राजधानी रही। परसा के बाबू वस्तुत उसी सामन्त की सन्तानें हैं। उनका निवासस्थान अब भी गढ कहा जाता है, और गढ के चारो ओर की खाई के कुछ अश अब भी मौजूद है। सामन्त की राजधानी म बाजार और शिल्प उद्योग होना ही चाहिए। परसा अपने कासे और फूल के बतनो के लिए प्रसिद्ध

था। जब भी दखा लाटे ढाले जा रहे हैं लेकिन वे भाग्य लौटाने म सफल नही हुए।

गाव से हात गढ़ पर लक्खी बाबू से मिलने गये। मेरे समय म इनका और बाबू शिवजी का घर बहुत समृद्ध था। उसके बाद बब्बन बाबू थे। बाबू शिवजी के पिता वैजनाथ बाबू का भी मैंने देखा था। उनके बाद बाबू शिवजी की बडी तपी। उनके पुत्र राघवजी भी अच्छी बबुआई करके मर। अब उनका लडका है लेकिन जमीदारी प्रथा उठने से पहले ही जमीदारी भीषण रूप स ऋणग्रस्त हा चुकी थी। लक्खी बाबू उन आदमियो म थे जिनको कहते हैं— 'न ऊधो से लेना न माधो का देना।" सरल प्रकृति के पुरुष थे। ऐसे आदमी को जमीदारी प्रथा उठाने वाली क्या बहुत पीडित नही कर सकती। बडी तपस्या से एक लडका हुआ था वह जवान हाने लगा था कि इसी वक्त चल बसा। अब एक छोटा-सा बच्चा था। सुनते ही बब्बन बाबू भी चले आये। फिर हम उनके साथ गाव से बाहर स्कूल म गये। इस स्कूल का स्थापित हुए पच्चीस से अधिक वष हा चुके है। मैं पहल पहल स्कूल म आया था। लडको और अध्यापको ने स्वागत का आयोजन किया था। लोगा को एक ही दिन पहले तो मेरे आन की खबर लगी थी और समय का ठिकाना नही था इसलिए गाव और आस पास क लोगा को मेरे चले जाने के बाद खबर मिली होगी। स्कूल सामाजिक परिवतन म काफी सहायक होते हैं। बाबू और गरीब के लडके एक साथ बैठकर पढते है, इसक कारण उनम भेदभाव कम हान लगत हैं। अब ता सामन्त-युग के अवशेष जमीदारी प्रथा के अन्त हो जाने से यह सामाजिक विषमता और भी तेजी से कम हो रही है। बाबू लोग पहले पढने की जरूरत नही समझते थे। बब्बन बाबू के लडके एम० ए० होकर इसी स्कूल मे अध्यापक हैं। वह विद्या के गुण को समझ सकते हैं। स्वागत और भाषण के बाद चलन की जल्दी थी क्योकि आज ही एकमा और अतरसन म भी स्वागत-सभा होने वाली थी। स्कूल से लौटते वक्त सारे बाजार के भीतर से जाने वाली सडक हमने मोटर स नापी। बाजार के घरा म क्या परिवतन हुआ है, यह देखना चाहता था। दूकाने कुछ ज्यादा बढी हैं, चेहरे अधिकाश नये हैं। यही परिवतन था। सभा-स्थल पर ही एक हलवाइन बुढिया अपने गुरु का दशन करने के

चुके हैं। अभी ब्रह्मचारी मगलदेवजी कह रहे थे कि अब तो उत्तर प्रदेश के कितने ही महन्त एक ओर से व्याह करने की सोच रहे है। सार्वजनिक सम्पत्ति का इस तरह से ध्वस और लूट खसूट होने देना किसी सरकार को शोभा नही देता। सरकार को उसकी रक्षा के लिए विशेष विधान बनाना चाहिए।

मठ में चारो तरफ घूमकर पोखर के किनारे से हम पुराने मठ में गए। मूल मठ यही था, जो कि गाव से सटा हुआ है, और जिसमे गोपाल मन्दिर है। १९१३ में भी यह काफी बडा मठ था। उससे पहले तो यहा बडा फाटक और उसके ऊपर शहनाई या नगाडा बजाने वालो के बैठने का स्थान तथा सैकडो आदमियो के ठहरने लायक मकान थे। महन्त की गद्दी यही है। अब मठ को सकुचित कर दिया गया है। यहा के एक मन्दिर (रामजी) को उठा कर पिछले मठ में ले गये है, तो भी स्थिति बुरी नही है। गाँव के बनियो में किसी की भक्ति ने जोर मारा, और उसने गोपाल मन्दिर के फर्श को नकली सगमरमर का बना दिया। गाव के भीतर से होकर हाई स्कूल में जाना था, वहा पर स्वागत की सभा होने वाली थी। तीस वर्ष में परसा के बहुत से पुराने आदमी चल बसे, उनका स्थान लेने वाले मेरे परिचित नही थे। पर, रामउदार बाबा का नाम तो सभी सुन चुके थे। जब किसी पढे लिखे जवान ने मेरी किसी किताब की चर्चा की होगी, तो उसके गुरुजन ने कहा—"तुम क्या जानो रामउदार बाबा को। उन्हें हम पुजारीजी कहते थे। इसी परसा मठ में वह रहते थे। बडे अच्छे थे। वह रह होते, तो वही मठ के महन्त होते। सुराज में काम करने लगे, फिर न जाने कहाँ चले गये।" उस भीड में उन सैकडो मुखो में मेरी आँखें परिचितो को ढूढ रही थी। "बाईसवी सदी" मे मैंने जिस पुराने अच्छे बडे गाँव का दयनीय चित्र खीचा है, वह यही परसा था, और उस दयनीय चित्र मे अब भी कोई अन्तर नही पडा है। परसा बहुत पुराना ग्राम होगा। किसी समय यह एक सामन्त की राजधानी रही। परसा के बाबू वस्तुत उसी सामन्त की सन्तानें हैं। उनका निवास-स्थान अब भी गढ कहा जाता है, और गढ़ के चारो ओर की खाई के कुछ अश अब भी मौजूद है। सामन्त की राजधानी में बाजार और शिल्प-उद्योग होना ही चाहिए। परसा अपने काँसे और फूल के बर्तनो के लिए प्रसिद्ध

गी उतर आया था। भोजन के बाद स्कूल म गए। छात्रो के अतिरिक्त जिन पुराने मित्रो को पता लगा, सब आए थे। रामबहादुर लाल १६-१८ वप के तरुण थे, जब उन्होने स्कूल छोडकर असहयोग मे काम करना शुरू किया था। अब वह बूढे हो गए थे। रामउदार राय, हरिहर सिंह का अब चेहरा स्मृति पटल पर ही देख सकता था।

अतरसन—जल्दी-जल्दी पडी थी। कम से कम दिन रहते अतरसन पहुँच जाना जरूरी था, ताकि वहा एकत्रित हुए लोग निराश न हो। अतरसन धूपनाथ का गाँव है। उनके भाई देवनारायण सिंह का ख्याल आये विना इस समय नही रह सकता था। लेकिन, पुरानी पीढियो को पकडकर बैठाया नही जा सकता। इस घर मे बाबू रामनरेश सिंह असहयोग के समय से ही काग्रेस का काम करते रहे और अब भी उसी मे हैं। उस समय वह घर का काम-काज देखते थे और अब हामियोपैथी के एक अच्छे डाक्टर हैं। उनके बुढाप के बारे म कहने की क्या आवश्यक्ता जबकि उनके भतीजे अखिलानन्द सिंह के सिर को देखने से मालूम होता था कि बाल नही, झबरी सफेद टोपी पहन हुए है। वीरेन्द्र अखिला आदि समवयस्क आधे दजन से ऊपर इस घर के लडको को कभी मैंने बच्चे देखा था। मालूम होता है वह दिन कल ही गुजरा है। आज घर जान पर उसी उमर के एक दजन से अधिक लडके खडे दिखाई पडे, यह उनकी अगली पीढी है। बाबू रामनरेश सिंह और उनके घर के लोगो ही के प्रयत्न का फल स्कूल है। प्राइमरी से उसे मिडिल और फिर हाई स्कूल किया। आजकल लोगो म शिक्षा की कितनी रुचि है, यह इसीसे मालूम होगा, कि कोस डेढ कोस के अन्दर यहा एकमा, परसा, अतरसन, जतपुर, बरेजा के पाच हाई स्कूल हैं। और सभी जगह लडको की पूरी सख्या है, सभी स्कूल स्वावलम्बी है। अतरसन का स्कूल गाव से बाहर बगीचे के छोर पर है। काफी इमारतें बन गई हैं। यहाँ भी सभा मे भाषण देना था। पुराने सहकर्मियो म लक्ष्मी बाबू हमारे साथ ही थे, मधु बाबू भी और प० रामदयाल वद्य भी आ मिले। रामदयाल जी सौभाग्यशाली हैं। इनके पिता अब भी जीवित हैं, और पुत्र के पुत्र का भी मुह देख लिया है। सभा के बाद बाबू रामनरेश सिंह के घर पर गए। वहाँ साग का मेरे लिए विशेषतौर से इन्तजाम किया गया था, एक छोटा-

लिए पहुँची। मैंने वैष्णव होते समय उसे मन्त्र दीक्षा दी थी। मुझसे दीक्षा लेने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या एक दर्जन से ज्यादा नहीं थी। जब मोटर दरवाजे पर पहुँची, तो देखा उसके ससुर जगेसर भी जिन्दा हैं। कमर टेढी हो गई थी, और शरीर में हाड़ मास छोड़ और कुछ नहीं था। एक ही लड़का था। वह जवानी में जाता रहा। उसकी बहू ने अपने ससुर की सेवा में ही अपना जीवन बिता दिया। ससुर के कुबड़े देह में न जाने कहाँ से फुर्ती आ गई। मिठाई की दूकान में से जो अच्छी मिठाई थी, उसको इकट्ठा कर हमें अर्पित किया। परसा में रहते सवेरे का जलपान इन्हीं की दूकान से खरीदकर मेरे लिए आया करता था। बुढ़िया तो गद्गद हो गई थी। वह चरणामृत लिए बिना कैसे छोड़ सकती थी, और मैं उससे इन्कार करके उसके हृदय को चोट कैसे पहुँचा सकता था? बड़ी सड़क पर पहुँचकर मठिया के पास मोटर को खड़ी कर हम फिर मठ में गये। वीर राघवदासजी बिना कुछ पवाये (खिलाये) नहीं छोड़ सकते थे। भात, साग, पूड़ी और हलवा खाने में वही रस आया, जो कि १९१३ में आता था। सभी आत्मीय समझते थे, और सभी के मन में एक तरह का भारी उत्साह था।

एकमा में पहुँचते पहुँचते १ बजे से अधिक हो गया। लक्ष्मी बाबू ने भी भोजन का प्रबन्ध कर रखा था। खैर, मात्रा तो अपने हाथ में थी, और मैंने यहाँ के लिए भी जगह छोड़ रखी थी। कांग्रेस में काम करते वक्त जिन तरुणों के साथ मेरा घनिष्ठ सम्पर्क हुआ था, उनमें लक्ष्मी बाबू खास स्थान रखते हैं। एकमा हेडक्वार्टर रहने और यहीं उनका घर होने से उनका घर मेरा अपना-सा था। सैकड़ों बार अचानक भी पहुँचकर मैंने उनके यहाँ भोजन किया होगा। उस वक्त घर के बड़े पिता और चचा थे। पिता सात बरसों राजा की तहसीलदारी करते भागलपुर जिले में रहा करते थे। लक्ष्मी बाबू डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वायस चेयरमैन भी रह चुके थे, और अब कांग्रेसी एम० एल० ए० थे। मैं कम्युनिस्ट हूँ, और वह कांग्रेसी। पर, इससे क्या हमारे भी वैयक्तिक सम्बन्ध में हमारा अन्तर आ सकता था? मेरे साम्यवादी विचारों का तो वह और उनके मित्र उस समय भी जानते थे जब मैं उस इलाके में उनके साथ काम करता था। "बाईसवीं सदी" का ख्याल तो उस समय तक दिमाग में परिपक्व हो चुका था, और १९२३ में वह कागज पर

भी उतर आया था। भोजन के बाद स्कूल मे गए। छात्रों के अतिरिक्त जिन पुराने मित्रो को पता लगा, सब आए थे। रामबहादुर लाल १६ १८ वष के तरुण थे, जब उन्होने स्कूल छोडकर असहयोग मे काम करना शुरू किया था। अब वह बूढे हो गए थे। रामउदार राय, हरिहर सिंह का अब चेहरा स्मति-पटल पर ही देख सकता था।

अतरसन—जल्दी जल्दी पडी थी। कम से कम दिन रहते अतरसन पहुँच जाना जरूरी था, ताकि वहा एकत्रित हुए लोग निराश न हो। अतरसन धूपनाथ का गाव है। उनके भाई देवनारायण सिंह का ख्याल आये बिना इस समय नही रह सकता था। लेकिन, पुरानी पीढियो को पकडकर बैठाया नही जा सकता। इस घर मे बाबू रामनरेश सिंह असहयोग के समय से ही काग्रेस का काम करते रहे और अब भी उसी मे है। उस समय वह घर का काम काज देखते थे और अब होमियोपैथी के एक अच्छे डाक्टर हैं। उनके बुढापे के बारे मे कहने की क्या आवश्यकता, जबकि उनके भतीजे अखिलानन्द सिंह के सिर को देखने से मालूम होता था, कि बाल नही, झबरी सफेद टोपी पहने हुए हैं। वीरेन्द्र, अखिला आदि समवयस्क आधे दजन से ऊपर इस घर के लडको को कभी मैंने बच्चे देखा था। मालूम होता है, वह दिन कल ही गुजरा है। आज घर जाने पर उसी उमर के एक दजन से अधिक लडके खडे दिखाई पडे, यह उनकी अगली पीढी है। बाबू रामनरेश सिंह और उनके घर के लोगो ही के प्रयत्न का फल स्कूल है। प्राइमरी से उसे मिडिल और फिर हाई स्कूल किया। आजकल लोगो मे शिक्षा की कितनी रुचि है, यह इसीसे मालूम होगा, कि कोस डेढ़ कोस के अन्दर यहाँ एकमा, परसा, अतरसन, जतपुर, बरेजा के पाँच हाई स्कूल हैं। और सभी जगह लडको की पूरी सख्या है, सभी स्कूल स्वावलम्बी हैं। अतरसन का स्कूल गाँव से बाहर बगीचे के छोर पर है। काफी इमारतें बन गई हैं। यहाँ भी सभा मे भाषण देना था। पुराने सहकर्मियो मे लक्ष्मी बाबू हमारे साथ ही थे, मधु बाबू भी और प० रामदयाल वैद्य भी आ मिले। रामदयाल जी सौभाग्यशाली हैं। इनके पिता अब भी जीवित हैं, और पुत्र के पुत्र का भी मुह देख लिया है। सभा के बाद बाबू रामनरेश सिंह के घर पर गए। वहाँ साग या मेरे लिए विशेषतौर से इन्तजाम किया गया था, एक छोटा-

सी चाय पार्टी हो गई। घर की महिलाओ मे भी नई पीढी आ गई थी, जो बाबा का दर्शन किए बिना कैसे रह सकती थी? उन्हें भी दर्शन देकर ६ बजे छपरा पहुँच गए। सिवान गए दस बारह वर्ष हो गए। वहाँ जाने की बड़ी इच्छा थी यदि मोटर सवेरे ही आ गई होती, तो वहाँ भी हो आए होते।

१८ जनवरी को छपरा मे ही रहना था। उस दिन सवेरे नौ बजे से ही प्रोग्राम शुरू हो गया। पहले अपनी पार्टी के साथियो के बीच प्रगतिशील साहित्य के सम्बन्ध मे एक छोटी सी गोष्ठी हुई। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि नई पीढी पिछली पीढी का स्थान लेने के लिए और भी उत्साह के साथ तैयार है। मध्याह्न भोजन नर्मदा बाबू के यहा हुआ। पहले यह और प० गोरखनाथ त्रिवेदी पडोसी थे। नर्मदा बाबू और उनके अनुज जलेश्वर बाबू से मेरी पुरानी आत्मीयता है। दोपहर को राजेन्द्र कालेज पहुचे। प्रिंसिपल मनोरजन प्रसाद ने यदि परिचय मे अतिशयोक्ति से काम लिया, तो यह उनके अधिकार के भीतर की बात थी। 'फिरंगिया'' के अमर गायक का मेरे साथ बहुत पुराना परिचय था। हिन्दू युनिवर्सिटी मे जब अध्यापक थे, तो उस समय वहा जाने पर जरूर मिलते। विश्वनाथ की नगरी छुडाकर छपरा लाने मे मेरा ही हाथ था, इसे वह कहना नही भूले। मनोरजन बाबू जनता के आदमी है इसलिए जनता के दुख सुख को कभी नही भूल सकते।

छपरा मे राजपूत स्कूल अब जगदम्ब कालेज के नाम से डिग्री कालेज बनने जा रहा था। अभी कालेज की दो कक्षाएँ खुली हैं, और उनमे पाच सौ विद्यार्थी हो गए है यह बतलाता है कि शिक्षा की बडी माँग है। जगदम्ब कालेज के तरुण प्रिंसिपल से बातचीत करने के बाद पुराने छपरा मे राजेन्द्र पुस्तकालय देखने गए। यह तेरह वर्ष पहले एक किराए की छोटी सी कोठरी मे खुला था और अब वह अपने पक्के मकान मे तथा अच्छी स्थिति मे है। शिक्षा और सम्पन्नता के बढने पर यह और भी सेवा कर सकेगा। पुस्तकालय मे दो तीन बहुमूल्यवान हस्तलिखित फारसी पुस्तके थी।

वहाँ से लौटकर श्रीमती विद्यावतीजी के वाणी मन्दिर मे गए। उनके

पति मगलसिंह की याद बडी दु खद मालूम होती है। हिन्दू विश्वविद्यालय से पढाइ छोडकर उन्होने पुस्तक का व्यवसाय गुरू किया। अच्छी तरह जमा भी नही पाए थे कि जवानी ही म चल बसे। विद्यावतीजी गुरुकुल हर-पुरजान के सस्थापक की लडकी थी। वही उन्ह सस्कृत पढन का बहुत अच्छा अवसर मिला। ब्याह मगलजी से हुआ। तीन छोटे छोटे बच्चा का छोडकर मगलजी चले गए। उनका घर पोखरपुर (परसा थाना) एक खाते पीते भद्र कृपिजीवी परिवार का था। उनके चचा तीन या चार भाई एक हा साथ रहा करते। छोटे चचा को शिक्षा का उतना अवसर ता नही मिला, पर जो कुछ भी था उससे उन्हाने अपने ज्ञान को बढाया था। खेती म नई बाता का अनुसरण करने के कारण उपज अच्छी होती थी। घर के सभी लडका को उच्च शिक्षा दी गई। लडको को छाड लडकियाँ भी उनके घर म एम० ए० है। सबसे बडी प्रसन्नता मेरे लिए यह थी कि मगलजी के चचा की लडकी ने अभी हाल ही म अपनी राजपूत बिरादरी को छोडकर ब्राह्मण लडके से ब्याह किया। वह डबल एम० ए० है। चर्चा आन पर विद्यावती जी ने कहा—"अभी घर म लोगा को इसकी खबर नही है।" इस मयादा-भग को शिक्षित बूढे भी क्या पसन्द कर सकते है? जिनके लडके से इस लडकी का ब्याह हुआ, वह स्वय विलायत हो आए, अर्थात् पुराने विचारा के अनुसार धमभ्रष्ट है। इतिहास के एक मान हुए विद्वान् तथा एक कालेज के प्रिंसिपल है। लेकिन जब यह पता लगा कि लडके न राजपूत लडकी से ब्याह कर लिया, ता उनका भारी धक्का लगा। कुछ लोग तो कहते हैं, बहोश हाकर गिर पडे। शायद सोचते थे कि कम्बख्त न थोडा और इन्त-जार किया होता ताकि मै अपना इकलौती लडकी का ब्याह कर देता। पर प्रिंसिपल साहब गलत समझ रहे थे। लडके के कारण उन्ह अपनी जाति के ब्राह्मण दामाद के मिलने म कोई दिक्कत नही हाती। विद्यावतीजी न काम को खूब सँभाला। अपनी दो लडकियां को ग्रेजुएट बनाकर उनका ब्याह कर चुकी हैं। एक लाख रुपये का मकान बन रहा है जिसका बहुत-हिस्सा बन चुका है।

फिर शाम को व्याख्यान देने से पहले मित्रो को ढूढकर मिलने गया। पाण्डे रघुनाथ बूढे हो गए हैं, पहचानने म भी कुछ दिक्कत हुइ। सोहम् प०

भरतजी तो अपने उसी रूप में वर्षों से दिखाई पड़ते हैं। उनकी संस्कृत माध्यम वाली छोटी पाठशाला ठीक से चल रही है। संस्कृत बोलने चालने का अभ्यास हो जाता है। जो लड़के तीन-चार साल यहाँ पढ़ जाते है, वे युनिवर्सिटी तक के लिए संस्कृत की कमाई कर लेते हैं, इसलिए विद्यार्थियों के मिलने में दिक्कत नहीं है। म्युनिसिपल मैदान में भाषण देने के बाद साहित्य प्रेस में साहित्य-गोष्ठी हुई, जहाँ छपरा के तरुण साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला। ११ बजे लौटकर त्रिवेदीजी के घर पर पहुँचा। उनके पुत्र विन्दु ने बड़े प्रेम से मछली बनाकर तैयार की। रात को गरिष्ठ भोजन करने का मेरा नियम नहीं है, लेकिन प्रेम से बने हुए उस पदार्थ को छोड़ना नहीं चाहता था।

पटना—१६ तारीख को अँधेरा रहते ही स्टेशन पर पहुँचा। ट्रेन ४ बजकर ४० मिनट पर छूटी। ३१ वर्ष के मित्र प० गोरखनाथ त्रिवेदी अभी भी शरीर से दृढ़ थे यह जानकर सन्तोष हुआ। सबसे छोटा लड़का वर्षों हुए घर छोड़कर चला गया, तब से उसका पता नहीं लगा। बाकी लड़के अपने काम पर लगे हुए हैं, इसलिए उन्हें घर की कोई चिन्ता नहीं। सोनपुर से गाड़ी बदल कर गंगा के किनारे पहुँचे, और जहाज से ११ बजे पटना पहुँच गये। सिवान के मास्टर साहब भी आए हुए थे। और डा० बाँके बिहारी मिश्र भी शाम को आ गए। उस दिन ४ बजे बी० एन० कालेज की राजनीतिक परिषद् में भाषण देना पड़ा। फिर साढ़े ६ बजे सम्मेलन भवन में साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसमें हिन्दी की स्थिति पर भाषण देते हुए मैंने कहा—' उर्दू भी हिन्दी ही है उसे पराई भाषा नहीं समझना चाहिए। उसकी सभी बहुमूल्य कृतियों को नागरी अक्षरों में छाप देना चाहिए।"

२० जनवरी को भी पटना ही में रहना था। अब तक लोगों को पूरी तौर से पता लग गया था, इसलिए सवेरे से १० बजे रात तक अखण्ड गोष्ठी चलती रही। बीच में सांस्कृतिक विद्यालय में श्री महेन्द्र शास्त्री के साथ गया। ब्रह्मचारी मंगलदेव से मुलाकात हुई। विद्यार्थियों की संख्या ४० ५० से अधिक नहीं थी। पिछली बार जाने पर देखा था, यहाँ के विद्यार्थी संस्कृत में बातचीत करते हैं, और उनके कारण संस्कृत में उनकी

काफी प्रगति थी। अब वह नियम शिथिल कर दिया गया था। ऐसे सस्कृत माध्यमवाले स्कूल लाभदायक सिद्ध होगे। मैं समझता हूँ विद्यालय ने उस नियम को न रख कर अपनी उन्नति क मार्ग मे बाधा डाली है।

उसी दिन शाम को श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा आए। शर्माजी भूमिहार ब्राह्मणो मे पहले आई० सी० एस० थे। बहुत तेज थे, लेकिन हमारी पुरानी सस्कृति आदमी को ले डूबे बिना कैसे रह सकती ? उनके सिर पर वेदान्त का भूत सवार हुआ, और पेन्शन लेने की भी प्रतीक्षा किए बिना कलक्टरी से इस्तीफा दे दिया। कई वर्षों तक घर छोड स्वामी बने घूमते रहे, वेदान्त का अच्छा अध्ययन किया। अब भी अरविन्द के फेरे म है और दशन के चक्कर से बाहर नही हैं। तो भी भगवा छोडकर सफेद वस्त्र मे अपने घर मे रहना बतलाता है कि कुछ परिवतन हुआ है। बहुत पढते है, और बोलने मे भी कमी नही करते यद्यपि उनकी बातें सभी के समझ की होती है। पर, नई पीढी इसे दोष मानती है। शर्माजी का एक ही पुत्र था, जो मर गया है। मुमकिन है उसका कुछ प्रभाव पडा हो लेकिन, उनका भतीजा पुत्र ही समान है। जब हमारी बात चल रही थी उसी समय डा० बद्रीनारायण प्रसाद के पुत्र डा० देवेशप्रसाद और उनकी पत्नी ने आकर शर्माजी के चरण छूये। उन्होंने प्रेम से आशीर्वाद दिया। फिर बेटी दामाद ने दादा का चाय पान भी कराया। मुझे इससे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। मैने यहाँ देखा कि नई पीढी चुपचाप भीषण समस्याओ का आसानी से हल कर रही है। डा० देवेश जाति से सुनार हैं। उनके पिता बिहार के एक प्रसिद्ध डाक्टर तथा वहा के सबसे बडे मेडिकल कालेज के अवसरप्राप्त प्रिंसिपल हैं। इसलिए जहा तक शिक्षा और सस्कृति का सम्बन्ध है वह ऊँचे वर्ग के हैं। उनकी पत्नी आई० सी० एस० शर्मा की पोती और जाति से भूमिहार है। बिहार मे इसी का रोना तो लोग रोते हैं कि वहाँ जात-पात का बहुत ख्याल किया जाता है, जिसके कारण राजनीति और सामाजिक जीवन मे बडी बुराइयाँ आ गई हैं। उसको तोडने का साहस डा० देवेश और उनकी पत्नी ने किया। वह हिम्मतवाले तरुण हैं। लेकिन उनसे भी कम साधुवाद के पात्र श्री द्वारिकाप्रसाद शर्मा नही हैं, जो कि इस सम्बन्ध का इस तरह से स्वागत कर रहे हैं। श्री द्वारिका बाबू के भाई लाल बाबू का मेरा सम्बन्ध

असहयोग के जमाने म बहुत घनिष्ठ था। एक समय कई महीने तक हम एक साथ हजारीबाग जेल म रहे। वही से मैं छूट कर चला आया था लेकिन लाल बाबू जीवित नही निकल सके। अपने हाथ से परोस कर खिलानेवाली बहू के मुह से जब मैंने सुना कि वह लाल बाबू के भतीजे की लडकी है, तो मुझे भी उनके इस साहस का कुछ अभिमान हुआ।

ये बाते अभी छिट फुट देखी जा रही है, पर असहयोग के जमाने म एक पाती म खाना भी छिट फुट ही शुरू हुआ था, और हिन्दू भोजनालय भी उसी समय पहल पहल जहा तहा खडे हाने लगे। आज उन्ही का प्रताप है कि खाने मे अब कोई परहेज नही है। इसी तरह यह जात पाँत का तोडना भी जो २०वी शताब्दी के उत्तरार्ध के आरम्भ हान के साथ हुआ है, वह अगले २८-३० वर्षों म ही इतना बढ जाएगा कि हजारो वर्षों की वज्र सी मजबूत समझी जाने वाली दीवारे ढह के रहगी। बूढे नौजवानो के रास्ते मे रोडा न अटका व्यर्थ का अपयश सिर पर न उठाये। मेरे एक दूसरे दोस्त ने इस विषय मे कुछ कायरता दिखलाई। वह स्वय गुरुकुल म पढे आर्य समाज के प्लेटफार्म स न जाने कितनी मतब जात पाँत के खिलाफ बोले होगे। असहयोग और काग्रेस म बराबर काम किया। अपनी लडकी को पढाकर एम० ए० और वकील बनाया। वह वकालत करने लगी। नाबालिग नही थी। अपने भले बुरे को समझनेवाली थी। ब्राह्मणी की लडकी होते हुए उसने एक भूमिहार प्रोफेसर स हाल ही म ब्याह किया। पिता का सारा सुधारवाद रफू चक्कर हो गया। सुना है, उनको इसका इतना धक्का लगा कि बाल बढाकर घर स निकल गये। समझा, लडकी ने नाक कटा दी। आखिर लडकी ने जिस तरुण को अपना साथी चुना, वह भी तो एक ब्राह्मण ही है। उनको देखते हुए द्वारिका बाबू का व्यवहार कितना प्रिय था? डा० देवेन्द्र की बीवी के साथ उनके सास ससुर विशेष आत्मीयता दिखलाते। वैसा होना भी चाहिए। तरुणी या उसकी जातवाली महिलाएँ कभी कभी अपने व्यवहार स प्रकट कर देती ही होगी—तुमने जाति म बाहर ब्याह कर अच्छा नहीं किया।

आज शाम का खाना भोजन देवेन्द्र और कुसुम के घर पर हुआ। डाक्टर ने दाँतो का भर दिया। चलो, एक बला स तो छुट्टी मिली। उस दिन

चन्द्रमा नाई भी मिले। होश सँभालते ही उन्होंने देश के लिए सर्वोत्सग किया। यदि देशद्रोही को तलवार के घाट उतार कर फासी पर नही चढा पाये तो इसे सयाग कहना चाहिए। कम्युनिस्ट हैं, इसलिए आज के शासन से कोई अवलम्ब नही। यह जानकर दु ख हुआ कि उनक परिवार आर्थिक कठिनाइया मे है।

१८

कलकत्ता

कलकत्तावाली ट्रेन बडे कुसमय की थी। दा घटे लेट रही, नही तो उसे साढे ४ बज सवेरे आना चाहिए था। धूपनाथजी भी मिलने ही क लिए यहाँ आए थे, और अब क्यूल तक साथ चले। क्यूल म ट्रेन दो घटा रुकी रही। मालूम हुआ भाषावार प्रात की माँग के सम्बन्ध म जो निश्चय भारत सरकार ने किया है, उसके विरोध म कल्कत्ता म आज पूरी हडताल है। इसका पता तो हम भी मालूम था, लेकिन विश्वास था हडताल शाम तक जरूर खतम हो जाएगी। ट्रेन भी शाम करके ही कलकत्ता पहुँचना चाहती थी। अँग्रेजा ने कितने ही बँगलाभाषी इलाक बिहार क भीतर और कितने ही हिन्दीभाषी इलाके बगाल के भीतर रख दिये थे। प्रदेशा के निर्माण म नेहरू की सरकार अग्रेजो के पदचिन्ह पर ही चलना चाहती है। नेहरू बार बार कहते हैं—"इस तुच्छ चीज के लिए इतना आग्रह क्यो? भाषावाद नीच मनोवृत्ति का द्योतक है।" उनकी चली होती, तो भाषावार प्रान्त क वाद को सात पोरसा नीचे दबा दिये होते। लेकिन, लोग 'मनुष्य रूपण मृगाश्चरन्ति" नही है। अपनी भाषा क साथ जिस व्यक्ति का प्रम नही, वह सस्कृतिविहीन है। भाषा कवल शौक की चीज नही वह एक बडी शक्ति है। यदि जनता के साथ घनिष्ठ सम्पक स्थापित करना है, यदि जनता को शासन म शामिल करना है, तो उसकी भाषा लिए बिना एक कदम भी आग नही चला जा सकता। पर इस इन्दाआलियन साहबा क लिए क्या कहा जाय? अपन तो उनका किसी जनभाषा स स्नेह और सम्पक नही, और

जिसका उसके द्वारा धरती से सम्पक है, उसे हीनवृत्ति का बतलाते हैं। जवानी जमा खच के लिए नेहरू भले ही कभी हिंदी के प्रति आदर दिखाएँ, और अँग्रेजी की शान मे कुछ कह भी दे, लेकिन वह मन म समझते हैं कि अँग्रेजी हमारे शासन की भाषा रहती, तो कितना अच्छा होता। लेकिन भाषा के दीवाने रामुलुआ के लिए क्या कहना ? वह अपनी कुर्बानी से कराडो का उत्तेजित कर देते है, और जनता पागल हाकर करोडो की लोक सम्पत्ति को नष्ट कर दती है। वह भाषा के लिए अहिंसक सरकार की गोलियो को छाती पर लेन के लिए तैयार है। यह बहुत बडा सिर दद है। अभी महाराष्ट्र के काग्रेसी नेता ने कहा—यदि बम्बई का उसके जायज प्रदेश महाराष्ट्र मे नही मिलाया गया, तो काग्रेस के टिकट पर महाराष्ट्र म किसी को खडा नही किया जा सकता, और खडा किये जान पर वह जीत नही सकता। नेहरू और उनके अनुचरा की नीद हराम हा गई है।

लेकिन भाषानुसार प्रदेश बनाने मे इतनी आनाकानी क्यो ? गाधीजी ने जिन बडे बडे तत्वो का मान्यता दी, उसम एक भाषानुसार प्रान्त निर्माण भी था। अब उससे मुह फेरने की जरूरत क्या ? और इसमे दिक्कत क्या है ? काग्रेसी नेताशाही हरेक चीज को ऊपर से क्यो लादना चाहती है और ऐसी जगह पर, जहाँ पर कि उसकी अक्ल गुम हा गई है। लोगा के बहुमत के अनुसार विवादग्रस्त इलाको के बारे मे क्या नही निणय किया जाता ? क्या बम्बई के लोगो के वोट पर भाग्य का निणय करना अच्छा है, या पुलिस की गोलियो से सत्तर सत्तर आदमियो को भून देना ? फिर यह सख्या सत्तर ही थाडे ही रहगी। मतदान मे खच और प्रबन्ध की दिक्कत का बहाना भी बेकार है। अव्वल तो खच और प्रबन्ध करना भी पडे, तो जनता के खून से हाथ रँगने से वह अच्छा है। जो नेहरूशाही अपन दूतावासा पर खच करने मे मुगल बादशाहो स भी अधिक उदारता दिखलाती है, वह खच का बहाना कसे कर सकती है। फिर खच की भी काई बात नही, क्याकि विवादग्रस्त इलाको को विचाराधीन रखकर उसका अन्तिम निणय अगले सावजनिक चुनाव के साथ वोट लेकर किया जा सकता है।

धूपनाथजी क्यूलसे चले गये। हमारी ट्रेन साढ़े ९ बजे रात को हवडा स्टेशन पर पहुँची। श्री मणिहृपज्याति जी स्टेशन पर आये थे। उन्हाने अपना

१८

कलकत्ता

कलकत्तावाली ट्रेन बड़े कुसमय की थी। दो घंटे लेट रही, नहीं तो उसे साढ़े ४ बजे सवेरे आना चाहिए था। धूपनाथजी भी मिलने ही के लिए यहाँ आए थे, और अब क्यूल तक साथ चले। क्यूल में ट्रेन दो घंटा रुकी रही। मालूम हुआ भाषावार प्रांत की माँग के सम्बन्ध में जो निश्चय भारत सरकार ने किया है, उसके विरोध में कलकत्ता में आज पूरी हड़ताल है। इसका पता तो हमें भी मालूम था, लेकिन विश्वास था हड़ताल शाम तक जरूर खतम हो जाएगी। ट्रेन भी शाम करके ही कलकत्ता पहुँचना चाहती थी। अंग्रेजों ने कितने ही बँगलाभाषी इलाके बिहार के भीतर और कितने ही हिन्दीभाषी इलाके बंगाल के भीतर रख दिये थे। प्रदेशों के निर्माण में नेहरू की सरकार अंग्रेजों के पदचिन्ह पर ही चलना चाहती है। नेहरू बार-बार कहते हैं—"इस तुच्छ चीज के लिए इतना आग्रह क्यों? भाषावाद नीच मनोवृत्ति का द्योतक है।" उनकी चली होती, तो भाषावार प्रान्त के वाद को सात पोरसा नीचे दबा दिये होते। लेकिन, लोग 'मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति" नहीं है। अपनी भाषा के साथ जिस व्यक्ति का प्रेम नहीं, वह संस्कृतिविहीन है। भाषा केवल शौक की चीज नहीं वह एक बड़ी शक्ति है। यदि जनता के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना है यदि जनता को शासन में शामिल करना है तो उसकी भाषा लिए बिना एक कदम भी आगे नहीं चला जा सकता। पर, इस इन्दाआलियन साहबों के लिए क्या कहा जाये? अपने तो उनका किसी जनभाषा से स्नेह और सम्पर्क नहीं, और

जिसका उसके द्वारा धरती से सम्पर्क है, उसे हीनवृत्ति का बतलाते हैं। जबानी जमा खर्च के लिए नेहरू भले ही कभी हिन्दी के प्रति आदर दिखाएँ, और अँग्रेजी की शान में कुछ कह भी दें, लेकिन वह मन में समझते हैं कि अँग्रेजी हमारे शासन की भाषा रहती, तो कितना अच्छा होता। लेकिन भाषा के दीवाने रामुलुआ के लिए क्या कहना? वह अपनी कुर्बानी से करोड़ों को उत्तेजित कर देते हैं, और जनता पागल होकर करोड़ों की लोक-सम्पत्ति का नष्ट कर देती है। वह भाषा के लिए अहिंसक सरकार की गालियों को छाती पर लेने के लिए तैयार है। यह बहुत बड़ा सिर दर्द है। अभी महाराष्ट्र के काग्रेसी नेता ने कहा—यदि बम्बई को उसके जायज प्रदेश महाराष्ट्र में नहीं मिलाया गया, तो काग्रेस के टिकट पर महाराष्ट्र में किसी को खड़ा नहीं किया जा सकता, और खड़ा किये जाने पर वह जीत नहीं सकता। नेहरू और उनके अनुचरों की नींद हराम हो गई है।

लेकिन, भाषानुसार प्रदेश बनाने में इतनी आनाकानी क्या? गाधीजी ने जिन बड़े बड़े तत्वों को मान्यता दी उसमें एक भाषानुसार प्रान्त निर्माण भी था। अब उससे मुह फेरने की जरूरत क्या? और इसमें दिक्कत क्या है? काग्रेसी नेताशाही हरेक चीज को ऊपर से क्या लादना चाहती है, और ऐसी जगह पर, जहाँ पर कि उसकी अक्ल गुम हो गई है। लोगों के बहुमत के अनुसार विवादग्रस्त इलाकों के बारे में क्या नहीं निर्णय किया जाता? क्या बम्बई के लोगों के वोट पर भाग्य का निर्णय करना अच्छा है, या पुलिस की गोलियों से सत्तर सत्तर आदमियों को भून देना? फिर यह संख्या सत्तर ही थोड़े ही रहेगी। मतदान में खर्च और प्रबन्ध की दिक्कत का बहाना भी बेकार है। अव्वल तो खर्च और प्रबन्ध करना भी पड़े, तो जनता के खून से हाथ रँगने से वह अच्छा है। जो नेहरूशाही अपने दूतावासों पर खर्च करने में मुगल बादशाहों से भी अधिक उदारता दिखलाती है, वह खर्च का बहाना कैसे कर सकती है। फिर खर्च की भी कोई बात नहीं, क्योंकि विवादग्रस्त इलाकों को विचाराधीन रखकर उसका अन्तिम निर्णय आगे सार्वजनिक चुनाव के साथ वोट लेकर किया जा सकता है।

भूपनाथजी क्यूलन चले गये। हमारी ट्रेन साढ़े ९ बजे रात को हवड़ा स्टेशन पर पहुँची। श्री मणिहृदज्योति जी स्टेशन पर आये थे। उन्होंने अपना

मुस्कान अब भी अपरिवर्तित रूप मे मौजूद थी। स्मृति क्षीण होने पर भी अभी कायकरी थी। पुस्तको को सामने रखे उस वक्त देख रहे थे। आग्रह करने पर ही उठ खडे हुए। बीस वष हुए असग के महान् ग्र थ "योगचर्या-भूमि" को तिब्बत से लाय। महामहोपाध्याय एक दजन साल से उसके सम्पादन मे लगे थे। यदि प्रेस का सहयोग मिला होता ता वह अब तक प्रकाशित हो गई हाती, लेकिन वह चीटी की चाल मे काम कर रहा था। महामहोपाध्याय पिछली बार भी निराशा प्रकट कर रह थे, और अब ता कह रहे थे—' जल्दी ही इसे मैं आपके पास भेज दूगा, आप ही इसको नया पार करेंगे।" उनके शरीर और स्वास्थ्य की स्थिति देखकर बडी चिन्ता हो रही थी। यद्यपि अपन दीघ जीवन के एक एक दिन का उन्होने मूल्य चुका लिया था, पर एसे ऋषि का अपने बीच से जाने का खयाल भी कौन कर सकता है? दो घटा तक वहा बैठे बात करते दोना का तृप्ति नही हो रही थी।

फिर सुनीति बाबू के निवास पर ढाई घटा भिन्न-भिन्न विषयो पर बातचीत करते रह। आयु इनकी भी काफी है लेकिन शरीर अभी बिल्कुल स्वस्थ है, और मस्तिष्क पहले ही की तरह काम करता है। मेरे लिए यह समझना भी मुश्किल है, एक प्रखर बुद्धि रखने वाला व्यक्ति कैसे अंग्रेज़ी को अपने देश के शासन और अध्ययन के काय के लिए अनिवाय समझता है। वस्तुत बचपन से ही अग्रेजो और अंग्रेजी के घनिष्ट प्रभाव म आने का ही यह परिणाम है। अंग्रेजी बिना शिक्षा का स्तर गिर जायगा। पर अंग्रेजी का स्तर स्वय बडी तजी से गिर रहा है। उसका ऊँचा उठाने के लिए एक ही रास्ता है कि परीक्षा म बठने वाले विद्यार्थियो म १० सैकडा से अधिक को पास न किया जाए। लेकिन, फिर यह भी देखना होगा कि ९० सकडा फेल हुए लडके चुपचाप इस कसाईपन को बर्दाश्त करने के लिए तयार होगे? यदि यह शक्ति नही है, तो अंग्रेजी के स्तर को ऊँचे करने की बात बकवास भर है। अंग्रेजी के नाम पर कुछ परिवारा क लडका की उच्च नौकरिया म इजारेदारी रखन के सिवा और कुछ नही किया जा सकता। अंग्रेजी के स्तर ऊँचा करन की आवश्यकता क्या है? हमारी भाषाआ म ज्ञान विज्ञान की सारी शिक्षा दी जा सकती है। पाठ्य-पुस्तका की कमी का बहाना निलज्जता की पराकाष्ठा है। पाठ्य-पुस्तका के लिखने और छापन वाल देश म सैकडो

मौजूद हैं, और अब भी बी० ए०, बी० एस् सी० तक की प्राय सभी विषया पर पुस्तके हिन्दी म लिखी जा चुकी है। यदि उनकी अनिवायता हा, ता सभी तरह की पाठय पुस्तको के तयार होने मे दर नही लगगी। सरकार का उसम करोडो रुपये खच करन की भी आवश्यकता नही। यदि यह कहा जाए कि हिन्दी, बगला आदि हमारी भाषाएँ अभी साइन्स और शिक्षा म आवश्यक साहित्य के लिए अपूण हैं, तो दुनिया की आज की कौनसी भाषा है, जो उसके लिए अपने को पूण समझती है। रूसी भाषा वाले उच्च अनुसन्धान और तत्सम्बन्धी साहित्य के लिए अपनी भाषा का अपूण समझत है। इसीलिए वहाँ हरेक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए जमन, फ्रेंच और इग्लिश का अपन विषय क समझने भर का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है। यही बात फ्रेंच, इग्लिश और जमन भाषा वाले भी मानते हैं। यदि उनके अपन प्रथम श्रेणी के साइसवेत्ता दूसरी भाषाओ की अनुसन्धान-पत्रिकाओ को स्वय नही पढ सक्त, तो उनके अनुवाद उनके सामने उपस्थित किय जात हैं। हमारी भाषाएँ भी यह कर सक्ती हैं। जब सुनीति बाबू जस व्यक्ति भी अग्रेजी की अनिवायता की बात कहते हैं तो मुझे तो सन्देह होने लगता है, कि कूएँ म ही भाँग पडी है। अग्रेजी ही क्यो, रूसी, जमन, फ्रेंच का भी कामचलाऊ ज्ञान हमारे अनुसन्धानकर्त्ताओ के लिए आवश्यक है। हमार कूटनीतिज्ञो क लिए दूसरी भाषाओ क जानने की भी आवश्यकता है। रूस, चीन, जापान आदि देशा म अग्रजी के भरोस घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करन की कोशिश हम नही करनी चाहिए। अग्रेजी पर पूरी कमाण्ड रखन वाल राजदूत की पकिंग या मास्को म क्या आवश्यकता है?

सुनीति बाबू चीन स बहुत प्रभावित हैं। एक चीनी पुस्तक को दिखला कर बतला रह थे कि दखिये डा० रघुवीर न इस अपना मौलिक काम कह कर छपवाया है। यह तो सीधी ठगी है। डा० रघुवीर को ही क्या दोष दिया जाए। कितने ही लाग एस व्यापार म कुशल हैं। आज के महाप्रभु गम्भीरता का थोड़े ही दखत हैं, वह ता खुद ढोग मारन हैं और दूसरा क ढोग क प्रभाव म आ जाते हैं। "स्वाधीनता" कार्यालय म थोडा देर बात कर रात को हम घर लौट।

आज मोटर बिगड गइ थी, इसलिए कहीं दूर नही जा सके। नहीं

कलाकार स्ट्रीट और अफीम चौरस्ते तक घूम आए। अफीम चौरस्ते का १९०७ और १९०९ वाला रूप अब नही है, और न नुक्कड पर की अधिकतर खुली एकमजिला हलवाई की दूकान ही है। चाहे जितनी बार नये रूप को देखें, पर पुराना नक्शा ही दिमाग पर अकित रहना चाहता है। हमने अभी और भी जगहो मे जाने का प्राग्राम रखा था, और २० या २१ फरवरी तक मसूरी लौटने की आशा थी। आजमगढ वाला का विशेष आग्रह था। उन्होंने सब तैयारी कर ली थी। पर, कमला को इस साल एम० ए० फाइनल की परीक्षा देनी थी। उसकी तैयारी म विघ्न हो रहा था, इसलिए लखनऊ छाडकर बाकी सभी प्रोग्रामो का छोडकर जल्दी से जल्दी मसूरी पहुँचना जरूरी था। "बौद्ध सस्कृति" को छपकर तैयार हुए दो साल से भी ऊपर हो गए, लेकिन बुरा हो टक्स्ट-बुक के काम का। "नेपाल" को उसी न रोक रखा है, और उसी के कारण 'बौद्ध सस्कृति" दा साल से निकलन का नाम नही लेती। मैंने बाबू रामगोविन्दसिह से कहा कि इस साल बुद्ध की २५वी शताब्दी मनाई जा रही है उसमे यह पुस्तक काफी बिक जायेगी, इसलिए उसे निकाल दें। मै जानता था, बात का कोई प्रभाव नही रहेगा, इसलिए ब्लो को ठीक करा उन्ह छपवाकर कम से कम एक कापी अपने साथ लेने के लिए मजबूर किया। यद्यपि इन पक्तियो के लिखने के समय (२१ अप्रैल १९५६) तक कोई कापी मेरे पास नही आई, पर महादेव भाई की चिट्ठी से मालूम हुआ कि पुस्तक प्रकाशित हा गई, और तीन सौ कापियाँ निकल भी गईं। कमला की चचेरी बहिन यहाँ ही रहती है। उसके पति बगला के राज्यपाल के किसी दफ्तर मे नौकर हैं। राज्यपाल भवन कलकत्ता के राजधानी रहते समय वायसराय भवन था, इसलिए वह कितना विशाल होगा इसे कहने की आवश्यकता नही। दिल्ली के राजधानी हान पर वह गवर्नर (राज्यपाल) भवन बन गया। तब भी भारत के सबसे महत्वशाली प्रदेश के गवनर का भवन होने के कारण उस पर काफी साहखर्ची स काम लिया जाता था। किफायत की सरकार लिफाफे के खर्च में एक कौडी भी कम करने का नाम नही ले सकती, उस तडक भडक का और बडे रूप म रखना चाहती है। इसका नमूना यह राज्यपाल-भवन है। पुरानी इम्पीरियल लाइब्रेरी और अब राष्ट्रीय पुस्तकालय के लिए पहले के मकान

काफी नही थे। उसे एक बडी जगह की आवश्यकता थी। लोगो ने इस राजभवन को लेने का प्रस्ताव किया। उस समय काटजू यहा के राज्यपाल थे। वह छोडने के लिए तैयार नही हुए। और अलीपुर के पुराने राजभवन मे उसे ले जाने की सिफारिश करवा दी। हमारे नेता कितने स्वार्थी और अदूरदर्शी भी है, इसका यह पक्का सबूत है। काटजू हमेशा के लिए बगाल के राज्यपाल होकर नही आए थे और अलीपुर का वह मकान भी एक राज्यपाल के लिए काफी भव्य और बडा है। हमारा राष्ट्रीय पुस्तकालय यहा रहता, तो शहर के भीतर रहने से उसका अधिक उपयोग हो सकता था पर एक आदमी के कारण उसे दूर ऐसी जगह मे ले जाना पडा, जहा बहुत से मकानो के बनाने की आवश्यकता होगी।

अस्तु पुराना वायसराय और आजकल का राज्यपाल भवन अपने भीतर ही एक बडा शहर है। नौकरो की पचमजिला बडी बडी इमारतें है। कमला के बहनोई यही किसी दफ्तर मे चपरासी है। २४ रुपया मासिक वेतन और दो रुपया साइकल का एलौस मिलता है। हा, कुछ हाथो की कोठरी उन्हे मुफ्त रहने के लिए मिली है। २६ रुपये मे कलकत्ता जैसे शहर मे एक आदमी का खर्च चलाना मुश्किल है। फिर वह अपनी पत्नी और दो बच्चो के साथ चार प्राणी है। वह कैसे खर्च चला लेते हैं, यह सोचना भी सिरदर्द का कारण हो सकता है। वह आए तो हम भी उनके घर पर चले गये। देखा उस घर को और पास मे ही और भी उसी तरह की पाच पाँच छ छ हाथ लम्बी चौडी कोठरिया को भी देखा, जिनमे उनके जैसे और दूसरे चपरासी रह रहे थे। यदि इन कोठरियो की सभी स्त्रियाँ जवानी मे बूढी हो जाएँ, लडको के हाड हाड दिखाई पडे, तो आश्चर्य क्या। उधर राज्यपाल की दावतो मे लाखो का वारा-न्यारा होता है, और इधर ये बच्चे अपने बचपन को इस भीषण दरिद्रता और अभाव मे बिता रहे हैं। पर, आज उसके बारे मे सोचने की भी किसको फुर्सत है—"बडे-बडे काम हैं। इन छोटी बातो को क्या सामने लाते हो?"

२८ जनवरी को राज्यपाल भवन के चपरासियो के दफ्तर भोजन किया, और फिर बाहर निकले। एसियाटिक सोसायटी मे कुछ पुस्तकें देख ली। खासकर कवि रहीम सम्बन्धी पुस्तकें, जिसमे 'मआसिर रहीमी"

है, पर इधर कोई नया आदमी वहां से आया नहीं था। जाड़ों में तिब्बती व्यापारी कलकत्ता पहुंचा करते हैं। मालूम हुआ, १५ नम्बर लोअर चितपुर रोड में आकर वह ठहरते हैं। हम वहां चले। साथ में तीन चार और भी तरुण थे। जब सारी पलटन उधर चलने लगी तभी मुझे सन्देह हुआ कि वह लोग भड़क जाएँगे, और वैसा ही हुआ भी। पाँच आदमियों को उन्होंने देखा, तो मेरी तिब्बती भाषा की भी पर्वाह न करके उन्होंने कुछ भी बतलाने से इन्कार कर दिया। मणि बाबू ने टेलीफोन से विशेष तौर से बात की तो अगले दिन एक तरुण घर पर आया। वह उस दिन भी गली में मिला था। सम्भव है वह साथ रहता तो निराश न होना पड़ता। अब उसने सारी बातें बतलाईं। वह मेरे नाम से अच्छी तरह परिचित था। मेरे पड़ोसी और मित्र कादिर भाई की लड़की अमीला उसकी पत्नी थी। अमीला मेरी पहली तिब्बत-यात्रा के समय ल्हासा में हर वक्त सहायता करने के लिए तैयार रहती थी। उस समय उसकी उमर दस ग्यारह साल की होगी। यह समाचार मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता का था। तरुण ने बतलाया कि ल्हासा से फरी तक अब मोटर-बस आती है। शिगर्ची के पास ब्रह्मपुत्र पर पुल है। मोटर की सड़क जल्दी ही टोमा (चुम्बी वली) तक खुल जायगी। व्यापार के बारे में कोई दिक्कत नहीं। हम वहाँ से पैसा को लाकर लाने की जरूरत नहीं पड़ता। ल्हासा से चेक लाने पर यहाँ चाहे घर में रुपया मिल जाता है। सड़कों और पुलों के बनाने में आश्चर्यजनक फुर्ती से काम लिया जा रहा है। बतला रहा था, ल्हासा वाली नदी पर पुल बनने लगा था। हम समझते थे, उसके तैयार होने में दो-तीन महीने तो जरूर लगेंगे, लेकिन हमारे अचरज का ठिकाना नहीं रहा जब देखा कि दो-तीन हफ्ते में ही उसे बनाकर खोल दिया गया।

२६ जनवरी को हो शाम को महाबोधि सभा में पं० जवाहरलाल के सभापतित्व में बुद्ध-स्थान पर भाषण दिया। पं० जवाहरलाल को अब की बहुत साल बाद देखा। अब भी उनका स्वास्थ्य अच्छा था, यद्यपि आयु मुझसे उनकी कम नहीं है।

२७ को फिर डा० भूपेन्द्रनाथ और उनके बड़े भाई ८७ साल के थे मेरे इन्तजार से मिलने गए। आज ही कलकत्ता छोड़ना था दार्जिलिंग बोर्ड

संस्कृति" के ब्लाको को छपवाकर एक कापी लेना जरूरी था। एक तरह से आज का सारा समय और चिन्ता उसी पर रही, तभी रात जाकर एक कापी मिल सकी। मेरी तीन चार पुस्तके बगला मे अनुवादित होकर छपी है, जिनमे "वोल्गा से गगा" भी है। यह भारत की सभी भाषाओ मे अनुवादित हो चुकी है, पर बगला के कवर मे जिस रुचि का परिचय दिया गया है, वह बतलाता है कि बगला भाषी इस बात म हमारे सारे देश से आगे है। प्रकाशक को यह विश्वास नही था कि एक साल के भीतर ही पहला सस्करण समाप्त हो जायेगा। उन्होने दूसरे सस्करण की कुछ प्रतिया दी।

लखनऊ—२७ जनवरी के लिए सीट पहले ही से रिजर्व करा ली थी। स्टेशन पर मणि बाबू, महादेव भाई और सेंगरजी आए। हमारे कम्पार्टमेंट की १२ सीटो म ८ रिजर्व थी। एक बगाली पाकिस्तानी तरुण भी चल रहे थे, जो इस समय लाहौर म अफसर थे। उन्होने वहा की बाते बतलाई। बगाली मुसलमान ऐसे ही पजाबी पाकिस्तानियो से असन्तुष्ट रहते है। वह वामपक्षी विचारो के थे, इसलिए आशा प्रकट कर रहे थे कि कभी हम फिर एक हो जाएगे। पास मे शरणार्थी पजाबी हिन्दू तरुण बैठा था। वह दूसरे के भावो का बिलकुल खयाल किये बिना मुसलमानो की क्रूरता को बडे जोश के साथ प्रकट करने लगा। मानो उस समय हिन्दुओ और सिक्खो ने क्रूरता दिखलाने मे कुछ कसर रखी थी। सेकेण्ड क्लास म सीट रिजर्व कराने का मतलब बैठने-भर के लिए रिजर्व कराना था, इसलिए बैठे-बैठे ही सोना पडा।

भिनसार को देखा, वर्षा हो रही है। बनारस म ९ बजे के करीब गाडी पहुँची। श्री जयकृष्णदास को लिख दिया था कि किसी आदमी को स्टेशन पर भेज दे, वह "सस्कृत पाठमाला" के प्रूफ को दे जाएगा, और बाकी तीसरी, चौथी, पाँचवी पुस्तके भी लेता जाएगा। जो सज्जन प्रूफ लेकर आए उन्हे मैं पहचानता नही था, और शायद वह भी मुझे बहुत कम ही जानते थे। सौभाग्य ही समझिये, जो मिल गए। यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि अब पाठमाला छपने लगी है। मैं देख रहा था, मिट्टी की छतें किन गाँवो से शुरू होती थी। जायस म वह शुरू होती दीख पडी। फिर जायस के नाम पडते ही जायसी याद आने लगे।

लखनऊ में साथी रमेश, साथी शिव वर्मा और दूसरे मित्र आये हुए थे। विप्लव प्रेस मे जाकर ठहरा। यशपालजी घर पर ही थे। श्रीमती प्रकाशवती को डाक्टरों ने टी० बी० की बात बतला दी है, इसीलिए वह पूरा विश्राम ले रही थी। लेकिन शरीर का विश्राम लेने के लिए दिमाग को भी विश्राम देना जरूरी है और वह बूते से बाहर की बात है। फिर साथी प्रेस तो प्रकाशवतीजी के बल पर चल रहा था। यशपालजी का उससे इतना ही नाता था कि उनके उपन्यास और कहानियां उसमें छप जाती थीं। देख रहा था प्रकाशवतीजी अब भी खाट पर लेटे-लेटे प्रूफ देखने में लगी हुई हैं।

वैसे लखनऊ में उतरता पर 'मध्य एसिया का इतिहास (२)' ४०० पृष्ठ तक छपकर अब खटाई में पड़ा हुआ है। प्रेसवाले न छापते हैं और न छापने से इन्कार करते हैं। इसके बारे मे अब के भी कुछ करना जरूरी था। यहाँ का दूसरा प्रेस अवशिष्ट अंश को छापने के लिए तैयार था। मैं विशेष तौर से उसी के लिए आया था। सोमवार को उन्होंने बतलाया कि हम अवशिष्ट भाग को एक मास में ढाल देंगे। पर तो सारी पुस्तक ही गई थी। एक मास २ मार्च को पड़ता। पर १९५७ के १० मार्च को उसके भी कोई पता नहीं।

२६ जनवरी को रिसालदार बाग बौद्ध विहार में गए। श्री प्रज्ञानन्दजी ने अपने गुरु की कीर्ति को बहुत तत्परता से कायम रखा है। वहाँ से रिक्शा ले हम साथी सज्जाद जहरी से मिलने गए। पाकिस्तान बनने पर वह पश्चिमी पाकिस्तान में चले गए थे और वर्षों वहाँ के जेलों में रहे। षडयन्त्र का मुकद्दमा चला रहा था, और जमानत पर छूटकर आए थे, लेकिन अब मुकद्दमा खतम हो गया था, और वह भारत ही में रहना चाहते थे। इसकी सबसे अधिक प्रसन्नता उनकी बीबी रजिया बेगम को होनी चाहिए, जो बच्चों के लिए अपने घर खड़ी लखनऊ में वर्षों से बाट जोह रही थी। तीनों लड़कियां मे बड़ी मैट्रिक में पढ़ती है, उसे उर्दू में लिखने में दिक्कत नहीं है। मझली हिन्दी में ही लिखती है, उर्दू उसे कवाहत की चीज मालूम होती है। वस्तुतः उर्दू की अपेक्षा हिन्दी लिपि बहुत सुगम है। जिसने उर्दू पर वर्षों नहीं लगाये, उसके लिए तो वह और भी मुश्किल हो जाता है। रजियाजी

पहले मुझे उर्दू-विरोधी समझकर बहुत नुक्ताचीनी करती थी, लेकिन जब उनकी कहानी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ मे निकलने लगी है काफी पसन्द की जाती हैं, इसलिए हिन्दी पर भी उनका अपनत्व हो गया है। बन्ने (सज्जाद जहीर) से साहित्य के सम्बन्ध मे बातचीत होती रही। अभी वह राजनीति से अलग है। पाकिस्तान लौटकर नही जाना चाहते, किन्तु उनकी भारतीय नागरिकता खतम हो चुकी है जिसे फिर से लेना है। पाकिस्तान बनते वक्त सोचा था— मैं वहा रहकर साहित्य और दूसरे कामो द्वारा प्रगतिशील विचारो का प्रचार कर सकूगा। लेकिन, अमेरिका के चगुल मे पूरी तौर से फँसा पाकिस्तान और उसके तानाशाह भला इसे बर्दाश्त कर सकते है? बचने के लिए दो ही रास्ता था। या तो पाकिस्तान मे रहकर वहा की जेलो मे सडें और साथ ही अपने बीबी बच्चो को भारत मे अकेले रहने दें, नही तो यहाँ चले आएँ और अपनी शक्तिशाली लेखनी तथा व्यापक ज्ञान से अपने वतन को फायदा पहुचायें। उन्होने दूसरा ही रास्ता पसन्द किया है।

उस दिन शाम को ६ बजे से साहित्य गोष्ठी होनेवाली थी लेकिन मित्र लोग पहले ही से आने लगे। श्री भगवतीचरण वर्मा सबसे पहले आए। भाषा की समस्या पर बोलने के बाद फिर गोष्ठी शुरू हो गई। भाषावार प्रदेश आजकल का भारी प्रश्न था। देश मे जगह-जगह लाठियाँ और गोलिया चल रही थी। उर्दू और हिन्दी का भी सवाल आया। श्री हयातुल्ला अन्सारी साहब ने उसके बारे मे कई प्रश्न पूछे।

३० जनवरी को कलाकार श्री जे० एन० सिंह के साथ उनके स्टुडियो मे गया। स्वनिर्मित कलाकार है। मूर्तिकला की ओर उनका विशेष ध्यान है। पिकासो की प्रवृत्ति ने इनको भी आकृष्ट किया है। मैं किसी भी बडे नाम के कारण प्राकृतिक जगत से दूर के विरूप चित्रो और मूर्तियो की प्रशसा नही कर सकता। यदि सामने खडे किसी के हृदय के दुखने का डर न हो, तो सक्षिप्त भाषा मे अपने विचारो को खुलकर कह सकता हूँ। सचमुच यह प्रतिभा और श्रम का अपव्यय है। चित्रकला, मूर्तिकला, काव्य कला का इन विकलाग प्रतीकवादो ने नाश किया वैसे ही जैसे उस्तादो की गलेबाजी ने हमारे सगीत को।

आज नेशनल हेरल्ड प्रेस मे जाने पर काग्रेसी पत्र "कौमी आवाज" के

सम्पादक श्री हयातुल्ला अन्सारी मिले। वह उर्दूवालों के भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस वक्त राष्ट्रीय भावना रखना मुसलमान के लिए अपराध समझा जाता था उस समय अन्सारी साहब कांग्रेसी रहे। वह और उनकी पत्नी मरते दम तक रहनेवाली हैं। उर्दू के बारे में वह जो भी विचार प्रकट करें उन्हें बड़े ध्यान से सुनना होगा। वह अपने साथ अपने घर पर ले गये। चायपान और साथ ही हरमोनाल के साथ बात होती रही। मैं हिन्दी उर्दू को दो भाषा नहीं मानता और साथ ही चाहता हूँ कि यह ख्याल जबानी जमाखर्च तक न रह जाए बल्कि उर्दू को भी लोग पढ़ें। उसके व्यापक प्रचार के लिए यह आवश्यक मानता हूँ कि उर्दू की पुस्तकें नागरी अक्षरों में भी छपें। इधर श्री गोयलीयजी और फिराक साहब के प्रयत्न से कितने ही उर्दू कवियों की कृतियाँ नागरी अक्षरों में छपी हैं जिनका बहुत अच्छा स्वागत और प्रचार हुआ। उर्दू की पुरानी पीढ़ीवाले इस खतरे की बात समझते हैं। पर मुझे तो लिपि बदलने से भाषा के खतरे की बात समझ में नहीं आती। तुर्की भाषा ने अरबी की जगह रोमन लिपि वर्षों से स्वीकार कर ली है। उससे उसकी क्षति नहीं पहुँची। सोवियत मध्य एसिया की भाषाओं—ताजिकी (फारसी) उज्बकी आदि—ने अरबी लिपि की जगह रूसी को अपना लिया है उसके कारण उन भाषाओं को कोई हानि नहीं पहुँची। यदि उर्दू नागरी अक्षरों में लिखी जाय, तो उर्दू को क्या क्षति पहुँचेगी ? हाँ यह डर हो सकता है कि लिपि के कारण ही तो इस भाषा का नाम उर्दू पड़ा है। यदि लिपि हटी तो गालिब को भी लोग हिन्दी का कवि कहने लगेंगे। यदि ऐसा हो तो क्या बुरा है ? गालिब और अकबर यदि डेढ़ दो करोड़ आदमियों के न होकर १५-१६ करोड़ के हो जाए तो क्या बुरा ? पर, मैं यह भी नहीं कहता कि उर्दू के लिए उर्दू लिपिका बायकाट किया जाए। दोनों लिपियों में पुस्तकें प्रकाशित हों। फिर उर्दूवाले शंका उठाएंगे लोग अधिक हिन्दी लिपिवाली पुस्तकों को ही लेने लगेंगे और उर्दू लिपि में छपी पुस्तकें वर्षों बिक नहीं पायेंगी। उनका यह सन्देह बिल्कुल ठीक है। दोनों लिपियों में छूट देने से उर्दू लिपि में छपी पुस्तकें पुरानी पीढ़ी को ही सन्ताप देने की कोशिश करेंगी। नई पीढ़ी जो उर्दू से भी अच्छा नागरी लिपि को पढ़ती लिखती है, वह बन्ने भाई की मंडली

उर्दू के साथ यह भेदभाव क्या ? यदि उर्दू के कितने ही शब्द सामान्य पाठक को समझ में नहीं आएँगे, तो मैथिली और डिंगल के भी बहुत से शब्द उन्हें समझ में नहीं आएँगे। इस आधार पर हिन्दी-उर्दू के कवियों को मिलाकर कविता संग्रह की बड़ी आवश्यकता है। यह उर्दूवालों को खुश करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी एक महत्वपूर्ण धारा से अपरिचित न रहने के लिए भी आवश्यक है। उर्दू भी राजभाषा हो इसका भी अन्सारी साहब का आग्रह था, जिसके बारे में मैंने स्पष्ट अपना मतभेद प्रकट किया। मैंने कहा—राजभाषा प्रदेश के अनुसार होनी चाहिए। कुछ छिट फुट व्यक्तियों के अनुसार नहीं। उत्तर प्रदेश को ही ले लें तो जिन भाषाओं की राजकाज के लिए आगे आने की जरूरत है वे हैं जनभाषाएँ—भोजपुरी, अवधी, व्रज, मध्यदेसी या कौरवी और पहाड़ी जिनकी लिपि नागरी होगी। यदि नागरी लिपि में उर्दू लिखी जाए तो भाषा का सवाल बहुत कुछ खतम हो जाता है। अन्सारी साहब इसको तो समझ रहे थे कि मैं उर्दू का अनिष्ट नहीं चाहता और उन्हीं की तरह उसकी साहित्य निधियों का प्रचार और संरक्षण चाहता हूँ। इसलिए कहा, अच्छा यही सही।

उस दिन शाम को युनिवर्सिटी छात्र संघ में भाषण दिया। फिर रात को "समन्वय" (बंगाली) गोष्ठी में भाषानुसार प्रदेश पर। रिसाल्दार बाग बुद्ध विहार में भी भाषण देकर रात को घर लौटा।

३१ जनवरी को भी दिन भर पूरा व्यस्त रहा। दोपहर तक निवास-स्थान ही पर मित्र लोग आते रहे। नवलकिशोर प्रेस उर्दू फारसी पुस्तकों के प्रकाशन का सबसे पुराना और सबसे बड़ा प्रेस है। अफसोस है, अब उस तरह की पुस्तकें वहाँ से प्रकाशित नहीं होतीं। पहले की प्रकाशित पुस्तकें भी गोदाम के जंगल में फँसी हुई हैं। चिट्ठी लिखने पर जल्दी मिल नहीं पातीं इसलिए सोचा, स्वयं चला चलूँ। मेरे काम की वहाँ दो चार ही पुस्तकें मिलीं। हाल में ही "कुलियात नजीर" (नजीर काव्य संग्रह) प्रकाशित हुआ है जिसकी एक प्रति ली। नजीर अपनी भाषा की दरिद्रता के कारण सरल भाषा में कविता नहीं करते थे। वह फारसी के भी कवि थे। उनकी फारसी कविताएँ इस संग्रह में मौजूद हैं।

मध्याह्न भोजन डा० विश्वनाथ मिश्र के यहाँ किया। उनकी पत्नी

महिला कालेज म गणित की अध्यापिका हैं। वहाँ भी भाषण दने के लिए जाना पडा। हिन्दी की उपन्यासकार श्रीमती काचनलता सब्बरवाल कालेज की प्रिंसिपल हैं। विद्यालय म तीन हजार लडकियाँ पढती है बारह सौ ता केवल कालेज विभाग म हैं। यह बतला रहा था कि स्त्रियो म शिक्षा का प्रसार और रुचि खूब बढ रही है। लखनऊ युनिवर्सिटी क रजिस्ट्रार श्री तिवारीजी कह रहे थे कि मालूम होता है कुछ दिनो म युनिवर्सिटी लड कियो की हो जाएगी। मैंने कहा १९४५-४६ म मैंने लेनिनग्राद युनिवर्सिटी म भी ऐसा ही दखा था, मुश्किल स सौ म दस लडके रह होग। महिला कालेज से हजरतगज क एक बडे रेस्तोरों म नेपाली छात्रो की चाय पार्टी म जाना पडा। चालीस के करीब छात्र और एक दो छात्राएँ नेपाली थी। श्री भगवती प्रसाद वर्मा, श्री यशपाल और कथक बनारसीजी भी मौजूद थे। सबन थोडा थोडा भाषण दिया। छात्रो म अधिकाश नेपाल उपत्यका क थ। उनक बाद पूर्वी नपाल क। पश्चिमी नपाल क दो ही तीन विद्यार्थी थे जा बतला रहे थे कि नपाल का यह भाग शिक्षा म बहुत पिछडा हुआ है।

कलकत्ता स दूसरे दर्जे म रात का सफर करक दख लिया था, नही चाहता था आज भी रात बैठे बैठे गुजारनी पडे इसलिए पहले दर्जे की सीट रिजर्व करा ली। हमारे कम्पार्टमेन्ट म एक सरकारी अफसर और मैं था। थोडी देर म अफसर मेरे नाम स परिचित मालूम हुए, और उनसे बातें होन लगी।

मसूरी वापस—जितना पश्चिम आए, उतनी सर्दी बढनी ही थी। कलकत्ता म जहा गर्मी मालूम हो रही थी वहा अब खूब कपडा ओढना पडा था। हरद्वार म पौ फटने लगी थी, लेकिन देहरादून हमारी ट्रेन ९ बजे पहुँची। श्री महनाजी स्टेशन पर मिल। शुक्लजी और दूसरे मित्रो को लिख चुका था कि देहरादून मे एक दिन ठहर कर मसूरी जाऊँगा, पर अब तो कितने ही प्रोग्राम ताड कर आ रहा था, इसलिए उस ख्याल को भी छोडना पडा। स्टेशन स बाहर ४ रुपए टैक्सी को देकर चल पडा। १ घटे मे (११ बजे) मसूरी लाइब्रेरी पहुँचा। दूसरे समय मे जहा कुली सामान उठान क लिए मार करते, वहाँ इस समय वह दुर्लभ थे। किसी तरह दो कुली जुटा कर साढे १२ बजे घरपर पहुँचा। कमला को विश्वास था मैं ३ तारीख को

आऊगा। डेढ़ महीने बाद देखने पर जया जरा सा हिचकिचाई लेकिन जल्दी ही पहचान गई। इतने दिनों में जेता बड़ा मालूम देने लगा था। उसके दाहिने हाथ पर पोलियो का जो हल्का सा प्रभाव था, वह बहुत कुछ दूर हो गया था। हाथ जिस तरफ चाहे उधर हिला डुला सकता, किन्तु बाँये हाथ के बराबर उसमें अभी ताकत नहीं थी। उसे दिखलाने के लिए दिल्ली जाना जरूरी था। गंगा कलिम्पोंग चली गई थी और उसकी मंझली बहिन माहिली आ गई थी, जिसने बच्चों को सँभाल कर कमला को पढ़ने का समय देने में सहायता की थी। डेढ़ महीने की चिट्ठियाँ और डाक पड़ी हुई थी जिन्हें भुगताना जरूरी था। सम्मेलन मुद्रणालय से 'मध्य एसिया (१)' का बहुत सा प्रूफ भी आया था। घर में आकर एक विचित्र तरह की आत्म तुष्टि मालूम होने लगी। जया जेता बराबर याद आने रहे। बच्चे कितना माता पिता को आनन्द प्रदान करते हैं?

१९

६ ३वे वर्ष की समाप्ति

मसूरी म अबके वफ नही पडी। अखवारो म शिमला की वफ से मैने साचा था, मसूरी मे भी पडी हागी। पर, जहा तक सर्दी का सवाल था, वह खूब थी। वस्तुत सर्दी क्या करे जब देव बूद ही न बरसाएँ? बूदा के बरसन पर ही ता सर्दी उन्हे वफ बनाती है। जब हवा चलती, ता सर्दी चपन ही बढ जाती। फरवरी के आरम्भ म ही वसन्त की कामना करना वकार था।

आई हुई चिट्ठिया मे एक राष्ट्रपति के डिप्टी सेक्रेटरी की भी थी। मैंन राष्ट्रपति का पासपोट के बारे म लिखा था, उसी के जवाब म यह चिट्ठी और उसके साथ पासपाट के फाम थे जिन्ह फिर से उन्ही कारवाइया का दाहराते जिला-मजिस्ट्रेट के पास भेजना था। मजिस्ट्रेट का लिखा पुरान कागजा को दिल्ली भेज दें। उनका जवाब आया—अब वह वकार ह। अर्थात् दस रुपय क स्टाम्प पर अब फिर आर्थिक गारटी और दूसरी कारवाइयाँ करनी पडेंगी। फिर मजिस्ट्रेट कागज-पत्र का पुलिस के पास जाँच करन के लिए भेजेंगे। पूरा नौ मन तेल हा जाएगा, तब राधा नाचेगी।

मन अबकी यात्रा म सब जगह कह दिया था कि हम मसूरी छाडन वाले हैं, *लेकिन यहाँ दखा, कमला का मन बदल गया है।* पर अभी ता परीक्षा और उसके परिणाम को देखन म जून बीत जाएगा, तब तक इसके बार म साचन के लिए बहुत समय मिलेगा। मैं कलिम्पाग के प्राग्राम का

बुरा नही कह रहा था। सोचता था, तिब्बती भाषा और बौद्ध साहित्य के सम्बन्ध में वहां रह कर काम करने में सुभीता रहेगा क्योंकि अच्छे तिब्बती पण्डित भी वहां मिल जाएँगे। तिब्बत के वर्षों से छोड़े हुए काम को फिर से हाथ में लेकर यदि ल्हासा में समय देने की आवश्यकता हुई, तो वह कलिम्पांग से बहुत नजदीक है। अभी भी केवल दो दिन घोड़े की सवारी की जरूरत है, नहीं तो दोनों तरफ मोटरें चली गई है। बागडोगरा से ल्हासा विमान उड़ने पर यात्रा बिल्कुल खेल सी हो जाएगी। मन के लड्डू अच्छे लगते है। पर यह भी समझता था कलिम्पोंग में मेरे अनुकूल समाज नहीं है।

जया अब खूब बोलने लगी थी। ढाई वर्ष में ही उसकी भाषा जितनी शुद्ध थी उतनी आठ वर्ष पढ़ने के बाद भी उसके पिता की नहीं थी। भाषा भी मुहावरेदार थी। जेता अभी गूंगा ही कर रहे थे। जेता नाम सुनने पर एक महिला ने जेतराम कहा, तो मेरा माथा ठनका। सोचने लगा, जेता का जीतराम आसानी से बन सकता है।

मस्कृत काव्यधारा' के लिए अपेक्षित कुछ पुस्तक नही आई थी और अभी कुछ लिखना बाकी था। उसे समाप्त कर आवत्ति करके बाकी प्रेस कापी को भी प्रेस में भेजना था। इधर २५वी बुद्ध-शताब्दी के लिए पत्र पत्रिकाओं से लेखों की माँग आ रही थी, इसलिए कितने ही लेख उन्हे भी लिखने थे। फिर वही नियमपूर्वक जीवन शुरू हुआ। सवेरे ७ बजे के आस पास चाय पीकर चार घंटे के लिए बैठकर बोलना, और मंगलजी का टाइप खटखटाना। फिर अगले दिन के काम की तैयारी तथा चिटिठयों और पत्रिकाओं को पढ़ना। अबके यह भी निश्चय कर लिया था कि "मेरी जीवन यात्रा" के तीसरे भाग का अपने ६३वें साल के अंत तक लिख डालना है। काम की कमी नही थी। ६ फरवरी से जीवन-यात्रा आरम्भ हुई और १२-१५ पृष्ठ (फुल स्कप साइज) रोज के हिसाब से टाइप होने लगी। काम से विश्राम किसी ही किसी दिन लेना पड़ता।

भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) की ७ फरवरी को चिटठी मिली। वह समझते है, आर्थिक कठिनाइयों के कारण में चीन जाने का इरादा रखता हूं। अनेक कारणों में वह भी एक हो सकता है, पर वही कारण नहीं। मैं

वहा जाकर साहित्यिक और सास्कृतिक कामा कोकरना चाहता था विशेष कर तिब्बत मे अब जो पुरान पुस्तकालयो और उनकी निधिया के दरवाजे खुले है, उनसे लाभ उठाना चाहता था।

फरवरी म अमृतसर मे काग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। काग्रेस कहाँ से कहा चली गई ? पहले जहाँ एक अस्थाई नगर और विराट मेला लगता वहा अब उसके प्रति लोगो म उदासीनता। काग्रेस और उसके मन्त्रिया से जिन्ह काम बनाना था, वही वहा आए थे। कई साल ता नेहरू छोडकर दूसरा काई सभापति बनने लायक आदमी नही मिलता था। अब नेहरू न अपनी टापी श्री उच्छगराय ढेबर के सिर पर रख दी है। दूसरी बार वह उसके अध्यक्ष बने। ढेबर बावन गण्डे दूसर काग्रेसी नेताओ से कोई भेद नही रखते। फिर न जाने क्यो नेहरू उन पर डर गये हैं ? क्या यह यही नही बतलाता कि नेताओ के सम्बन्ध मे काग्रेस दिवालिया बन गई है। सभी जगह प्रथम श्रेणी की प्रतिभावाले तरुणा का काग्रेस म अभाव देखा जाता है। जो हैं भी वह बूढो की नजर पर नही चढते और ढूढ-ढूढ कर बूढो की ही तुम्बा फेरी की जाती है। काग्रेस के अध्यक्ष ने नेहरू की भापू की तरह भाषानुसार प्रान्तो के निर्माण का विरोध किया, द्विभाषी प्रान्ता का समर्थन किया। काल से लोहा लेने के लिए तैयार होना इसी का कहते है। द्विभाषिक प्रान्तो के निर्माण का मतलब है आकाशी याजना, जो बहुत दिनो तक लादी नही जा सकती। बिहार और बगाल का एक कर देने के लिए बडे जोर शोर से घोषणा हुई। बगाल मे हाल की म्युनिसि-पैलिटियो के चुनाव ने बतला दिया है कि अगले चुनाव म काग्रेसियो को विजय के लिए केवल धोखा धडी पर ही भरोसा करना पडेगा। वह बहुत खतरे की बात है इसलिए उसकी नीद हराम हो रही है। उधर बिहार म अभी भी लोगो की आँखो म धूल झोकने म काग्रेसी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। तानाशाह हैं इसलिए विलयन के दिनो मे ही उन्हे भले दिना की आशा दिखलाई दने लगी। काग्रेसी महादेव क्यो न राय—सिंह के सुझाव पर उछल पडते ? लेकिन यह काम उतना आसान नही था, जितना दिल्ली के महादेव समझते हैं। यह सुझाव रखा जा रहा है कि दोना प्रदेश अपनी-विधान सभाओ, राजधानियो हाइकोर्टो मन्त्रिमडलो को अलग अलग र

एक राज्यपाल के अधीन रह। इस तरह यदि राज्यपालो की सख्या कम करना हा—जा बुरी बात नही है—तब तो शायद कोई दिक्कत नही हो। शायद सोचत हाग सयुक्त प्रान्तो की जा मन्त्रिमण्डल हागे, उसम एक म वामपथियो का बहुमत होने पर दूसरे मे दबाया जा सकता है।

अमतसर काग्रेस क अध्यक्ष ने भूदान का महातम भो खूब बखाना महात्मा भावे पर गा धीजी का आवेश होता हे उनकी आत्मा भाव के मुह से बोल रही है। वह गाधीजी क अपूण काम को पूण कर रह है। उनक भूदान आन्दालन द्वारा एक जबदस्त क्राति होने जा रही है। उसके द्वारा शान्तिमय तरीके से रामराज्य कायम हा जाएगा शापण खतम हो जाएगा वगभेद मिट जाएगा, दश म गरीबी का नाम नही रहगा। ऐसी बातें यदि ढोगी काग्रेसी नेता कह तो कोई अचरज नही। उ ह हर दूसरे चौथ वप एक नया नारा मिलना चाहिए, जिसके द्वारा जनता के हृदय से पुरान असफल प्रयत्न की स्मृति भुलवाइ जाए। नई आशा पैदा की जा सके। यह ता उनके लिए वडे काम की चीज है। इसीलिए सभी काग्रेसी एक ओर म भावे की जय जय बाल रहे है। प्रधानमत्री भी उनसे भट करने के लिए समय निकाल लेते हैं।

पर अक्ल रखनेवाला आदमी कसे इस मान सकता है? भूदान स कैस रामराज्य आयगा? जमीन तो पहले भी हस्तान्तरित हाती रही है। दान स हो या बची स। इससे उसक रूप म कोई परिवतन नही होता। फिर इस हस्तातरण स क्या भूमि या उसकी उपज कई गुना बढ जाएगी? फिर इस दान की हुई भूमि म सबस अधिक ता ऐसी है, जिसे 'उडता सत्तू पितरन को" कहा जा सकता है, अर्थात् किसान उसे वडे जमीन्दारा स छीन रह थे उस इस प्रकार दान करा छुट्टी ली गई। काफी जमीन एसी है, जा लाखा एकड कह जान पर भी न कभी आबाद हुई, न आबाद हा सकती है। भूदान क मकारपन का कितन ही काग्रेसी भी समझते हैं पर महताब की तरह खुलकर उसक खिलाफ आवाज उठान की हिम्मत नही रखत।

अमृतसर न फिर समाजवाद का नाम दाहराया। आजकल क जमाने म समाजवाद क नाम स ही समाजवाद का आन स राका जा सकता है, यह

काग्रेसी नेता भली प्रकार जानते है। इसीलिए यह ढोग रचा गया है। काग्रेसी समाजवाद की व्याख्या है—जिसम गरीब अधिकाधिक गरीब होते जाएँ, और थैलीशाह अधिकाधिक धनी।

१६ फरवरी को कई महीनो बाद नीलाजी और डा० सत्यकेतु मिले। डा० सत्यकेतु एक बडी मनारजक, पर साथ ही हृदयवधक बात सुना रह थे। पडोसी जिले के एक सेठ को जब मालूम हुआ कि सरकार ने उनके जिले के बाढ पीडिता के लिए चार लाख रुपया देना स्वीकार किया है, ता उनके पेट मे पानी पचना मुश्किल हा गया। वे जानते थे कि चार लाख बाढ-पीडिता के पास नही, बल्कि दूसरा की जेब मे जाएँगे। सोचा—इस लूट से लाभ न उठाना भारी बवकूफी है। उन्होने अपने साहबजादे को फटकारा—'तू कसा मूख है, बहती गगा म हाथ धोना नही जानता। जा बाढ पीडिता म अपना नाम भी दज करा।'' लेकिन बाढवाले इलाके मे उनकी एक अगुल भी जमीन नही थी और न कोई घर था। पर, इसको देखने कौन आ रहा है? कागज तयार हो उस पर पाच प्रतिष्ठित आदमिया के हस्ताक्षर हा, फिर सेठ साहब और उनके साहबजाद के बाढ-पीडित होने से कौन इन्कार कर सकता है? घर मे अपनी कार थी। साहबजादे उस पर निकले। जिले के काग्रेसी नेता से मिले। उनसे हस्ताक्षर करवाया। काग्रेसी नता का सेठ से बराबर वास्ता पडता था। बेटा बेटी का ब्याह हा, या दूसरा कार्य प्रयोजन, सेठजी हमेशा उनकी बलैया लेने के लिए तैयार थे। वह जानन पर भी हस्ताक्षर करन से कैसे इन्कार कर सकते थे? काग्रेसी एम० एल० ए० और दूसर नताओ के चार छ हस्ताक्षर हो गए। जिला मजिस्ट्रेट उसे मानन से कैस इन्कार कर सकता? आखिर, सेठ के घर म १६ हजार रुपय आ गए। सेठा का दिमाग विश्राम लेना थोडे ही जानता है? सेठ के मकान किराय पर लग हुए है, जिससे उन्हे तीन हजार मासिक की आमदनी है। सरकार मकानो की कमी देखकर नय मकाना को बनवाने क लिए कराडो रुपय दे रही है। इसका भी सदुपयाग कुछ होना चाहिए। सेठ साहब न एक सहयाग समिति बनाई। समिति सरकार से रुपये लेकर नये मकान बनवाएगी। डाक्टर साहब से भी उन्होन समिति का मेम्बर बन जान के लिए कहा। डाक्टर साहब ने कहा—मैं तो इस शहर मे रहता ही नहीं।

एक राज्यपाल के अधीन रह। इस तरह यदि ~
करना हा—जो बुरी बात नही है—तव तो शाय
शायद सोचते हागे सयुक्त प्रान्तो की जो मन्त्रिम
वामपथिया का बहुमत होने पर दूसरे से दवाया ज

अमतसर काग्रेस के अध्यक्ष ने भूदान का मह
महात्मा भाव पर गाधीजी का आवश होता है, उ
से वाल रहो है। वह गाधीजी के अपूण काम क।
भूदान आन्दोलन द्वारा एक जवदस्त क्राति हाने ज
शान्तिमय तरीके से रामराज्य कायम हा जाएगा, इ
वगभेद मिट जाएगा, देश मे गरीवी का नाम नही र
ढागी काग्रेसी नेता कह तो काइ अचरज नही
वप एक नया नारा मिलना चाहिए, जिसके द्वारा ज
असफल प्रयत्न की स्मृति भुलवाई जाए। नई आशा पैद
उनके लिए वडे काम की चीज है। इसीलिए सभी का,
की जय जय वोल रहे है। प्रधानमत्री भी उनसे भेट,
निकाल लेत हैं।

पर अक्कल रखनेवाला आदमी कसे इसे मान,
कैसे रामराज्य आयगा ? जमीन तो पहले भी हस्ता
दान से हा या वेची से। इससे उसके रूप म कोई र्पा
फिर इस हस्तातरण स क्या भूमि या उसकी उपज कई
फिर इस दान की हुई भूमि म सबसे अधिक तो ऐसी है,
पितरन को' कहा जा सकता है, अर्थात् किसान उ
छीन रह थे उसे इस प्रकार दान देकर छुटटी ली गई।
है जो लाखा एकड कहे जाने पर भी न कभी आवाद
सकती है। भूदान के वेकारपन का कितन ही काग्रेसी
महताव की तरह खुलकर उसके खिलाफ आवाज उ
रखत।

अमृतसर न फिर समाजवाद का नाम दोहराया।
मे समाजवाद के नाम स ही समाजवाद वा आन स रोक

आज से पचास साल से पहले की है। उन्हें पहले दो रुपया और भोजन मिलता था। फिर भोजन के साथ चार रुपया, और,अन्त में भोजन सहित दस रुपया। बुढापे तक वह नौकरी करते रहे। चौधरी भी उसी समय बाप के पास आए, लेकिन उन्होंने दरबान या चपरासीगिरी नही पसन्द की। कुछ इधर उधर का काम करते, सब्जी बेचते फिर खेती में लग पडे। उनके पास काफी जमीन है। लडका बाराबकी में अपने गाव मे रहता है। वहाँ भी जमीन है। लडके का भी कोई पुत्र नही। लडकी के बेटे लक्ष्मीनारायण को यहाँ लाए थे। वह लँगोटी बाधकर देहरादून में साधु बन गया। चौधरी को बडी मुश्किल से उसका पता लगा। लौटा लाये पर तब तक चैन नही आया, जब तक कि उसे उसके मा बाप के पास पहुँचा नही दिया। मैंने पूछा—इस अर्जित खेती को किसके लिए छोडना चाहते हैं? बोलने लगे—"यही तो सोचता हूँ। बूढा हो गया लडका घर की खेती छोड नही सकता। चौधरी से भी ज्यादा बूढी चौधरानी है। हड्डी हड्डी भर शरीर मे है, लेकिन जान पडता है, वे हड्डिया लोहे की है। हर वक्त काम मे लगी रहती है। मसूरी के जाडे का वे अपनी एक सूती साडी मे बिता देती हैं, जिसे देखकर दाँतो तले अँगुली दबानी पडती है। वैसे सीधे होकर चल सकती हैं, लेकिन जब घर के दरवाजे की ओर जाना होता है, तो २५ गज पहले से ही कमर को दोहरी कर लेती हैं। कितनी ही हिम्मत हो, लेकिन बुढिया कितने समय तक सँभालेगी। मैंने कहा—"लक्ष्मीनारायण को ही फिर लाओ।"

—'लाता तो, लेकिन यदि कहीं फिर भाग गया?"

—"अब उसे थोडी अकल आ गई होगी एकाध साल बाद उसी को लाएँ। शायद वह सम्पत्ति का मूल्य समझे।"

बुढापे का ख्याल चौधरी का भी आता है, पर गाँव मे जाकर रहने की सोच भी नहीं सकते। कह रहे थे—"पोती के ब्याह में गया था। जान पडता था, अब बच कर नही लौट सकूगा। आखिर मैं भी उसी भूमि में [illegible] हुआ, लू में तपते मीठे मीठे आमो का खाता रहा। पर, अब लू के नाम [illegible] प्राण निकलने लगते हैं।"

[illegible] ५। " की प्रथम पुस्तक ३ मार्च को छप गई, इससे बहुत [illegible]नक के भी दस पाठो के प्रूफ उसी दिन आए।

—अरे उससे क्या होता है? मकान किराये पर उठ जायगा।

—लेकिन, उसमे कुछ रुपया लगाना भी तो पडता है।

—उसकी पर्वाह न कीजिए। बल्कि हजार-पाँच सौ ले भी लीजिए।

इसका अर्थ है, सेठ साहब नकली सहयोग-समिति म नकली मैम्बरो को भर्ती कर मकान बनवा उसे भी अपने हाथ मे करना चाहते थे।

आज के भारत म जो नयकर भ्रष्टाचार चल रहा है, क्या उसकी कथा एक सेठ के दो चार कामो म समाप्त हो सकती है? एक नगरपालिका की बात डाक्टर साहब बता रहे थे, जिसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष ने लाखो पर हाथ साफ किया है, और काफी ईमानदारी नहीं, तो सफाई के साथ। नगर पालिका के जितने ठेके दिए जाते है, उनम दस प्रतिशत पर "हक्क फकीरो का है।" १८ लाख का वहा हर साल सामान मँगवाया जाता है, जिसम १ लाख ६० हजार तो जायज हक ठहरा। यह ठीक है कि यह सारा धन अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के ही पाकेट म नही गया, पर काफी गया,इसम कोई स देह नही। दस लाख सडक पर लगनेवाला है, तो उसम से भी एक लाख धरा हुआ है। दोनो अध्यक्ष उपाध्यक्ष मालामाल हो गए हैं। जायदाद अपने नाम से नही ली जा सकती, तो सगे-सम्बन्धियो के नाम से लेने को कौन देखता है? अपने शहर म वह नही ली जा सकती, तो दूसरे शहर में ली जा सकती है। कौन मन्त्री दूध के धुले हुए है, जो इनके काम पर अँगुली उठाएँ? और फिर उनकी भी पूजा करने के लिए भी तो ये तयार हैं। रामराज्य की ओर ले जाने के लिए सारे देश म यही रास्ता बनाया जा रहा है। देखें, यह पत्थर की नाव कितने दिनो तक तैरती है?

हमारे पडोसी चौधरी हेपी वैली के मजबूत किसान हैं। इस मोहल्ले म दो ही बडे-बडे समतल भूमि के टुकडे है। दोनो के बोने-जोतने वाले चौधरी है। पालिका ने पहले या ही दे दिया, और अब चौधरी का उन पर कानूनन हक है। पास-पडोस म कुछ जमीन और भी आबाद होने लायक हो, तो चौधरी उसे बेकार रहने नही देते। 'बिलडेर' के फाटक के पास एक ऐसा ही टुकडा बेकार पडा हुआ था। उन्होने आदमी लगाकर एक ओर दीवार खडी की और फिर पत्थरो को हटवाया। अहीर के बच्चे हैं, खेती की विद्या खून म है। उस दिन बतला रहे थे—मेरे बाप बैंक म दरबान हुए, यह बात

आज से पचास साल से पहले की है। उन्हें पहले दो रुपया और भोजन मिलता था। फिर भोजन के साथ चार रुपया, और अन्त में भोजन सहित दस रुपया। बुढ़ापे तक वह नौकरी करते रहे। चौधरी भी उसी समय बाप के पास आए, लेकिन उन्होंने दरबान या चपरासीगिरी नहीं पसन्द की। कुछ इधर उधर का काम करते, सब्जी बेचते फिर खेती में लग पड़े। उनके पास काफी जमीन है। लड़का बाराबंकी में अपने गाँव में रहता है। वहाँ भी जमीन है। लड़के का भी कोई पुत्र नहीं। लड़की के बेटे लक्ष्मीनारायण को यहाँ लाए थे। वह लँगोटी बाँधकर देहरादून में साधु बन गया। चौधरी को बड़ी मुश्किल से उसका पता लगा। लौटा लाये पर तब तक चैन नहीं आया, जब तक कि उसे उसके माँ बाप के पास पहुँचा नहीं दिया। मैंने पूछा—इस अर्जित खेती का किसके लिए छोड़ना चाहते हैं? बोलने लगे—"यही तो सोचता हूँ। बूढ़ा हो गया लड़का घर की खेती छोड़ नहीं सकता। चौधरी से भी ज्यादा बूढ़ी चौधरानी है। हड्डी हड्डी भर शरीर में है, लेकिन जान पड़ता है, वे हड्डियाँ लोहे की है। हर वक्त काम में लगी रहती हैं। मसूरी के जाड़े को वे अपनी एक सूती साड़ी में बिता देती है, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। वैसे सीधे होकर चल सकती हैं, लेकिन जब घर के दरवाजे की ओर जाना होता है, तो २५ गज पहले से ही कमर को दोहरी कर लेती है। कितनी ही हिम्मत हो, लेकिन बुढ़िया कितने समय तक सँभालेगी। मैंने कहा—"लक्ष्मीनारायण को ही फिर लाओ।"

—"लाता तो, लेकिन यदि कहीं फिर भाग गया?"

—"अब उसे थोड़ी अकल आ गई होगी एकाध साल बाद उसी को लाएँ। शायद वह सम्पत्ति का मूल्य समझें।"

बुढ़ापे का ख्याल चौधरी को भी आता है, पर गाँव में जाकर रहने की सोच भी नहीं सकते। कह रहे थे—"पोती के ब्याह में गया था। जान पड़ता था, अब बच कर नहीं लौट सकूँगा। आखिर मैं भी उसी भूमि में पैदा हुआ, लू में तपते मीठे मीठे आमों को खाता रहा। पर, अब लू के नाम से भी प्राण निकलने लगते हैं।"

"संस्कृत पाठमाला" की प्रथम पुस्तक ३ मार्च को छप गई, इससे बहुत सन्तोष हुआ। दूसरी पुस्तक के भी दस पाठों के प्रूफ उसी दिन आए।

आज से पचास साल से पहले की है। उन्हें पहले दो रुपया और भोजन मिलता था। फिर भोजन के साथ चार रुपया, और अन्त में भोजन सहित दस रुपया। बुढ़ापे तक वह नौकरी करते रहे। चौधरी भी उसी समय बाप के पास आए, लेकिन उन्होंने दरबान या चपरासीगिरी नहीं पसन्द की। कुछ इधर-उधर का काम करते सब्जी बेचते फिर खेती में लग पड़े। उनके पास काफी जमीन है। लड़का बाराबंकी में अपने गांव में रहता है। वहां भी जमीन है। लड़के का भी कोई पुत्र नहीं। लड़की के बेटे लक्ष्मीनारायण को यहाँ लाए थे। वह लँगोटी बांधकर देहरादून में साधु बन गया। चौधरी को बड़ी मुश्किल से उसका पता लगा। लौटा लाये पर तब तक चैन नहीं आया, जब तक कि उसे उसके मां-बाप के पास पहुँचा नहीं दिया। मैंने पूछा—इस अर्जित खेती को किसके लिए छोड़ना चाहते हैं? बोलने लगे—"यही तो सोचता हूँ। बूढ़ा हो गया लड़का घर की खेती छोड़ नहीं सकता। चौधरी से भी ज्यादा बूढ़ी चौधरानी है। हड्डी हड्डी भर शरीर में है, लेकिन जान पड़ता है, वे हड्डियाँ लोहे की हैं। हर वक्त काम में लगी रहती हैं। मसूरी के जाड़े को वे अपनी एक सूती साड़ी में बिता देती हैं, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। वैसे सीधे होकर चल सकती हैं, लेकिन जब घर के दरवाजे की ओर जाना होता है तो २५ गज पहले से ही कमर को दोहरी कर लेती हैं। कितनी ही हिम्मत हो, लेकिन बुढ़िया कितने समय तक सँभालेगी। मैंने कहा—"लक्ष्मीनारायण को ही फिर लाओ।"

—'लाता तो, लेकिन यदि कहीं फिर भाग गया?"

—"अब उसे थोड़ी अकल आ गई होगी एकाध साल बाद उसी को लाएँ। शायद वह सम्पत्ति का मूल्य समझे।"

बुढ़ापे का ख्याल चौधरी को भी आता है, पर गाँव में जाकर रहने की सोच भी नहीं सकते। कह रहे थे—"पोती के ब्याह में गया था। जान पड़ता था, अब बच कर नहीं लौट सकूंगा। आखिर मैं भी उसी भूमि में पैदा हुआ, लू में तपते मीठे-मीठे आमों को खाता रहा। पर, अब लू के नाम से भी प्राण निकलने लगते हैं।"

"संस्कृत पाठमाला" की प्रथम पुस्तक ३ मार्च को छप गई, इससे सन्तोष हुआ। दूसरी पुस्तक के भी दस पाठों के प्रूफ उसी दिन

"संस्कृत काव्यधारा" अभी अधर मे लटक रही थी। जिस समय मैंने उसके सौ पृष्ठों को श्रीनिवासजी को दिया था, और सम्मेलन मुद्रणालय से बात तय कर ली थी, तो समझने लगा था, अब नया पार हो जाएगी। लेकिन, मुद्रक और प्रकाशक में कितने ही दिनो तक मोल भाव चलता रहा। यद्यपि उसके १२ पृष्ठों के प्रूफ आ चुके हैं लेकिन जब तक कुछ छपे हुए प्रूफ न आएँ, तब तक सन्देह की गुंजाइश है।

१० मार्च को कमला अपनी परीक्षा के लिए देहरादून गई। यद्यपि आरम्भ होने मे चार पाँच दिन की देर थी लेकिन उन्हें पहले जाना जरूरी था। मेरी चली होती, तो एक महीना पहले भेज देता। वहाँ शुक्लाजी से पढ़ने में सहायता मिलती। पर, बच्चों को छोडकर वह जाने के लिए तैयार नही थी।

११ तारीख को श्री कालिदास, हरिश्चन्द्र और केशवलाला के भतीजे आए। मुहल्ले के तीन-चार विद्यार्थी तरुणो के उपद्रव की शिकायत कर रहे थे। तरुण लडकियों को स्कूल जाते समय छेडते और टोकने पर मार पीट के लिए तैयार हो जाते। जो अपनी इज्जत अपने हाथो नही बचा सकता, उसकी रक्षा कानून कैसे कर सकता? यह भी उन्होंने बतलाया कि मुहल्ले के एक लाला गैरकानूनी शराब और जूआ खेलाने का रोजगार करते हैं। आजकल मसूरी के भाग्य बिगडने के कारण बनियों का भी भाग्य बिगड गया है। ऐसी अवस्था मे वह आमदनी के इस नये रास्ते को स्वीकार करें तो आश्चर्य क्या? पुलिस चौकी मौजूद है, लेकिन जब ५० रुपये मासिक का बँधा न हो, तो वह क्यो रुकावट डालेगी। अभी हाल में ही पुलिस के एक सिपाही ने कई जगह चोरियाँ की। भण्डा फूटने पर भाग गया, लेकिन जहाँ तक लोगो की जान माल की सुरक्षा की बात है, उससे कोई लाभ नही हुआ। पुलिस का काम अब कांग्रेस के राजनीतिक विरोधियो के सिर पर डण्डा बरसाना या महाप्रभुओं के स्वागत में हाथ बाँधकर खडा रहना है। कालिदास लडकी के पिता पर जोर दे रहे थे कि तुम लडकी का स्कूल भेजना बन्द मत करो पर लाला की हिम्मत नही थी।

इस महीने आगरा युनिवर्सिटी की दो डाक्टरेट थेसिसों को देखने का मौका मिला। वैसे तो जिस तरह टके सेर डाक्टर बनाये जा रहे हैं, उसके

कारण थेसिस का स्तर बहुत गिर गया है। पर, य दोनों थेसिसें उस तरह की नहीं थीं। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने बहुत परिश्रम के साथ पालि त्रिपिटिक और उसकी अट्टकथाओं की भौगोलिक सामग्री का विश्लेषण किया था। अम्बालाल सुमन ने अलीगढ़ की जनभाषा और उसमें आई सामग्री का सुन्दर विवेचन हजार पृष्ठ से ऊपर में किया था। ऐसे निबन्ध यदि लिखे जाएँ तो उनसे डिग्री के साथ-साथ नई ज्ञातव्य बातें भी सामने आ जाएँगी।

मार्च के तीसरे हफ्ते में पत्रों में स्तालिन की कड़ी आलोचना होने की खबरें आने लगीं। मेरे कुछ साथी इससे तिलमिला गए। सरदार पृथिवी सिंह ने बहुत उत्तेजना और निराशापूर्ण शब्दों में इसके बारे में लिखा। लेकिन, मैं इससे बहुत प्रसन्न हुआ। इसी दिन की मैं आशा रखता था, हाँ इतनी जल्दी नहीं। मार्क्स ने साम्यवाद के वैज्ञानिक रूप को हमारे सामने रखा और उसकी तरफ जाने के लिए दुनिया की सर्वहारा जनता का और मानवता के भक्तों को प्रेरणा दी। वह महान् थे, इसमें किसको सन्देह हो सकता है? लेनिन ने साम्यवाद को पृथिवी पर उतारा। थैलीशाहों की सगीनें उसे असम्भव कर रही थीं। आखिर सगीनों के बल पर मुट्ठी भर लोग दुनिया के सर्वस्व के स्वामी बन गए थे। उनका शोषण और उत्पीडन अक्षुण्ण चल रहा था। ऐसी परिस्थिति में जिसने साम्यवादी शासन पृथ्वी पर कायम किया, वह लेनिन महान् थे, यह भी निस्सन्देह है। लेनिन साम्यवादी शासन को पूरी तौर से मजबूत नहीं कर पाए थे। उसके आर्थिक निर्माण के लिए बहुत बड़ा कदम नहीं उठाया जा सका था कि वह हमें छोड़कर चले गए। ऐसे समय इस बड़े भार को स्तालिन ने सँभाला। पुनर्निर्माण के बाद पंचवार्षिक-योजना का सूत्रपात किया। इसके कारण सोवियत-भूमि आर्थिक तौर से इतनी सुदृढ़ हो गई कि अब वह दुश्मनों के लिए लोहे का चना बन गई। यह तीसरा पुरुष भी महान् था। लेकिन, बुढ़ापा समझिये या आत्मश्लाघा की मात्रा अधिक होना, स्तालिन अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में कई बुराइयों के लाने के कारण हुए। बाहरी देशों के बर्बर षड्यन्त्र के कारण सोवियत भूमि के भीतर सुरक्षा की ओर ज्यादा ध्यान देना पड़ता। लेकिन, युद्ध की स्थिति के लिए बनाये जाने वाले नियमों को

बराबर जारी रखना खतरनाक था। यह नियम बिना कारण भी सन्देह पैदा करते फिर सन्देह का कठोर दण्ड कितने ही निरपराध व्यक्तियों को भोगना पडता। इतनी बडी शक्ति को ठीक तौर से इस्तेमाल करना बहुत कम ही आदमियो के बस की बात है। स्तालिन ने दूसरो के लिए कहा था—"सफलता के कारण चकाचौंध मे आना" पर वह खुद इसके शिकार हुए। वह अपने को सर्वज्ञ समझने लगे। सर्वज्ञ के हाथ जोडकर स्तुति करने वाले खुशामदियो की कमी नही रहती। जो खुशामद नही कर सका, वह उनके क्रोध का भाजन हुआ। इस स्थिति मे उनके चारो ओर खुशामदियो का गिरोह जमा हो गया। उनमे जो सबसे अधिक निष्ठुर हो सकता था, वह उनका कृपापात्र बन सकता था। बेरिया ऐसा ही था, जिसे स्तालिन ने जार्जिया से बुलवाकर गृह मन्त्रालय का काम सौंपा। गृह मन्त्रालय का काम था भीतरी शत्रुओ को सिर न उठाने देना। बेरिया ऐसी शक्ति को हाथ मे लेने के लिए बिल्कुल अयोग्य था। उसने जब दो चार अत्याचार किये तो उसके लिए जरूरी हो गया कि अपने चारो ओर किलाबन्दी करें, फिर अपनी ही तरह के आदमियो को उसने अपने चारो ओर जमा कर लिया। इन पक्तियो के लेखक ने भी बेरिया की पुलिस के कारनामे कुछ देखे, और अधिक सुने। लोग साँस लेने मे डरते थे। इस स्थिति को लाने मे स्तालिन का बहुत हाथ था। चाहे वह हरेक मामले को न जानते हो, पर जो व्यक्ति-पूजा उन्होंने अपने लिए चलाई, उसका यह अनिवार्य परिणाम था। इस स्थिति को दूर करना सोवियत भूमि के लिए सबसे बडा काम हो गया। बाहर के कम्युनिस्ट या साम्यवाद के हितैषी स्तालिन की कडी आलोचना को चाहे नापसन्द करें, चाहे इसके कारण बाहरी दुनिया मे साम्यवाद के दुश्मनो को थोडी देर तक प्रापेगेण्डा करने का अच्छा मौका मिले, पर जहाँ तक रूस का सम्बन्ध था उसके लिए स्तालिन की व्यक्ति पूजा का एक क्षण भी बर्दाश्त करना हानिकारक था। जो शासन बहुजनहिताय हो, उसमे इतनी पाबन्दियो की आवश्यकता क्या? सोवियत के नेताओ ने उस बडी बाधा को हटाया, जिसे मैं इतनी जल्दी समाप्त होने वाली नही समझता था। इस नीति से सारी सोवियत भूमि मे एक अद्भुत स्फूर्ति आई है, और

कितने ही योग्य व्यक्ति, जो उस युग की क्रूरता के शिकार थे फिर कार्य-क्षेत्र में आए।

प्रो० तुबियान्स्की और प्रो० वोस्त्रिकोफ संस्कृत के अद्भुत विद्वान् थे। डा० श्चेर्वात्स्की उन्हें अपना पुत्र मानकर अपुत्र होने के शोक से विरत थे। उन्हें इन दोनों के ऊपर बड़ा अभिमान था। लेकिन १९३६ में तुखाचेव्स्की षड्यन्त्र में से जो हजारों जौ घुन के साथ पिस गए, उनमें ये दोनों विद्वान् भी धर लिए गये। ये वस्तुतः पण्डित थे। उनको अपनी विद्या से मतलब था, जिसमें वह दुनिया में लासानी थे। दोनों को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। मालूम नहीं वह मुक्त होने के लिए आज भी बचे हैं या नहीं। पर, इससे तो उस युग की क्रूरता का ढाका नहीं जा सकता। मैं समझता हूँ स्तालिन पूजा का विनाश सोवियत-भूमि में बहुत बड़ा काम हुआ है। दो तीन मित्रों ने मुझे विकल होकर इसके बारे में पूछा, और मैंने सक्षेप में यही बातें बतलाईं।

२५ मार्च को कमला परीक्षा देकर आईं। भाषातत्व वाला प्रश्नपत्र उनका कमजोर रहा। "घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध" ठीक है। मैं बराबर कहता रहता कि इसे पढ़ लो। रात को कथा के तौर पर भी उसे सुनने के लिए तैयार नहीं थीं। अब पछतावा था। फेल होंगी तो 'भाषातत्व" के ही कारण।

गर्मी के डर से दिल्ली जाने में झिझक हो रही थी, पर वहाँ जाना जरूरी था। जेता का हाथ बहुत कुछ ठीक हो गया था, और सिर्फ ताकत आने की कुछ कमी थी। पर जब दिल्ली में पोलियो की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध है, तो उसे वहाँ दिखाना आवश्यक था। देहरादून से कमला को लेकर जा सकते थे, पर होली यहीं कर लेनी थी, इसलिए ३० मार्च को यहाँ से जाने का निश्चय किया।

देहरादून—३० मार्च को साढ़े ७ बजे सवेरे जया, जेता और कमला के साथ घर से निकले। पहाड़ में मोटर पर चलना कमला के लिए जान पर खेलना है, इसलिए वह बिना खाये पिये रवाना हुईं। ९ बजे किंक्रेग में कार मिली और सवा १० बजे हम शुक्लजी के घर पर पहुँच गये। पासपोर्ट के लिए मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर कराने थे। आज छुट्टी थी, लेकिन शुक्लजी ने

मजिस्ट्रेट को तैयार कर रखा था। मसूरी के सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट को ही हस्ताक्षर करने का अधिकार था। वह भले आदमी निकले, और पासपाट के फाम पर दस्तखत का काम खतम हो गया। वह उस दिन स्टेनो से मुकद्दमा का फैसला लिखवा रहे थे। धाराप्रवाह अंग्रेजी का व्यवहार हो रहा था। पन्त से लेकर सम्पूर्णानन्द तक सभी मुख्यमन्त्री और मन्त्री हिन्दी के पक्ष में धुआधार भाषण देते हैं लेकिन उसका फल हमारे सामने था। जिनके मुकद्दमा का फैसला हो रहा था शायद ही उनमें से कोई इसे समझ सके। इसको कहते है, एक-दूसरे को धोखा देना। यदि वस्तुत हिन्दी को व्यवहार मे लाना है, तो अंग्रेजी के स्टेनो और टाइपिस्ट को हटा कर उसकी जगह हिन्दी वाले देने चाहिए, और अपने अफसरों को सख्त ताकीद करनी चाहिए कि वह हिन्दी में ही अपना फैसला दें। ऐच्छिक होने पर अफसरों की वर्तमान पीढ़ी तो हिन्दी के लिए चुकने को तैयार नहीं हो सकती। वह समझती है मन्त्री लोग सिर्फ ऊपर ऊपर से हिन्दी की बातें करते है उसके लिए साधन जुटाने को तैयार नही। अभी मार्च का अन्त ही था, लेकिन यहाँ ४ बजे तक असह्य गर्मी थी। जब असली गर्मी शुरू होगी, तब न जाने क्या हालत होगी ?

३१ मार्च को भी हमें देहरादून में ही रहना था। बनिया का भोजन शुक्लजी के यहाँ और ब्रह्मभोज प० हरनारायण मिश्र के यहाँ होता रहा लेकिन, शुक्लाइनजी के हाथ का बना बनिया का भोजन भी बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिए हम बराबर ब्रह्मभोज के लिए तैयार नहीं थे। आज गुरु रामराय के दरबार का झण्डा मेला था। संयोग ही समझिये, जो ऐसे समय हम पहुँच गए। उससे फायदा न उठाना उचित नहीं समझा जा सकता था। गद्दी से वंचित गुरु रामराय सिक्खों के सप्तम गुरु के ज्येष्ठ पुत्र थे। वंचित करने का परिणाम पंथ में झगड़ा होना जरूरी था। उनके भतीजे गुरु तेग-बहादुर का औरंगजेब ने मरवाया। अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह को सुमिरनी की जगह खड्ग उठाना पड़ा। जब एक पक्ष औरंगजेब के कोप का भाजन था, तो दूसरा अनुग्रह का भाजन होगा ही। इसलिए गुरु रामराय के लिए सिफारिश करके औरंगजेब ने गढ़वाल के राजा के पास भेज दिया। उस समय दून अनादिकाल से गढ़वाल का चला आया था। गुरु ने जंगल और

स्थान हमारे बैठने की जगह से काफी दूर था, इसलिए रुपया वहाँ कैसे पहुँच सकता था ?

२ बजे तक अंगुल-अंगुल भर जमीन और छतें लोगों से भर गई। मालूम हुआ कुछ लोग मकानों की छतों पर सबेरे ही से आकर तपस्या कर रहे हैं। इस धूप में स्त्री पुरुषों का यह धैर्य आश्चर्यकर था। इसमें केवल भक्ति ही नहीं, बल्कि तमाशा देखने की प्रवृत्ति भी काम कर रही थी। जब घड़ी ढाई बजानेलगी, तब हममें से कुछ में उत्सुकता बढ़ने लगी। सिर के ऊपर कपड़े का चदवा था, लेकिन एक जगह फांक पाकर धूप सीधे खोपड़ी पर पड़ रही थी। आध घंटे में वह हटा। ३ बजे भी अभी महन्तजी का कोई पता नहीं था। महन्तजी इलाहाबाद युनिवर्सिटी के संस्कृत के एम० ए० हैं। शिक्षित श्रद्धाहीन होते हैं, इसे झूठा करने के लिए वह शायद अपने गुरु महन्त लक्ष्मणदासजी से भी अधिक समय तक पूजा करते हैं। साढ़े ३ बजे तक भी उनका पता नहीं लगा। खोपड़ी धूप से पिघल नहीं रही थी, तो भी चिन्ता बढ़ने लगी। लोग कहने लगे, दो-ढाई बजे तक हमेशा झण्डा खड़ा हो जाता रहा है। झण्डे का लट्ठा पहले ही गिरा दिया गया था। उसके ऊपर चढ़े पिछले साल के खोल निकालकर प्रसाद के लिए रखे गए थे। खोल के दो अंगुल के चीथड़े से भी आदमी का भाग्य बन सकता है, उसका दुर्भाग्य हट सकता है, मनोकामना पूरी हो सकती है। अपनी कार्यसिद्धि के लिए स्त्री पुरुष पहले ही से मानता मानते हैं—"हमारा यह काम हो गया, पुत्र प्राप्ति हो गई, तो हम झण्डा साहब पर एक थान चढ़ाएँगे।" कोई-कोई तो कामदार मखमल की खोल चढ़ाने की मानता मानते हैं। और ऐसों की संख्या इतनी अधिक होती है कि दस साल के पहले शायद ही किसी की बारी आती है। उसके लिए हजार या अधिक रुपये दाता देते हैं। ११० फुट के लट्ठे के दानों तरफ आदमी खड़े थे। सब एक साथ झण्डे को हाथ में उठाते और उस पर कपड़ा मढ़ा जाता। पहले पीले सूती थान और दूसरे कपड़े मढ़े गए। अन्त में सारे झण्डे के नाप का लाल मखमल का खोल सिर के ऊपर से डाला गया। फिर सैकड़ों रेशमी रूमालें झण्डियों की तरह जहाँ-तहाँ बाँधी गईं, और सिर पर एक बड़ा-सा झण्डा लगा दिया गया। यह काम पूरा हो जाने पर आशा बंधने लगी कि अब झण्डा खड़ा होगा।

लेकिन, महन्तजी अपने अनुचरो के साथ साढे ४ बजे झण्डे के पास पहुँचे। सिरहाने मे जल छिडकते, पूजा करते वह उसकी जड तक पहुँचे। आज वह विशेष पोशाक मे थे। जरी का चोगा शरीर पर और जरी की नोकदार टोपी उनके सिर पर थी। यह पोशाक उनसे पहले के अनेक महन्तो के शरीर को शोभित कर चुकी थी। वह झडे के पक्के चबूतरे पर पहुँचे। फिर हाथ का इशारा करते वे उन अधिकारी लोगो को झडा उठाने के लिए कहने लगे। ११० फुट के मोटे लटठे का उठाना इतना आसान नही। एक तरफ चोटियो जैसे लटठे से हाथ लगाए लोग थे और दूसरी तरफ लटठे म बँधे रस्से को सकडो आदमी खीच रहे थे। हाथ एक पोरसाही तक पहुच सकते थे, इसलिए लकडी की छोटी बडी कैंचियाँ लगाई जा रही थी। झडा कुछ ऊपर उठता और फिर नीचे आ जाता। डर लगता था जरा भी गलती हुई, तो उसके नीचे खडे सैकडा आदमी हताहत हुए बिना नही रहते। लेकिन, झडा साहब कोई निर्जीव लटठा नही है, वह दिव्य पुरुष है। झडा उत्सव म कभी ऐसी दुघटना की बात नहीं सुनी गई।

आज झडा साहब कया थोडा ऊपर चढकर बार-बार नीचे चले आते हैं। पहले खडे होने मे दस मिनट भी नही लगते थे, लेकिन आज आघ घटे लोग बकार कोशिश करत रहे। कितने ही निराश होन लगे। पर पौन घटे बाद झडा साहब खडे हुए। यातायात पर नियन्त्रण करनेवाला लोडस्पीकर बीच बीच म अपने काम को छोड "गुरु रामराय की जय'' झडा साहब की जय' बोल रहा था। महन्तजी और उनके मैनेजर हाथ हिला करके आदमियो को उत्साह दते परेशान हो गए थे। महन्तजी न पूजा करने के कारण इतनी देर की थी और वे डेढ दो बज की जगह पर साढ़े ४ बजे झडा साहब के पास पहुँचे थे। झडा महाराज क्यो नही उठ रहे थे, इसका पता लौटते वक्त हमारे तांगे वाले ने बतलाया। कह रहा था—"पहले के महत महाराज म तेज था। उनके तेज और तपस्या के बल से झडा साहब तुरन्त खडे हो जाते थे।' वतमान महन्त श्री इन्द्रेशचरणदास के गुरु महन्त लक्ष्मणदास झडा उठाने के वक्त हाथ जोडकर दूर पर से खडे होते थ। मैंने देखा, तरुण महन्तजी एक पर म नहीं खडे हैं, और न कोई ऐसा भाव दिखा रहे थे, जिससे मालूम हो कि वह इस दिव्य वस्तु को सूखा काठ नहीं समझ रहे हैं।

वह तो वैस ही लोगा का उत्साहित कर रहे थे, जसे किसी वडी शहतीर के उठाने वाले लागो को किया जाता है। कसर थी, ता 'हइ यो, हेइ यो'' की। फिर यह दिव्य स्तम्भ क्या आसानी स उठन लगा ? ताग वाला यह भी कह रहा था कि चडा साहेब अन्त मे उठे भी, तो पहले के गुरुजो क पुण्य प्रताप म ही। 'हा, महाराज, दफ्तर म वठकर कागज पर कलम चलान से थाडे ही वह तज आ सकता है, जा पहल महन्त महाराजो म था।'' मह त इ द्रेचरणदास की यह वडी कडी आलोचना थी। उस दिन हजारा के मुह से यही बाते निकली हागी। फिर मह तजी का घटा पूजा करना व्यथ ही ठहरा। यदि वह एक ही बजे आ गए होते, और दस मिनट म चडे को खडा करवा दिए हाते तो उनक तज का लोग लाहा मानत। मन शुक्ल जी स कहा 'आप इस बात की ओर मह तजी का ध्यान जरूर आकृष्ट करें, क्योकि लागो की आवाज भगवान् की आवाज है।' झडा खडा करात ही मह तजी अपन सम्माननीय मेहमानो की अभ्यथना के लिए आए। पर, उस समय तक बहुत स बाहर चले गए थे। मुझसे मिलन पर दर के लिए क्षमा प्राथना की। उनके तेज पर टिप्पणी मैंन पीछे सुनी थी, नही ता जल्दी-जल्दी म भी दा शब्द काना मे डाल देता।

टेढे मेढे घूमते शुक्लजी एम रास्ते हमे तागा की जगह पर लाए जिसम कम भीड थी। तागेवाले न बैठाया, और कम भीडवाली सडक से निकला। बेचारा आशा किय था कि ढाई तीन बजे तक सवारिया मिल जाएँगी। इसी आशा पर वह आकर वहा खडा था। हर मिनट लोगा के आने की आशा थी इसलिए बीच मे वहाँ से अनुपस्थित क्या हाता ? दा-तीन घटे उस भी प्रतीक्षा करनी पडी थी। उस वक्त उसक दिमाग न अपना जौहर दिखलाया, और चडे क देर हान का कारण उसे मालूम हुआ, जिसके बारे म हम पहले बतला चुक है। मह तजी देहरादून नगरपालिका के अध्यक्ष ह। यह कहन की आवश्यकता नही कि उत्तर प्रदश या बाहर भी इतन ईमानदार अध्यक्ष शायद ही किसी नगरपालिका का मिले हा। जहाँ हर ठेके और हर बडे बडे खच पर दगाग अध्यक्षा उपाध्यक्षा और उनक सहायका का धरा हुआ है, वहाँ ईमानदारी सुलभ नही हो सकती। पर महन्तजी का उसकी काई आवश्यकता नही, उनक पास मठ की सपत्ति काफी

है, और खर्च करने में अपने अर्धशिक्षित गुरु से भी अधिक संयम रखते हैं। यदि जनता के काम के लिए वह दफ्तर में बैठकर दस्तखत करते हैं, या डेढ़ लाख की आबादी के नगर को बेहतर बनाने के लिए घूमते-फिरते हैं, तो उनका यह काम पूजा पाठ से कम महत्व का नहीं है। उनकी लेखनी भी शक्तिशाली है। मार्शल रोमेल की जीवनी हिन्दी में उन्होंने लिखी है, वह बतलाती है कि वह भाषा पर अधिकार रखते हैं, सैनिक विज्ञान के भी गम्भीर विद्यार्थी हैं। उनका संकल्प था, इस तरह के कितने ही ऐतिहासिक सेनानायकों की जीवनी लिखने के बहाने युद्ध के दाँव पेंच, हथियारों और दूसरी चीजों का हिन्दी में वर्णन लिख देना बहुत बड़ा काम होता, पर नगरपालिका उनका बहुत-सा समय खा जाती है, जो बचता है उसमें भी काफी पूजा पाठ ले बैठता है—अफसोस, यह सब करने पर भी उनके तेज को लोग मानने के लिए तैयार नहीं। लोगों ने जब राम के घर में आग लगा दी, और सीता को दुबारा वनवास के लिए ढकेल दिया, तो महन्तजी की क्या बात? मैं तो महन्तजी को कहूँगा, वह सबेरे ही से बड़ा साहब की सेवा में लग जाएँ, पूजा-पाठ कम कर दें, क्योंकि मठ की कोठरी में होती पूजा को बाहर इन्तजार करती हजारों जनता नहीं देखती। ठीक ११ बजे बड़ा साहब के पास आएँ, और १२ बजे तक वह खड़ा होकर पहरा देने लगे। तब लोग मानेंगे, कि महन्त इन्द्रेशचरण दास अपने गुरुओं से भी अधिक तेज रखते हैं।

दिल्ली—१ अप्रैल मूर्खों का दिन है, लेकिन किसी प्राचीन या अर्वाचीन शास्त्र ने इस यात्रा के लिए वर्जित नहीं किया। न यहाँ लोगों की धारणा है कि १ अप्रैल के दिन यात्रा करनेवाला भी मूर्ख माना जाएगा। होली के दिन इसलिए यात्रा करना लोग पसन्द नहीं करते कि उस दिन हमारे यहाँ हुड़दंग मच जाती है। शिक्षा और संस्कृति के बढ़ने से हमारे लोगों के स्वभाव में कुछ गम्भीरता, कुछ संयम आना चाहिए था, लेकिन बात उल्टी देखी जाती है। जिसका यही अर्थ है कि हमारी सारी शिक्षा हमें संस्कृत बनाने में समर्थ नहीं है। पहले जमाने में सिर्फ होली को दोपहर तक लोग मिट्टी कीचड़ एक दूसरे के ऊपर फेंकते या नहरों में अबीर घोलकर पिचकारी से डालते। अब तो एक हफ्ता पहले ही से लौंडे-लफाड़ इस काम में जुट जाते हैं। फिर रंग ऐसा इस्तेमाल नहीं करते, जो जल्दी धुल जाए। ऐसा

रग ढूढ कर लाते है, जो कपडे को हमेशा के लिए खराब कर द। होली के दोपहर तक ही उसका सीमित भी नही रखत, बल्कि शाम तक यह तूफान-बदतमीजी जारी रहता है। मुझे अपन विद्यार्थी जीवन का बनारस याद है। हमारे गाँवो म पानी म अबीर घोल कर शाम तक डाली जाती थी, लेकिन बनारस मे दोपहर के बाद सूखी अबीर ही मुह पर मलने का रवाज था। ऐसा ही दूसरे शहरो म भी देखा था। उस वक्त के लोग ज्यादा सयत थे या आज के ? आज तो उस दिन मोटर, बस या रेल स यात्रा करन की कोई हिम्मत नही कर सकता था। लोगो के लिए छूट है। कीचड, गोबर जो चीज फेंकते रह। रेल के डब्बो पर महीनो दाग नही छूटता। किसी ने खिडकी खुली रखी, तो कम्पार्टमेन्ट के भीतर की कोई चीज गन्दा होन स बच नही सकती। देश के स्वतन्त्र होन से पहले थोडा सा सकोच भी रहता था—*मुसलमान या ईसाई विरोध करेंगे हिन्दू मुस्लिम दगा हो जाएगा।* अब उसकी भी कोई पर्वाह नही करता। मुसलमान चुपचाप घर म रहकर उस दिन को बिता देते हैं। हा, उनमे स कुछ इसके महत्व को समझन लगे हैं। सोचते है कि जनगगा का प्रवाह जिधर बहता हो, उसम तुम भी शामिल हो जाओ। आज से सवा सौ साल पहले कवि नजीर अकबराबादी होली म दूसरो के साथ मिल कर खूब आनन्द लेते थे, उस पर कविता करते थे। लोग नजीर को हाथोहाथ उठाने के लिए तयार थ। आज भी जहाँ कोई ऐसा मुसल्मान दिखाई पडता है, उसकी आवभगत का क्या कहना। स्वतन्त्रता क बाद होली का क्षेत्र और बढा है। पहले यह हिन्दीभाषी भूभाग का ही त्योहार था। बगाल पहाड, पजाब और महाराष्ट्र म देखा देखी नकल कभी कभी देखी जाती थी। दक्षिण के चारो प्रदेश तो जानते भी नहीं थे कि होली किस चिडिया का नाम है। पर अब जान पडता है कि होलिका माई सारे भारत को एक करन क लिए फाड बाँध चुकी है। दिल्ली म भारत के सभी भागो के लोग ससद् के सदस्य हैं। वहाँ होली जवाहरलाल स ही शुरु होती है। उस दिन उनका सारा शरीर और मुह अबीर स भरा रहता है। सभा सदस्य भी गुलाल मलने म एक दूसर स होड लगाते हैं। फिर दिल्ली क अधीन सार भूभाग म होलिका अपना राज्य क्या न कायम करना चाह। हैदराबाद तेलुगु भाषाभाषी प्रदेश है। वहाँ क एम० एल०

बाजार म भैया के घर पर पहुच गय। भैया और भाभीजी हमारे आने की प्रतीक्षा म थ।

गर्मी का तापमान सौ डिग्री स ऊपर नही पहुँचा था, लेकिन इसको भी हम १० वजे स ४ वजे तक पखे के नीचे ही काट सकते थे। जिस उद्देश्य से हम भट्ठी म जलन आये थे, पहल उसे पूरा खतम करना था।

सफदरजग अस्पताल—सुना था, दिल्ली म पालियो की चिकित्सा का आधुनिकतम ढग स प्रबन्ध है। यह भी मालूम हो गया था कि वह शहर से बाहर सफदरजग म है। भैया, दोनो बच्चे और हम दोनो टैक्सी लेकर हवाई-अड्डे से भी आगे अस्पताल की जगह पर पहुँचे। युद्ध के समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अस्थायी एकमजिला नीची छतो की कोठरियो वाली इमारतें बनी थी जिन्ह स्थायी अस्पताल का रूप दे दिया गया था। यदि तिमजिला-चौमजिला इमारतें होती, तो आदमी को बहुत दूर तक दौड-भाग करने की आवश्यकता नही होती। हम म स कोइ यहाँ की विधि व्यवस्था से वाकिफ नही था। शिव शर्माजी भी पहली बार आए थे और वही बात भैया की भी थी। पोलिया क्लिनिक कहा है, इसी का पता लगाने म काफी चक्कर काटना पडा। अस्पताल में हजारो काम करनेवाले है सभी हजारो कमरो का हिसाब कैसे रख सकते थे। खैर, बच्चो के वार्ड का पता लगा, फिर वहाँ जाकर इस क्लिनिक का भी स्थान मालूम हो गया। जाने पर मालूम हुआ, पहले नम्बर लाओ। नम्बर के लिए फिर सडक के किनारे वाले मकान मे आना पडा। बरांडे म भीड लगी थी। दूर तक क्यू था। एक स अधिक आदमियो का नम्बर देने पर लगाकर इसे कम किया जा सकता था लेकिन लोगो के कष्ट की किसको पर्वाह है। क्यू म यदि कही मरीज को भी लेकर खडा होना पडता तो बडी आफत होती। लेकिन, इतनी अक्लमन्दी की गई थी कि स्वस्थ आदमी भी मरीज के लिए नम्बर ला सकता था। शिवजी क्यू म खडे होकर जेता का नम्बर ले आय। फिर क्लिनिक म भी डेढ घटे के करीब अगोरना पडा तब बारी आइ। किसी एक महिला डाक्टर ने देखकर कुछ लिख दिया। अब तीसरी जगह जाना पडा। तीसरी जगह गये, जहा पर कि बच्चो की इस तरह की बीमारियो के विशेषज्ञ थे। एक बडे कमरे म पचासो आदमी इंतजार कर रह

गाडी के पहुचते ही आ गय, और जब तक गाडी खुली नही, तब तक बठे बात करत रह। साथ म पूडी, मिठाई, रायता लाय थे। पूडियाँ अब भी गरम थी, और आजकल की दुनिया म आदमी की जितनी शक्ति है, उसके अनुसार प्रयत्न करके शुद्ध घी म बनाई गई थी। शुद्ध घी कहना आजकल मुश्किल है। जो अपनी भैंस और गाय के मक्खन से घी बनाता है वही शुद्धता की कसम खा सकता है। यद्यपि हम भोजन करके चले थे, पर गाडी चलते ही गरम-गरम पूडिया ने हमे आकृष्ट किया, शाम तक भी हम चारा प्राणी पूडिया को समाप्त नही कर सके लेकिन रायता को न छोडने का निश्चय कर लिया था। गाडी कुरुभूमि म चल रही थी। कुछ समय पहले यात्रा करते तो हरे भरे खेत होते, लेकिन अब वह कट चुके थे। कुरुदेश उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग है, और काशी मल्ल (भोजपुरीभाषी भाग) पूर्व म। दाना आजकल चीनी की खान बन गए हैं। यहाँ दर्जना मिले खडी हैं। खुले डब्बे ऊखा से भरे इधर से उधर जाते दीख पड रहे थे। जगह-जगह तौलने के काटे के आसपास गन्ने से भरी सैकडा गाडियाँ खडी थी। ऊख नगदनारायण की फसल है, इसलिए जहा मिला म बिकने की जरा भी आशा रहती, वहा के लाग अपने खेता मे ऊख बाने के लिए तैयार हो जाते। पूर्वी उत्तर प्रदेश म गर्मी के लू के दिना म कुआ से चरस भर भरके पानी ऊख के खेतो मे डाला जाता है। कुरुदेश सौभाग्यशाली है जो वहा गगा की धाराओ का जाल बिछा हुआ है, और पानी की कोई कमी नही है।

गर्मी ४ बजे जाके कम हुई, पर पखा था और गाडी चलते वक्त बाहर से भी हवा आती थी, इसलिए अधिक घबराने की जरूरत नही थी। शाम हो गई थी जब गाडी मेरठ छावनी पर पहुँची। प्रो० कृष्णकान्त मिश्र, अपनी पत्नी कमल, अपने भाइ, बहिन और बहनोई के साथ आये और मेरठ नगर तक साथ चले। करीब आध घटे तक सत्सग रहा। कमल की पुत्री कल्पना जब कुछ हफ्ते की थी तो बहुत ही क्षीण और छोटी दिखाई पडती थी, लेकिन अब वह स्वस्थ और हृष्ट कट्टी थी। रात के ६ बजे के करीब हम दिल्ली स्टेशन पर पहुँचे। दो बच्चो और सामान को लेकर रेल से चढने-उतरने म कुछ कठिनाई तो होती ही है, पर श्री शिव शर्मा स्टेशन पर पहुँचे हुए थे। हम आराम स उतर कर टक्सी पर बठे, और २२ फज

बाजार म भैया के घर पर पहुच गय। भैया और भाभीजी हमारे आने की प्रतीक्षा म थे।

गर्मी का तापमान सौ डिग्री से ऊपर नही पहुँचा था लेकिन इसरो भी हम १० बजे स ४ बजे तक पखे के नीचे ही काट सकते थे। जिस उद्देश्य स हम भटठी म जलने आये थे, पहले उसे पूरा खतम करना था।

सफदरजग अस्पताल—सुना था, दिल्ली म पालियो की चिकित्सा का आधुनिकतम ढग से प्रबन्ध है। यह भी मालूम हो गया था कि वह शहर से बाहर सफदरजग म है। भैया, दोनो बच्चे और हम दोनो टैक्सी लेकर हवाई अड्डे से भी आगे अस्पताल की जगह पर पहुँचे। युद्ध के समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अस्थायी एकमजिला नीची छतो की कोठरियो वाली इमारते बनी थी, जिन्हे स्थायी अस्पताल का रूप दे दिया गया था। यदि तिमजिला-चौमजिला इमारतें होती, तो आदमी को बहुत दूर तक दौड-भाग करने की आवश्यकता नही होती। हम म स कोई यहा की विधि व्यवस्था म वाकिफ नही था। शिव शमाजी भी पहली बार आए थ और वही बात भैया की भी थी। पोलियो क्लिनिक कहाँ है इसी का पता लगान म काफी चक्कर काटना पडा। अस्पताल म हजारो काम करनेवाले है सभी हजारो कमरो का हिसाब कैसे रख सकत थ। खर, बच्चो के वार्ड का पता लगा फिर वहा जाकर इस क्लिनिक का भी स्थान मालूम हो गया। जाने पर मालूम हुआ, पहले नम्बर लाओ। नम्बर क लिए फिर सडक के किनारे वाले मकान म जाना पडा। बरांडे मे भीड लगी थी। दूर तक क्यू था। एक से अधिक आदमियो का नम्बर देने पर लगाकर इसे कम किया जा सकता था, लेकिन लोगो के कष्ट की किसको पर्वाह है। क्यू मे यदि कही मरीज को भी लेकर खडा होना पडता, तो बडी आफत होती। लेकिन, इतनी अक्लमन्दी की गई थी कि स्वस्थ आदमी भी मरीज क लिए नम्बर ला सकता था। शिवजी क्यू म खडे होकर जेता का नम्बर ले आये। फिर क्लिनिक म भी डेढ घटे के करीब अगोरना पडा, तब बारी आई। किसी एक महिला डाक्टर ने देखकर कुछ लिख दिया। अब तीसरी जगह जाना पडा। तीसरी जगह गय, जहाँ पर कि बच्चो की दस तरह की बीमारियो के विशेषज्ञ थे। एक बडे कमरे म पचासो आदमी इन्तिजार कर रहे

की जगह मिल गई। सयोग स हमारे चार आदमियो की बेंच पर एक आदमी नही आया। जैस भी हो रात काटनी ही थी।

हरद्वार के ही यात्री ट्रेन मे भरे हुए थे, इसलिए हरद्वार आन पर उनम से बहुत स उतर गए। भूतपूव रेलवे कमचारी शरणार्थी थे। देहरादून म उनके सम्बन्धी रहत थे, इसलिए पहले अपना भारी अकम सामान लेकर वह देहरादून जाना चाहते थे जहाँ से अधकुम्भी स्नान क लिए जात। उनकी वृद्धा पत्नी कुछ अधिक मोटी थी। चलना फिरना उनके लिए मुश्किल था। ऊपर स पूरी धर्मात्मा थी। हाथ धोन के लिए मिट्टी भी अपन साथ लेकर चल रही थी। हरद्वार स्टेशन पर हाथ मुह धोने की सूझी और मिट्टी लेकर पानीकल पर पहुँची। लौटत लौटत गाडी चल पडी। पतिदेव दौडकर चढे लेकिन पत्नी छूटी जा रही थी। जल्दी से गाडी रोकन की जजीर खीच ली। पहले दूसरे को खीचन के लिए कहा, लेकिन उसन इन्कार कर दिया। गाडी खडी हुई। गाड न आकर कहा—"तुम्हारे ऊपर मुकद्दमा चलाया जाएगा।" वह कहन लगे—"मरी बीबी छूटी जा रही था, इस लिए मैंन खीची।" गाड न कहा—"यह सब जवाब मजिस्ट्रेट क सामन आप दीजियगा।" सामान उतार लिया गया और उन्हे स्टेशन क कमचारी क सुपुर्द कर दिया गया।

८ बजे हम देहरा पहुँचे। आज यही रहना था। कागेके की रक्षा क लिए टापीवाले कद्दूर साठ-पैंसठ रुपय म खरीदी थी। उसका कोई काम नही था, इसलिए बेच दना चाहत थ। हिमालय आमवाला न उस ६० ६५ म बेचा था, और अब ३० रुपया दा क लिए तयार थ। उस अवसर रमिंगटन क यहाँ मरम्मत क लिए दिय हुए टाइपराइटर को लेकर लौट आए। दिल्ली और देहरा में बहुत फर्क है। गर्मी यहाँ भी थी, पर दिल्ली जसी नहीं।

१० बजे हम किताबघर पर आ गए। जैसा ...

दिन ठहरना पडेगा। अब एक दिन और जरूर ही ठहरना था। देवताआ की कृपा समझिये, उस दिन सवेरे स हलका सा मेघ का पदा आकाश पर छाया रहा। शाम को कुछ बूदाबांदी भी हुई। हम कुछ साथिया और प्रकाशका से मिलना था, पार्टी आफिस म माथी रणदिवे खाडिलकर सच्चिदा और दूसर मिले। आजकल स्तालिन की ही चर्चा सब जगह सुनाई दे रही थी। स्तालिन के पिछले जीवन के जो दोप प्रकट हुए थे और जिनकी कडी आलोचना सोवियत भूमि म हा रही थी उसका प्रभाव सबक ऊपर पड रहा था। मैने भी अपने विचार प्रकट किये। सभी इसे कडवी घूट समझते थे, लेकिन मानत थ कि यही स्वास्थ्यकर दवा है। साम्यवाद के विराधिया का यद्यपि मौका मिला है, लेकिन वे उसका कुछ भी बिगाड नही सकत। निवलना को हटाकर विश्व साम्यवाद और भी मजबूत हागा, और भी फलेगा। सच्चिदा ने बतलाया, इस महीन हम "माओ' (जीवनी) म हाथ लगाएँगे। राजकमल के देवराजजी ने फिर अब के इसी महीने मे 'शादी" म हाथ लगाने का वादा किया पर वह कभी नही लगा।

४ अप्रल को भी दिन भर हम दिल्ली ही म रहना पडा। कल तो बादल न कुछ अवलम्ब दिया था, लेकिन आज १० बजे दिन से रात के ८ बजे तक पखा ही शरण रहा। पसीन से तो बच गए, लकिन सिर घूम रहा था। समय से कुछ पहले ही स्टेशन पहुँचे। दूसरे दर्जे म दा सीटें रिजव करा ली थी। हम यह भूल गए कि दूसरे दर्जे म रिजव कराने का मतलब सिफ बठन की जगह सुरक्षित करना है, सोने की नही। यहाँ आन पर जब देखा, बठे-बठे बच्चा को लेकर गुजारा करना पडेगा ता पहले दर्जे मे सीट ढूढने के लिए दौडे पर वहाँ कोई जगह खाली नही थी। देहरादून म फौजी स्कूल और दूसरी सस्थाआ के कारण ऊँचे अफ्सर जाया ही करत हैं अब क तो अधकुम्भी भी लोगा को खीच रही थी। हमारे डब्बे मे एक शरणार्थी डाक्टर अपन परिवार की महिलाओ के साथ जा रहे थे। दूसरे आदमियो म रेल क एक भूतपूव कमचारी अपनी वद्धा पत्नी के साथ बैठे थे। पास के दूसरे दर्जे के डब्ब म जगह थी, शायद वहा अधिक स्थान मिल जाता लेकिन जब स्थिति मालूम हुई ता सामान लेकर दूसरे डब्बे म जाना मुश्किल था। मैंने ऊपर सामान रखन की सीट दखल की, इसलिए कमला का दो आदमिया

थे। पच्चीसों छोटे छोटे बच्चे थे, जिनमें से किसी का पैर टेढ़ा हो गया था, और किसी का हाथ। कितने ही सुन्दर लड़के विकलांग हो गये थे। यहाँ एक नर्स ने पुर्जा पाकर नाम लिख लिया, लेकिन हमें कोई आदेश पत्र नहीं दिया। कह दिया यहाँ आप भी इन्तिजार करें। पहले लेडी डाक्टर ने ही कह दिया था—"हाथ ठीक हो गया है।" लेकिन हम जब दिल्ली तक आए थे, तो विशेषज्ञ को दिखला देना चाहते थे। कुछ देर बाद डाक्टर साहब दो एक डाक्टरों के साथ आए। हरेक लड़के को देखकर कुछ आदेश लिख वाते जाते थे। जेता के हाथ पर हलके से पोलियो का असर हुआ था, और कुछ ही दिनों तक वह उसे इच्छानुसार हिला डुला नहीं सकता था। पर, अब हिलाने डुलाने में कोई शिकायत नहीं थी। कसर थी तो यही कि बाएँ हाथ की अपेक्षा दाएँ हाथ में शक्ति कम थी, इसलिए डाक्टर साहब ने उसे सबसे पीछे के लिए छोड़ दिया। अन्त में बारी आई। हाथ देखा और पूछा। फिर कहा—'अब इसमें अधिक कसर नहीं है। जो कुछ है, वह हाथ के व्यायाम से ठीक हो जायेगा।" भैया पहले से ही यह बात कह रहे थे। लेकिन हम तो आधुनिक ढंग के क्लिनिक से विशेष परामर्श लेने के लिए आये थे। डाक्टर ने किसी तरह बेगार टाली। हम वहाँ से चल देना चाहिए था, लेकिन जिस तरुणी ने यहाँ पुर्जे को लिया था, वह कह रही थी—'जरा ठहरिए, विशेष तौर से देखेंगे।' ठहर जाना पड़ा। शिवजी ने पीछे बतलाया कि वह कुछ पैसा पाने की आशा रख रही थी। खैर, फिर डाक्टर ने देखा। सलाह तो वह पहले ही दे चुके थे।

छुट्टी मिलने पर १ बजे हम टैक्सी लेकर घर पर पहुँचे। अब गर्मी में बाहर निकलने की कौन हिम्मत करता? दिल्ली का काम हमारा हो चुका था, इसलिए जल्दी छोड़ने की पड़ी थी। शाम के ६ बजे तक हम और बच्चे भी शीतलपाटी पर पंखे के नीचे पड़े रहे। स्त्रियाँ बड़ी हिम्मतवाली होती हैं। हाट बाजार उनके शौक की चीज है। कमला और भाभीजी, जया और ताऊजी के मुन्ने" को लेकर बाजार गई। भाभीजी के भतीजे को जया ने ताऊजी का मुन्ना" नाम दे रखा है।

वैसे तो १० १२ अप्रैल तक के लिए हम तैयार होकर गए थे। सोचा था वहाँ बिजली का इलाज या मालिश आदि बतलाएँगे, जिसके लिए कुछ

दिन ठहरना पडेगा। अब एक दिन और जरूर ही ठहरना था। देवताओ की कृपा समझिये, उस दिन सवेरे से हलका सा मेघ का पर्दा आकाश पर छाया रहा। शाम को कुछ बूदाबांदी भी हुई। हम कुछ साथियो और प्रकाशको से मिलना था, पार्टी आफिस मे साथी रणदिवे, खाडिलकर सच्चिदा और दूसरे मिले। आजकल स्तालिन की ही चर्चा सब जगह सुनाई दे रही थी। स्तालिन के पिछले जीवन के जो दोष प्रकट हुए थे और जिनकी कडी आलोचना सोवियत भूमि मे हो रही थी उसका प्रभाव सबके ऊपर पड रहा था। मैंने भी अपने विचार प्रकट किये। सभी इसे कडवी घूट समझते थे लेकिन मानते थे कि यही स्वास्थ्यकर दवा है। साम्यवाद के विरोधियो को यद्यपि मौका मिला है, लेकिन वे उसका कुछ भी बिगाड नही सकते। निर्बलता को हटाकर विश्व साम्यवाद और भी मजबूत होगा, और भी फलेगा। सच्चिदा ने बतलाया, इस महीने हम "माओ" (जीवनी) मे हाथ लगाएंगे। राजकमल के देवराजजी ने फिर अब के इसी महीने मे 'शादी' मे हाथ लगाने का वादा किया पर वह कभी नही लगा।

४ अप्रैल को भी दिन भर हम दिल्ली ही मे रहना पडा। कल तो बादल ने कुछ अवलम्ब दिया था, लेकिन आज १० बजे दिन से रात के ८ बजे तक पखा ही शरण रहा। पसीने से तो बच गए लेकिन सिर घूम रहा था। समय से कुछ पहले ही स्टेशन पहुँचे। दूसरे दर्जे मे दो सीटे रिजर्व करा ली थी। हम यह भूल गए कि दूसरे दर्जे मे रिजर्व कराने का मतलब सिर्फ बैठने की जगह सुरक्षित करना है, सोने की नही। यहाँ आने पर जब देखा, बैठे-बैठे बच्चो को लेकर गुजारा करना पडेगा तो पहले दर्जे मे सीट ढूढने के लिए दौडे पर वहाँ कोई जगह खाली नही थी। देहरादून मे फौजी स्कूल और दूसरी सस्थाओ के कारण ऊँचे अफसर जाया ही करते हैं, अब के तो अर्धकुम्भी भी लोगो को खीच रही थी। हमारे डब्बे मे एक शरणार्थी डाक्टर अपने परिवार की महिलाओं के साथ जा रहे थे। दूसरे आदमियो मे रेल के एक भूतपूर्व कर्मचारी अपनी वृद्धा पत्नी के साथ बैठे थे। पास के दूसरे दर्जे के डब्बे मे जगह थी, शायद वहा अधिक स्थान मिल जाता, लेकिन जब स्थिति मालूम हुई तो सामान लेकर दूसरे डब्बे मे जाना मुश्किल था। मैने ऊपर सामान रखने की सीट दखल की, इसलिए कमला को दो आदमियो

की जगह मिल गई। सयोग से हमारे चार आदमियो की बेंच पर एक आदमी नही आया। जस भी हो रात काटनी ही थी।

हरद्वार के ही यात्री ट्रेन म भरे हुए थे, इसलिए हरद्वार आन पर उनम स बहुत स उतर गए। भूतपूव रेलवे कमचारी शरणार्थी थे। देहरादून मे उनके सम्बन्धी रहते थ, इसलिए पहले अपना भारी भकम सामान लेकर वह देहरादून जाना चाहते थे जहा से अधकुम्भी स्नान के लिए आते। उनकी वृद्धा पत्नी कुछ अधिक मोटी थी। चलना फिरना उनके लिए मुश्किल था। ऊपर से पूरी धर्मात्मा थी। हाथ धोने के लिए मिट्टी भी अपने साथ लेकर चल रही थी। हरद्वार स्टेशन पर हाथ मुह धोन की सूझी और मिट्टी लेकर पानीकल पर पहुँची। लौटते लौटते गाडी चल पडी। पतिदेव दौडकर चढे लेकिन पत्नी छूटी जा रही थी। जल्दी से गाडी रोकन की जजीर खींच ली। पहले दूसरे को खींचने के लिए कहा, लेकिन उसने इकार कर दिया। गाडी खडी हुई। गार्ड न आकर कहा—*"तुम्हारे ऊपर मुकदमा चलाया जाएगा।"* वह कहन लगे—*"मेरी बीबी छूटी जा रही थी, इस लिए मैंने खींची।"* गार्ड ने कहा—*"यह सब जवाब मजिस्ट्रेट के सामने आप दीजियेगा।"* सामान उतार लिया गया और उन्हे स्टेशन के कमचारी के सुपुर्द कर दिया गया।

८ बजे हम देहरा पहुँचे। आज यही रहना था। बगीचे की रक्षा के लिए टोपीवाली बन्दूक साठ-पसठ रुपये म खरीदी थी। उसका कोई काम नही था, इसलिए बेच देना चाहते थे। हिमालय आमवाला न उसे ६० ६५ मे बेचा था, और अब ३० रुपया देन के लिए तैयार थे। उसे बेचकर रेमिंगटन के यहाँ मरम्मत के लिए दिये हुए टाइपराइटर को ले घर लौट आए। दिल्ली और देहरा म बहुत फर्क है। गर्मी यहा भी थी, पर दिल्ली जसी नही।

मसूरी—*६ अप्रैल को ९ बजे टैक्सी ली। पौने १० बजे हम कितावघर (मसूरी) पहुँच गए, और आध घटे म ही पैदल चलकर घर आ गए। जेता को दस्त आ रहे थे, और जुकाम भी था। हमारे पडोसी 'क्लिडेर'* क स्वामी कर्नल चाँद भी आ चुके थे, इसलिए डाक्टरी परामर्श स हम निश्चिन्त थे।

बुद्ध पर अनेक पत्र पत्रिकाओं ने लेख लिखने की माँग की थी। सोचा इसी बहाने बुद्ध पर एक छोटी सी पुस्तक तैयार हो जाएगी, इसलिए उदारतापूर्वक लिखने लग गए। दिल्ली से भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) ने अपनी जीवनी की सामग्री दी थी, उसे भी लेकर अब "घुमक्कड़ स्वामी (हरिशरणानन्द)" को दुबारा लिखना था जिसे ८ अप्रैल से हमने शुरू किया।

९ अप्रैल के सोमवार को संवत् २०१२ चैत बदी १३ रही। ६३ साल पहले वैशाख बदी ८ रविवार को संवत् १९५० विक्रमी का पन्दाहा में मैं पैदा हुआ। यहीं आकर ६०वें जन्मदिन को कमला ने विशेष तौर से मनाया था। आज ६४वाँ जन्मदिन था। हम निश्चय कर चुके थे कि उस दिन अपने घर ही में विशेष खाना पीना कर लेंगे, पार्टी-वार्टी नहीं करेंगे। सवेरे नित्य नियम के अनुसार तीन घंटे टाइप कराया। दोपहर को और अपराह्न की चाय में कुछ विशेष भोजन रहा। इस प्रकार यह दिन समाप्त हो गया।

• • •